



कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय, वाराणसी।

अर्थशास्त्र कोश

अर्थशास्त्र कोश

अमरनाथ अग्रवाल
कमलनयन काबरा



राजकमल प्रकाशन
नयी दिल्ली • पटना

मूल्य : रु० ४०.००

प्रथम संस्करण : १९७७

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
८ नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-११०००२

मुद्रक : शाहदरा प्रिंटिंग प्रेस,
के-१८, नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२

भारत सरकार द्वारा अपेक्षाकृत सस्ते मूल्य पर उपलब्ध कराये गये कागज पर मुद्रित ।

भूमिका

समाजविज्ञान का विकास किसी देश की प्रगति और आधुनिकता का अच्छा सूचक माना जा सकता है। भारत का आधुनिकता की ओर प्रयाण भारतीय समस्याओं पर भारतीय मुहावरे में विचार किये विना और भारतीय भाषाओं में समाजविज्ञान का विकास किये बिना अधूरा और सार्थकता से परे ही रहेगा। पिछले दो-तीन दशकों में हमारे देश में सामाजिक समस्याओं, खासकर आर्थिक सवालों, पर जनता की चेतना काफी बढ़ी है। विश्वविद्यालयों, अनुसन्धान-केन्द्रों, समाचारपत्रों, पत्रिकाओं, सरकारी विभागों, सार्वजनिक संस्थाओं, श्रम-संगठनों, राजनीतिक दलों आदि मंचों पर आर्थिक प्रश्नों पर चर्चा, अनुसन्धान और विवाद बढ़ते जा रहे हैं। जैसे-जैसे सार्वजनिक आर्थिक नीतियों और राष्ट्रीय आर्थिक आयोजन का जन-जीवन से सम्बन्ध गहरा होता जा रहा है और विभिन्न वर्गों के परस्पर-विरोधी स्वार्थों का टकराव बढ़ रहा है, आर्थिक मसलों पर चर्चा व्यापक और गहरी होती जा रही है। इस प्रक्रिया में आर्थिक साहित्य की वृद्धि होना स्वाभाविक ही है।

दुर्भाग्यवश इन प्रवृत्तियों के साथ ही अंग्रेजी भाषा का भारत के आर्थिक साहित्य में महत्त्व भी कम होने की अपेक्षा बढ़ता ही जा रहा है। यह एक ऐतिहासिक प्रवृत्ति है जिसके कई प्रभावी कारण रहे हैं। इनमें एक महत्त्वपूर्ण कारण-है भारतीय भाषाओं में सामान्य रूप से स्वीकृत, मानक आर्थिक तकनीकी शब्दों का विकास न हो पाना। विचार-विनिमय और अभिव्यक्ति में इससे काफी दिक्कतें और भ्रान्तियाँ पैदा होती हैं।

अर्थशास्त्र के तकनीकी शब्दों के बारे में ऐसी भ्रान्तियाँ होने का एक और कारण भी है। अर्थशास्त्र में कई ऐसे शब्द काम में लाये जाते हैं जो आम बोलचाल में इस्तेमाल होनेवाले शब्द भी हैं। लगान, आय, बचत, उपभोग, वस्तुएँ, सेवाएँ आदि साधारण शब्दों से लेकर अधिशेष, भुगतान-सन्तुलन, प्रदर्शन-प्रभाव, लोच, सन्तुलन, प्रतिधावी प्रभाव आदि विशिष्ट शब्दों का आम बोलचाल और लेखन में जिन अर्थों में प्रयोग होता है उनमें और आर्थिक वैज्ञानिक सन्दर्भ में प्रयुक्त अर्थों में बहुधा काफी बड़ा अन्तर होता है। वास्तव में, अर्थशास्त्र-जैसे वैज्ञानिक विषय में शब्दों का सटीक, सही, सर्वथा उपयुक्त और निर्धारित अर्थों में प्रयोग उसके वैज्ञानिक स्वरूप की प्रतिष्ठा और सही निष्कर्ष पाने के लिए नितान्त आवश्यक है।

आर्थिक विश्लेषण, अनुसन्धान, लेखन आदि के लिए ही नहीं बल्कि आर्थिक विषयों पर तैयार साहित्य को समझने के लिए भी आर्थिक शब्दावली और उसकी विशिष्टताओं को जानना जरूरी है। कई बार लोग अर्थशास्त्रियों से उनके 'शब्द-जाल' को लेकर शिकायत करते हैं तो कभी इसी बात को लेकर उनका मज़ाक भी उड़ाते हैं। ऐसा तो नहीं है कि सभी अर्थशास्त्री बेकार के शब्दजाल से बचे रह पाते हैं, परन्तु कई बार शब्दों को उपयुक्त, सटीक और पूर्वनिर्धारित वैज्ञानिक अर्थों में प्रयोग करने के कारण भी अर्थशास्त्रियों को आधारहीन शिकायत और मज़ाक का सामना करना पड़ता है।

जैसे-जैसे आर्थिक मामलों की बहसें जनसामान्य तक पहुँचती हैं और उन पर गरमागरमी होती है, यह जरूरी होता जाता है कि लोग आर्थिक शब्दावली से परिचित हों। हिन्दी में कई सरकारी और गैर-सरकारी प्रयासों के कारण अब काफी अंशों तक एक सर्वमान्य शब्दावली का प्रचलन बढ़ता जा रहा है। 'तकनीकी शब्द आयोग' ने इस दिशा में अच्छी पहलकदमी और प्रगति की है। परन्तु तकनीकी शब्दों का केवल चयन, गठन और निर्माण ही काफी नहीं है, उन शब्दों का सही अर्थ और उनकी उपयुक्त व्याख्या का प्रचलित और स्वीकृत होना जरूरी है। एक अंग्रेजी तकनीकी शब्द के लिए कई बार एक से ज्यादा हिन्दी समानार्थक शब्द सुझाये जा सकते हैं। प्रचलन और जन-अनुभव की अदालत से भी शब्द गिरते और उठते रहते हैं। परन्तु शब्दावली को यथासम्भव सर्वमान्य और मानक बनाने की जरूरत से तो इनकार नहीं किया जा सकता है।

हिन्दी में पिछले एक-दो दशकों में आर्थिक वैज्ञानिक साहित्य के निर्माण (मौलिक और अनुवाद) की दिशा में कुछ काम हुआ है। इसे काफी समझना तो अर्थशास्त्र की विश्वव्यापी स्तर पर वर्तमान उन्नत अवस्था से और हमारे देश की अनुत्तरित आर्थिक समस्याओं से आँखें मूँदने के समान है। हिन्दी में न केवल आर्थिक वैज्ञानिक साहित्य की समझ बढ़े वरन् मौलिक अनुसन्धान और आर्थिक साहित्य का निर्माण हो इसके लिए जरूरी है कि वैज्ञानिक, तर्कसम्मत मानक आर्थिक शब्दावली का प्रचलन हो।

प्रस्तुत पुस्तक इसी दिशा में एक प्रयास है। यद्यपि कुछ अन्य आर्थिक शब्द-कोश भी प्रकाशित हुए हैं, परन्तु प्रस्तुत 'अर्थशास्त्र कोश' अपनी योजना, प्रस्तुति, क्षेत्र, शैली आदि में एक विशिष्ट विचार और अवधारणा पर आधारित है। हमने केवल तकनीकी अवधारणाओं को ही चुना है, परन्तु चयन में विषय के ऐतिहासिक, वर्तमान और भावी रूपों के साथ ही हमारी आर्थिक समस्याओं के विशेष रूप को भी ध्यान में रखा गया है। यथासम्भव हमने 'तकनीकी शब्द आयोग' की शब्दावली को माना है, पर साथ ही अन्य प्रचलित या हमारी दृष्टि में अधिक उपयुक्त शब्द भी साथ में दिये हैं। इस तरह कुछ शब्दों के एकाधिक समानार्थक शब्द देने में हमारी धारणा यह रही है कि कुछ शब्द या तो समान रूप से उपयुक्त हैं या काफी व्यापक रूप से

प्रचलन में आ गये हैं, या वे ऐसे हैं कि आखिरी फैसला प्रचलन की सफलता और अभिव्यक्ति की व्यवहारसिद्ध क्षमता द्वारा ही किया जा सकेगा।

हमने अर्थशास्त्रियों और आर्थिक जगत की विशिष्ट संस्थाओं के नामों को अपने क्षेत्र से बाहर रखा है। अर्थशास्त्र-जैसे तेजी से बढ़ते विषय में और शब्दों के समावेश की गुंजाइश हमेशा बनी रहती है और हम स्वयं इस बात से परिचित हैं। फिर भी, अनेक अपेक्षाकृत नये प्रचलन में आये शब्दों को हमने इस कोश में शामिल किया है।

इस तरह के काम में अनेक आभारों का हमारे सिर पर चढ़ना स्वाभाविक ही है। हम उन तमाम अर्थशास्त्रियों और शब्दकारों के आभारी हैं जिनके विचारों और शब्दों का हमने प्रयोग किया है। यदि हम उनके विचारों और शब्दों को पाठकों तक प्रभावी ढंग से पहुँचा सके तो हम इन अनुग्रहों से अपने को कुछ अंशों तक उऋण समझेंगे।

इस तरह के दो लेखकों के संयुक्त कार्य में श्रम-विभाजन समान रूप से होने पर भी दोनों लेखक सारे काम के लिए अपने को समान रूप से जिम्मेदार मानते हैं। इस काम में हमें अपने अनेक मित्रों का सहयोग मिला। कुछ मित्रों और सहकर्मियों के नामों का उल्लेख कर धन्यवादज्ञापन करना औपचारिकता-भर निभाना ही नहीं, अपितु उनके सहकार का उचित ज्ञापन करना भी है। हम विशेष रूप से डॉ० गिरीश मिश्र, श्री ओमप्रकाश अग्रवाल, डॉ० नगीनचन्द्र सहगल, श्रीमती पुष्पा कमल कावरा और श्री गुलशन कुमार के प्रति अपने धन्यवाद प्रेषित करना चाहेंगे। अन्त में हम श्रीमती शीला सन्धु को भी धन्यवाद देना चाहेंगे जिन्होंने हमारी धीमी गति के बावजूद दिलचस्पी लेकर इस कोश को प्रकाशित करने में सफलता प्राप्त की।

दिल्ली
जनवरी, १९७७

अमरनाथ अग्रवाल
कमलनयन काबरा

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	छपा है	कृपया पढ़ें
२१६	Horisontal integration	Horizontal integration
२१६	Horisontal labour mobility	Horizontal labour mobility
३४३	सार्वजनिक आय	सार्वजनिक व्यय
३४५	क्रयशक्ति-क्षमता	क्रयशक्ति-समता
३४६ २७वीं पंक्ति	क्रयशक्ति-क्षमता	क्रयशक्ति-समता

अर्थशास्त्र कोश

ability rent [एबिलिटी रेण्ट] : योग्यता-अधिशेष।

आर्थिक लगान के विश्लेषण से लगान का एक सामान्य सिद्धान्त विकसित हुआ। इस सिद्धान्त के अनुसार किसी उत्पादन-साधन को लगान तब मिलता है, जब कि उस साधन की बढ़ी हुई माँग को पूरा करने के लिए उसकी पूर्ति नहीं बढ़ पाती। इस अल्पकालिक सापेक्ष न्यूनता के कारण उत्पादन के ऐसे साधन की आय बढ़ जाती है। इस बढ़ी हुई आय को उस साधन का लगान कहते हैं। इस प्रकार लगान अर्जित करना केवल भूमि का ही नहीं, अपितु उत्पादन के सभी साधनों का सामान्य गुण हो जाता है।

श्रम की कुछ बहुत विशिष्ट प्रकार की कोटियाँ होती हैं जो काफी कौशल-प्रधान होती हैं। यदि किसी कारणवश ऐसे श्रमिकों की माँग बढ़ जाये, तो तत्काल या अल्पकाल में उनकी पूर्ति बढ़ायी नहीं जा सकती। फलस्वरूप ऐसे श्रमिकों की मजदूरी बढ़ जायेगी। इस प्रकार की अतिरिक्त आय को श्रम का लगान या योग्यता-अधिशेष कहते हैं। इस अतिरिक्त आय की प्राप्ति का मुख्य कारण श्रम की कुछ विशिष्ट अर्हताएँ हैं जिनके कारण श्रम की पूर्ति बढ़ाने में समय लगता है। इसीलिए इस आय को योग्यता-अधिशेष कहा जाता है। इसी विशेषता के कारण श्रमिकों की किसी व्यवसाय में प्राप्त होनेवाली वास्तविक आय और उनकी अन्तरण आय (निकटतम वैकल्पिक व्यवसाय में प्राप्य आय) के बीच का अन्तर बढ़ जाता है।

ability to pay (एबिलिटी टू पे) : प्रदान-सामर्थ्य।

कराधान का एक प्राचीन एवं प्रसिद्ध सिद्धान्त, जिसकी अनेक व्याख्याएँ प्रचलित हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार कर तथा करों की दर इस तरह निर्धारित की जानी चाहिए कि कर-भार लोगों की कर चुकाने की क्षमता के अनुसार हो। इस व्यापक अर्थ में यह एक निरपवाद सिद्धान्त या कराधान के औचित्य की जाँच का निकष है। परन्तु जब करदान-क्षमता के निर्धारण का प्रश्न आता है, तब उस अवधारणा के कई वैकल्पिक अर्थ सामने आते हैं। सम्पूर्ण वास्तविक आय, सम्पत्ति, उपभोग-स्तर, प्रति व्यक्ति उपभोग या आय, व्यवसाय की प्रकृति, आय की प्रकृति, आय

तथा सम्पत्ति का सम्मिलित सूचकांक आदि करदान-क्षमता के अनेक प्रदर्शक हो सकते हैं। फिर, कर की दर इस क्षमता के मापदण्ड से किस तरह सम्बन्धित की जाये, यह अपने-आपमें एक विवादास्पद प्रश्न है। वर्द्धमान तथा आनुपातिक कर सम्बन्धी विवाद, करदान-क्षमता-सूचक के साथ कर की दर को किस तरह जोड़ा जाये, इसी विषय का विवाद है। करदान-क्षमता के निर्धारण में एक अन्य कठिनाई इसलिए भी उठती है कि किसी व्यक्ति या परिवार की करदान-क्षमता का सूचक किसी फर्म, निगम या अन्य अवैयक्तिक संस्था के लिए शायद ही उपयुक्त बैठे। दूसरे, आजकल के सरकारी वित्त-विषयक सिद्धान्तों के अनुसार कई बार समष्टिगत आर्थिक कारणों से कुल सरकारी आय अथवा राजस्व बढ़ाने का निर्णय लेना पड़ता है। हो सकता है कि करदान-क्षमता के किसी विशेष मापदण्ड के आधार पर निर्धारित कर-नीति से इतना राजस्व न उगाहा जा सके।

abrasion (एब्रेशन) : अवघर्षण।

बार-बार प्रयुक्त होने से धातु-मुद्रा अथवा सिक्के घिस जाते हैं और फलस्वरूप उनका वजन व धातु-मूल्य कम हो जाता है। संचलन के कारण सिक्कों के वजन व उनके आन्तरिक मूल्य में होनेवाली इस कमी को अवघर्षण या घिसाई कहते हैं। जब महँगी धातुओं (जैसे, सोना, चाँदी) के सिक्के संचलन में थे, तब इस तरह की घिसावट से हुए मूल्य-ह्रास का बहुत महत्त्व था। वास्तव में इस घिसावट से हुए मूल्य-ह्रास को पूरा करना कीमती धातुओंवाले सिक्कों के काल में काफी महँगा सौदा पड़ता था।

absentee capitalist (ऐबसेण्टी कैपिटलिस्ट) : अन्यत्रवासी पूँजीपति।

पूँजीवादी विकास के शुरू के चरणों में पूँजीपति, उद्यमकर्त्ता और प्रबन्धक के कार्य एक ही व्यक्ति द्वारा किये जाते थे। परन्तु आगे चलकर इस विकास के बढ़ते चरणों के साथ-ही-साथ व्यावसायिक फर्मों का आकार बढ़ा तथा पूँजी और उसके स्वामित्व का केन्द्रीकरण भी हुआ। संयुक्त-पूँजी कम्पनियों का अधिकाधिक सहारा लिया जाने लगा। अब पूँजीपति (पूँजी के निवेशक) अन्य कार्यों से, विशेषतः उद्यम और प्रबन्ध से, दूर रहने लगे। कम्पनी के प्रवर्त्तक उद्यमकर्त्ता एवं व्यवस्थापक और वेतनभोगी कर्मचारी प्रबन्धक बन गये। कम्पनी के अंशधारी केवल लाभांश में रुचि रखते हैं और दूरवासी जमींदारों की ही तरह अप्रत्यक्ष रूप से स्वामित्व के नाते ही उत्पादन-प्रक्रिया से सम्बन्धित होते हैं। प्रो० जॉन रॉबिन्सन ने इन्हें 'निष्क्रिय अंशधारी' कहा है। अन्यत्रवासी पूँजीपति भी वस्तुतः एक अनुत्पादक वर्ग ही रह गये हैं।

absenteeism (ऐबसेण्टीज्म): अनुपस्थायिता।

श्रमिकों की काम से छुट्टी पर रहने की प्रवृत्ति। कई बार अनुपस्थायिता से अभिप्राय काम पर न आने की उस दशा से लिया जाता है, जिसके लिए श्रमिक समुचित कारण नहीं दे पाते। स्पष्टतः यह बहुत संकुचित विचार है, क्योंकि एक अवधारणा के रूप में अनुपस्थायिता तभी सार्थक हो सकेगी, जबकि इसके कारणों का निदान किया जा सकता हो। शायद

इस मत के मूल में यह विचार निहित है कि काम से दूर रहने के कुछ सामान्य, उचित और पर्याप्त कारण होते हैं। अनुपस्थायिता उस स्थिति को कहेंगे जब कि कार्य से अवकाश के कारण इस दृष्टि से सामान्य, उचित और पर्याप्त नहीं माने जा सकें। परन्तु सामान्य, उचित और पर्याप्त कारणों का कोई निरपेक्ष मापदण्ड तो होता नहीं। दूसरे, अनुपस्थिति-दर के आगणन में इस प्रकार के विभेद को लागू करना कठिन हो जाता है। किसी अर्थ-व्यवस्था के अधिकतम सम्भव कार्य-दिवसों (कुल कार्यशील जनसंख्या × वर्ष के कार्य-दिवस) तथा वास्तविक कार्य-दिवसों का अनुपात उस अर्थव्यवस्था की अनुपस्थिति-प्रवृत्ति का द्योतक होता है।

अनुपस्थिति-दर श्रम की कुशलता के कारण और परिणाम, दोनों पक्षों को प्रभावित करती है। कुशल श्रमिक स्वस्थ, कार्य से प्रतिवद्ध एवं आर्थिक प्रगति से प्रेरित होते हैं। दूसरी ओर अनुपस्थिति-दर कम होने पर उत्पादन बढ़ता है, श्रम की निरन्तरता से श्रमिक अधिक सक्षम बनता है और उत्पादिता पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। गरीब, अस्वस्थ और शोषित होने पर श्रमिक काम से बहुत नागा करते हैं।

दुष्चक्र के रूप में अनुपस्थिति की प्रवृत्ति अल्पविकसित तथा कम उद्योग-प्रधान देशों में पायी जाती है। ऐसे देशों में श्रमिकों का ग्रामीण व कृषि-अर्थव्यवस्था से सम्पर्क बना रहता है। वस्तुतः वे कृषि-क्षेत्र के अल्प एवं मौसमी रोजगार तथा रोजगार के अन्य अवसरों के अभाव के कारण शहरी कारखानों या अन्य ऐसे क्षेत्रों में काम करने लग जाते हैं। संयुक्त परिवार-प्रणाली व अन्य सामाजिक-सांस्कृतिक बातों के प्रभाव से तथा कृषि की मौसमी जरूरतों को पूरा करने एवं हारी-बीमारी आदि के कारण वे लम्बी छुट्टियों पर बार-बार गाँव आते-जाते रहते हैं। इस प्रकार द्वैतात्मक अर्थ-व्यवस्थाओं में अत्यधिक अनुपस्थायिता एक लक्षण-सी बन जाती है।

absentee landlord (ऐबसेण्टी लैण्ड-लॉर्ड) : दूरवासी जमींदार।

जब भू-स्वामी खेती-सम्बन्धी कार्यों की प्रत्यक्ष देख-रेख नहीं करते और खेतों से दूर रहते हैं, तब वे दूरवासी जमींदार कहलाते हैं। भू-सम्पत्ति की अत्यधिक मात्रा, बहुत अधिक आय, शहरी उपभोग सम्बन्धी सुविधाओं की चाह, गैर-कृषि व्यवसायों में बढ़ती रुचि, जमीन को बटाई पर चढ़ाने तथा ऊँची दर पर लगान वसूल करने की सम्भावना, आदि इस प्रवृत्ति के मूल कारण हैं। दूरवासी जमींदार अनुपार्जित आय पाते हैं।

दूरवासी जमींदारी प्रथा में भूमि की उर्वरता तथा कृषि-उत्पादिता बढ़ाने में न तो दूरवासी जमींदार रुचि लेते हैं और न वास्तविक कृषक ही। सच तो यह है कि कृषकों की उत्पादिता-संवर्द्धन की प्रेरणा ही इस व्यवस्था में समाप्त हो जाती है। अतः दूरवासी जमींदारी व्यवस्था के अन्तर्गत कृषि अवनति की राह पर बढ़ती है। निस्सन्देह यह एक अत्यन्त अन्यायपूर्ण एवं प्रतिगामी व्यवस्था है। दूरवासी जमींदार एक अनुत्पादक और परोपजीवी वर्ग है।

absolute advantage (एब्सोल्यूट एडवाण्टेज) : निरपेक्ष सुलाभ।

यदि कोई राष्ट्र या क्षेत्र दूसरे राष्ट्रों या क्षेत्रों की तुलना में कतिपय वस्तुओं का उत्पादन कम लागत में करता है, तो अन्य राष्ट्रों या क्षेत्रों की दृष्टि से ऐसा राष्ट्र या क्षेत्र 'निरपेक्ष सुलाभ' अथवा पूर्ण सुलाभ की स्थिति में होता है। एक उदाहरण लेकर इसे आसानी से समझा जा सकता है। मान लें कि 'क' और 'ख' दो देश हैं और ये 'अ' और 'ब' दो वस्तुओं का उत्पादन करते हैं। यदि संसाधनों की एक निश्चित मात्रा से दोनों देशों में 'अ' और 'ब' की क्रमशः २०० 'अ' या १०० 'ब' और १०० 'अ' या २०० 'ब' उत्पादन होता है, तो इसका अर्थ यह हुआ कि 'क' देश को 'अ' वस्तु के उत्पादन में और 'ख' देश को 'ब' वस्तु के उत्पादन में निरपेक्ष या पूर्ण सुलाभ प्राप्त है।

absolute monopoly (एब्सोल्यूट मोनोपॅली) : पूर्ण एकाधिकार।

एक सैद्धान्तिक अवधारणा मात्र, जिसका प्रतिरूप वास्तविक जीवन में नहीं देखा जा सकता। वह फर्म पूर्ण एकाधिकार से सम्पन्न मानी जायेगी, जिसके उत्पाद या उत्पादों का प्रतिस्थापन सम्भव नहीं हो। प्रतियोगी उत्पादों से पूर्णतया मुक्त तो वही फर्म हो सकेगी, जिसके माल की खरीद पर उपभोक्ता अपनी सारी आय खर्च कर दें। अर्थात् अर्थव्यवस्था की सब वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन पूर्ण एकाधिकारी के हाथ में होना चाहिए। ऐसा होने पर ही पूर्ण एकाधिकारी को अपनी वस्तुओं के उत्पादन की मात्रा तथा उनकी कीमत, दोनों के निर्धारण की पूरी छूट होगी। ऐसी पूर्ण एकाधिकारी फर्म को अधिकतम लाभ का सन्तुलन-बिन्दु अर्थव्यवस्था के सब अर्जकों की सारी आय आगम के रूप में, प्राप्त करके ही मिल सकता है। स्पष्ट है कि ऐसी व्यापक तथा सर्वशक्तिशाली एकाधिकारी फर्म वस्तु-जगत में नहीं पायी जा सकती। इस अवधारणा से यह स्पष्ट हो जाता है कि पूर्ण एकाधिकार सम्भव नहीं है और एकाधिकारी की शक्ति भी सीमित होती है। वह या तो अपनी वस्तुओं की कीमत नियन्त्रित कर सकता है या उनके उत्पादन की मात्रा।

यदि किसी फर्म का उत्पाद ऐसा है कि उस वस्तु का किसी अन्य वस्तु से प्रतिस्थापन सम्भव नहीं है, तो स्पष्टतः वह फर्म पूर्ण एकाधिकारी फर्म कहलायेगी। इस स्थिति में पूर्ण एकाधिकारी अपनी वस्तु की जो भी कीमत निर्धारित करे, उसके लिए कोई भी विकल्प उपलब्ध न होने के कारण उपभोक्ता को वह वस्तु खरीदनी ही पड़ेगी। प्रत्येक वस्तु की माँग उसकी कीमत से सम्बन्धित होती है। इस प्रकार पूर्ण एकाधिकार का निहितार्थ यह होगा कि कुछ वस्तुओं की माँग की कीमत-लोच शून्य है। परन्तु वास्तव में यदि किसी वस्तु की कीमत बढ़ती रहे, तो एक ऐसा स्तर अवश्य आयेगा जबकि खरीदार उस वस्तु के स्थान पर कोई अन्य वस्तु खरीदने लगेंगे। इस अर्थ में न केवल प्रत्येक वस्तु का कोई-न-कोई विकल्प अवश्य होता है, वरन् प्रत्येक वस्तु एक-दूसरे की प्रतिस्थापक भी होती है। पूर्ण एकाधिकार की धारणा की अवास्तविकता इस प्रकार के सत्यों को उजागर करती है।

absorption (एब्साप्‌र्शन) : अन्तर्लयन, अवशोषण।

एक छोटी कम्पनी का बड़ी कम्पनी

में पूर्ण विलयन, जिसके फलस्वरूप छोटी कम्पनी का पृथक् अस्तित्व पूर्णतः समाप्त हो जाता है। यह छोटी कम्पनी वड़ी कम्पनी का ही एक हिस्सा वन जाती है।

देखिए : amalgamation

abstinence (ऐब्स्टिनेन्स) : उपभोग-स्थगन।

भविष्य के लिए वर्तमान उपभोग का त्याग। कोई व्यक्ति अपनी कुल आय को तत्काल वस्तुओं और सेवाओं पर खर्च कर सकता है। यदि वह ऐसा न करके अपनी आय का एक भाग बचाता है, तो इसका अर्थ यह हुआ कि पूरी आय खर्च करने पर वह जितनी वस्तुओं और सेवाओं का उपभोग कर सकता था, उससे कम माला में वस्तुओं और सेवाओं का उपभोग कर पायेगा। फलस्वरूप उसको सन्तुष्टि की कम माला मिलेगी। इस उपभोग-स्थगन का उद्देश्य भविष्य में अपेक्षाकृत अधिक माला में वस्तुओं और सेवाओं का उपभोग करना है। प्रमुख रूप से इस अवधारणा का प्रयोग ब्याज के सिद्धान्तों के सन्दर्भ में किया जाता है।

स्पष्टतः उपभोग-स्थगन से बचत बढ़ती है और पूंजी का निर्माण होता है। इस अर्थ में 'उपभोग-स्थगन' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम सीनियर ने किया। तत्काल उपभोग-स्थगन जितना ही अधिक होगा, बचत और फलस्वरूप पूंजी-निर्माण भी उतना ही अधिक होगा। पूंजी-निर्माण अधिक होने से भविष्य में अधिक उपभोक्ता-वस्तुओं का उत्पादन सम्भव हो सकेगा और इस प्रकार लोगों को अधिक माला में सन्तुष्टि प्राप्त होगी। आर्थिक विकास की गति को तेज करने में जनता की उपभोग-स्थगन-प्रवृत्ति का महत्त्वपूर्ण योगदान हो सकता है।

abstract labour (ऐब्सट्रैक्ट लेबर) : अमूर्त श्रम।

यदि हम वस्तुओं के उपयोग-मूल्य की ओर ध्यान न दें, तो उनमें केवल एक ही विशेषता समान रूप से मिलेगी। वह समान विशेषता यह है कि वे सब श्रम की पैदावार हैं। अगर हम श्रम की पैदावार को उसके उपयोग-मूल्य से अलग कर लें, तो हम उसे उन भौतिक तत्त्वों और आकृतियों से भी अलग कर लेंगे जिन्होंने उसे उपयोग-मूल्य दिया है। ऐसी स्थिति में एक भौतिक वस्तु के रूप में उसका अस्तित्व आँखों से ओझल हो जाता है और वह वस्तु अमूर्त मानव-श्रम या अमूर्त श्रम के रूप में रहती है।

अमूर्त्त श्रम सिर्फ वस्तु-उत्पादन की ही विशेषता है। वस्तु-उत्पादन (जहाँ वस्तुओं का उत्पादन बिक्री के लिए होता है) की उपस्थिति के कारण ही विभिन्न प्रकार के मूर्त श्रम समरूप अमूर्त श्रम या सामान्य श्रम के रूप में परिवर्तित हो पाते हैं। मान लें कि कोई उत्पादक एक जोड़े जूते बनाकर बाजार में ले जाता है, तो प्रश्न यह है कि वह जूतों का रोटी के साथ किस प्रकार विनिमय करेगा? उपयोग-मूल्य की दृष्टि से इन वस्तुओं की तुलना नहीं हो सकती। उनकी तुलना उनपर किये गये श्रम की दृष्टि से हो सकती है। अगर मोची एक जोड़े जूते का विनिमय ५ किलोग्राम अनाज के साथ करता है, तो इसका मतलब यह हुआ कि एक जोड़े जूते और ५ किलोग्राम अनाज के उत्पादन में अमूर्त श्रम की समान माला व्यय हुई है।

अगर जूते का निर्माण मोची विनिमय के लिए न करके अपने घरेलू इस्तेमाल के लिए करता है, तो उसमें निहित श्रम की मात्रा का निर्धारण अनावश्यक है। वस्तु-उत्पादन की अनुपस्थिति में अमूर्त श्रम की कोटि अनावश्यक हो जाती है। यह अवधारणा कॉर्ल मार्क्स ने प्रतिपादित की है। यह मार्क्स के मूल्य के श्रम-सिद्धान्त की एक महत्त्वपूर्ण अवधारणा है।

accelerated depreciation (एक्सीलरेटेड डिप्रीसिएशन) : त्वरित मूल्य-ह्रास।

वह प्रणाली जिसके अन्तर्गत ज्यों-ज्यों कोई संयन्त्र या मशीन पुरानी होती जाती है, त्यों-त्यों उसके मूल्य-ह्रास की दर बढ़ती जाती है। उदाहरणतया यदि पहले पाँच वर्षों में किसी संयन्त्र के मूल्य-ह्रास की दर ५ प्रतिशत है, तो वह अगले पांच वर्षों में ७ प्रतिशत और फिर उसके अगले तीन वर्षों में १० प्रतिशत हो जाती है। जैसे-जैसे संयन्त्र पुराने होते रहते हैं, वैसे-वैसे उनकी देख-रेख तथा मरम्मत का खर्च बढ़ता जाता है। नयी मशीनों तथा प्रक्रियाओं के प्रचलन से अप्रचलन की दर बढ़ती है और पुरानापन बढ़ने से मूल्य घटता जाता है। अतः त्वरित मूल्य-ह्रास की व्यवस्था तर्कसंगत ठहरती है।

acceleration principle (ऍक्सीलरेशन प्रिन्सिपिल) : त्वरण-सिद्धान्त।

वह सिद्धान्त जिसके अनुसार अन्तिम उपभोक्ता-वस्तुओं की माँग में परिवर्तन होने पर पूंजीगत माल की माँग में, जो कि व्युत्पन्न माँग है, और अधिक परिवर्तन होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि जब उपभोक्ता-वस्तुओं की माँग बढ़ती है अथवा उपभोग-व्यय बढ़ता है, तब निवेश या उत्पादक वस्तुओं की माँग में अपेक्षाकृत अधिक वृद्धि होती है। इसका कारण पूंजी-निर्गत अथवा पूँजी-उत्पादन-अनुपात ठहराया जाता है। इस पूंजी-उत्पादन-अनुपात को एक तकनीकी आधार पर माना जाता है, जिसके अनुसार उत्पादन बढ़ाने के लिए उत्पादक पूंजी की एक निश्चित मात्रा आवश्यक मानते हैं। जब उपभोक्ता वस्तुओं की माँग बढ़ती है, तब विद्यमान पूँजी-उत्पादन-अनुपात के आधार पर पूरी क्षमता का उपयोग करनेवाली फर्म में उत्पादन नहीं बढ़ाया जा सकता। अतः उस फर्म के उद्यमकर्ता को इस अतिरिक्त माँग को पूरा करने के लिए नया निवेश करना होगा। चूंकि पूंजी-उत्पादन-अनुपात धनात्मक तथा एक से अधिक होता है, इसलिए उपभोक्ता वस्तुओं की माँग की तुलना में निवेश या उत्पादक वस्तुओं की माँग अधिक होगी। इसी प्रकार उपभोग-व्यय में कमी का प्रभाव उत्पादक वस्तुओं की माँग पर बहुत अधिक पड़ता है। पूरी क्षमता का प्रयोग होने की अवधारणा एवं पूंजी-उत्पादन-अनुपात के तकनीकी स्वरूप की अपरिवर्तनीयता इस सिद्धान्त के आधार हैं। व्यापार-चक्र के सिद्धान्तों तथा सम्पूर्ण राष्ट्रीय आय के निर्धारण के सिद्धान्तों में त्वरण-प्रक्रिया महत्त्वपूर्ण भाग अदा करती है।

acceptance (एक्सेप्टेन्स) : स्वीकृति, सकार।

साधारण तौर पर इस शब्द का प्रयोग हुण्डी के देनदार द्वारा हुण्डी को स्वीकार करने के अर्थ में किया जाता है। हुण्डी का देनदार उसपर अपना हस्ताक्षर

करके इस बात की पुष्टि कर देता है कि वह निर्धारित तिथि पर हुण्डी का भुगतान कर देगा।

acceptance house (एक्सेप्टेन्स हाउस): स्वीकृति-घर, सकार-घर।

जो फर्म या प्रतिष्ठान हुण्डियों या विनिमय-पत्रों को स्वीकार करने का व्यवसाय करता है, उसे 'स्वीकृति-घर' अथवा 'सकार-घर' कहते हैं। फर्म द्वारा हुण्डी को स्वीकृति प्राप्त होने से बाजार में उसकी मान्यता हो जाती है और फिर लोग उसको बट्टा करने या लेने के लिए आसानी से राजी हो जाते हैं। इस कार्य के लिए स्वीकृति-घर फीस लेते हैं।

स्वीकृति-घरों का उदय इंग्लैण्ड में इस कारण हुआ कि बाजार में हुण्डी लिखने-वाले और जिसके नाम से हुण्डी लिखी जाती थी, उनके नामों से अपरिचित होने के कारण लोग उसे लेने में हिचकिचाते थे। स्वीकृति-घरों द्वारा मान्यताप्राप्त होने से यह हिचकिचाहट दूर हो गयी और ठगे जाने का खतरा भी कम हो गया।

accumulation (एक्यूम्यूलेशन): संचयन।

वह आर्थिक क्रिया जिसके द्वारा पूंजी-गत वस्तुओं की मात्रा बढ़ायी जाती है। यह पूंजी-निर्माण का पर्यायवाची शब्द है। किसी अर्थव्यवस्था अथवा व्यवसाय के वास्तविक पूंजी-भण्डार में वृद्धि करने को 'संचयन' कहा जाता है। साधारणतः 'पूंजी-संचयन' शब्द का प्रयोग किया जाता है, लेकिन कभी-कभी 'सम्पत्ति-संचयन' शब्द का भी प्रयोग होता है।

देखिए : capital formation
capital accumulation
investment

acid-test ratio (एसिड-टेस्ट रेशियो): साख-निर्धारण-अनुपात।

किसी व्यवसाय की अपनी अल्प-कालिक देनदारियाँ पूरी करने की क्षमता का द्योतक पद। इस अनुपात के आगणन में व्यवसाय की नकदी स्थिति, शीघ्र प्राप्त होनेवाली नकद राशि, चालू लेखा की जमा राशि आदि परिसम्पत्तियों तथा चालू देनदारियों की तुलना की जाती है।

acquisition (एक्वीजीशन) : अधिग्रहण।

सरकार द्वारा जनता की निजी सम्पत्ति, व्यवसाय, जमीन आदि अपने स्वामित्व में ले लेना। देश के संविधान और कानून द्वारा सम्मत व्यवस्था के अन्त-र्गत राज्य मुआवजा देकर या बिना मुआ-वजा दिये सार्वजनिक हित में आवश्यक परिसम्पत्तियों को सरकारी स्वामित्व में हस्तान्तरित करता है।

acquisitive society (एक्विजीटिव सोसाइटी): अर्जनशील समाज।

पूंजीवाद एवं अन्य निजी स्वामित्व और निजी लाभ की प्रेरणा के आधार पर संचालित आर्थिक प्रणालियों की मूलभूत प्रवृत्तियों का द्योतक शब्द। यह वह समाज है, जहाँ निजी सम्पत्ति का अधिकाधिक संचयन ही सफलता की कसौटी होती है और प्रत्येक व्यक्ति जीवन के हर क्षेत्र में इस आर्थिक प्रेरणा के आधार पर निर्णय, चयन और कार्य करता है। यह एक बहुत ही भौंडे किस्म का भौतिकवाद है, जहाँ व्यक्ति अपने सामाजिक, वर्गगत, सांस्कृतिक और मानसिक जीवन के मूल्यों को आर्थिक गणना के सामने न केवल गौण अपितु तज्जन्य ही समझने और मानने लगता है। एक समाजवादी देश भी इस प्रकार की

प्रवृत्ति का शिकार हो सकता है यदि वहाँ अधिनायकवाद, नौकरशाही, संकुचित राष्ट्रवाद और कठमुल्लेपन का बोलबाला रहे। अर्जनशील समाज मनुष्य की स्वाभाविक आत्म-संरक्षण-प्रवृत्ति को इतनी प्रबल और निरपेक्ष कर देता है कि यह प्रवृत्ति स्वार्थान्धिता में परिणत हो जाती है। संक्षेप में, अर्जनशील समाज व्यक्तिवादी समाज-व्यवस्था के अपरिहार्य मूल्यगत ह्रास का परिणाम है।

active balance of payments (एक्टिव बैलेन्स ऑफ़ पेमेन्ट्स) : सक्रिय भुगतान-शेष।

अनुकूल भुगतान-शेष के लिए प्रयुक्त वैकल्पिक पद।

देखिए : balance of payments

active circulation (एक्टिव सरक्यूलेशन) : सक्रिय संचलन।

किसी देश की केन्द्रीय बैंक द्वारा जारी किये गये करेन्सी नोटों की सम्पूर्ण राशि का वह भाग, जो किसी समय-विशेष पर वास्तव में लेन-देन के काम में आता हो। केन्द्रीय बैंक के बैंकिंग विभाग में सुरक्षित राशि को छोड़कर जारी किये गये करेन्सी नोटों की शेष सारी राशि सक्रिय संचलन में मानी जाती है।

active population (एक्टिव पॉप्युलेशन) : अर्जक जनसंख्या।

कार्यशील अथवा श्रमजीवी जनसंख्या का एक अन्य वैकल्पिक नाम।

देखिए : working population

actuary (एक्चुअरी) : जीवनांकक, बीमा-प्रबन्धक।

बीमा कम्पनियों के वे अधिकारी, जो बीमा-किस्त तथा इससे सम्बन्धित मामलों का हिसाब या परिकलन करते हैं। पेन्शन-निधि सम्बन्धी हिसाब भी जीवनांकक करते हैं।

administered price (एडमिनिस्टर्ड प्राइस) : निदेशित कीमत।

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में बाजार द्वारा निर्धारित कीमत स्वीकार न करके अपने व्यावसायिक उद्देश्यों, बाजार की सम्भावित परिस्थितियों आदि के आधार पर कोई व्यावसायिक इकाई अपने-आप जो कीमत निर्धारित करती है, उसे 'निदेशित कीमत' कहा जाता है। एक आधुनिक निगम में यह कीमत सम्बन्धी निर्णय प्रबन्धक लेते हैं। साधारणत: माँग की परिस्थितियों, प्रतियोगी फर्मों की नीतियों, फर्म के व्यापारिक ध्येय आदि के आधार पर उत्पादन की औसत लागत में एक अतिरिक्त राशि जोड़कर यह कीमत तय की जाती है। पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकारी प्रतियोगिता से भिन्न बाज़ार-स्थितियों में इस तरह की कीमत-निर्धारण-प्रक्रिया लागू होती है।

स्पष्टत: निदेशित कीमत-प्रणाली का सबसे मुख्य तत्त्व यह है कि इसके अन्तर्गत औसत उत्पादन-लागत में अतिरिक्त राशि जोड़कर कीमत निश्चित की जाती है। यह अतिरिक्त राशि कितनी हो, यह किन-किन प्रभावों से निश्चित होती है तथा इस नीति की सफलता किन बातों पर निर्भर रहती है, आदि बातों की जानकारी आधुनिक निगमों की वास्तविक कीमत-नीति के अध्ययन द्वारा प्राप्त की जा सकती है। इन निगमों के उद्देश्यों के बारे में कई प्रकार की वैकल्पिक परिकल्पनाएँ करके उनके इस कीमत सम्बन्धी व्यवहार को

समझाने के लिए प्रयास किये जाते हैं।

ad valorem duty [or tax] (एडवैलॉरेम ड्यूटी ऑर टैक्स): मूल्यानुसार शुल्क (या कर)।

वस्तुओं की कीमत के अनुपात में उन पर लगाये गये शुल्क या कर 'मूल्यानुसार शुल्क या कर' कहलाते हैं। वस्तुओं की कीमतों में परिवर्तन होने पर भी मूल्यानुसार शुल्क या कर का कीमतों से समान अनुपात बना रहता है। इस प्रकार का शुल्क या कर आयातित वस्तुओं पर लगाया जाता है, जिसका एक उद्देश्य घरेलू उद्योगों को संरक्षण प्रदान करना होता है। अन्य प्रकार के आयात-शुल्कों की तुलना में मूल्यानुसार शुल्क संरक्षण प्रदान करने में अधिक कारगार होते हैं। ऐसे करों में एक प्रकार का लोच निहित होता है, क्योंकि कीमतों के अनुसार कर की राशि में अपने-आप परिवर्तन होता रहता है।

advance (ऐडवान्स) : पेशगी, ऋण।

साधारण बोलचाल की भाषा में समय से पहले किये गये भुगतान को अग्रिम या पेशगी भुगतान कहते हैं। परन्तु अर्थशास्त्र नें इस शब्द को बैंक द्वारा दिये गये ऋण के लिए प्रयुक्त किया जाता है।

देखिए : bank advances
bank credit
bank money

affluent society (एफल्युएन्ट सोसाइटी) : सुसम्पन्न समाज।

अमरीकी अर्थशास्त्री प्रो० जे० के० गॉलब्रेथ की इसी नाम की पुस्तक के आधार पर प्रचलित और प्रसिद्ध शब्द, जिसके द्वारा बीसवीं शताब्दी के मध्य भाग में विकसित पूँजीवादी देशों की आर्थिक स्थिति तथा विकास का बोध कराया जाता है। पश्चिमी यूरोप तथा उत्तरी अमरीका के उन्नत, विकसित तथा साम्राज्यवादी देश पिछली दो शताब्दियों से भी लम्बी आधुनिक आर्थिक विकास की प्रक्रिया के कारण आज अपने नागरिकों को बहुत ऊँचा जीवन-स्तर प्रदान करने में समर्थ हो गये हैं। इस ऊँचे जीवन-स्तर के कारण कुछ अर्थशास्त्री यह मत व्यक्त करने लगे हैं कि इन अर्थव्यवस्थाओं में न केवल नये सामाजिक व आर्थिक प्रश्न उभरकर सामने आये हैं, वरन् नये अवसर और चुनौतियाँ भी सामने आयी हैं। जहाँ एक ओर व्यक्तिगत उपभोग का स्तर बढ़ा है, वहाँ दूसरी ओर औद्योगीकरण तथा नगरीकरण के कारण सामूहिक उपभोग की जरूरत और उसका क्षेत्र बढ़ा है। इन सुसम्पन्न समाजों के सामने बढ़ते निजी उपभोग और उपेक्षित सामूहिक उपभोग का विरोधाभास प्रकट होने लगा है। स्पष्ट है कि इस विरोधाभास का निराकरण सामाजिक-आर्थिक संगठन के नये सिद्धान्तों द्वारा ही सम्भव है।

मनुष्य की सब मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने के साधन विद्यमीन होने के कारण तथा गरीबी की समस्या का कम-से-कम परम्परागत अर्थ में समाधान कर लेने के कारण परम्परागत आर्थिक प्रश्न आज वहाँ गौण हो गये हैं। जितने महत्त्वपूर्ण किसी समय आवश्यकता-पूर्ति के प्रयास थे, उतने ही महत्त्वपूर्ण हो गये हैं अब आवश्यकता-सृजन के प्रयास। इसलिए सुसम्पन्न देशों में विज्ञापन और बिक्री बढ़ाने वाले नये उद्योगों का जन्म हुआ है।

सापेक्ष न्यूनता के परिप्रेक्ष्य में विकसित हुए आर्थिक सिद्धान्त स्पष्टतया इस नयी स्थिति में उतने सार्थक नहीं हो सकते। सारी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के स्तर पर सम्पूर्ण प्रभावी माँग और पूर्ण रोजगार बनाये रखने की समस्याओं के कारण इन सुसम्पन्न समाजों में राजकीय आर्थिक नीति, वित्तीय तथा मुद्रा-नीति का स्वरूप ही बदल गया है।

निजी लाभ की प्रेरणा के आधार पर उत्पादन-प्रक्रिया के संगठन, प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति, आय तथा सम्पत्ति की असमानताओं आदि के कारण समाज की तथा नीची आयवाले लोगों की महत्त्वपूर्ण जरूरतों के सन्तुष्ट न होने पर भी अनावश्यक, व्यर्थ एवं हानिकारक वस्तुओं का उत्पादन बढ़ रहा है। प्रो० गॉलब्रेथ के शब्दों में, "निजी ऐश्वर्य के बीच सार्वजनिक दरिद्रता" की स्थिति सुसम्पन्न समाजों का अभिशाप बन रही है। सुसम्पन्न समाज का अनुभव यह सिद्ध करता है कि आर्थिक विकास का ऊँचा स्तर आर्थिक समस्याएँ समाप्त नहीं करता, अपितु केवल उनका रूप बदलता है।

age composition (एज कम्पोजीशन) : वय-संगठन, आयु-श्रेणी।

जनसंख्या की आयु सम्बन्धी सूचनाएँ या तो हर उम्र के लिए अलग-अलग प्रस्तुत की जा सकती हैं या विशेष आयु-कोटियों के लिए सम्मिलित रूप से। सारी आयु को अलग-अलग कोटियों में बाँटकर जनसंख्या सम्बन्धी सूचनाएँ प्रस्तुत करने से यह पता चलता है कि भिन्न-भिन्न कोटियों में जनसंख्या का क्या अनुपात है। इस सूचना से जनसंख्या-वृद्धि की भावी सम्भावित दर, रोजगार-स्थिति, कार्यशील जनसंख्या के अनुपात आदि के विषय में अनुमान लगाने में सुविधा होती है।

agents of production (एजेन्ट्स ऑफ़ प्रोडक्शन) : उत्पादनकारक।

उत्पादन-साधनों के लिए प्रयुक्त एक पुराना पद।

देखिए : factors of production

age ratio (एज रेशियो) : आयु-अनुपात।

किसी आयु-कोटि की जनसंख्या एवं आस-पास की दो आयु-कोटियों की जनसंख्या के अंकगणितीय औसत का अनुपात आयु-अनुपात कहलाता है। यह स्त्रियों और पुरुषों के लिए अलग-अलग गिना जाता है।

aggregates (एग्रीगेट्स) : समुच्चय, समस्त।

वे आर्थिक चर जो सारी अर्थव्यवस्था या इसके किसी बड़े भाग से सम्बन्धित होते हैं। बहुत-से एकक चरों (जैसे : किसी व्यक्ति की आय, किसी वस्तु की कीमत, किसी फर्म की सम्पूर्ण बिक्री आदि के विपरीत समुच्चय चर) बहुत-सी इकाइयों की आय, कीमत, बिक्री, माँग आदि के जोड़ होते हैं। सम्पूर्ण राष्ट्रीय आय, सम्पूर्ण प्रभावी माँग, सामान्य कीमत-स्तर, सम्पूर्ण बचत, सम्पूर्ण उपभोग, सम्पूर्ण निवेश आदि समुच्चयों के उदाहरण हैं। समष्टिगत अर्थशास्त्र इन्हीं समुच्चयों से सम्बन्धित होता है। सामाजिक तथा राष्ट्रीय लेखा में इन्हीं समुच्चयों के सम्बन्धों की गणना की जाती है।

देखिए : macro economics
keynesian economics

aggregative economics (एग्रीगेटिव इकॉनॉमिक्स) : समुच्चय अर्थशास्त्र ।

समष्टिगत अर्थशास्त्र का दूसरा और अपेक्षाकृत कम प्रचलित नाम ।

देखिए : macro economics

aging of population (एजिंग ऑफ पॉप्युलेशन) : जनसंख्या की वयोवृद्धि ।

किसी अवधि-विशेष में जनसंख्या के वय-संगठन में हुआ ऐसा परिवर्तन, जिसके फलस्वरूप या तो ६५ वर्ष से अधिक आयुवाले लोगों का अनुपात बढ़ जाता है या १५ वर्ष से कम उम्रवाले लोगों का अनुपात घट जाता है । इस परिवर्तन के कारण जनसंख्या की औसत आयु बढ़ जाती है ।

agio theory of interest (एजिओ थियोरी ऑफ इण्टरेस्ट) : ब्याज का उपभोग-स्थगन सिद्धान्त ।

ब्याज का एक सिद्धान्त, जिसके द्वारा ब्याज का औचित्य ब्याज प्राप्तकर्ता द्वारा अपनी आय के उपभोग को स्थगित करने में उठाया गया कष्ट या त्याग बताया जाता है । आय का अन्तिम उद्देश्य उपभोग द्वारा सन्तुष्टि प्रदान करना है । जब कोई व्यक्ति वर्तमान आय का उपभोग कल तक स्थगित करके अपनी आय के प्रयोग को किसी दूसरे व्यक्ति के हक में हस्तान्तरित कर देता है, तो उसे इस कार्य के बदले हस्तान्तरित राशि से अधिक राशि मिलती है । यह अतिरिक्त राशि उपभोग-स्थगन का प्रतिफल है जो ब्याज कहलाता है ।

इस सिद्धान्त की आलोचना में यह कहा गया है कि उपभोग-स्थगन से ही अपने-आप कोई प्रतिफल प्राप्त नहीं होता । ब्याज प्राप्त करने के लिए उपभोग-स्थगन के साथ ही इस राशि का कुछ समय के लिए परित्याग करना पड़ता है । ब्याज इस तरलता के परित्याग का प्रतिफल माना जाता है, न कि केवल उपभोग-स्थगन का प्रतिफल ।

agrarian revolution (एग्रेरिअन रेवोल्यूशन) : कृषिक क्रान्ति ।

यह शब्द ऐतिहासिक महत्त्व का है । 'कृषिक क्रान्ति' अथवा 'कृषि-भूमि-क्रान्ति' का आशय सामन्तवादी कृषि-व्यवस्था से पूंजीवादी कृषि-व्यवस्था या किसी अन्य कृषि-भूमि-व्यवस्था की ओर संक्रमण से है । कृषि-अर्थव्यवस्था में इस परिवर्तन के फलस्वरूप उत्पादन-सम्बन्ध और खेती के तौर-तरीके बदल जाते हैं । इंग्लैण्ड में यह क्रान्ति अठारहवीं शताब्दी के मध्य में आयी जिसके मुख्य अंग थे—परती भूमि-प्रथा का उन्मूलन, जोतों की चकबन्दी, कृषि-भूमि का विस्तार, नयी फसलों की खेती, कृषि-क्षेत्र में श्रम-विभाजन, विशेषीकरण, मशीन तथा नये किस्म के साज-सामान का अधिक प्रयोग । खेती में नयी तकनीक के व्यवहार से कृषि-उत्पादन में भारी वृद्धि होती है । कृषि-उत्पादिता में यह वृद्धि देश के द्रुत औद्योगीकरण के लिए एक आवश्यक शर्त्त होती है ।

आजकल अल्पविकसित कृषि-प्रधान अर्थव्यवस्थाओं में राज्य कृषि-भूमि-सुधार सम्बन्धी कानून बनाकर कृषिक क्रान्ति लाने का प्रयास कर रहा है । खेती में सामन्ती व्यवस्था समाप्त करके वहाँ पूंजीवादी सम्बन्धों का विकास अनिवार्य नहीं है । सामन्ती भूमि-व्यवस्था के स्थान पर कृषक परिवारों का निजी स्वामित्व

स्थापित करके पारिवारिक कृषि-प्रणाली भी लागू की जा सकती है। लेकिन इस व्यवस्था में खेतों का आकार बहुत छोटा हो सकता है। ऐसी दशा में कृषि-उत्पादिता में विशेष वृद्धि लाना कठिन हो जाता है। ऐसी स्थिति में सहकारी, सामूहिक या राजकीय कृषि-भूमि-प्रणाली अपनाकर उत्पादिता बढ़ाने के प्रयास किये जा सकते हैं।

agricultural economics (ऐग्रिकल्चरल इकॉनॉमिक्स) : कृषि-अर्थशास्त्र।

कृषि से सम्बन्धित आर्थिक प्रश्नों का विश्लेषण तथा कृषि-सम्बन्धित समस्याओं के लिए नीति-निर्धारण करनेवाली अर्थशास्त्र की शाखा। खेती-बाड़ी मनुष्य-समाज का एक आदिम तथा प्राथमिक रोजगार है। कृषि की विशेषताएँ अन्य व्यवसायों से कुछ मूलभूत अर्थों में भिन्न हैं। प्राकृतिक बातों का कृषि में विशेष महत्त्व होता है। कृषि-संगठन की प्रणालियाँ और नियम भी अपने-आपमें विशिष्ट हैं। औद्योगीकरण के बाद तो कृषि तथा अन्य व्यवसायों का विभेद और भी अधिक उभरकर सामने आ गया है। अनेक ऐतिहासिक परिस्थितियों के कारण अर्थशास्त्र की मुख्य विचारधारा गैर-कृषि-गत क्षेत्रों से विशेष रूप से सम्बन्धित रही है। विश्व के अनेक भागों में कृषि आज भी न केवल सबसे बड़ा व्यवसाय है, अपितु अनेक देशों का आर्थिक भविष्य भी कृषि से जुड़ा हुआ है। इस प्रकार के अनेक कारणों से खेती तथा सम्बन्धित व्यवसायों एवं कृषक-समाज की आर्थिक समस्याओं का पृथक् रूप से अध्ययन आवश्यक हो गया है। अर्थशास्त्र की परम्परागत विश्लेषण-विधियों से पृथक विश्लेषण-विधियाँ भी इन कृषिगत प्रश्नों के समाधान के लिए प्रयुक्त की जाती हैं। अर्थशास्त्र की एक पृथक् शाखा के रूप में कृषि-अर्थशास्त्र काफी समुन्नत है। अनेक विश्वविद्यालय, शोध-संस्थान और अर्थशास्त्री इस विषय में कार्य कर रहे हैं।

allocation of resources (एलोकेशन ऑफ रिसोर्सेज) : संसाधन-आवण्टन।

आर्थिक जीवन की एक महत्त्वपूर्ण समस्या, जो किसी-न-किसी रूप में प्रत्येक अर्थव्यवस्था में विद्यमान रहती है। प्रत्येक अर्थव्यवस्था को यह निश्चित करना पड़ता है कि किन वस्तुओं का उत्पादन किया जाये, कितनी मात्रा में उत्पादन किया जाये और किन उत्पादन-विधियों का प्रयोग किया जाये। उपर्युक्त समस्याओं के प्रकट होने का कारण यह है कि किसी भी अर्थव्यवस्था में अपनी सारी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिए पर्याप्त साधन उपलब्ध नहीं होते और साथ ही ये साधन वैकल्पिक प्रयोगों में लगाये जा सकते हैं। इस तरह प्रत्येक अर्थव्यवस्था को अनेक सम्भव विकल्पों में से कुछ का चयन करना पड़ता है। इस चयन की समस्या का समाधान करने में अर्थव्यवस्था के संसाधनों (भूमि, पूँजी, श्रम आदि) का उपयोग निर्धारित हो जाता है। इन संसाधनों के उपयोग से अनेक प्रकार की वस्तुओं तथा सेवाओं का विभिन्न अनुपातों में उत्पादन करना सम्भव है। आवश्यकताओं, अधिमानों, तकनीकी ज्ञान तथा संस्थागत व्यवस्थाओं के आधार पर संसाधनों का आबण्टन किया जाता है। पूंजीवादी व्यवस्था में बाजार तथा कीमत-

प्रक्रिया द्वारा और समाजवादी व्यवस्था में योजनाबद्ध आर्थिक प्रबन्ध द्वारा संसाधनों के आबण्टन के प्रश्न को हल किया जाता है।

आवण्टन की समस्या को दो पहलुओं से देखा जा सकता है। एक पहलू के अन्तर्गत विद्यमान संसाधनों को वर्तमान आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिए बाँटने का प्रश्न आता है। इसे संसाधनों के आबण्टन का स्थैतिक पहलू कहा जा सकता है। दूसरे पहलू का सम्बन्ध इस बात से है कि किस प्रकार पूँजी-निर्माण, तकनीकी प्रगति आदि द्वारा संसाधनों में वृद्धि लायी जाये और उनके स्वरूप में परिवर्तन किया जाये, जिससे कि भावी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि से सम्बन्धित बातों का भी यथोचित ध्यान रखा जा सके। संक्षेप में, संसाधन-आवण्टन-समस्या विभिन्न संरचनावाले तथा विभिन्न भावी एवं वर्तमान स्तरवाले सम्पूर्ण उत्पादों में से किसी एक के चयन की समस्या है। संसाधनों के आबण्टन के सिद्धान्तों तथा प्रक्रियाओं का अध्ययन अर्थशास्त्र की मुख्य विषय-वस्तु है। विभिन्न आर्थिक प्रणालियों के अन्तर्गत संसाधनों के आबण्टन की प्रक्रिया तथा सिद्धान्त भिन्न-भिन्न होते हैं।

alternative cost (ऑल्टरनेटिव कॉस्ट) : विकल्प लागत।

विकल्प लागत के लिए प्रयुक्त एक अन्य पद।

देखिए : opportunity cost

amalgamation (अँमलगमेशन) : समामेलन।

वह प्रक्रिया जिसके फलस्वरूप दो या दो से अधिक फर्मों का विलयन होता है। विलयन के फलस्वरूप एक पूर्णतया नयी फर्म का जन्म हो सकता है या किसी तत्कालीन फर्म में शेष सब फर्में अपना अलग अस्तित्व समाप्त कर विलय हो सकती हैं। जिन फर्मों का विलयन होता है, मुख्यत: उन्हीं के अंशधारी नयी कम्पनी या फर्म के भी अंशधारी होते हैं।

समामेलन के फलस्वरूप प्रतियोगिता को बहुत बड़ी सीमा तक समाप्त कर दिया जाता है और इससे एकाधिकार की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलता है। समामेलन से फर्मों का आकार बढ़ता है तथा उनकी बृहद् स्तरीय उत्पादन-प्रणाली के लाभ प्राप्त करने की क्षमता बढ़ती है। समामेलन की वांछनीयता का प्रश्न एकाधिकार की उपयोगिता-अनुपयोगिता के प्रश्न से अलग नहीं है।

देखिए : cartels
combination
integration
merger

amortisation (अमॉर्टाइज़ेशन) : परिशोधन।

विशेष निधि के माध्यम से किसी ऋण का क्रमिक भुगतान अथवा ऋण चुकाने की व्यवस्था। प्रतिभूतियों के सावधिक भुगतान द्वारा प्रतिदान या विमोचन की व्यवस्था भी परिशोधन कहलाती है।

अपेक्षाकृत दीर्घकालिक ऋण चुकाने के लिए परिशोधन-विधि का प्रयोग किया जाता है। इसके लिए एक निक्षेप-निधि स्थापित की जाती है, जिसमें ऋण के अन्तिम भुगतान के लिए प्रतिवर्ष एक निश्चित राशि जमा की जाती है। इस निधि से कुछ समय के अन्तराल के बाद

ब्याज-सहित ऋण को किस्तों में चुकाया जा सकता है।

यह तरीका स्थायी परिसम्पत्तियों के परिशोधन के लिए भी अपनाया जा सकता है। परिसम्पत्ति के जीवनकाल में प्रति-वर्ष प्राप्त आय का एक भाग निधि में जुटाकर उसके मूल्य के बराबर राशि जमा कर ली जाती है, ताकि उसके बेकार होने पर नयी परिसम्पत्ति खरीदी जा सके। इस प्रकार मशीन, इमारत आदि की पूरी घिसावट के बाद उनके प्रतिस्थापन के लिए वित्तीय साधन जुटा लिये जाते हैं।

ancillary industry (एन्सिलरी इण्डस्ट्री) : सहायक उद्योग।

किसी मुख्य उद्योग से सम्बन्धित सहकारी उद्योग। आर्थिक प्रक्रियाओं की पारस्परिक निर्भरता सुप्रसिद्ध है। कोई भी उद्योग अपने-आपमें पूर्ण और आत्म-निर्भर नहीं है। हर उद्योग को अनेक अन्य उद्योगों पर कच्चे माल, मशीन, उपकरण, चालन-शक्ति, यातायात, वितरण की व्यवस्था आदि के लिए निर्भर रहना पड़ता है। कोई उद्योग स्वयं केवल अन्य उद्योगों के लिए आवश्यक साज-सामान के उत्पादन में लगा हो सकता है। वह किसी बड़े उद्योग के गौण उत्पादों का उपयोग करनेवाला उद्योग भी हो सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि उद्योग-धन्धे अन्य उद्योग-धन्धों से उनके आगे की तथा पीछे की कड़ियों से जुड़े रहते हैं। इस प्रकार के आपस में घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित उद्योगों को सहायक उद्योग कहते हैं।

किसी क्षेत्र-विशेष में एक बड़े उद्योग की स्थापना से वहाँ अन्य सहायक उद्योगों की स्थापना के अवसर बढ़ जाते हैं। ये सहायक उद्योग एक ही स्वामित्व में हो सकते हैं और पृथक्-पृथक् स्वामित्व में भी। इस प्रकार के सहायक उद्योगों की स्थापना से औद्योगिक केन्द्रों का उदय होता है और इन केन्द्रों में अपेक्षाकृत द्रुत गति से उद्योगों का विकास होता है। पिछड़े क्षेत्रों में इस प्रकार के सहायक उद्योगों की स्थापना करके वहाँ उद्योगों को आकर्षित किया जा सकता है।

ancillary product (एनसिलरी प्रोडॅक्ट) : गौण उत्पाद।

उपोत्पाद अथवा उपजात का दूसरा नाम।

देखिए : by-product

annual return (ऐन्यूअॅल रिटर्न) : वार्षिक विवरणी।

कम्पनी कानून के अन्तर्गत आवश्यक रूप से तैयार किया जानेवाला वार्षिक विवरण। इसमें कम्पनी की पूँजी और शेयर, निदेशकों और सदस्यों के नाम, पते, व्यवसाय आदि का पूरा-पूरा ब्यौरा होता है। हर वर्ष इस प्रकार की विवरणी तैयार की जाती है और पिछले तुलन-पत्र एवं कम्पनी के ऋणभार के लेखे-सहित सम्बन्धित प्राधिकारियों के पास यह विवरणी भेजना अनिवार्य होता है।

annuity (एन्यूटी) : वार्षिकी।

एक बार एकमुश्त चुकायी गयी राशि के बदले वार्षिक रूप से प्राप्त होनेवाली राशि, जो किसी विशेष अवधि तक एकमुश्त या कुछ किस्तों में दी जाती है। कुछ वार्षिकियों की अवधि निश्चित होती है और कुछ वार्षिकियाँ अनिश्चित काल तक चलनेवाली होती हैं। आजीवन वार्षिकी का भुगतान उसे पानेवाले की मृत्यु तक

होता रहता है। कुछ वार्षिकियाँ तो निरन्तर चलनेवाली हो सकती हैं। मुख्य रूप से वार्षिकियाँ बीमा कम्पनियों और सरकार से खरीदी जा सकती हैं। वार्षिकी की लागत ब्याज-दर, क्रेता की आयु, उसके रोज़गार आदि पर निर्भर करती है। कुछ वार्षिकियाँ खरीदते ही लागू हो जाती हैं। ये 'तत्काल वार्षिकियाँ' कहलाती हैं। इसके विपरीत, कुछ वार्षिकियाँ खरीदने के कुछ समय बाद किसी भावी तिथि से लागू होती हैं। इन्हें 'आस्थगित वार्षिकी' कहते हैं।

anticipated price (एण्टीसिपेटेड प्राइस) : प्रत्याशित कीमत।

वह कीमत जिसकी किसी भावी समय में लागू होने की आशा हो। कीमतें अनेक आर्थिक प्रभावों द्वारा निर्धारित होती हैं। बहुत-से आर्थिक निर्णय कीमतों के आधार पर लिये जाते हैं। परन्तु इन निर्णयों को प्रभावित करनेवाली कीमतें केवल वर्तमान या चालू कीमतें ही नहीं होतीं। निवेश, बचत, स्टाक में घट-बढ़ आदि विषयों से सम्बन्धित कीमतें न केवल वर्तमान आर्थिक स्थिति से सम्बन्धित होती हैं, अपितु, वे भविष्य से भी घनिष्ठ रूप से जुड़ी रहती हैं। कीमतों का प्रत्याशित स्तर इन निर्णयों को काफी प्रभावित करता है। प्रत्याशित कीमतों का अनुमान बहुत कठिन कार्य है। इस दिशा में कोई सुनिश्चित सिद्धान्त अभी विकसित नहीं हो पाया है। परन्तु यह सभी मानने लगे हैं कि मनोवैज्ञानिक तत्त्वों का प्रत्याशित कीमतों के निर्धारण में बहुत योगदान होता है।

applied economics (अप्लाइड इकॉनॉमिक्स) : व्यावहारिक अर्थशास्त्र।

आर्थिक जीवन की व्यावहारिक समस्याओं के समाधान, उनके बारे में नीति-निर्धारण तथा स्थिति-विशेष के विश्लेषण के लिए अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों का प्रयोग। सैद्धान्तिक अर्थशास्त्र में हम सिद्धान्तों और आर्थिक विश्लेषण के तरीकों के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करते हैं। इन सिद्धान्तों और विश्लेषण के तरीकों का जब हम उद्योग, वाणिज्य, वित्त, विकास आदि से सम्बद्ध समस्याओं के अध्ययन और समाधान के लिए प्रयोग करते हैं, तब हम व्यावहारिक अर्थशास्त्र के क्षेत्र में होते हैं।

आर्थिक सिद्धान्तों और व्यावहारिक अर्थशास्त्र के बीच गहरा सम्बन्ध होता है। आर्थिक विचारों के इतिहास के सर्वेक्षण से स्पष्ट बोध होता है कि अधिकांश सिद्धान्तों के विकास की पृष्ठभूमि और प्रेरणा वास्तविक जीवन की समस्याएँ रही हैं। दूसरी ओर, आर्थिक सिद्धान्तों का विभिन्न व्यावहारिक समस्याओं के समाधान के लिए नीति-निरूपण में प्रयोग किया जा सकता है। व्यावहारिक अर्थशास्त्र के लिए आर्थिक सिद्धान्तों की जानकारी के अतिरिक्त, आर्थिक इतिहास, सांख्यिकी, राजनीतिक तथा सामाजिक स्थिति का ज्ञान, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण आदि तत्त्वों की जानकारी भी आवश्यक होती है।

देखिए : economics
economic policy

appreciation (एप्रीसिएशन्) : मूल्य-वृद्धि।

किसी वस्तु की कीमत में वृद्धि। शेयर-बाजार में कीमतों के बढ़ने पर पूँजी-भण्डार और शेयर के मूल्य चढ़ जाते हैं। कई बार किसी देश की मुद्रा का मूल्य

अन्य देशों की मुद्राओं की तुलना में बढ़ जाता है। यह मूल्य-वृद्धि दूसरी मुद्राओं के अवमूल्यन के कारण भी हो सकती है। ऐसा होने पर देश का विदेशी व्यापार प्रभावित होता है। साधारणतया इससे आयात में वृद्धि और निर्यात में कमी होने की सम्भावना बनती है। कारण, ऐसी स्थिति में अन्य देशों के लिए उस देश के निर्यात महँगे और उसके आयात सस्ते हो जाते हैं। इस प्रकार उस देश के भुगतान-शेष में पुनः सन्तुलन स्थापित होने लगता है।

कीमतों की सामान्य वृद्धि के समय उत्पादकों और व्यापारियों के पास वस्तुओं के जमा-भण्डार के मूल्य बढ़ जाते हैं। मूल्य-वृद्धि कई बार अनुमानित होती है और कई बार अप्रत्याशित। आर्थिक जीवन की अनिश्चितताओं में अधिमूल्यन से सम्बन्धित अनिश्चितताओं का प्रमुख स्थान होता है। इस मूल्य-वृद्धि से कुछ लोगों को पूँजीगत अतिलाभ की प्राप्ति होती है। भूमि, मकानें आदि के अधिमूल्यन से भी लोगों की आर्थिक स्थिति में बड़ा परिवर्तन आ जाता है। इस प्रकार के अतिलाभों पर कराधान की व्यवस्था से सम्पत्तिजन्य तथा अनियन्त्रित असमानताओं को नियन्त्रित करने में योगदान मिलता है।

appropriation account (एप्रोप्रियेशन एकाउन्ट) : विनियोजन-लेखा।

व्यावसायिक लेखे में वह विशेष लेखा, जो निवल लाभ के परिकलन के वाद यह दिखाने के लिए बनाया जाता है कि इस लाभ का किस तरह उपयोग किया जायेगा। अर्थात् लाभांश, सुरक्षित कोष, पेन्शन आदि विभिन्न मदों के बीच लाभ को किस प्रकार बाँटा जायेगा। लाभ व्यवसाय की आय है और विनियोजन-खाता यह दिखाता है कि इस आय का आबण्टन किस तरह किया जाता है। हर आय-अर्जक व्यक्ति के लिए विनियोजन-खाता बनाया जा सकता है, जो यह दिखायेगा कि वह व्यक्ति अपनी आय को कर चुकाने, उपभोग-व्यय, दान-उपहार तथा बचत आदि में किस तरह बाँटता है। इसी प्रकार सारी अर्थ-व्यवस्था के लिए भी विनियोजन-लेखा तैयार किया जा सकता है।

arbitrage (आरबिट्रेज) : अन्तरपणन, विदेशी विनिमय का क्रय-विक्रय।

विभिन्न स्थानों या समयों पर विविध वस्तुओं और मुद्राओं की कीमतों में अन्तर के आधार पर खरीद-बिक्री के द्वारा मुनाफा कमाने की प्रक्रिया अन्तरपणन कहलाती है। जिस स्थान पर या समय में कीमत कम हो, वहाँ या उस समय माल खरीदकर तथा अधिक कीमतवाले स्थान पर या समय में माल वेचकर व्यापारी मुनाफा कमाते हैं। स्पष्ट है कि इस प्रक्रिया में थोड़ी जोखिम भी होती है; क्योंकि कीमतें प्रत्याशित रूप से व्यवहार करें, यह अनिवार्य नहीं है। ऐसे लेन-देन से विभिन्न स्थानों और समयों की कीमतों में एक प्रकार की समरूपता आती है। इस प्रकार की खरीद-बिक्री विदेशी मुद्रा-बाजार में बहुत होती है।

arbitration (ऑरबिट्रेशन) : विवाचन, मध्यस्थता।

किन्हीं दो पक्षों के विवाद में समझौते की सूरत न निकलने पर समझौते तथा निर्णय के लिए उस मसले को किसी तीसरे पक्ष पर छोड़ना। या विवाचन या

मध्यस्थता उभय पक्षों को स्वीकार्य होनी आवश्यक है। विवाचन की व्यवस्था स्वैच्छिक भी हो सकती है और अनिवार्य भी।

औद्योगिक एवं व्यापारिक विवादों आदि के क्षेत्र में विवाचन अथवा पंच-फैसले की व्यवस्था काफी प्रचलित है। विवाचन-व्यवस्था उस दशा में अर्थहीन हो जाती है, जबकि इस प्रकार का निर्णय अनिवार्य रूप से लागू नहीं किया जा पाता। मजदूरी-दर सम्बन्धी झगड़ों के सिलसिले में विवाचक प्रायः बीच की कोई मजदूरी-दर सुझाते हैं। इससे बचने के लिए श्रमिक संघ पहले से ही बढ़ा-चढ़ाकर अपनी माँगें पेश करते हैं। इस बात को ध्यान में रखते हुए कुछ लोगों का मत है कि दोनों पक्षों की माँगों की सन्तुष्टि के लिए प्रयास करने के बजाय विवाचकों को चाहिए कि आर्थिक प्रभावों अथवा बाजार की परिस्थितियों के आधार पर मजदूरी की दर निर्धारित करें। विवाचन-व्यवस्था को नियमित तथा व्यवस्थित करने के लिए अनेक देशों में आवश्यक कानून बनाये गये हैं। कई दशाओं में अनिवार्य विवाचन की भी व्यवस्था की जाती है।

arc elasticity (आॅर्क इलैस्टिसिटी) : चाप-लोच।

माँग या पूर्ति-वक्र के किसी चाप के आरम्भ और अन्त के दो बिन्दुओं पर जो लोच होती है, उसका औसत 'चाप-लोच' कहलाता है। जब माँग या पूर्ति में बहुत कम परिवर्तन होता है, तब तो उस बिन्दु पर लोच माप ली जाती है, परन्तु बड़ी मात्रा में परिवर्तन होने की दशा में बिन्दु-माप सम्भव नहीं हैं। उस स्थिति में चाप-लोच विधि का प्रयोग किया जाता है।

arithmetic mean (अर्थमेटिक मीन) : अंकगणितीय मध्यमान, औसत।

साधारण औसत। सब मदों को जोड़कर, उसे मदों की संख्या से विभाजित करके अंकगणितीय मध्यमान या औसत की गणना की जाती है।

arithmetic progression (अर्थमेटिक प्रोग्रेशन) : अंकगणितीय वृद्धि।

विभिन्न संख्याओं की एक शृंखला, जिसमें सब संख्याओं के बीच का अन्तर समान होता है; जैसे कि १, २, ३, ४, ५ आदि। माॅल्थस ने अपने जनसंख्या-सिद्धान्त में खाद्यान्नों के उत्पादन की धीमी वृद्धि को अंकगणितीय वृद्धि के सहारे स्पष्ट करने का प्रयास किया था।

देखिए : geometric progression
Malthusian Theory of Population

artel (आरटेल) : उत्पादक सहकारी समिति।

जैसा कि नाम से स्पष्ट है, यह किसी विशेष प्रकार के उत्पादन के संचालन हेतु बनायी गयी सहकारी समिति होती है।

देखिए : co-operation

articles of association (आॅरटिकल्स आॅफ असोसियेशन) : संस्था की अन्तनियमावली।

किसी संयुक्त पूंजी कम्पनी के आन्तरिक प्रबन्ध के लिये बनाये गए नियम। इस अन्तर्नियमावली को कम्पनी कानून के रजिस्ट्रार से स्वीकृत कराना पड़ता है। किसी भी कम्पनी या निगम को आरम्भ करने की स्वीकृति के लिए अन्य दस्तावेजों के साथ अन्तर्नियमों का विवरण भी तत्सम्बन्धी राजकीय विभाग के पास जमा

कराना पड़ता है।

संस्था की अन्तर्नियमावली में इन अनेक बातों से सम्बन्धित नियमों का ब्यौरा शामिल रहता है। निदेशकों के अधिकार तथा उत्तरदायित्व, नयी पूँजी का निर्गमन, शेयर-निर्गमन तथा अन्तरण अंशधारियों के मताधिकार, मीटिंग बुलाने की व्यवस्था आदि। अंशधारियों की साधारण सभा में अन्तर्नियमों को बदला जा सकता है। इन परिवर्तित अन्तर्नियमों की एक प्रति सम्बन्धित राजकीय विभाग को भेजनी होती है। कई देशों में वहाँ के कम्पनी कानून के अन्तर्गत अन्तर्नियमों का एक आदर्श प्रारूप तैयार किया जाता है। इस प्रारूप से इन नियमों का विषय-विस्तार स्पष्ट होता है।

asset (ऐसेट) : परिसम्पत्ति।

उन सब भौतिक और अभौतिक वस्तुओं को 'परिसम्पत्ति' कहते हैं जिनका कुछ मूल्य हो तथा जिनपर किसी व्यक्ति, व्यवसाय या संस्था का स्वामित्व हो। मकान, कारखाने, भूमि आदि भौतिक परिसम्पत्ति हैं तथा दावे, साख, सुनाम, पेटेण्ट आदि अभौतिक परिसम्पत्ति के उदाहरण हैं। परिसम्पत्ति भावी सेवाओं का स्रोत होती है अथवा इसके प्रयोग से भावी सुलाभ प्राप्त किये जा सकते हैं। इस प्रकार मालिकों के लिए परिसम्पत्ति लाभकारी होती है।

परिसम्पत्ति की अनेक कोटियाँ हैं :

चालू परिसम्पत्ति—वह परिसम्पत्ति जो व्यवसायों द्वारा अल्पकालिक, दिन-प्रतिदिन प्रयोग में लायी जाती है। ये परिसम्पत्तियाँ साधारणतः एक वर्ष के अन्दर ही प्रयुक्त होकर समाप्त हो जाती हैं, और इनकी पूरी कीमत तैयार या निर्मित माल में स्थानान्तरित या परिलक्षित होती है। कच्चे माल, तैयार माल का स्टॉक तथा कार्यशील पूँजी चालू परिसम्पत्तियों के उदाहरण हैं।

स्थायी परिसम्पत्ति : टिकाऊ किस्म की परिसम्पत्ति जो साधारणतः एक वर्ष से अधिक समय के लिए रखी जाती है और जिसे आसानी से नकदी में नहीं बदला जा सकता; जैसे कि भूमि, मशीन, इमारत, दीर्घकालिक निवेश आदि।

अर्जक परिसम्पत्ति : वह परिसम्पत्ति जिससे आय प्राप्त होती है; जैसे कि वे प्रतिभूतियाँ जिनपर ब्याज मिलता है।

अभौतिक परिसम्पत्ति : वह परिसम्पत्ति जो अमूर्त रूप में होती है; जैसे कि व्यवसाय का सुनाम, ट्रेडमार्क, कॉपीराइट, दावे आदि।

तरल परिसम्पत्ति : ऐसी परिसम्पत्ति जिसे तुरन्त घाटा उठाए विना नकदी में परिवर्तित किया जा सके; जैसे, रोकड़, बैंक-जमा आदि।

asset structure (ऐसेट स्ट्रक्चर) : परिसम्पत्ति-संरचना।

एक व्यक्ति या व्यवसायी अनेक प्रकार की परिसम्पत्तियाँ रखता है। इन परिसम्पत्तियों के अपने अनेक विशिष्ट गुण होते हैं। कुछ परिसम्पत्तियाँ चालू होती हैं और कुछ स्थायी। कुछ परिसम्पत्तियाँ अधिक तरल परन्तु अनर्जक होती हैं, जबकि कुछ तरल तो कम किन्तु काफी अर्जक होती हैं। स्पष्टतः एक ही प्रकार की परिसम्पत्तियाँ रखने में जोखिम का अंश बढ़ जाता है। अतः प्रत्येक व्यक्ति तथा फर्म विभिन्न प्रकार की परिसम्पत्तियाँ अपने पास रखते

हैं। इसमें अपने व्यावसायिक उद्देश्यों, व्यावसायिक जरूरतों तथा भविष्य के विषय में बनी प्रत्याशाओं के आधार पर वे विविध परिसम्पत्तियों के अनुपात के सम्बन्ध में निर्णय लेते हैं। विभिन्न प्रकार की परिसम्पत्तियों के अनुपात को परिसम्पत्ति-संरचना कहते हैं। परिसम्पत्ति-संरचना का अध्ययन मुद्रा तथा वित्त-विषयक अर्थशास्त्र का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। ब्याज-निर्धारण की प्रक्रिया के समझने में परिसम्पत्ति-संरचना का अध्ययन बहुत सहायक होता है। व्यवसाय के वित्त-प्रबन्धकों को परिसम्पत्ति-संरचना के सिद्धान्तों में दक्ष होना पड़ता है।

assignment (अॅसाइन्‌मेण्ट) : समनुदेशन।

किसी व्यक्ति, संस्था या फर्म द्वारा अपनी परिसम्पत्तियों (जैसे कि ट्रेडमार्क, पेटेण्ट, कॉपीराइट, मकान, मशीन, बीमा-पॉलिसी आदि) को किसी दूसरे व्यक्ति या संस्थान के हक में हस्तान्तरित करना अथवा उसके नाम करना 'समनुदेशन' कहलाता है।

assumption (असम्पशन): पूर्वधारणा।

अर्थशास्त्र एक सामाजिक विज्ञान है। इस नाते अर्थशास्त्र का कार्य व्यापक, दुरूह तथा अस्पष्ट सामाजिक वास्तविकता का विश्लेषण तथा स्पष्टीकरण करना है। इस कठिन कार्य के लिए अनेक विश्लेषण-विधियों का प्रयोग करना पड़ता है। किसी व्यापक तथा जटिल सामाजिक प्रश्न का अध्ययन करने का एक कारगर तरीका यह है कि एक ही बार में पूरे प्रश्न की व्याख्या न करके, इस प्रक्रिया को कुछ भागों में बाँट लिया जाये। अर्थात् पहले सामाजिक वास्तविकता का एक सरल चित्र खींचा जाये और उसका अध्ययन किया जाये। इस प्रकार का सरलीकरण पूर्वधारणाओं या पूर्वकल्पनाओं के आधार पर किया जाता है। सिद्धान्तकार अपनी सुविधा तथा समझ के अनुसार यह मान लेता है कि उस स्थिति के कुछ मुख्य-मुख्य तत्त्व क्या हैं और शेष तत्त्वों को कुछ समय के लिए अध्ययन की परिधि से बाहर रखा जाता है। इस सरल स्थिति के विश्लेषण के बाद धीरे-धीरे वास्तविकता के वे अंग, जो पूर्वधारणाओं द्वारा हटा दिये गये थे, अब फिर से अध्ययन के दायरे में शामिल किये जाते हैं। इस प्रकार पूर्वधारणाओं द्वारा न केवल विशाल प्रश्नों का सुगमता से अध्ययन किया जा सकता है, अपितु कुछ चरों को पूर्वधारणाओं द्वारा अध्ययन से दूर रखकर शेष चरों का सम्बन्ध स्पष्ट किया जा सकता है।

अर्थशास्त्र के सभी सिद्धान्त कुछ पूर्वधारणाओं पर आधारित होते हैं। पूर्वधारणाएँ यह स्पष्ट करती हैं कि कोई सिद्धान्त-विशेष किन-किन संस्थागत ऐतिहासिक तथा अन्य परिस्थितियों में लागू होता है। सभी पूर्वकल्पनाएँ समस्या को सरल बनाने के लिए नहीं की जातीं। कुछ पूर्वधारणाएँ ऐसी होती हैं जिन्हें हटाने पर उस सिद्धान्त या नियम का लागू होना भी सन्दिग्ध हो जाता है, जैसे फ़र्म सम्बन्धी अधिकांश सिद्धान्त अधिकतम लाभ कमाने की प्रेरणा की पूर्वधारणा पर आधारित हैं। इसी प्रकार उपभोक्ता के व्यवहार सम्बन्धी ज्यादातर नियम उपयोगिता अधिकतम करने की प्रेरणा की पूर्वधारणा पर आधारित हैं। अधिकांश

आर्थिक नियम विवेकपूर्ण व्यवहार की पूर्वधारणा पर आधारित हैं। इस प्रकार आर्थिक इकाइयों की व्यवहार और प्रेरणा सम्बन्धी पूर्वधारणाएँ अनेक आर्थिक नियमों की मूलाधार हैं।

एक और प्रकार की पूर्वधारणाएँ वस्तु जगत के तथ्य सम्बन्धी होती हैं। जैसे कुछ आर्थिक सिद्धान्त इस पूर्वधारणा पर आधारित हैं कि वह अर्थव्यवस्था कृषि या उद्योग-प्रधान है। यदि इस प्रकार की पूर्वधारणाएँ बदल दी जायें, तो उस आर्थिक सिद्धान्त का औचित्य समाप्त हो जाता है। आर्थिक सिद्धान्तों के आधार पर आर्थिक नीति-निर्धारण के सम्बन्ध में यह बात बहुत ध्यान रखने की है कि सम्बन्धित सिद्धान्त की पूर्वधारणाओं की वास्तविक स्थिति से तुलना की जाये। किसी भिन्न प्रकार की वास्तविक स्थिति में एक अलग प्रकार की पूर्वधारणाओं पर आधारित सिद्धान्त या उसके फलितार्थों को लागू करना अनुचित होगा। आर्थिक सिद्धान्तों की व्याख्या भी उनकी पूर्वधारणाओं के परिप्रेक्ष्य में की जानी चाहिए। सही, संगत तथा सटीक पूर्वधारणाएँ अच्छे आर्थिक सिंद्धान्तों की आधारभूमि होती हैं।

atomistic economy (ऐटोमिस्टिक इकॉनॉमी) : बहुस्पर्धी अर्थव्यवस्था।

विकेन्द्रित लघु इकाई अर्थव्यवस्था। पूर्ण प्रतियोगिता से संगत फर्म और व्यवसायों का जो आर्थिक ढाँचा होता है, उसे 'बहुस्पर्धी अर्थव्यवस्था' अथवा 'लघु इकाई अर्थव्यवस्था' कहते हैं। इसमें उत्पादन, उपभोग तथा निवेश आदि मूलभूत आर्थिक प्रक्रियाओं से सम्बन्धित निर्णयकारी व अमलकारी इकाइयाँ बहुत छोटी-छोटी तथा असंख्य होती हैं। अलग-अलग ये लघु-इकाइयाँ सारे बाजार का अल्पांश होती हैं। फलस्वरूप वे निजी नीति या व्यवहार से बाजार-प्रक्रियाओं के परिणाम को प्रभावित नहीं कर सकतीं। ऐसी स्थिति में बाजार द्वारा निर्धारित कीमत सब फर्मों द्वारा मान ली जाती है और उसी के आधार पर प्रत्येक फर्म अपनी क्रय-विक्रय सम्बन्धी क्रियाएँ चलाती है। स्पष्टत: इस प्रकार की अर्थव्यवस्था में कोई एक फर्म अपने प्रयास से बाजार-प्रक्रिया को अपने निजी लाभ के लिए मोड़ नहीं सकती।

पूँजीवाद के आरम्भिक चरणों में तो लगभग ऐसी अर्थव्यवस्था पायी गयी थी। परन्तु धीरे-धीरे फर्मों के आकार में वृद्धि, पूर्ण प्रतियोगिता के क्रमिक अन्त तथा विभिन्न प्रकार की एकाधिकारात्मक प्रवृत्तियों के जोर पकड़ने से इस तरह की अर्थव्यवस्था लुप्त होती रही।

austerity (ऑस्टेरिटी) : मितोपभोग।

उपभोग-नियंत्रण तथा कटौती। आर्थिक विकास, पूँजी-निर्माण तथा युद्ध-सम्बन्धी संकटकालीन आर्थिक अवस्था की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उपभोग-व्यय में कमी लाने की नीति का सहारा लिया जाता है। मुद्रा-स्फीति की स्थिति का सामना करने एवं भुगतान-शेष में सुधार लाने के लिए भी मितोपभोग कार्यक्रम हाथ में लिये जाते हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कर व शुल्क बढ़ाये जाते हैं, कुछ विशेष प्रकार के उद्योगों पर नियन्त्रण लगाने की व्यवस्था की जाती है अथवा प्रत्यक्ष रूप से उपभोग का नियमन किया जाता है।

जिस देश में मितोपभोग की प्रवृत्ति व्यापक तथा मजबूत होती है, वहाँ बचत व निवेश अर्थात् पूँजी-निर्माण तथा आर्थिक विकास के क्षेत्र में बड़ी सहायता मिलती है। लेकिन विकसित देशों में ऐसी प्रवृत्ति प्रभावी माँग में कमी लाकर बेरोजगारी, मन्दी तथा आर्थिक संकट का कारण भी बन सकती है।

austrian school (ऑस्ट्रियन स्कूल) : ऑस्ट्रियाई सम्प्रदाय।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में ऑस्ट्रिया के वियेना विश्वविद्यालय में अनेक अर्थशास्त्री महत्त्वपूर्ण आर्थिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन कर रहे थे। इन अर्थशास्त्रियों में कार्ल मेंजर, फ्रेडरिक फॉन वीजर और यूजिन फॉन-बॉमबॉवर्क के नाम सबसे मुख्य हैं। इन सब अर्थशास्त्रियों ने मूल्य और कीमत के सिद्धान्तों के विकास में बड़ा योगदान दिया। इनकी 'सीमान्त' की अवधारणा का तो अन्य सिद्धान्तों में भी व्यापक प्रचलन हुआ।

मुख्यतः ऑस्ट्रियाई सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का केन्द्र सीमान्त उपयोगिता से सम्बन्धित सिद्धान्त माना जाता है। इन अर्थशास्त्रियों ने 'सीमान्त' अवधारणा का विकास किया और कीमत-निर्धारण की प्रक्रिया में इसे महत्त्वपूर्ण स्थान दिया। आगे चलकर आय, लाभ, आर्थिक कल्याण आदि के अधिकतम बिन्दु पर पहुँचने की प्रक्रिया को स्पष्ट करने के लिए भी 'सीमान्त' अवधारणा का प्रयोग किया गया। ऑस्ट्रियाई स्कूल के वीजर और बॉम-बॉवर्क ने लागत, वितरण, पूँजी और ब्याज सम्बन्धी प्रश्नों पर भी महत्त्वपूर्ण सैद्धान्तिक प्रगति की। इन सब अर्थशास्त्रियों के कार्य में सीमान्त उपयोगिता से सम्बन्धित समानता के अतिरिक्त, जिसके आधार पर मूल्य के आत्मगत सिद्धान्त बनाये गये, आर्थिक विश्लेषण-प्रणाली सम्बन्धी एकता भी थी। इस स्कूल ने जर्मनी और ऑस्ट्रिया में उन दिनों अधिक प्रचलित 'ऐतिहासिक' या आगमन-विश्लेषण प्रणाली की कड़ी आलोचना की और निगमन-प्रणाली का पृष्ठपोषण किया। इस सम्बन्ध में मेंजर तथा गुस्टेव स्मोलर में हुआ विवाद बहुत प्रसिद्ध और स्मरणीय है।

autarchy (ऑटर्की) : आत्मनिर्भर अर्थतन्त्र।

राष्ट्रीय स्तर पर आर्थिक आत्म-निर्भरता तथा स्वावलम्बन की नीति अथवा विदेशी आर्थिक सम्बन्धों के बहिष्कार या उन्हें न्यूनतम करने की नीति। इसे एक प्रकार का (रूढ़ तथा संकुचनकारी अर्थ में) आर्थिक राष्ट्रवाद भी कहा जा सकता है। युद्ध, विकसित देशों की कड़ी तथा असमान प्रतियोगिता से बचकर आर्थिक विकास करने की इच्छा आदि से प्रेरित होकर यह नीति अपनायी जाती है। इसके फलस्वरूप एक प्रकार की विदेशी व्यापार का बहिष्कार करनेवाली अर्थ-व्यवस्था उत्पन्न हो जाती है।

यह नीति विशेष रूप से प्रथम विश्व-युद्ध के बाद उभरी जबकि केन्द्रीय यूरोप के अनेक नये देशों ने पड़ोसी देशों से अपने को आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर बनाने का प्रयास किया।

देखिए : closed economy

authorised capital (ऑथॅराइज्ड् कैपिटल) : अधिकृत पूँजी।

सरकार द्वारा किसी कम्पनी को जिस राशि तक शेयर आदि जारी करके पूँजी एकत्र करने की अनुमति मिलती है, उस अधिकतम राशि को 'अधिकृत पूँजी' कहा जाता है।

प्रत्येक संयुक्त पूँजी कम्पनी शेयर या हिस्से बेचकर अपनी पूँजी प्राप्त करती है। इन कम्पनियों को पूँजी के शेयर बेचने के लिए सरकार से अनुमति लेनी होती है। इस अधिकृत राशि से अधिक के शेयर कम्पनियाँ या निगम नहीं बेच सकते। परन्तु कोई भी विद्यमान निगम एक नया प्रार्थना-पत्र देकर यह अधिकृत सीमा बढ़वा सकता है। साथ ही यह भी आवश्यक नहीं है कि सारी अधिकृत पूँजी के शेयर जारी किये ही जायें। एक राशि-विशेष के शेयर जारी किये जा सकते हैं। शेष राशि के शेयर भविष्य में जारी करने के लिए रखे जा सकते हैं।

automatic saving (ऑटोमैटिक सेविंग) : स्वतः बचत।

एक अपेक्षाकृत कम प्रचलित अवधारणा। उच्च आय-वर्ग का जीवन-स्तर बहुत ऊँचा होता है। उनकी आय इतनी अधिक होती है कि उसका उनके उपभोग-स्तर से कोई स्पष्ट और प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता। ऐसी स्थिति में कर आदि चुकाने के बाद तथा उपभोग-सम्बन्धी व्यय करने के पश्चात् उनकी आय का एक भाग अपने-आप बचत का रूप धारण कर लेता है। कहने का तात्पर्य यह है कि धनी वर्ग की उपभोग सम्बन्धी जरूरतें पूरी किये जाने के बाद भी उनकी आय का एक हिस्सा बिना खर्च हुआ या बचा रह जाता है। इन सम्पन्न लोगों को इस प्रकार बचत करने के लिए वर्तमान उपभोग-परित्याग, उपभोग-स्थगन या प्रतीक्षा जैसी कोई सचेतन प्रक्रिया नहीं करनी पड़ती। सारी उपभोग-वस्तुएँ तथा सेवाएँ खरीदने के बाद स्वतः ही आय का एक हिस्सा बचा रह जाता है। ऐसी कष्टहीन, बिना सचेतन रूप से त्याग किये, अपने-आप प्राप्त होनेवाली बचत 'स्वतः बचत' कहलाती है। स्पष्ट है कि इस अवधारणा के पीछे आय के बढ़ने के साथ-साथ उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति के घटने की पूर्वकल्पना विद्यमान है।

automatic stabiliser (ऑटोमैटिक स्टेबिलाईजर) : स्वतः स्थिरक।

आज यह प्रायः सर्वमान्य मत है कि पूँजीवादी अर्थव्यवस्था स्वभावतः अस्थिरता-ग्रस्त होती है और आर्थिक गतिविधियों का उतार-चढ़ाव इसका एक महत्त्वपूर्ण लक्षण है। इस प्रक्रिया की व्याख्या करनेवाले व्यापार-चक्र के सिद्धान्तों में एक महत्त्वपूर्ण अवधारणा 'स्वतः स्थिरक' की है। व्यापार-चक्र के उतार या चढ़ाव का कोई भी क्रम अनिश्चित काल तक नहीं चलता रह सकता। यदि सचेतन आर्थिक नीति द्वारा हस्तक्षेप नहीं भी किया जाये, तो भी अर्थव्यवस्था में कुछ इस प्रकार की प्रक्रियाएँ जन्म लेती हैं जो मन्दी या तेजी के प्रतिकूल काम कर अर्थव्यवस्था को स्थिरता की ओर मोड़ती हैं। इस प्रकार के तत्त्वों को स्वतः स्थिरक कहा जाता है। जैसे मन्दी के दौरान किसी महत्त्वपूर्ण वस्तु की कमी होने से उसकी कीमत में वृद्धि और फलस्वरूप मुनाफे में वृद्धि हो। इस तरह उस उद्योग में निवेश बढ़ाने की प्रेरणा बढ़ेगी और निवेशयोग्य

साधन उपलब्ध होंगे। इस नये निवेश के गुणक-प्रभाव के कारण अन्य उद्योगों की हालत भी सुधरेगी तथा मन्दी पहले धीमी पड़ेगी और अन्ततः अर्थव्यवस्था में (कम-से-कम कुछ समय के लिए) स्थायित्व आयेगा। 'स्वतः स्थिरक' की अवधारणा की मुख्य बात यह है कि व्यापार-चक्र के परावर्तन-विन्दु के कारक आर्थिक प्रक्रिया में अन्तर्निहित भी होते हैं।

automation (ऑटोमेशन) : स्वचलन।

तकनीकी प्रगति विभिन्न अवस्थाओं और देशों में अपना रूप बदलती रहती है। आजकल स्वचलन तकनीकी प्रगति का अत्यधिक प्रचलित रूप है। इसमें विकसित यान्त्रिक उपकरणों का तेज गति वाले कम्प्यूटरों तथा अन्य स्वयं-नियमित, विशेषतः वैद्युतिक यन्त्रों के साथ प्रयोग होता है। फलस्वरूप यन्त्रों तथा मशीनों के संचालन में मानवीय श्रम की सहायता और मानवीय नियन्त्रण की आवश्यकता बहुत कम हो जाती है। मशीनों का स्वतः संचालन होने लगता है और उनका नियन्त्रण भी वैद्युतिक विधियों से हो जाता है। यह स्वचलन या तो नयी आविष्कृत नियन्त्रणकारी मशीनों (जैसे कम्प्यूटर आदि) द्वारा होता है या वैद्युतिक यन्त्रों के सुधारों द्वारा। इस तरह स्पष्ट है कि स्वचलन नयी मशीनों के आविष्कार से भी बड़ा कदम है। स्वचलन के फलस्वरूप औद्योगिक उत्पादिता में भारी वृद्धि होती है।

दूसरे विश्वयुद्ध के बाद विकसित देशों ने जो प्रगति की है, उसमें स्वचलन का काफी बड़ा हाथ रहा है। परन्तु स्वचलन के सम्पूर्ण प्रभाव का लेखा-जोखा और मूल्यांकन कठिन कार्य है। जहाँ एक ओर इससे उत्पादन-लागत में कमी और उत्पादन में वृद्धि होती है, वहाँ दूसरी ओर कुछ समय के लिए रोज़गार की समस्या और जटिल तथा व्यापक बन जाती है। स्वचलन से कुशल श्रमिकों की माँग तो बढ़ती है, परन्तु अकुशल तथा अर्ध-कुशल मजदूरों की माँग घटती है। इस प्रकार स्वचलन द्वारा औद्योगिक क्षेत्रों में श्रमिकों की संख्या कम होगी, जबकि अन्य क्षेत्रों (जैसे सेवाओं) के लिए अधिक श्रमिक उपलब्ध हो सकेंगे। स्पष्टतः धीमी गति से विकसित हो रही श्रम-प्रधान तथा बेरोजगारी-प्रधान अर्थव्यवस्था में स्वचलन का भारी सहारा लिया जाना स्थिति को बदतर ही करेगा।

autonomous investment (ऑटोनोमस इनवेस्टमेण्ट) : स्वायत्त निवेश।

निवेश की मात्रा को प्रभावित करने-वाले आर्थिक तत्त्वों (जैसे राष्ट्रीय आय, आय की वृद्धि-दर, उपभोग, बचत आदि) के अतिरिक्त अन्य शक्तियाँ भी इस दिशा में सक्रिय होती हैं। इन आर्थिकेतर प्रभावों द्वारा निर्धारित निवेश को 'स्वायत्त निवेश' अथवा 'स्वतःप्रेरित निवेश' कहते हैं। यह एक व्यापक श्रेणी है जिसमें राजनीतिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, कानूनी, सामरिक, वैज्ञानिक, प्राविधिक आदि विविध प्रभावों के कारण होनेवाले निवेश को सम्मिलित किया जाता है। नये उत्पादों, नयी उत्पादन-प्रणालियों तथा नयी समाज-व्यवस्था के कारण प्रायः स्वायत्त निवेश किये जाते हैं। भारत में पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत किये गये निवेश के बड़े भाग को 'स्वायत्त निवेश' कहा जा सकता है।

autonomous variable (ऑटोनोमॅस वेरियेबल) : स्वायत्त चर।

वे आर्थिक चर जो अन्य चरों से स्वतन्त्र रूप से आर्थिक क्रियाओं को प्रभावित करते हैं। ये चर आर्थिक प्रक्रियाओं को प्रभावित करनेवाले आन्तरिक कारण नहीं होते, वरन् एक प्रकार के बाहरी तत्त्व होते हैं। आन्तरिक कारणों के बारे में तो सुनिश्चित अनुमान लगाये जा सकते हैं। परन्तु बाह्य या स्वायत्त चरों के बारे में अनुमान स्वतन्त्र रूप से ही लगाये जा सकते हैं, विभिन्न चरों के आपसी सम्बन्धों के आधार पर नहीं।

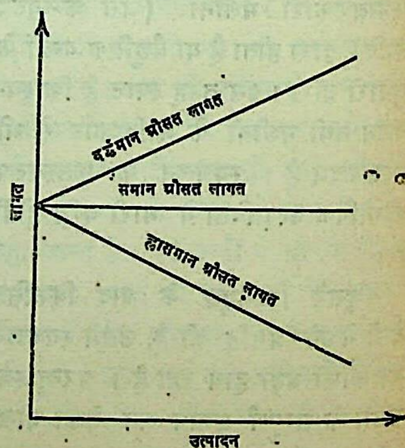
उदाहरणार्थ, तकनीकी प्रगति, नये आर्थिक संसाधनों की खोज या प्राप्ति, किसी देश का क्षेत्र-विस्तार, अन्य देशों से आर्थिक सम्बन्धों में परिवर्तन, आर्थिक संगठन में हुए परिवर्तन, राजनीतिक प्रभाव आदि निवेश की दर को प्रभावित करनेवाले स्वायत्त चर हैं। इसके विपरीत व्याज की दर, राष्ट्रीय आय में घट-बढ़, कीमतों में परिवर्तन या परिवर्तन की प्रत्याशा आदि निवेश को निर्धारित करनेवाले आन्तरिक या अस्वायत्त चर हैं। इसी प्रकार आर्थिक विकास, बचत, औद्योगिक प्रगति, उद्योगों के स्थानीयकरण आदि के स्वायत्त चर भी बहुत महत्त्वपूर्ण होते हैं और इन विषयों से सम्बन्धित आर्थिक सिद्धान्तों में इन चरों के समावेश की भी समुचित व्यवस्था होनी चाहिए।

auxiliary capital (ऑक्सिलियरी कैपिटल) : सहायक पूंजी।

इस शब्द का प्रयोग अल्फ्रेड मार्शल ने किया है। इनके अनुसार सहायक पूंजी में उन सब वस्तुओं की गणना की जाती है जो उत्पादन-प्रक्रिया में श्रमिकों की सहायता करती हैं। इस श्रेणी में समस्त औज़ार, उपकरण, मशीनें, कारखाने, रेलें, गोदी, जहाज़, परिवहन तथा संचार के साधन आदि आते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि आजकल अर्थशास्त्री जिन वस्तुओं को पूंजीगत वस्तुएँ या केवल पूँजी कहते हैं, उन्हें मार्शल ने 'सहायक पूंजी' का नाम दिया है।

average cost (एवरेज कॉस्ट) : औसत लागत।

प्रति इकाई उत्पादन-लागत को 'औसत लागत' कहते हैं। इसीलिए इसे 'प्रति इकाई लागत' भी कहते हैं। किसी भी वस्तु के उत्पादन की सारी लागत को उस वस्तु की उत्पादित मात्रा से विभाजित करके औसत लागत मालूम की जाती है। उदाहरणार्थ, यदि किसी कारखाने में सालभर में एक हज़ार मोटरों का उत्पादन होता है और कुल उत्पादन-लागत १५ करोड़ रुपये आती है, तो हम कहेंगे कि प्रति मोटर लागत या औसत लागत (१५०,०००,००० ÷ १,०००) डेढ़ लाख रुपये हुई। एक निश्चित मात्रा से उत्पादन और बढ़ाने पर औसत लागत उसी अनुपात में या उससे कम या अधिक अनुपात में बढ़ सकती है। औसत लागत के इस व्यवहार को रेखाचित्र के रूप में इस प्रकार दिखाया जा सकता है :



average revenue (एवरेज रेविन्यू) : औसत आय।

प्रति इकाई उत्पादन को वेचने से प्राप्त राशि को 'औसत आय' अथवा 'औसत सम्प्राप्ति' कहते हैं। किसी व्यवसाय के उत्पादन के वेचने से प्राप्त कुल राशि को विक्री-माल की कुल मात्रा से विभाजित करने पर औसत आय जानी जा सकती है। यदि सारा उत्पादन एक ही कीमत पर वेचा जाता है, तो स्पष्ट है कि औसत आय कीमत के वरावर होगी। जहाँ कीमत-विभेद की नीति अपनायी जाती है, वहाँ कीमत और औसत आय वरावर नहीं होगी।

B

backwardation (वैकवर्डेशन) : मन्दी-वदला।

मन्दी-वदला एक तरह का भुगतान है जो कोई सटोरिया प्रति सैकड़ा हिसाव से उन स्टॉक और प्रतिभूतियों के लिए करता हैं जिन्हें वह वेच तो चुका है, परन्तु जिनकी सुपुर्दगी वह निर्धारित तिथि पर नहीं कर सकता। मन्दी-वदला का यह अर्थ शेयर-वाजार या स्टॉक एक्सचेंज में लागू होता है। उदाहरणार्थ, यदि एक मन्दड़िए के पास वे प्रतिभूतियाँ नहीं हैं जिन्हें वेचने का वह सौदा कर चुका है, तो वह मन्दी-वदला चुकाकर अपने सौदे को आगे के लिए कायम रख सकता है। इस तरह वह आगे के लिए अपेक्षित मन्दी से लाभ उठाने का प्रयास कर सकता है।

वस्तु-वाजार में हाजिर कीमत तथा गोदाम के खर्चे के वायदा-कीमत से आधिक्य को 'मन्दी-वदला' कहते हैं।

backwash effect (वैकवॉश इफेक्ट) : प्रतिधावन प्रभाव।

विकसित और अविकसित देशों या क्षेत्रों के आर्थिक सम्वन्धों से दोनों प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं पर कई तरह के असर पड़ते हैं। विकसित क्षेत्रों के अधिक आकर्षक और व्यापक आर्थिक अवसरों को प्राप्त करने के लिए अविकसित क्षेत्रों के सीमित साधन (पूंजी, कच्चे माल, कुशल श्रम) विकसित क्षेत्रों की ओर पलायन करते हैं। अविकसित क्षेत्र अपेक्षाकृत कम उत्पादितावाले व्यवसायों को अपनाते हैं और वहाँ विकासशील उद्योगों और व्यवसायों का विकास नहीं हो पाता। इस प्रकार के आर्थिक सम्वन्धों के प्रतिकूल प्रभावों को 'प्रतिधावन प्रभाव' कहते हैं। प्रतिधावन प्रभाव अल्पविकसित देशों के विकास में एक वड़ी वाधा खड़ी करते हैं।

bad money (वैड मनी): निकृष्ट मुद्रा।

इसका आशय धातुह्रासित मुद्रा से है—ऐसी मुद्रा जिसका वजन कम या हल्का होता है। मुख्य रूप से इसका प्रयोग ग्रेशम के मुद्रा-सिद्धान्त के सम्वन्ध में किया

गया है जिसके अनुसार "निकृष्ट मुद्रा अच्छी मुद्रा को संचलन से हटा देती है"। उत्प्रवाही मुद्रा के लिए भी इसका प्रयोग किया जाता है।

देखिए : Gresham's Law of Money.
hot money

balanced budget (बैलेन्स्ड बजट) : सन्तुलित बजट।

यदि किसी राज्य की वार्षिक आय तथा व्यय के अनुमान एक-दूसरे के बराबर हों ताकि बजट में न घाटा रहे न अधिशेष, तो वह 'सन्तुलित बजट' कहलाता है। इस प्रकार के बजट में राजकीय व्यय को राजकीय आगम के अनुसार तय करना पड़ता है। यह राजकोषीय अनुशासन को बढ़ावा देता है, क्योंकि इसमें राजकीय आगम के साधनों द्वारा ही राजकीय व्यय की सीमाएँ निर्धारित होती हैं।

परम्परावादी राजकीय वित्त के सिद्धान्तों के अनुसार सन्तुलित बजट की नीति अच्छी मानी जाती थी। इससे राज्य की नीतियों में व्यवसायी-वर्ग का विश्वास बढ़ता था और आर्थिक स्थायित्व की दिशा में इसे सहायक माना जाता था। परन्तु केन्स के सिद्धान्तों के प्रचलन के बाद पूर्ण रोजगार के स्तर पर आर्थिक स्थायित्व कायम रखना राज्य का दायित्व हो गया। इस ध्येय की पूर्ति के लिए बेरोजगारी की हालत में घाटे का बजट तथा मुद्रा-स्फीति की हालत में अधिशेष का बजट सहायक माना जाने लगा।

देखिए : budget
deficit budget
surplus budget

balanced growth (बैलेन्स्ड ग्रोथ) : सन्तुलित संवृद्धि।

आर्थिक विकास की नीति तथा उसके स्वरूप के विषय में सन्तुलित संवृद्धि या विकास का विचार तथा कार्यक्रम एक काफी विवादास्पद विषय है। इस शब्द के अर्थ के विषय में भी कई मत हैं। सन्तुलित विकास के मूल प्रवर्त्तकों के अनुसार आर्थिक विकास के लिए अनेक क्षेत्रों में एक साथ बड़ी मात्रा में निवेश की आवश्यकता होती है। किसी निवेश की सफलता के लिए अनेक सहायक निवेशों तथा उपभोक्ता-माँग की जरूरत होती है। किसी अल्प-विकसित अर्थव्यवस्था में कई निवेश एक साथ अनेक क्षेत्रों में करने से सहायक उत्पादक वस्तुओं की प्राप्ति तथा इन निवेशों द्वारा उत्पादित माल की माँग, दोनों ही चीजें उपलब्ध हो जाती हैं। इस प्रकार सब क्षेत्रों में समन्वित रूप से निवेश करके अर्थव्यवस्था को विकसित करने में सन्तुलित संवृद्धि की प्राप्ति होती है।

विकास की इस नीति से गरीबी के दुष्चक्र को तोड़ने तथा विकास का पथ बाधारहित बनाने में सहायता मिलती है। परन्तु इस नीति में अल्पविकसित देशों की निवेश-क्षमता (मशीनों, बचत, कुशल श्रम, विदेशी विनिमय, प्रबन्ध-क्षमता आदि के अभाव) का ध्यान नहीं रखा गया है। अतः इसकी व्यावहारिकता के विषय में मतभेद हो सकता है।

balance of payment (बैलेन्स ऑफ पेमेण्ट) : भुगतान-शेष, भुगतान-सन्तुलन।

'भुगतान-शेष' अर्थव्यवस्था के राष्ट्रीय

लेखे का वह भाग है जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय लेन-देन का विवरण रहता है। इन अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सम्बन्धों के फलस्वरूप प्रत्येक देश अन्य देशों से भुगतान प्राप्त करता है और उन्हें भुगतान करता भी है। इस प्रकार प्राप्त सम्पूर्ण आगम या प्राप्ति और किये गये सम्पूर्ण भुगतानों का लेखा-जोखा भुगतान-शेष अथवा भुगतान-सन्तुलन में दिखाया जाता है। यह लेखा वार्षिक, त्रैमासिक, मासिक आदि किसी अवधि-विशेष के लिए तैयार किया जा सकता है। विदेशी व्यापार के संचालन के लिए अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राओं की आवश्यकता रहती है। भुगतान-शेष के अध्ययन से एक देश अपनी विदेशी विनिमय सम्बन्धी हालत को जान सकता है। विदेशी व्यापार सम्बन्धी सारी नीति के निर्धारण में भुगतान-शेष के लेखे द्वारा प्राप्त सूचनाओं का महत्त्वपूर्ण प्रभाव होता है।

भुगतान-शेष के लेखे में तीन तरह के लेन-देन दिखाये जाते हैं :—

(1) विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के आयात तथा निर्यात से सम्बन्धित लेन-देन। इस प्रकार के लेन-देन के लेखे को 'व्यापार-शेष' या 'दृश्य-शेष' कहते हैं।

(2) विविध प्रकार की सेवाओं के लिए विभिन्न देश एक-दूसरे को कीमत चुकाते हैं। इन सेवाओं में परिवहन तथा संचार-सेवाएँ, बैंकों, बीमा-कम्पनियों आदि की सेवाएँ आती हैं। विदेशों में किये गये निवेशों से भी आय प्राप्त होती है। विदेशी यात्रा पर किया गया खर्च भी एक देश की आय और दूसरे देश का व्यय होता है। इस प्रकार के लेन-देन को भुगतान-शेष की 'अदृश्य' मदें कहते हैं। व्यापार-शेष तथा अदृश्य-शेष को साथ रखकर देखने से चालू भुगतान-शेष प्राप्त होता है।

(3) भुगतान-शेष पर पूंजी तथा मुद्रा के प्रवाह का भी असर पड़ता है। जब कोई देश कहीं विदेश में पूंजी लगाता है, तब यह निवेश उस देश के लिए भुगतान ठहरेगा। जिस देश में निवेश होता है, उसके लिए वह आगम या आय होगा। इन मुद्रा तथा पूंजीगत प्रवाहों में अल्प तथा दीर्घकालिक निवेश, अन्तर्राष्ट्रीय कर्ज, अन्तर्राष्ट्रीय उपहार, सोने तथा कीमती धातुओं के प्रवाह आदि शामिल किये जाते हैं। इस प्रकार के लेन-देन को भुगतान-शेष का पूंजीगत खाता कहते हैं।

जब किसी देश के भुगतान-शेष के चालू खाते का जमा नामे से अधिक होता है, तब उसे अनुकूल भुगतान-शेष कहा जाता है। जब भुगतान-शेष के दोनों पक्ष बराबर होते हैं, तब इस स्थिति को सन्तुलित भुगतान-शेष की स्थिति कहा जाता है। प्रतिकूल भुगतान-शेष के घाटे को निम्नांकित तरीकों से पूरा किया जाता है—(अ) कर्ज लेकर, (ब) अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं (जैसे अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा-कोष) से सहायता लेकर, (स) विदेशों से प्राप्त उपहारों द्वारा, (द) सोने का निर्यात करके या अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राओं के रिजर्व को घटाकर, तथा (प) विदेशों में किये गये निवेश बेचकर। इस तरह भुगतान-शेष को हमेशा अल्पकाल में भी सन्तुलित रखा जाता है। परन्तु दीर्घकालिक घाटा केवल निर्यात बढ़ाकर या आयात घटाकर अथवा दोनों ही कार्य

करके पूरा किया जा सकता है।

balance of trade (बैलेन्स ऑफ ट्रेड) : व्यापार-शेष, व्यापार-सन्तुलन।

भुगतान-शेष का वह भाग, जिसमें विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के आयात तथा निर्यात का लेखा रखा जाता है, 'व्यापार-शेष' अथवा व्यापार-सन्तुलन कहलाता है। स्पष्ट है कि भुगतान-शेष की तुलना में यह अवधारणा सीमित है; क्योंकि इसमें केवल वस्तुओं के आयात तथा निर्यात को ही दिखाया जाता है। इसे 'माल या पण्य शेष' भी कहा जाता है। सेवाओं आदि के अदृश्य-शेष से तुलना करने के लिए इसे 'दृश्य शेष' भी कहते हैं। जब निर्यात से आयात अधिक होते हैं, तब वह स्थिति प्रतिकूल व्यापार-शेष की स्थिति कही जाती है। इसके विपरीत, जब आयात की तुलना में निर्यात अधिक होते हैं, तब व्यापार-शेष अनुकूल माना जाता है। दोनों पक्षों के बराबर होने की स्थिति को 'सन्तुलित व्यापार-शेष' कहते हैं।

balance-sheet (बैलेंस शीट) : पक्का चिट्ठा, तुलन-पत्र।

पक्का-चिट्ठा अथवा तुलन-पत्र एक ऐसा विवरण-पत्र है जिसमें किसी फर्म या संस्था की वित्तीय स्थिति दर्शायी जाती है। इसमें किसी तिथि-विशेष पर किसी फर्म की परिसम्पत्तियाँ तथा उसकी देन-दारियाँ दिखायी जाती हैं। इस तरह इसके सहारे किसी फर्म की वास्तविक वित्तीय स्थिति जानी जा सकती है।

bank (बैंक) : बैंक।

यह एक 'व्यापक शब्द है। इसके द्वारा अनेक प्रकार की साख, मुद्रा तथा ऋण सम्बन्धी लेन-देन में लगी संस्थाओं का बोध होता है। परन्तु साधारणतः 'बैंक' शब्द का प्रयोग वाणिज्य या व्यापारिक बैंकों के लिए किया जाता है। वाणिज्य बैंक सबसे अधिक प्रचलित किस्म के बैंक होते हैं। ये प्रायः सब तरह का बैंकिंग कार्य करते हैं। ग्राहकों से रुपये लेकर जमा करना, उन्हें चैक द्वारा रुपये निकलवाने तथा भुगतान की सुविधा देना, ग्राहकों को कर्ज देना, हुण्डियाँ सकारना, विदेशी विनिमय का धन्धा करना, एक स्थान से दूसरे स्थान पर रुपये भेजने की सुविधा देना, शेयर बाजार में ग्राहकों के लिए शेयरों की खरीद-बिक्री करना, आदि अनेक कार्य बैंक द्वारा किये जाते हैं।

निवेश बैंक, बचत बैंक, भूमि-बन्धक बैंक, सहकारी बैंक, केन्द्रीय बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के बैंक आदि अन्य अनेक प्रकार के भी बैंक होते हैं।

bank acceptance (बैंक एक्सेप्टेन्स): बैंक स्वीकरण।

बैंक द्वारा स्वीकृत बिल या हुण्डी। इस प्रकार स्वीकृत बिल को बैंक बिल कहते हैं।

देखिए : acceptance bill of exchange

bank account (बैंक एकाउन्ट) : बैंक लेखा।

बैंक में अनेक प्रकार के लेखे रखे जाते हैं; जैसे कि जमा लेखा, चालू लेखा, उधार लेखा, आदि। ये सब बैंक लेखा कहलाते हैं।

bank advances (बैंक एडवान्सेस): बैंक ऋण।

बैंक अपने ग्राहकों को विभिन्न ढंग से उधार देता है। इसे बैंक ऋण कहते हैं। सामान्य तौर पर उद्योग-व्यापार आदि आर्थिक क्षेत्रों में कार्यशील पूँजी का अधिकांश भाग बैंक-ऋण द्वारा प्राप्त किया जाता है। बैंक निजी लोगों को भी विभिन्न कार्यों के लिए कर्ज देता है। जब ठीक प्रकार के उधार लेनेवाले उपलब्ध होते हैं, तब निवेश के स्थान पर बैंक-ऋण की मात्रा बढ़ने लगती है। इसके विपरीत जब उद्योग शिथिल होते हैं, तब ऋण के स्थान पर निवेश बढ़ने लगते हैं। चूँकि ऋण और निवेश के बढ़ने पर बैंक जमा में भी वृद्धि होती है, इसलिए आवश्यकतानुसार बैंक-ऋण के नियमन के लिए उपयुक्त मुद्रा-नीति का सहारा लिया जाता है।

देखिए : bank credit

bank bill (बैंक बिल) : बैंक बिल।

सकार-घर अथवा बैंक द्वारा स्वीकृत बिल या हुण्डी को बैंक बिल कहते हैं।

bank charges (बैंक चार्जेज़) : बैंक प्रभार।

ग्राहक के लेखे के प्रबन्ध के लिए बैंक द्वारा लिया गया शुल्क या भुगतान। इसे बैंक कमीशन भी कहते हैं।

bank credit (बैंक क्रेडिट) : बैंक-उधार।

'बैंक-उधार' बैंक द्वारा अपने किसी ग्राहक को दी गयी अनुमति है, जिसके सहारे वह बैंक से नकद चैक द्वारा या अन्य किसी रूप में परस्पर सहमत राशि किसी खास समय तक के लिए प्राप्त कर सकता है। अवधि पूरी होने पर साधारणतः यह राशि ब्याज-सहित लौटानी होती है।

बैंक-उधार साधारण उधार से इस अर्थ में भिन्न है कि इसके अन्तर्गत किसी नकद राशि का हस्तान्तरण आवश्यक नहीं है। यह बैंक की बहियों में कर्ज लेनेवाले के खाते में जमा की गयी राशि भी हो सकती है। साधारणतः बैंक ऐसा उधार समर्थक प्रतिभूतियों या अन्य किसी ऐसे आधार पर देते हैं। बैंकों द्वारा दिये गये उधार 'बैंक-मुद्रा' के नाम से भी जाने जाते हैं। बैंक अपने पास जमा राशि से कई गुना अधिक राशि उधार दे सकते हैं।

bank deposits (बैंक डिपॉजिट्स) । बैंक-जमा।

ग्राहकों के नाम पर बैंक में जमा की गयी राशियाँ। जमा स्वीकार करना बैंक का मुख्य कार्य होता है। बैंक अपने ग्राहकों से जो धनराशि जमा के रूप में प्राप्त करता है, वह उसकी सम्पत्ति तो बन जाती है लेकिन ग्राहकों के आदेशानुसार बैंक को उस राशि का भुगतान करना पड़ता है। इस प्रकार लोगों व संस्थाओं से जमा प्राप्त करना बैंक द्वारा ऋण लिये जाने के समान है और निस्सन्देह ग्राहकों की जमा-राशियाँ बैंक की प्रधान देनदारियाँ होती हैं।

बैंक में जमा के लिए मुख्यतः दो प्रकार के लेखे होते हैं : (१) चालू जमा-लेखा, और (२) स्थायी या मियादी जमा-लेखा। चालू जमा-लेखा वह लेखा होता है जिसमें से ग्राहक जब चाहे तब जमा-राशि निकलवा सकता है। इसके लिए किसी पूर्वसूचना की आवश्यकता नहीं पड़ती। इस खाते में जमा-राशि को बैंक स्वतन्त्र रूप से प्रयोग में नहीं ला सकता; क्योंकि

किसी भी समय जमाकर्त्ता रकम निकालने की माँग कर सकते हैं। यही कारण है कि आम तौर से चालू जमा पर बैंक ब्याज नहीं देते और ग्राहकों को एक न्यूनतम राशि हमेशा अपने खाते में जमा रखनी पड़ती है। इसके विपरीत स्थायी जमा-लेखा वह लेखा होता है जिसमें से निर्धारित समय के बाद ही रकम निकलवायी जा सकती है। ऐसी व्यवस्था होने से बैंक उस अवधि में जमाराशि को लाभप्रद ढंग से प्रयोग कर सकता है। इस कारण ऐसे जमा पर बैंक ब्याज देता है। ब्याज की दर बाजार की स्थिति और जमा-अवधि पर निर्भर करती है।

आजकल कम आयवाले लोगों को बचत तथा बैंक-व्यवसाय की ओर उन्मुख करने के लिए एक अन्य प्रकार के लेखे की व्यवस्था की जाती है। इसे 'बचत बैंक जमा-लेखा' कहते हैं। इसमें छोटी राशियाँ जमा की जा सकती हैं। मोटे तौर पर इस खाते से एक निर्धारित अवधि में, जैसे कि एक सप्ताह या एक वर्ष में निश्चित बार से अधिक रुपया नहीं निकाला जा सकता और प्रायः रकम निकलवाने की एक अधिकतम सीमा भी निर्धारित कर दी जाती है। इस प्रकार के जमा पर बैंक अपेक्षाकृत नीची दर से ब्याज देता है।

आर्थिक दृष्टि से बैंक-जमा विशेष महत्त्व रखते हैं। अन्य बातों के अतिरिक्त, चैक के द्वारा बैंक-जमा को भुगतान करने अथवा धन-राशियों के अन्तरण के लिए आसानी से इस्तेमाल किया जा सकता है। बैंक-जमा कानूनी मुद्रा के प्रायः सभी कार्य कर सकते हैं। इस प्रकार किसी अर्थव्यवस्था के तरल साधनों में बैंक-जमा का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। मुद्रा-नीति के द्वारा बैंक-जमा पर नियन्त्रण रखा जाता है।

bank discount (बैंक डिस्काउन्ट): बैंक-बट्टा।

बैंक द्वारा स्वीकृत ऋण की रकम और उधार लेनेवाले के खाते में जमा की गयी रकम के बीच अन्तर। बैंक जब किसी ग्राहक को उधार देता है, तब सामान्य तौर पर ऋण की रकम में से नियत दर से बैंक ब्याज पहले ही काट लेता है और ऋण की शेष रकम उधार लेनेवाले के खाते में जमा कर दी जाती है। ब्याज की यह कुल रकम, जो इस प्रकार पहले ही काट ली जाती है, बैंक-बट्टा कहलाती है।

bank draft (बैंक ड्राफ्ट) : बैंक ड्राफ्ट।

यह एक चैक अथवा आदेश-पत्र है जो कोई बैंक अपनी किसी शाखा, एजेण्ट या अन्य बैंक को लिखता है कि जिस व्यक्ति का नाम ड्राफ्ट में लिखा है उसे एक निश्चित रकम दे दी जाये। बैंक ड्राफ्ट एक स्थान से दूसरे स्थान पर रुपया भेजने या भुगतान करने का एक बहुत आसान, सस्ता एवं सुरक्षित साधन है। चूँकि बैंक ड्राफ्ट का रुपया ड्राफ्ट के लिखे जाने के पहले ही बैंक में जमा हो जाता है, इसलिए इसके स्वीकार करने में ज़ोखिम का कोई अंश नहीं रहता। अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान भी इसके द्वारा किये जाते हैं। कोई भी व्यक्ति या संस्था बैंक में रुपया जमा कराके बैंक ड्राफ्ट लिखवा या खरीद सकता है। इस कार्य या सेवा के लिए बैंक को कुछ कमीशन या फीस देनी पड़ती है।

banking school (बैंकिंग स्कूल) : बैंकवादी सम्प्रदाय।

यह ब्रिटिश बैंक-व्यवस्था की नीतियों से सम्बन्धित एक ऐतिहासिक शब्द है। उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में मुद्रा जारी करने की नीति संबंधी विवादों में यह मत पनपा था। बैंकिंग मतावलम्बियों ने मुद्रा जारी करने के करेन्सी मतवादियों के स्वतः नियमन के सिद्धान्त का विरोध किया। इनके मतानुसार करेन्सी की मात्रा का निर्धारण सोने की मात्रा तथा कागजी नोटों द्वारा ही नहीं होता है। इसके निर्धारण में हुण्डियों तथा बैंक-जमा का भी हाथ होता है। अतः जितने नोट, माँग होने पर, सोने में बदले जा सकें, उतने नोट जारी करने का अधिकार प्रत्येक बैंक को होना चाहिए। इस प्रकार बैंकों की आपसी प्रतिस्पर्धा द्वारा व्यापार की स्थिति तथा जनता की आवश्यकताओं के अनुसार नोटों का प्रचलन किया जायेगा। फलस्वरूप मुद्रा की मात्रा में उचित लोच आ जायेगी।

bank money (बैंक मनी) : बैंक-मुद्रा।

वाणिज्य बैंकों द्वारा दिये गये जो ऋण भुगतान के साधन तथा लेन-देन के माध्यम का काम करते हैं, उन्हें 'बैंक-मुद्रा' कहा जाता है। आधुनिक अर्थव्यवस्थाओं में बैंक-मुद्रा सम्पूर्ण मुद्रा का महत्त्वपूर्ण भाग मानी जाती है। यहाँ तक कि जितना ही सम्पूर्ण मुद्रा में बैंक-मुद्रा का अनुपात अधिक होता है, उतनी ही वह मुद्रा-व्यवस्था विकसित मानी जाती है।

बैंकों द्वारा उधार दी गयी राशि बैंक के खातों में बैंक-जमा के रूप में दिखायी जाती है। बैंक-जमा चालू खाते तथा सावधिक खाते के रूप में रखे जाते हैं। सावधिक खाते से पूर्वसूचना के बिना कोई राशि नहीं निकाली जा सकती। अतः इसे मुद्रा के गुणों से सम्पन्न नहीं समझा जाता। इस प्रकार बैंक-मुद्रा में केवल चालू खाते के जमा ही शामिल किये जाते हैं।

बैंक-मुद्रा की मात्रा का नियन्त्रण विभिन्न गुणात्मक तथा संख्यात्मक मुद्रा-नीतियों द्वारा किया जाता है। बैंक-मुद्रा के महत्त्व के अनुपात में ही आर्थिक नीतियों में मुद्रा-नीतियों का महत्त्व होता है। भारत में बैंक-मुद्रा सम्पूर्ण मुद्रा का अपेक्षाकृत एक छोटा भाग बैठता है।

bank rate (बैंक रेट): बैंक-दर।

व्याज की वह दर, जो केन्द्रीय बैंक द्वारा बैंकों को दिये गये कर्ज पर लगायी जाती है, बैंक-दर कहलाती है।

केन्द्रीय बैंक सब वाणिज्य बैंकों का बैंक होता है। जब वाणिज्य बैंकों को अपनी नकदी की जरूरतें पूरी करने के लिए साधनों की जरूरत होती है, तब उन्हें अन्ततः केन्द्रीय बैंक का सहारा लेना पड़ता है। इस कर्ज पर केन्द्रीय बैंक जो दर लगाता है, वह पहले से ही घोषित होती है। इस दर को कम रखने का अर्थ यह लिया जाता है कि केन्द्रीय बैंक मुद्रा-प्रसार को बढ़ावा देना चाहता है। अगर बैंकों को मुद्रा-प्रसार के लिए केन्द्रीय बैंक के सहयोग की आवश्यकता हो, तो वह कम व्याज पर प्राप्त हो जायेगा। इसके विपरीत बैंक-दर बढ़ाने का अर्थ यह लिया जाता है कि केन्द्रीय बैंक मुद्रा-संकुचन करना चाहता है। ब्रिटेन में उत्तम हुण्डियाँ बैंकों द्वारा बैंक-दर पर बट्टे पर चुकायी जाती हैं।

बैंक-दर का प्रभाव सब प्रकार की व्याज-दरों पर पड़ता है। बैंक-दर के अनुसार ही व्याज की अन्य दरें भी घटायी-बढ़ायी जाती हैं। इस प्रकार मुद्रा-बाजार को प्रभावित तथा नियमित करने में बैंक-दर का बड़ा हाथ होता है।

bargaining theory of wages (बारगेनिंग थ्योरी ऑफ वेजेज)। मजदूरी का सौदाकारी सिद्धान्त।

मजदूरी-निर्धारण का एक सिद्धान्त, जिसके अनुसार श्रमिकों और मालिकों की सापेक्ष सौदाकारी क्षमता के आधार पर मजदूरी की दर निर्धारित होती है। जब श्रमिक मजदूर-संघ बनाकर अपने को संगठित करते हैं, तब उनकी सौदाकारी क्षमता बढ़ जाती है और इस कारण मजदूरी-दर में भी वृद्धि होती है। इसके विपरीत जब कारोबार के विस्तार से मालिक की शक्ति बढ़ती है, तब मजदूरी का स्तर अपेक्षाकृत नीचा होता है। इस सिद्धान्त से अल्पकाल में मजदूरी-निर्धारण का स्पष्टीकरण तो होता है, लेकिन दीर्घकाल में मजदूरी-निर्धारण के विश्लेषण में यह सहायक नहीं है।

barter (बारटर) : वस्तु-विनिमय।

वस्तुओं का परस्पर प्रत्यक्ष विनिमय। उस व्यापार को, जिसमें एक वस्तु या सेवा के बदले समान मूल्य की दूसरी वस्तु या सेवा दी जाती है, वस्तु-विनिमय कहते हैं। स्पष्टतः इस प्रकार के लेन-देन में मुद्रा के माध्यम का प्रयोग नहीं होता।

मानव-सभ्यता के शुरू के चरणों में विनिमय की इस रीति का सहारा लिया जाता था। एक व्यक्ति या परिवार अपने फालतू उत्पादन को अन्य व्यक्तियों या परिवारों के फालतू उत्पादन के साथ प्रत्यक्ष रूप से विनिमय करके अपनी विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा करने का प्रयास करता था। जब तक मनुष्य की आवश्यकताएँ थोड़ी और सीधी-सादी थीं तथा इनी-गिनी वस्तुओं का ही उत्पादन होता था, तब तक इस विधि के सहारे काम चलता रहा। लेकिन आगे चलकर जब आवश्यकताएँ तेजी से बढ़ने लगीं और उनकी सन्तुष्टि के लिए तरह-तरह की वस्तुओं का उत्पादन जरूरी बन गया, तब वस्तु-विनिमय के आधार पर काम चल पाना कठिन हो गया। कारण, इस विनिमय-प्रणाली में अनेक कमियाँ हैं। सबसे बड़ी कमी तो यह है कि वस्तु-विनिमय के लिए आवश्यकताओं और वस्तुओं का दोहरा संयोग या मिलान जरूरी है। 'क' को जिस वस्तु की जरूरत है, वह 'ख' के पास अतिरिक्त मात्रा में होनी चाहिए और साथ ही 'ख' को उस वस्तु की जरूरत होनी चाहिए जो कि 'क' के पास अतिरिक्त मात्रा में है। इसके बिना वस्तु-विनिमय सम्भव न हो सकेगा। साथ ही यह भी जरूरी है कि वस्तुएँ विभाजनीय हों, ताकि बराबर-बराबर मूल्य की चीजों का विनिमय सम्भव हो सके। लेकिन न तो आवश्यकताओं और साधनों के सम्बन्ध में दोहरा मिलान आसानी से सम्भव हो पाता है, और न ही सब वस्तुएं इच्छानुसार विभाजनीय होती हैं। इसके अतिरिक्त, वस्तु-विनिमय प्रणाली के अन्तर्गत मूल्यों की माप व तुलना एवं धन-संचय की क्रिया के रास्ते में भी भारी कठिनाइयाँ पैदा होती हैं।

मुद्रा के प्रयोग से वस्तु-विनिमय की

विभिन्न कठिनाइयाँ दूर हो जाती हैं। इसी कारण से वस्तु-विनिमय प्रणाली के स्थान पर मुद्रा-विनिमय प्रणाली का सहारा लिया जाने लगा। आज सभी विकसित एवं प्रगतिशील समाजों में मुद्रा के माध्यम से विनिमय सम्बन्धी कार्य किया जाता है। अल्प विकसित अर्थ-व्यवस्थाओं के अमुद्रीकृत क्षेत्र में अभी भी वस्तु-विनिमय का सहारा लिया जाता है।

base year (बेस इयर) : आधार-वर्ष।

विभिन्न प्रकार की सांख्यिकीय गणनाओं में जिस वर्ष की गणना के आधार पर अन्य वर्षों की गणनाओं की तुलना की जाती है, वह 'आधार-वर्ष' कहलाता है। आधार-वर्ष का चयन बहुत सावधानी से किया जाना चाहिए। इस वर्ष की स्थिति किसी भी तरह से असाधारण नहीं होनी चाहिए। विभिन्न वर्षों की राष्ट्रीय आय को आधार-वर्ष की कीमतों में प्रकट करने से स्थिर अथवा अपरिवर्तित कीमतों में राष्ट्रीय आय में हुए परिवर्तन को मापा जा सकता है।

basic industry (बेसिक इण्डस्ट्री) : बुनियादी उद्योग।

यह अपेक्षाकृत एक नया शब्द है जिसका प्रचलन आर्थिक इतिहास तथा विकास के अर्थशास्त्र के सन्दर्भ में बढ़ा है। अपेक्षाकृत व्यापक अर्थ में उन उद्योगों को बुनियादी उद्योग कहेंगे जो किसी देश के आर्थिक विकास के मूलाधार हों। अधिक औचित्यपूर्ण किन्तु संकीर्ण अर्थ में बुनियादी उद्योग का आशय ऐसे उद्योगों से है जो पूँजीगत तथा अप्रत्यक्ष रूप से उत्पादन में सहायक वस्तुओं के निर्माण से सम्बन्धित होते हैं। इनको बुनियादी या मूल उद्योग मानने का कारण यह है कि आर्थिक विकास तथा औद्योगीकरण की प्रक्रिया इस प्रकार के उद्योगों की स्थापना के बिना आधारहीन रहेगी। लोहा, इस्पात, बड़ी तथा भारी मशीनें, औजार और कल-पुर्जे, परिवहन और संचार की आधुनिक यन्त्र-सामग्री, विभिन्न प्रकार की धातुएँ आदि महत्त्वपूर्ण वस्तुएँ उत्पादन करनेवाले उद्योग बुनियादी उद्योग की कोटि में रखे जाते हैं। यदि किसी अर्थव्यवस्था में बुनियादी उद्योग प्रगति कर लेते हैं, तो यह आशा की जा सकती है कि वहाँ आर्थिक विकास की प्रक्रिया स्वतः प्रेरित रूप से चलती रहेगी। इसी कारण से विकासशील देश अपने विकास-कार्यक्रम में बुनियादी उद्योगों को ऊँची प्राथमिकता देने की व्यवस्था करते हैं।

बुनियादी उद्योग प्रायः पूँजी-प्रधान होते हैं, और इनकी परिपक्वतावधि अपेक्षाकृत लम्बी होती है।

basing-point system (बेसिंग पॉइन्ट सिस्टम) : आधार-बिन्दु प्रणाली

वह प्रणाली जिसके अन्तर्गत सब ग्राहकों से समान माल-भाड़ा लिया जाता है, चाहे माल कम या अधिक दूरी के स्थान तक भेजा जा रहा हो। अमरीका के कुछ उत्पादकों ने इस प्रणाली का सहारा लिया है। यह प्रणाली उन उद्योगों के सम्बन्ध में अधिक प्रभावपूर्ण रही जहाँ कीमत की तुलना में परिवहन-लागत ऊँची थी। इस प्रणाली के विपक्ष में यह कहा जाता है कि इससे कीमत-प्रतियोगिता समाप्त हो जाती है, भौगोलिक कीमत-विभेद को बढ़ावा मिलता है तथा कारखाने अलाभकारी स्थानों पर

स्थापित होने लगते हैं।

bazar (बाज़ार) : बाज़ार।

साधारण बोलचाल में 'बाज़ार' शब्द का आशय उस स्थान या क्षेत्र से होता है जहाँ विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का क्रय-विक्रय होता है। कभी-कभी इसे स्थानीय बाजार अथवा समय-समय पर लगनेवाले बाज़ार के अर्थ में प्रयोग किया जाता है, जिसे प्राय: हाट या पेंठ कहते हैं। लेकिन अर्थ-शास्त्र में इसे विशेष अर्थ में प्रयोग किया जाता है। अर्थशास्त्र में बाजार का आशय किसी स्थान-विशेष से नहीं, बल्कि व्यापार की जानेवाली किसी वस्तु और उसके खरीदने-बेचनेवालों से होता है जो एक दूसरे के सम्पर्क में होते हैं।

देखिए : market

bear (बेअर) : मन्दड़िया।

मन्दी खेलनेवाले सटोरिये। मन्द-ड़ियों से आशय शेयर-बाजार के उन सटो-रियों से है जो भाव गिरने की प्रत्याशा में शेयर बेचते हैं। शेयर की कीमतों में प्रत्याशित कमी होने के पहले ही वे शेयर बेच देते हैं और आशा करते हैं कि वास्तव में कीमतों के गिरने पर वे अपेक्षाकृत नीची कीमत पर शेयर खरीदकर लाभ उठा सकेंगे।

यदि मन्दड़ियों के पास वे सब शेयर नहीं होते, तो कहा जायेगा कि उन्होंने अधिक शेयर बेचे हैं। दूसरी ओर यदि उनके पास बेचे गये सब शेयर होते हैं, तो ऐसे सटोरिये सुरक्षित मन्दड़िये कहलाते हैं।

bearer cheque (बेअरर चैक) : धनी जोग चैक, धारक चैक।

यह वह चैक है जिसे उसका धारक या वाहक बैंक से भुना सकता है। ऐसे चैक को किसी व्यक्ति को दे देने से ही, उसे उस चैक का कानूनन अधिकारी बनाया जा सकता है। जो कोई भी व्यक्ति इस प्रकार के चैक को बैंक में पेश करता है, उसे उस चैक का रुपया मिल जाता है। बैंक इस बात के लिए जिम्मेदार नहीं होता कि भुगतान ठीक व्यक्ति को हुआ है या नहीं।

देखिए : cheque

beggar-my-neighbour policy (बेगर-माई-नेबर पालिसी) : पर-धन-हरण नीति।

इस नीति का सम्बन्ध विशेष रूप से विदेशी व्यापार से है। इसका संकेत उन उपायों से है जिन्हें कोई देश अन्य देशों की अर्थव्यवस्थाओं पर पड़नेवाले उनके प्रतिकूल प्रभावों की उपेक्षा करते हुए, अपने स्वार्थ-सिद्धि के लिए अपनाता है; जैसे कि अनावश्यक करेन्सी अवमूल्यन, अकारण टैरिफ वृद्धि, विनिमय-नियन्त्रण का चरम रूप, आयात पर रोक आदि। '३० की महामन्दी के समय अनेक देशों द्वारा इस तरह के उपायों का सहारा लिया गया था। इस प्रकार की नीति के पीछे तर्क यह रहता है कि ऐसे उपायों के अपनाने से आयात घटाने तथा निर्यात बढ़ाने में आवश्यक सहायता मिलेगी। ऐसी स्थिति में स्वदेशी वस्तुओं की माँग में वृद्धि होगी जिसके फलस्वरूप देश में रोजगार और आय की मात्रा बढ़ेगी। सिद्धान्त के तौर पर यह तर्क चाहे जितना ठीक लगे, लेकिन व्यवहार में इस नीति के सहारे विशेष अथवा स्थायी लाभ उठा सकने की सम्भावना कम ही रहती है।

कारण, अन्य देश भी अपने बचाव के लिए प्रतिकारात्मक कदम उठायेंगे। इस प्रकार की क्रिया-प्रतिक्रिया से अन्ततः अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा, जिसके फलस्वरूप कम-अधिक सीमा तक सब देशों को हानि उठानी पड़ेगी।

benefit theory of taxation (वेनिफिट थ्योरी ऑफ टैक्सेशन) : हितानुसार कराधान सिद्धान्त।

कराधान का एक सिद्धान्त, जिसके अनुसार सरकारी सेवाओं से प्राप्त सुलाभ के आधार पर लोगों से कर वसूलना चाहिए। सरकारी सेवाओं की व्यवस्था में कुछ लागत लगती है। इस लागत को पूरा करने के लिए सरकार लोगों पर कर लगाती है। इस सिद्धान्त के अनुसार सरकारी सेवाओं पर जो लागत बैठती है, उसे पूरा करने के लिए कराधान की व्यवस्था इस ढंग से की जानी चाहिए कि उन सेवाओं से प्राप्त सुलाभ के अनुपात में लोगों को कर चुकाना पड़े। अर्थात् सरकारी सेवाओं से जिसे जितना कम या अधिक फायदा मिले, उसी के हिसाब से उसपर कर लगाया जाये।

बहुत बड़ी सीमा तक कराधान का यह सिद्धान्त न तो व्यावहारिक है और न वांछनीय ही। डाक-तार, पानी, बिजली आदि कुछ इनी-गिनी सेवाओं को छोड़कर अन्य सरकारी सेवाओं के सम्बन्ध में सही-सही लागत मालूम करना अथवा निश्चित रूप से यह पता लगाना कि उन सेवाओं से किसको कितना लाभ पहुँचता है, बहुत ही कठिन या असम्भव-सा है। इस जानकारी के अभाव में फिर भला किस प्रकार इस सिद्धान्त को विभिन्न क्षेत्रों में अमल में लाया जा सकता है? इसके अतिरिक्त, सामान्य तौर से इस सिद्धान्त को लागू करना न्यायसंगत भी न होगा। कारण, अनेक सरकारी सेवाओं की व्यवस्था मुख्य रूप से निर्धन या अपेक्षाकृत निम्न आय-वर्ग के लोगों के हित के लिए की जाती है। इस सिद्धान्त के अनुसार अधिकांश कर-भार ऐसे ही व्यक्तियों पर डालना होगा जो कि सर्वथा अनुचित होगा। इस प्रकार की व्यवस्था होने पर अनेक महत्त्वपूर्ण सरकारी क्रियाओं का संचालन सम्भव न हो सकेगा और देश अवरोही कराधान प्रणाली की ओर बढ़ेगा। निस्सन्देह इससे जन-कल्याण को गहरी ठेस लगेगी। इसी कारण से आजकल हितानुसार कराधान सिद्धान्त का प्रचलन व्यापक नहीं है।

bilateral agreement (बाइलेटरल एग्रीमेन्ट) : द्विदेशीय करार, द्विपक्षीय करार।

दो देशों या पक्षों के बीच किया गया करार सामान्य तौर से दो देशों के बीच व्यापार, भुगतान अथवा समाशोधन आदि के सम्बन्ध में हुए समझौते द्विदेशीय करार कहलाते हैं। इस प्रकार के समझौतों के अपने कुछ विशेष लाभ तो हैं, लेकिन साधारण रूप से इनसे विश्व-व्यापार को ठेस लगने की आशंका रहती है।

देखिए : bilateral trade

bilateral monopoly (बाइलेटरल मोनोपॅली) : द्विपक्षीय एकाधिकार।

बाजार की वह स्थिति, जहाँ किसी वस्तु या सेवा के खरीदने और बेचनेवाले दोनों पक्षों को एकाधिकार प्राप्त होता है। ऐसी स्थिति उस समय पैदा हो सकती

है जबकि साधन-बाजार में किसी विशेष प्रकार के श्रमिक मजदूर-संघ में और उन श्रमिकों की सेवाएँ खरीदनेवाले मालिक-संघ में पूर्णतया संगठित हों। इस दशा में मालिक-संघ और मजदूर-संघ अपने-अपने सदस्यों की ओर से श्रमिकों की सेवाओं का क्रय-विक्रय करेंगे। इस प्रकार यहाँ क्रेता और विक्रेता, दोनों पक्ष एकाधिकार की स्थिति में होंगे। द्विपक्षीय एकाधिकार का आशय इसी प्रकार की बाजार-स्थिति से होता है।

bilateral trade (बाइलेटरल ट्रेड) : द्विदेशीय व्यापार।

दो देशों के बीच होनेवाला वस्तुओं तथा सेवाओं का विनिमय या व्यापार। विदेशी व्यापार की यह व्यवस्था बहुपक्षीय या बहूद्देशीय व्यापार से भिन्न है जहाँ आयात और निर्यात अनेक देशों के बीच होता है। बहुपक्षीय व्यापार की तुलना में द्विदेशीय व्यापार के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-विभाजन का क्षेत्र सीमित हो जाता है। फलस्वरूप विश्व-व्यापार के उत्पादन-वर्धक प्रभाव भी सीमित रहते हैं।

द्विदेशीय व्यापार के कारण विश्व-व्यापार का क्षेत्र सीमित होने से कुछ लाभ भी उपलब्ध होते हैं। एक देश की मन्दी या तेजी के प्रभाव सारे विश्व में नहीं फैल पाते। विदेशी व्यापार में राज्य का भाग बढ़ने की दशा में विभिन्न राज्य आपस में द्विपक्षीय समझौते करके विदेशी व्यापार की इस प्रवृत्ति को बढ़ावा दे सकते हैं। इस प्रकार के व्यापार के कारण पूर्ति की निश्चितता भी बढ़ती है। लेकिन साधारणतः द्विदेशीय व्यापार से विश्व-व्यापार एवं उसमें भाग लेनेवाले देशों को ठेस लगती है। इससे व्यापार की मात्रा घट जाती है और अन्तर्राष्ट्रीय विशेषीकरण के विभिन्न सुलाभों की प्राप्ति के अवसर भी सीमित हो जाते हैं। द्विदेशीय व्यापार द्वारा उत्पन्न व्यापार सम्बन्धी बाधाएँ दूर करना अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार-संस्थाओं का प्रमुख उद्देश्य होता है।

bill market (बिल मारकेट) : बिल बाजार।

हुण्डी बाजार के लिए एक वैकल्पिक शब्द। यह वह बाजार है जहाँ बिल या हुण्डी का व्यापार होता है।

देखिए : discount market

bill of exchange (बिल ऑफ एक्सचेंज) : बिल, हुण्डी, पत्र।

बिल एक तरह का हस्तान्तरणीय दस्तावेज या आज्ञा-पत्र होता है जिसमें कोई लेनदार या साहूकार अपने कर्जदार को एक निश्चित राशि किसी विशेष तिथि पर चुकाने को कहता है। कर्जदार उस पत्र पर अपने हस्ताक्षर करके उसे स्वीकार करता है। यदि कर्जदार की साख अच्छी है, तो वट्टा काटकर शेष राशि साहूकार उस बिल या हुण्डी के बदले किसी भी समय प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार बिल एक प्रकार का मुद्रातुल्य पत्र है; क्योंकि इसके बदले में कभी भी नकद प्राप्त हो सकता है और इसका प्रयोग लेन-देन के निपटारे में किया जा सकता है। इसके द्वारा व्यापारिक भुगतान काफी सुविधापूर्वक होते हैं।

साधारणतया हुण्डी नब्बे दिन की अवधि की होती है और व्यापारिक प्रथा के अनुसार भुगतान के लिए तीन दिन

अधिक बतौर रियायत के दिये जाते हैं जिन्हें 'क्षमा के दिन' (डेज़ ऑफ ग्रेस) कहते हैं। इस बीच वह हुण्डी कई लोगों के अधिकार में आती है। जिन सौदों के पूरा होने में समय लगता है या जो माल दूर स्थानों को भेजा जाता है, उनके लिए भुगतान करने का बिल एक अच्छा साधन है। इसीलिए विदेशी व्यापार के क्षेत्र में बिल का विशेष प्रयोग होता है।

bill of lading (बिल ऑफ लेडिंग) : लदान-पत्र, वहन-पत्र।

इसका प्रयोग विदेशी व्यापार के क्षेत्र में होता है। यह एक दस्तावेज है जिसमें भेजे जा रहे माल के सम्बन्ध में पूरा ब्यौरा दिया रहता है, जैसे कि जहाज का नाम, लादने और उतारनेवाले बन्दरगाह का नाम, माल की मात्रा, माल की कोटि, उसपर लगे विशेष चिह्न आदि। इस दस्तावेज की तीन प्रतियाँ तैयार की जाती हैं। एक प्रति तो माल-निर्यातक अपने पास रख लेता है, दूसरी प्रति पोत-मास्टर को सौंप दी जाती है और तीसरी प्रति माल आयात करनेवाले को भेजी जाती है। लदान-पत्र-धारक को उस पत्र से उसमें लिखित माल पर अधिकार प्राप्त हो जाता है।

bill of sale (बिल ऑफ सेल) : विक्री-बिल।

अपनी सम्पत्ति अथवा कुछ निर्दिष्ट वस्तुओं, जैसे कि जहाज पर लदा सामान, भण्डार माल आदि की जमानत पर ऋण, आदि को प्राप्त करने का एक साधन। विक्री-बिल या पत्र एक वैधानिक दस्तावेज है जिसके अनुसार ऋण प्राप्त करने के बदले कोई व्यक्ति अपनी सम्पत्ति अथवा अपने अधिकार की कुछ निर्दिष्ट वस्तुओं का स्वामित्व ऋणदाता को हस्तान्तरित करता है। वस्तुओं के वैधानिक स्वामित्व का हस्तान्तरण तो इस तरह कर दिया जाता है, लेकिन ऋण की अवधि तक उन वस्तुओं पर उधार लेनेवाले व्यक्ति का अधिकार बना रहता है। ऋण-प्राप्ति के साथ यह शर्त जुड़ी रहती है कि व्याज का मूलधन चुकता न होने पर ऋणदाता अर्थात् विक्री-बिल का धारक उन वस्तुओं को विधिपूर्वक अपने अधिकार में ले सकता है अथवा उनको वेच सकता है। इस दृष्टि से विक्री-बिल एक प्रकार का बन्धक-पत्र होता है।

bill rate (बिल रेट) : हुण्डी-दर।

हुण्डी वट्टा करने की दर। हुण्डी की रकम उसकी अवधि पूरी होने से पहले भी प्राप्त की जा सकती है। इसके लिए हुण्डी पर वट्टा काटा जाता है। जिस दर पर वह वट्टा काटा जाता है, उसे हुण्डी-दर या बिल-दर कहते हैं। बट्टा-दर हुण्डियों की कोटि के अनुसार होती है। साधारणतया बैंक या व्यापारिक हुण्डियों की तुलना में सरकारी हुण्डियों के लिए बट्टा-दर नीची होती है। ब्रिटेन में उत्तम कोटि की हुण्डियों पर वैंक-दर के अनुसार वट्टा काटा जाता है।

bimetallism (बाइमेटॅलिज्म) : द्विधातु-मान।

यह वह मुद्रा-प्रणाली है जिसके अन्तर्गत किसी देश की मुद्रा-इकाई का समकक्ष मूल्य किन्हीं दो धातुओं (साधारणतया सोना और चाँदी) की एक निश्चित मात्रा के रूप में कानूनन प्रकट किया जाता है। अर्थात् यहाँ दो भिन्न धातुएँ मुद्रामान का

कार्य करती हैं। दोनों धातुओं के सिक्के चलाये जाते हैं और दोनों ही पूर्णतया विधिग्राह्य होते हैं। स्पष्टत: द्विधातुमान का महत्त्व कागजी मुद्रामान के चलन के पहले ही था।

जब मुद्रामान के रूप में एक ही धातु का प्रयोग होता है, तब यह डर रहता है कि उस धातु की पूर्ति में पर्याप्त लोच न होने पर व्यापार की आवश्यकता के अनुसार मुद्रा की मात्रा का भली प्रकार नियमन न हो पायेगा और फलस्वरूप मुद्रा के मूल्य में अधिक उतार-चढ़ाव होगा। दो धातुओं का सहारा लेकर इस कमी को बहुत-कुछ पूरा करना सम्भव हो सकता है। इस बात को लेकर उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान यूरोप और अमरीका में द्विधातुमान प्रणाली को अपनाया गया।

लेकिन व्यवहार में इस मुद्रा-प्रणाली के कारण अनेक कठिनाइयाँ पैदा होती हैं। धातुओं की बाजार-कीमतें घटती-बढ़ती रहती हैं। ऐसी दशा में दोनों धातुओं के बीच क़ानून द्वारा निर्धारित अनुपात को बनाये रखना कठिन हो जाता है। और फिर, जब उतार-चढ़ाव होते रहने से किसी एक धातु की कीमत अपेक्षाकृत बढ़ जाती है, तब अंकित मूल्य की तुलना में इस धातु के सिक्कों का वास्तविक मूल्य अधिक हो जायेगा। ऐसा होने पर इस महँगी धातु के सिक्के संग्रह और निर्यात के लिए प्रयोग में लाये जाने के कारण संचलन से बाहर होने लगेंगे और अन्ततः सस्ती धातु के सिक्के ही संचलन में रह जायेंगे। इस प्रकार वास्तव में द्विधातुमान के स्थान पर रजतमान या स्वर्णमान ही शेष रह जायेगा। द्विधातुमान अपनानेवाले देशों का ऐसा ही अनुभव रहा है। वर्तमान शताब्दी के आरम्भ से द्विधातुमान को त्यागकर एक धातुमान, विशेष रूप से स्वर्णमान अपनाया जाने लगा।

birth rate (बर्थ रेट) : जन्म-दर।

किसी देश में एक वर्ष में प्रति हजार जनसंख्या के पीछे जितने बच्चे पैदा होते हैं, वह उस देश की जन्म-दर कहलाती है। जन्म-दर पर अनेक आर्थिक एवं आर्थिकेतर कारकों का प्रभाव पड़ता है। साधारणतया अल्प-विकसित देशों में जन्म-दर ऊँची होती है और विकसित देशों में नीची। विकास के फलस्वरूप जन्म-दर गिरने तो लगती है, लेकिन सामान्य तौर से इसमें काफी समय लग जाता है। उस बीच मृत्यु-दर में भारी कमी होने से जनसंख्या द्रुतगति से बढ़ने लगती है। इससे आर्थिक और सामाजिक विकास सम्बन्धी कठिनाइयाँ प्राय: और बढ़ जाती हैं। वर्तमान समय में भारत इसी प्रकार की अवस्था से गुजर रहा है।

जनसंख्या-वृद्धि को सीमित करने के लिए परिवार नियोजन की व्यवस्था की जाती है। इसके सहारे अपेक्षाकृत थोड़े समय में जन्म-दर में कमी लाना सम्भव हो जाता है। भारत जैसे विकासशील देशों में परिवार नियोजन की नीति के व्यवहार पर विशेष बल दिया जा रहा है।

blackleg (ब्लैकलेग) : हड़ताल-तोड़क।

मजदूर-संघ के निर्देशों को भंग करते हुए किसी प्रतिष्ठान या कारखाने में हड़ताल के दौरान काम करनेवाले श्रमिक। कुछ विशेष प्रलोभन की व्यवस्था करके नियोक्तागण ऐसे श्रमिकों को कार्य करने के लिए तैयार कराते हैं, और इस प्रकार

उनकी सहायता से हड़ताल तुड़वाने का प्रयास करते हैं। इसी कारण इनको हड़ताल-तोड़क अथवा हड़ताल-भेदी श्रमिक कहते हैं। ये श्रमिक उसी व्यवसाय में लगे श्रमिक हो सकते हैं और बाहरी श्रमिक भी। साधारण तौर से हड़ताल-तोड़क श्रमिकों का यह कार्य अनैतिक समझा जाता है। जहाँ श्रमिकों में वर्ग-चेतना कम होती है, और मजदूर-संघ आन्दोलन कमजोर होता है अथवा जहाँ व्यापक रूप में बेरोजगारी फैली होती है, वहाँ ऐसे श्रमिकों के सहारे हड़ताल टूटने की सम्भावना अपेक्षाकृत अधिक रहती है।

black market (ब्लैक मारकेट) : चोर-बाजार, काला बाजार।

कानून द्वारा निषिद्ध आर्थिक लेन-देन का स्वतः उत्पन्न बाजार। जब किसी वस्तु की कीमत कानूनन तय कर दी जाती है या किसी निश्चित मात्रा से अधिक खरीदने-बेचने पर रोक लगा दी जाती है अथवा अन्य किसी प्रकार के नियन्त्रण लगाये जाते हैं, तब बाजार की स्वतः प्रेरित प्रवृत्तियाँ निर्बाध कार्य नहीं कर पातीं। ऐसी स्थिति में माँग और पूर्ति की शक्तियाँ गैर-कानूनी सौदों को खरीदने-बेचनेवालों के लिए आर्थिक दृष्टि से लाभकारी बना सकती हैं। इस लाभ के हेतु जो अवैध लेन-देन होते हैं, वे चोर-बाजार के भाग कहे जाते हैं।

प्रायः युद्ध और अभाव के समय अनेक आर्थिक नियन्त्रण लगाये जाते हैं। इन नियन्त्रणों को तोड़कर अनेक सौदे चोर-बाजार में होने लगते हैं। माँग और पूर्ति की सापेक्ष शक्तियों के अतिरिक्त, यहाँ कीमतों के निर्धारण में अवैध सौदों में निहित जोखिम का भी प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि बाजार-शक्तियों के नियम को तोड़कर प्रकट होने का फल काले बाजार में नजर आता है। नियन्त्रित कीमत पर पूर्ति की अपेक्षा माँग अधिक होती है। फलस्वरूप उपलब्ध पूर्ति के सहारे समस्त माँग को पूरा नहीं किया जा सकता। इस कारण कुछ लोग नियन्त्रित कीमत से अधिक कीमत देने को तत्पर रहते हैं और इस प्रकार गैर-कानूनी तरीके से अपनी माँग को पूरा करने के लिए प्रयास करते हैं। चूँकि चोर-बाजार अवैध होता है, इसलिए पकड़े जाने पर इस प्रकार के सौदे करने-वाले व्यक्तियों को सरकार भारी दण्ड देती है। जहाँ नियन्त्रण सम्बन्धी कानून ढीले-ढाले होते हैं और प्रशासनिक ढाँचा कमजोर होने के कारण ऐसे कानून ईमान-दारी से अमल में नहीं लाये जा पाते, वहाँ चोर-बाजार का विस्तार अपेक्षाकृत अधिक पाया जाता है। अनेक सुपरिचित विशेषताओं के फलस्वरूप अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं के द्रुत आर्थिक विकास में इस दिशा से प्रायः भारी अड़चन पैदा होती है।

कराधान से बचने के लिए भी काले बाजार का सहारा लिया जाता है। ऐसे लेन-देन, जिनपर कर बचाया जाता है (चाहे वह आय-कर, बिक्री-कर या अन्य कोई कर हो), काले बाजार के लेन-देन कहे जाते हैं।

blank cheque (ब्लैंक चैक) : कोरा चैक।

इसका आशय ऐसे चैक से होता है

जिस पर चैक काटनेवाले के हस्ताक्षर तो होते हैं, लेकिन उसमें रकम भरी हुई नहीं होती। चैक काटनेवाला चैक में स्वयं रकम न लिखकर किसी दूसरे के लिए उसमें रकम भरने के लिए छोड़ देता है।

blocked account (ब्लॉक्ड् ऐंकाउण्ट्) : निरुद्ध लेखा।

सरकार द्वारा रोका गया विदेशियों का लेखा। इसका आशय किसी विदेशी के उस बैंक-लेखे से है जिसके प्रयोग पर देश की सरकार कुछ समय के लिए रोक लगा देती है। 'निरुद्ध लेखा विधि' का सहारा सरकार उस समय ले सकती है, जब वह स्फीति की स्थिति का सामना कर रही हो तथा वस्तुओं की अतिरिक्त माँग सीमित करने के लिए विदेशियों की खरीदारी को रोकना आवश्यक समझती हो। द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरान्त जब ग्रेट ब्रिटेन के पास बिक्री के लिए औद्योगिक माल बहुत सीमित मात्रा में था, तब वहाँ की सरकार ने विदेशी खरीदारी पर रोक लगाने के उद्देश्य से निरुद्ध लेखा विधि अपनायी। युद्ध-काल में शत्रु देश के लोगों के बैंक-लेखे पर इस प्रकार का प्रतिबन्ध प्रायः लगाया जाता है।

block grant (ब्लॉक ग्राण्ट्) : सामान्य अनुदान।

वह अनुदान जिसका प्रयोग बहुत हद तक अनुदानग्राही की इच्छा पर निर्भर करता है। केन्द्रीय या राज्य-सरकारें प्रायः विभिन्न सेवाओं की समुचित व्यवस्था के लिए स्थानीय शासन को अपनी ओर से वित्तीय अनुदान देती हैं। इनमें से कुछ अनुदान 'विशेष कार्यों' के लिए दिये जाते हैं और वे केवल उन निर्दिष्ट कार्यों की पूर्ति में ही इस्तेमाल किये जा सकते हैं। इसके विपरीत, कुछ अनुदान ऐसे भी होते हैं जिनके प्रयोग के सम्बन्ध में स्थानीय प्राधिकारियों को पर्याप्त छूट होती है। इनका प्रयोग पूर्व-निर्धारित नहीं होता। इसी प्रकार के अनुदान 'सामान्य अनुदान' कहलाते हैं।

देखिए : grant-in-aid

Bond (बॉण्ड) : बन्ध-पत्र, बॉण्ड।

स्टॉक या प्रतिभूतियों का एक वैकल्पिक नाम। 'बॉण्ड' एक लिखित वचन-पत्र होता है, जिसमें बॉण्ड लिखनेवाला अर्थात् ऋणी एक निश्चित रकम (मूलधन) को भविष्य में एक निश्चित तिथि को अथवा ऋण-काल की अवधि में निर्धारित समयानुसार लौटाने का वचन देता है। बॉण्ड की रकम पर, निर्धारित तिथियों पर, निश्चित दर के अनुसार ब्याज चुकाया जाता है। सरकारों, स्थानीय प्राधिकारियों, निगमों व अन्य संस्थाओं के लिए ऋण प्राप्त करने का यह बहुत लोकप्रिय साधन है। साधारणतः बॉण्ड लम्बी अवधि के लिए जारी किये जाते हैं, और इनकी सफलता बॉण्ड जारी करनेवाली संस्था की साख पर निर्भर रहती है।

bonus (बोनस) : बोनस।

संविदागत राशि के अतिरिक्त दी जानेवाली रकम। कर्मचारियों को अधिक और अच्छे काम के लिए प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से नियोक्ता प्रायः बोनस देने की नीति अपनाते हैं। साधारणतः कोई निश्चित कार्य पूरा करने के लिए एक मानक अवधि निर्धारित कर दी जाती है।

कार्य को उससे कम समय में पूरा कर लेने-वाले कर्मचारियों को निर्धारित वेतन के अतिरिक्त बोनस देने की व्यवस्था की जाती है। बोनस की रकम इस बात पर निर्भर करती है कि श्रमिक मानक समय से कितने कम समय में वह कार्य पूरा करते हैं। जो जितना कम समय लगाता है, उसे उतना ही अधिक बोनस मिलता है। जहाँ प्रत्येक श्रमिक के कार्य की अलग-अलग माप सम्भव नहीं होती, वहाँ समूह के आधार पर लाभांश-वितरण की व्यवस्था की जाती है। कुछ व्यावसायिक संगठन अपने लाभ का एक भाग अपने कर्मचारियों के बीच वार्षिक बोनस बाँटने के लिए अलग रख देते हैं। इस प्रकार बोनस को प्रायः निर्धारित मजदूरी या वेतन के साथ जोड़ दिया जाता है।

'बोनस' शब्द अन्य अनेक अर्थों में भी प्रयुक्त होता है। उदाहरणार्थ, उन जीवन-बीमा पालिसियों पर, जो सलाभ (लाभ-सहित) होती हैं, एक अतिरिक्त वार्षिक रकम प्राप्त होती है। इसे भी 'बोनस' कहा जाता है। यह रकम बीमा-कम्पनी के वार्षिक लाभ की मात्रा पर निर्भर रहती है।

bonus share (बोनस शेयर) : बोनस शेयर।

कोई कम्पनी अवितरित लाभ द्वारा निर्मित आरक्षित निधि अथवा रिजर्व को अपने विस्तार-कार्य के वित्तीयन के लिए इस्तेमाल करने की नीति अपना सकती है। ऐसी दशा में अतिरिक्त पूँजी के मूल्य के बराबर कम्पनी रिजर्व से बोनस शेयर जारी करती है, ताकि निर्गमित पूँजी और प्रयुक्त होनेवाली पूँजी के बीच समानता बनी रहे। ये शेयर एक निश्चित अनुपात से, जैसे कि प्रति पाँच शेयर के पीछे एक बोनस शेयर, वर्तमान अंश-धारियों के बीच बाँटे जाते हैं। ऐसे शेयर के जारी किये जाने से अंशधारियों की वित्तीय स्थिति आवश्यक रूप से बेहतर नहीं हो जाती। यदि कम्पनी का लाभ अब भी उतना ही रहता है जितना कि बोनस शेयर जारी किये जाने के पहले था और ठीक पहले की भाँति ही अंशधारियों के बीच लाभ-वितरण की नीति अपनायी जाती है, तो प्रति शेयर के हिसाब से लाभांश की दर घट जायेगी। इस प्रकार अंशधारियों को अब भी कुल उतना ही लाभांश मिल सकेगा, जितना कि उन्हें पहले मिलता था।

book value (बुक वैल्यू) : खाता-मूल्य।

किसी फर्म की परिसम्पत्तियों का लेखागत अथवा बही-मूल्य। इसका आशय किसी परिसम्पत्ति के उस मूल्य से होता है जो तुलन-पत्र (पक्के चिट्ठे) में दर्शाया जाता है। यह मूल्य उसके वास्तविक मूल्य या बाजार-मूल्य से कम या अधिक हो सकता है। मान लीजिए, कोई फर्म १०,००० रुपये मूल्य की एक मशीन खरीदती है। यह मूल्य उस फर्म के बहीखाते में लिख लिया जायेगा। बही-खाते में लिखित मूल्य-ह्रास का हिसाब लगाते हुए, यह मूल्य उस मशीन का खाता-मूल्य कहलाएगा। यदि इस मशीन को बेचा जाये, तो सम्भव है कि इसके खाता-मूल्य के हिसाब से बाजार में इसका कम या अधिक मूल्य लगे।

कभी-कभी 'खाता-मूल्य' एक विशिष्ट

अर्थ में प्रयुक्त होता है। वहाँ इसका आशय किसी निगम की निवल परिसम्पत्तियों से होता है। कुल परिसम्पत्ति में से ऋण की रकम घटाकर खाता-मूल्य ज्ञात हो सकता है। उदाहरण के लिए, यदि किसी निगम की कुल परिसम्पत्तियाँ ५० लाख रुपये मूल्य की हैं और उसके द्वारा लिये गये ऋण की राशि १० लाख रुपये है, तो ऐसी स्थिति में उस निगम का कुल लेखागत या खाता-मूल्य ४० लाख रुपये ठहरेगा।

boom (बूम) : तेजी, व्यापार-उत्कर्ष।

व्यापारिक कार्यकलाप के विस्तार का एक वर्द्धमान उच्च-स्तर। तेजी का आशय उस स्थिति से है जहाँ उत्पादन, कीमतों, आय तथा लाभ में तेजी से वृद्धि होती है और वेकारी उत्तरोत्तर घटती जाती है। पूर्ण रोजगार की चरम सीमा आ जाने पर यदि इस विस्तार का किसी प्रकार नियन्त्रण न किया जाये तो 'तेजी' स्फीतिकारी हो जाती है और अन्त में यह तेजी अर्थव्यवस्था में विस्फोट कर देती है। स्पष्टतः तेजी की स्थिति दीर्घकालिक नहीं हो सकती।

देखिए : Business Cycle

bounty (बॉउण्टी) : अधिदान।

निर्यात-संवर्द्धन के लिए सरकार द्वारा दी गयी वित्तीय सहायता। कोई सरकार जब देखती है कि उस देश की कुछ वस्तुएँ, महँगी होने के कारण, विदेशी मण्डियों में भली प्रकार बिक नहीं पा रही हैं, तब वह उन वस्तुओं के निर्यातकों को वित्तीय सहायता देकर उनकी लागत का एक भाग स्वयं चुका देती है। इस प्रकार वे अपेक्षाकृत सस्ते भाव पर अपना माल विदेशी मण्डियों में वेचने में समर्थ हो जाते हैं। इस सरकारी सहायता को 'अधिदान' कहा जाता है।

अधिदान के द्वारा निर्यातकों की प्रतियोगिता-शक्ति वढ़ जाती है। स्पष्टतः यह निर्यात-संवर्द्धन का एक साधन है। अनेक छोटे-बड़े देशों ने निर्यात-संवर्द्धन के लिए समय-समय पर यह नीति अपनायी है। विकासशील देशों के लिए अधिदान का सहारा लेना प्रायः अनिवार्य हो जाता है। वैसे टैरिफ की भाँति अधिदान भी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के तुलनात्मक लागत-सिद्धान्त के प्रतिकूल बैठता है।

bourgeoisie (बुर्ज्वाजी) : पूँजीपति वर्ग, बुर्जुआ।

पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली में विद्यमान वह समुदाय जो उत्पादन-साधनों का स्वामी तथा नियन्त्रक होता है, पूँजीपति वर्ग कहलाता है। पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली के कारण पूँजीपति वर्ग को उत्पादन के भौतिक संसाधनों के स्वामित्व तथा नियन्त्रण और उत्पादन-प्रक्रिया के संचालन का अधिकार होता है। इस प्रणाली में पूँजीपति वर्ग को ही अधिशेष उत्पाद प्राप्त होता है। फलस्वरूप इस आर्थिक प्रणाली को वनाये रखना पूँजीपतियों का सामूहिक वर्ग-हित होता है।

वस्तुतः, यह वर्ग पूँजीवादी व्यवस्था का शासक वर्ग होता है। उत्पादन-प्रक्रिया से प्राप्त अधिशेष उत्पाद इस वर्ग की सम्पत्ति होती है। पूँजीपति श्रमिक-वर्ग के नियोक्ता होते हैं। श्रमिकों को केवल सामाजिक रूप से आवश्यक उत्पाद मजदूरी के रूप में देकर नियोक्ता अधिशेष उत्पाद अपने अधिकार में ले लेते हैं।

उत्पादन-प्रक्रिया के संचालन में, नये निवेश के करने में, नयी उत्पादन-तकनीकों के अन्वेषण तथा प्रचलन में, साधारणतः इस वर्ग का उद्देश्य अधिशेष उत्पाद या मुनाफे को अधिकतम करना होता है। जैसे-जैसे पूँजीवादी आर्थिक विकास आगे बढ़ता है, वैसे-वैसे इस वर्ग की शक्ति और उसका प्रभाव बढ़ता जाता है। पूँजीपति वर्ग को पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली का केन्द्र-विन्दु माना जा सकता है। एक जागरूक, सक्रिय तथा प्रभावी पूँजीपति वर्ग के विना पूँजीवादी आर्थिक विकास असम्भव है। यूरोप की व्यक्तिवादी विचारधारा तथा प्रोटेस्टेंट नैतिक मूल्यों ने पूँजीपति-वर्ग के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी।

पूँजीवाद में राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक आदि सब क्षेत्रों में पूँजीपति-वर्ग को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त होता है। पूँजी की मात्रा तथा उत्पादन-ढाँचे में उसके स्थान के आधार पर पूँजीपति वर्ग को एकाधिकारी पूँजीपति वर्ग, मध्याकारीय पूँजीपति वर्ग तथा लघु-आकारीय पूँजीपति वर्ग आदि भागों में बाँटा जा सकता है। उद्योग-धन्धों में लगे तथा वाणिज्य आदि में लगे पूँजीपति वर्ग में भी विभेद करना सम्भव है। इस वर्ग को समाप्त करना एवं इस वर्ग के कार्य का सार्वजनीकरण करना समाजवादी व्यवस्था का ध्येय है।

boycott (वायकॉट) : वहिष्कार, बायकॉट।

किसी व्यापारी या देश के साथ व्यापार-सम्बन्ध रखने से इन्कार करना। प्रायः राजनीतिक कारणों से कोई देश दूसरे देश के माल के प्रयोग या आयात के सम्बन्ध में वहिष्कार की नीति अपना लेता है। इस प्रकार वहाँ उस अवधि में उक्त देश के माल का प्रयोग या आयात रुक जाता है।

branch banking (ब्रांच बैंकिंग) : शाखा-बैंकिंग।

किसी बैंक द्वारा एक या अधिक शाखाओं का संचालन। इसका आशय उस बैंक-प्रणाली से है, जिसके अन्तर्गत बैंकों की संख्या तो कम होती है, लेकिन प्रत्येक बैंक की अपनी-अपनी अनेक शाखाएँ होती हैं जो भिन्न-भिन्न स्थानों पर मुख्य-कार्यालय के निर्देशन में बैंक सम्बन्धी कार्य करती हैं। ग्रेट ब्रिटेन, कनाडा, भारत आदि अनेक देशों में बैंक-व्यवस्था का यह रूप देखने को मिलता है। इसके विपरीत, अमरीका में 'इकाई बैंकिंग' अथवा 'यूनिट बैंकिंग' का अधिक प्रचलन रहा है, जिसके अन्तर्गत बैंकिंग इकाइयाँ स्वतन्त्र रूप से कार्य करती हैं। वैसे इधर कुछ समय से अमरीका में भी शाखा-बैंकिंग का तेजी से विस्तार हो रहा है।

शाखा-बैंकिंग के पक्ष में यह कहा जाता है कि इस प्रणाली के अन्तर्गत कोई बैंक काफी बढ़ सकता है और इस प्रकार बड़े-बड़े निगमों की वित्त-सम्बन्धी आवश्यकताओं को भली-भाँति पूरा कर सकता है। साथ ही बैंकों में अधिक स्थायित्व भी आ जाता है। धनराशि की गतिशीलता भी काफी बढ़ जाती है; निधियाँ आवश्यकतानुसार एक शाखा से दूसरी शाखा में आसानी से भेजी-मँगायी जा सकती हैं। यह अवश्य है कि इस प्रणाली में आर्थिक शक्ति के संकेन्द्रण की आशंका बनी रहती है।

brassage (ब्रासेज) : सशुल्क सिक्का-ढलाई।

सिक्का-ढलाई के लिए लागत के बराबर शुल्क लिया जाना। खुली सिक्का-ढलाई-प्रणाली के अन्तर्गत लोग सरकारी टकसाल में धातु ले जाकर सिक्के ढलवा सकते हैं। ढलाई अथवा टंकण का यह कार्य निःशुल्क भी किया जा सकता है। और इसके लिए लागत के बराबर या उससे अधिक शुल्क लेने की व्यवस्था भी सम्भव है। सरकार जब सिक्का-ढलाई की लागत के बराबर ही शुल्क लेती है अर्थात् जब सिक्का-ढलाई का कार्य न तो निःशुल्क किया जाता है और न ही उस पर लाभ कमाया जाता है, तब उस व्यवस्था को 'सशुल्क सिक्का-ढलाई' कहते हैं।

broker (ब्रोकर) : दलाल।

विनिमय के दोनों पक्षों को मिलाकर उनके बीच सौदा कराने में सहायक व्यक्ति। दलालों को वस्तु-विशेष एवं बाजार की दशाओं व कार्यविधियों की विशिष्ट जानकारी होती है। इस कारण क्रेता और विक्रेता, दोनों के लिए इनकी सेवाओं की आवश्यकता पड़ती है। वैसे तो प्रायः हर बाजार में दलाल पाये जाते हैं और विनिमय-क्रियाएँ पूरी कराने में ये कम-अधिक सीमा तक हाथ बँटाते हैं। लेकिन जहाँ तक उच्चकोटि के संगठित बाजारों का प्रश्न है, इनकी सेवाएँ विशेष महत्त्व रखती हैं। शेयर-बाजार जैसे विशिष्ट क्षेत्रों में तो दलालों के माध्यम के बिना कार्य होता ही नहीं है।

दलालों को उनकी सेवाओं के बदले कमीशन मिलता है जिसे 'दलाली' कहा जाता है। साधारणतः दलाली की राशि दलाल-विशेष के माध्यम से किये ग[ये] व्यापार के मूल्य के अनुपात में होती है।

brokerage (ब्रोकरेज) : दलाली।

दलाल अपनी सेवाओं के लिए ग्राहकों से जो कमीशन लेते हैं, वह दलाली कहलाती है। प्रायः 'दलाली' की रकम दलाल के माध्यम से सम्पन्न व्यापार के मूल्य के अनुपात में होती है।

budget (बजट) : बजट, आय-व्ययक।

किसी निर्धारित आगामी अवधि के लिए अनुमानित आय और व्यय का विवरण। 'बजट' शब्द का प्रयोग किसी व्यक्ति, परिवार, संस्था या सरकार की अनुमानित आय और व्यय के विवरण के लिए किया जाता है।

अगले वर्ष में किन-किन मदों पर कितना खर्च किया जाना है तथा आगम या राजस्व-प्राप्ति के विभिन्न स्रोतों से कितनी-कितनी राशि किस प्रकार से संग्रह करने की व्यवस्था की जायेगी, इस सम्बन्ध में सरकार द्वारा एक 'ब्यौरा' तैयार किया जाता है। इस 'ब्यौरे' को सरकार का 'बजट' कहा जाता है। सरकारी बजट की तरह ही पारिवारिक तथा कम्पनियों के बजटों का अध्ययन आधुनिक अर्थशास्त्र में काफी महत्त्वपूर्ण हो गया है।

सामान्यतः सरकार वर्ष में एक बार संसद के सामने बजट प्रस्तुत करती है। लेकिन कुछ अवसरों पर अन्तरिम अथवा पूरक बजट की भी व्यवस्था की जाती है ताकि सरकारी आय-व्यय में आवश्यकतानुसार संशोधन लाकर स्थिति-विशेष का सामना किया जा सके। आजकल सरकारी बजट आर्थिक, वित्तीय एवं मुद्रा-नीति का महत्त्वपूर्ण साधन बन गया है।

उदाहरणार्थ, असमानताएँ कम करने के लिए सरकार बजट में अमीरों पर आरोही आयकर, सम्पत्तिकर, अधिकर आदि लगाने की नीति अपनाती है। साथ ही सरकारी व्यय की इस ढंग से व्यवस्था की जाती है कि उसका अपेक्षाकृत अधिक लाभ गरीबों को मिले। इससे असमानता घटाने में सहायता मिलती है।

इसी प्रकार स्फीति की स्थिति में सरकारी बजट में करों को बढ़ाने एवं व्यय को यथासम्भव कम करने का प्रयास किया जाता है। इससे माँग की अधिकता को (जिसके प्रभाव से कीमतें उत्तरोत्तर बढ़ती रहती हैं) सीमित करने में सहायता मिलती है। इसके विपरीत मन्दी के समय सरकारी कराधान में कमी तथा व्यय में वृद्धि लाने की व्यवस्था की जाती है। इस प्रकार की व्यवस्था से व्यय की कुल राशि और उसके फलस्वरूप राष्ट्रीय आय बढ़ जाती है, जिसके द्वारा मन्दी को रोकने और दूर करने में सहायता मिलती है।

बजट में आगम और व्यय की राशियाँ जब एक-दूसरे के बराबर होती हैं, तब उसे सन्तुलित बजट का नाम दिया जाता है। इसके विपरीत जब आय की तुलना में व्यय की राशि अधिक होती है, तब वह बजट 'घाटे का बजट' कहलाता है। इसी प्रकार व्यय की तुलना में आय अधिक होने पर बजट को 'अधिशेष बजट' कहते हैं।

buffer stock (बफर स्टॉक) : प्रतिरोधक भण्डार, समीकरण स्टाक।

वह भण्डार जो पूर्ति में घट-बढ़ को दूर करने और इसके फलस्वरूप कीमतों में उतार-चढ़ाव को रोकने के उद्देश्य से रखा जाता है। प्रतिरोधक भण्डार की नीति प्रायः उन उद्योगों के सम्बन्ध में अपनायी जाती है जिनमें ऐसी प्राथमिक वस्तुओं का उत्पादन होता है जिनको कुछ समय के लिए संचय किया जा सकता है। इन वस्तुओं की कीमतें प्रायः आधारमूलक होती हैं। इनकी कीमतों के उतार-चढ़ाव का अन्य कीमतों पर भी प्रभाव पड़ता है, और फिर उससे अनेक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र प्रभावित होते हैं। ऐसी कीमतों में स्थिरता बनाये रखने के लिए 'प्रतिरोधक भण्डार' की नीति का सहारा लिया जाता है।

प्रचुरता के समय जब माँग की अपेक्षा किसी वस्तु की पूर्ति अधिक होती है, तब सरकार अथवा सरकार द्वारा नियुक्त एजेंसी उस वस्तु को खरीदने की नीति अपनाती है और इस प्रकार के भण्डार का निर्माण किया जाता है। इस खरीदारी से माँग को बल मिलता है जिसके फलस्वरूप कीमत का गिरना रुक जाता है। इसके विपरीत जब बाजार में उस वस्तु की कमी होती है और माँग की अधिकता के कारण कीमत बढ़ने लगती है, तब उस भण्डार से माल निकालकर बाजार में उसे बेचने का कार्य आरम्भ कर दिया जाता है। इससे पूर्ति की मात्रा बढ़ जाती है। पूर्ति में इस प्रकार की वृद्धि के फलस्वरूप माँग के दबाव में कमी आने से कीमत का बढ़ना रुक जाता है। इस प्रकार 'प्रतिरोधक भण्डार' सम्बन्धी नीति के सहारे वस्तु-विशेष की कीमत में समुचित स्थिरता बनाये रखने का प्रयास किया जाता है।

built-in stabiliser (बिल्ट-इन स्टेबिलाइज़र) : आभ्यन्तरिक स्थिरक।

इस अवधारणा का प्रयोग विशेष रूप से व्यापार-चक्र के सन्दर्भ में किया जाता है। इसका आशय ऐसे स्थिरताकारी तत्त्वों से है, जो अपने-आप आय तथा कीमतों में ऊँच-नीच की तेजी कम करने और इस प्रकार स्थिरता लाने में सहायक होते हैं। इनकी संरचना में आर्थिक झटके सहने, और इसके फलस्वरूप स्थिरता लाने की क्षमता सन्निहित होती है। वैयक्तिक तथा निगम आयकर और वेरोजगारी बीमा महत्त्वपूर्ण स्वचालित अथवा आभ्यन्तरिक स्थिरक माने जाते हैं। उदाहरणार्थ, जब व्यापार में शिथिलता आने लगती है, तब वैयक्तिक आय में गिरावट की तुलना में सरकार को आय-कर से प्रप्त होनेवाली राशि में अधिक तेजी से कमी होने लगती है और वीमे के रूप में बेरोजगारों को भुगतान की जानेवाली राशियाँ बढ़ती जाती हैं। इस प्रकार उपभोक्ताओं की क्रय-शक्ति को बल मिलता है जिसके प्रभाव से व्यापार शैथिल्य अथवा अपकर्ष का जोर अपने-आप घटने लगता है। इससे स्थिरता लाने में सहायता मिलती है। सामाजिक सुरक्षा तथा कृषि-सहायता कार्यक्रम का स्वरूप भी इसी प्रकार का होता है।

bull (बुल) : तेजड़िया।

तेजी खेलनेवाला सटोरिया। यह सटोरिया सोचता है कि स्टॉक, ऋण-पत्र, विदेशी मुद्रा या वस्तुओं की कीमतें ऊपर चढ़नेवाली हैं और वह इस विश्वास से खरीदारी करता है कि भविष्य में विक्री के समय कीमतें और ऊँची हो जायेंगी। इस प्रकार उसे अपने इस कार्य से ला[भ] कमाने की आशा रहती है।

burden of taxation (बरडेन ऑ[फ] टैक्सेशन) : कर-भार।

कराधान के फलस्वरूप पड़नेवाल[ा] भार, जो मुद्रा रूप में भी हो सकता[है] और वास्तविक रूप में भी। इसी प्रक[ार] यह प्रत्यक्ष भी हो सकता है और परो[क्ष] भी।

कर के प्रत्यक्ष मुद्रा-भार का आक[ल]न मुद्रा की उस राशि से किया जा[ता] है जो करदाता द्वारा सरकार को कर[के] रूप में दी जाती है। अन्ततः कौन कितन[ा] कर देता है, यह मालूम करना कठिन हो[ता] है; क्योंकि अन्तिम रूप से कर-भार व[हन] करनेवाले व्यक्ति प्रायः वे ही नहीं हो[ते] जो आरम्भ में कर चुकाते हैं। अनेक क[र] विशेष रूप से व्यवसाय-व्यापार पर लगा[ये] गये कर, दूसरों पर खिसकाये जा सक[ते] हैं। इसीलिए इन करों का भार व्यव[सायी-]सायी-व्यापारी पर न पड़कर वास्तव [में] उपभोक्ताओं पर पड़ता है। जहाँ तक क[र] के प्रत्यक्ष वास्तविक भार की बात है[,] इसका आकलन इस आधार पर कि[या] जाता है कि कर चुकाने में करदाता [को] कितनी मात्रा में आर्थिक हित त्याग[ना] पड़ा।

कर के परोक्ष मुद्रा-भार और परो[क्ष] वास्तविक भार का अन्तर इस प्रका[र] स्पष्ट किया जा सकता है। किसी वस्तु प[र] लगा कर आरम्भ में वस्तु-विक्रेता चुकात[ा] है। इसे वह मूल्य-वृद्धि द्वारा क्रेताओं [से] वसूल करता है। इसमें कुछ समय लग जात[ा] है। अन्ततः विक्रेता को कर की मूल रक[म] तो मिल जाती है, लेकिन इस अवधि [में]

ब्याज से उसे हाथ धोना पड़ता है। यह कर का परोक्ष मुद्रा-भार है। कर के परोक्ष वास्तविक भार का आशय है: कर का परोक्ष अभाव। कर लगने से वस्तु की कीमत बढ़ती है और क्रेता उसे यथा-सम्भव कम माला में खरीदने को विवश हो जाते हैं। इससे उनके कल्याण में कमी होती है। यही कर का परोक्ष वास्तविक भार होता है।

business cycle (बिज़नेस साइकिल) : व्यवसाय-चक्र।

'व्यापार-चक्र' के लिए एक वैकल्पिक शब्द।

देखिए : trade cycle

business economics (बिज़नेस इकॉनॉमिक्स) : व्यवसाय-अर्थशास्त्र।

अध्ययन-विषय के रूप में वाणिज्य का पुराना नाम।

business savings (बिज़नेस सेविंग्स) : व्यावसायिक वचत।

किसी कम्पनी या व्यवसाय का अवितरित लाभ। निवेश का यह एक महत्त्वपूर्ण साधन होता है।

देखिए : corporate saving
saving

bust (बस्ट) : अपकर्ष, तल बिन्दु।

व्यापार में गिरावट का निम्नतम स्तर। जब व्यापार-क्रियाएँ गिरकर अत्यन्त नीचे स्तर पर आ जाती हैं, तब उसे 'व्यापार-अपकर्ष' कहा जाता है। ऐसी स्थिति में बेरोज़गारी बहुत बढ़ जाती है और स्टाक, कीमत, आय व लाभ आदि का स्तर बहुत नीचा होता है। व्यापार-अपकर्ष की स्थिति प्राय: तेजी या व्यापार-उत्कर्ष की स्थिति के बाद आती है। व्यापार-चक्र का इतिहास इसका प्रमाण है।

buyers market (बॉयर्स मार्केट) : क्रेता-बाज़ार।

'क्रेता-बाजार' का आशय बाज़ार की उस स्थिति से है जहाँ माँग की तुलना में पूर्ति या सम्भरण की माला अधिक होती है। ऐसे बाज़ार में कीमतें नीची होने के कारण खरीदार के पक्ष में होती हैं। पूर्ति की अधिकता के कारण विक्रेताओं के लिए नीची कीमत पर माल बेचना आवश्यक हो जाता है, ताकि पूर्ति की अतिरिक्त माला को बेचा जा सके। उनकी इस विवशता के कारण बाज़ार में क्रेता की स्थिति, विक्रेता की तुलना में, अधिक सुदृढ़ होती है। इसीलिए ऐसे बाजार को 'क्रेता-बाजार' कहा जाता है। व्यापार में उत्कर्ष के बाद मन्दी आने की अवस्था में अक्सर ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

देखिए : excess supply

buyers surplus (बॉयर्स सरप्लस) : क्रेता-अधिशेष।

उपभोक्ता-अधिशेष या बचत की अवधारणा के लिए एक वैकल्पिक नाम।

देखिए : consumer's surplus

by-product (बाई-प्रॉडक्ट्) : गौण उत्पाद, उपजात।

किसी निर्दिष्ट वस्तु की उत्पादन-प्रक्रिया में स्वत: प्राप्त होनेवाली कोई गौण वस्तु। सामान्य रूप से जब किसी निर्दिष्ट वस्तु का उत्पादन किया जाता है, तब उसके साथ-साथ किसी अन्य वस्तु का उत्पादन भी हो सकता है। इस प्रकार अनायास और अतिरिक्त लागत के बिना ही उत्पन्न होनेवाली वस्तु को गौण

उत्पाद अथवा उपजात या 'उपोत्पाद' कहा जाता है। कोयले के उत्पादन के साथ गैस का उत्पादन अथवा सरसों के तेल के साथ खली का उत्पादन गौण उत्पादन के सुन्दर उदाहरण हैं। किसी छोटी फर्म के लिए मात्रा में बहुत कम होने के कारण उपोत्पाद व्यर्थ या उत्सर्जित पदार्थ भले ही हों, किन्तु जहाँ बड़े पैमाने की उत्पादन-प्रणाली का सहारा लिया जाता है, वहाँ गौण उत्पाद का लाभप्रद उपयोग हो सकता है और वे अतिरिक्त आय के साधन बन सकते हैं।

called-up capital (कॉल्ड-अप कैपिटल): माँगी पूँजी।

किसी कम्पनी की निर्गमित पूँजी का वह भाग जो कम्पनी द्वारा उसके अंशधारियों से माँगा या लिया जा चुका होता है। मान लीजिए कि किसी कम्पनी की निर्गमित पूँजी २० लाख रुपये है, जो सौ-सौ रुपये के २० हजार शेयरों में बँटी हुई है। अब यह आवश्यक नहीं कि अंशधारियों से शेयर का सारा मूल्य कम्पनी द्वारा एक साथ शुरू में ही ले लिया जाये। मान लीजिए कि कम्पनी अपने अंशधारियों से फिलहाल ५० रुपये प्रति शेयर के हिसाब से माँग करती है और शेष राशि को भविष्य में आवश्यकता पड़ने पर माँगने के लिए रिजर्व के रूप में, अंशधारियों के पास छोड़ देती है। इस उदाहरण में माँगी पूँजी १० लाख रुपये के बराबर होगी।

call-loan (कॉल-लोन) : माँग-ऋण, शीघ्रावधि ऋण।

वाणिज्य बैंक का वह ऋण जो ऋणी द्वारा माँग करने पर बैंक को देना पड़े और ऋणी को किसी भी समय ऋण ऋणदाता को लौटाना पड़े। द... द्वारा लिये गये ऋण का काफी बड़ा भा... प्रायः इस प्रकार का होता है। स्टॉ... बांड तथा अन्य प्रकार की सम्पत्ति... आधार पर माँग ऋण प्राप्त किये ज... हैं। इस सम्बन्ध में बैंक और उधार ... वाले व्यक्ति के बीच करार के रूप... अनेक बातें पूर्व निर्धारित होती हैं... जैसे कि बैंक का कमीशन, बैंक के पा... रखी गई प्रतिभूतियों के बाजार मू... और ऋण-राशि का अन्तर आदि। माँ... ऋण के सहारे किसी व्यवसाय को ... प्रकार आयोजित नहीं किया जा सक... क्योंकि ऐसा ऋण किसी भी समय लौटा... पड़ सकता है। इसलिए विनिर्मा... व्यापारी आदि इस प्रकार के ऋण ... साधारणतः बहुत कम व्यवहार करते हैं...

call money (कॉल मनी) : माँ... मुद्रा।

ब्रिटिश वाणिज्य बैंकों की ... अपेक्षाकृत अधिक तरल परिसम्पत्ति... इसका आशय मुद्रा-बाजार (बट्टा संस्था... व दलालों) को बैंक द्वारा उधार दी ... उस राशि से है, जो बिना नोटिस ... १४ दिन के भीतर वापिस ली जा सक... है। ब्रिटिश बैंकिंग प्रणाली में इस ... का महत्त्वपूर्ण स्थान है। ब्रिटिश बैंकों ... पास जब नकदी का अभाव होता है ... वे बैंक ऑफ इंग्लैण्ड से उधार लेने ... बजाय मुद्रा बाजार से उधार दी ... माँग मुद्रा प्राप्त कर अपना काम चला... हैं। इस प्रकार बट्टा संस्थाएँ अथवा हुं... क्रेता संघ बैंक ऑफ इंग्लैंड से ऋण लेने ... लिए विवश हो जाते हैं। अन्तिम ऋ...

दाता के रूप में बैंक ऑफ इंग्लैंड उन्हें आवश्यकता के समय उधार देता है।

Cambridge School (कैम्ब्रिज स्कूल): कैम्ब्रिज सम्प्रदाय।

कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र के विद्वान अल्फ्रेड मार्शल के आर्थिक सिद्धान्तों के अनुयायी अर्थशास्त्रियों का समुदाय। इस समुदाय के अन्य विद्वानों में पीगू और रॉबर्टसन के नाम मुख्य रूप से उल्लेखनीय हैं। चूंकि मार्शल की आर्थिक पद्धति के माननेवाले अधिकांश अर्थशास्त्री कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में ही अध्यापन-कार्य करते थे, इसलिए इन अर्थशास्त्रियों के मतवाद को कैम्ब्रिज सम्प्रदाय कहा जाता है। आर्थिक विचारों के इतिहास में इस सम्प्रदाय का काल १८४२ से १९२४ माना जाता है।

इन अर्थशास्त्रियों ने पूर्व प्रचलित आर्थिक मान्यताओं का अर्थशास्त्र-अध्ययन की नवीन पद्धतियों के साथ समन्वय किया और उनमें अपनी ओर से नये परिवर्तन तथा परिवर्धन किये। संस्थापित अर्थशास्त्रियों की खोजों का अनुगमन करते हुए भी उन्होंने कुछ संस्थापित सिद्धान्तों की परिसीमाओं पर विशेष रूप से प्रकाश डाला। यह अबन्ध नीति सम्बन्धी उनके विचारों से सिद्ध होता है। आर्थिक शक्तियों के उद्गम और विकास के सम्बन्ध में उन्होंने जर्मन इतिहासवादी सम्प्रदाय की पद्धति को अपनाया, किन्तु उसका भी काफी समीक्षात्मक विश्लेषण करने के पश्चात ही उन्होंने ऐसा किया। सीमान्त उपयोगितावादी सम्प्रदाय की सीमान्त उपयोगितावाली संकल्पना का भी उन्होंने प्रयोग किया और साथ ही निष्कर्षों को प्रस्तुत करने के लिए गणितीय-अर्थशास्त्र की पद्धति को भी अपनाया।

इस सम्प्रदाय के अर्थशास्त्रियों ने मूल्य तथा वितरण सम्बन्धी सिद्धान्तों पर विशेष बल देते हुए अर्थव्यवस्था में कीमत-निर्धारण और वितरण प्रक्रिया का विश्लेषण किया। साथ ही उन्होंने अर्थ-शास्त्र की समष्टिमूलक शक्तियों, यथा समस्त उत्पादन, समस्त आय और सम्वृद्धि तथा विकास को अपने अध्ययन से परे रखा। ये आंशिक सन्तुलन के सहारे विभिन्न आर्थिक क्रियाओं और कारकों का अध्ययन करने पर बल देते थे और आर्थिक सन्तुलन की यही संकल्पना उनके समस्त सिद्धान्तों का आधार है। उनका मत था कि यदि सभी कीमतें, उत्पादन और माँगें अपरिवर्तित रहें, तो किसी उद्योग में किसी निश्चित समय पर किसी विशेष वस्तु की कीमत पूर्ति और माँग की शक्तियों के सन्तुलन द्वारा निर्धारित होगी। माँग और पूर्ति के सन्तुलन की इस संकल्पना के आधार पर ही उन्होंने मुद्रा और विदेश व्यापार के सिद्धान्तों का भी विश्लेषण किया है।

cameralism (केमरलिज़्म) : कैमर-लिज़्म।

वाणिज्यवाद का एक रूप जो मध्य अठारहवीं शताब्दी में जर्मनी और ऑस्ट्रिया में उदय हुआ। मोटे तौर से यह सार्व-जनिक प्रशासन, प्रौद्योगिकी तथा वित्तीय मामलों के प्रबन्ध से सम्बन्धित था। वाणिज्यवादी राष्ट्र को शक्तिशाली बनाने के लिए आयात को कम करने और निर्यात को अधिकाधिक बढ़ाने पर जोर देते थे, ताकि अनुकूल व्यापार-शेष के

सहारे दूसरे देशों से बड़ी मात्रा में सोना प्राप्त किया जा सके। वे सोने की मात्रा को राष्ट्र की शक्ति का संकेतक मानते थे। इसके विपरीत केमरलिज्म विचार-धारा के समर्थक व्यापार के विस्तार पर नहीं, वल्कि देश के उद्योगों पर जोर देते थे। घरेलू उद्योगों को बढ़ावा देना तथा देश की अर्थव्यवस्था को आत्मनिर्भर वनाना उनका मुख्य उद्देश्य था। जन-संख्या-वृद्धि एवं स्वदेशी वस्तुओं की खपत से इस उद्देश्य की पूर्ति में मदद मिल सकती थी। इसलिए वे इन वातों को बढ़ावा देने के पक्ष में थे। वे सोने को नहीं वल्कि केन्द्रीय सरकार की आय को राष्ट्रीय सम्पत्ति का सवसे महत्त्व-पूर्ण सूचक ठहराते थे।

canons of taxation (कैनॅन्स ऑफ टैक्सेशन) : कराधान के सिद्धान्त।

उत्तम कर-प्रणाली के निर्धारण या रचना के लिए प्रस्तुत किये गये सिद्धान्त। एडम स्मिथ ने इस सम्बन्ध में चार सुविख्यात सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। इनके अनुसार अच्छी कर-प्रणाली वह है जिसके अन्तर्गत : (१) लोगों के भुगतान-सामर्थ्य के अनुसार कर लगाये जाते हैं, जिसका अनुमान उनकी आय के आधार पर लगाया जा सकता है; (२) कर की मात्रा व शर्तें सुनिश्चित होती हैं; (३) कर-भुगतान का समय और रीति कर-दाता की दृष्टि से सुविधाजनक होते हैं; तथा (४) कर-संग्रह की लागत थोड़ी होती है। आगे चलकर कई अन्य सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया गया। करदाताओं के बीच समन्याय पर तथा आर्थिक विकास, क्षमता एवं आर्थिक स्थिरता पर कर-प्रणाली के पड़ने वाले प्रभावों पर आजकल अपेक्षाकृत अधिक ध्यान दिया जाता है।

capacity (कैपेसिटी) : क्षमता।

अपने वर्तमान संसाधनों व साज-सामान से किसी फर्म या उद्योग के उत्पादन की अधिकतम मात्रा, उत्पादन-साधनों के मिलाने के अनुपात में परिवर्तन लाकर अथवा अधिक आधुनिक रूप में पूँजी के उपयोग से एक सीमा तक क्षमता में वृद्धि लायी जा सकती है। कभी-कभी माँग में विशेष कमी होने के कारण पूरी क्षमता के साथ उत्पादन सम्भव नहीं हो पाता। फलस्वरूप क्षमता का कुछ भाग अप्रयुक्त पड़ा रहता है।

capital (कैपिटल) : पूँजी।

अर्थशास्त्र की एक महत्त्वपूर्ण अव-धारणा जिसके कई अर्थ हो सकते हैं। पूँजी से तात्पर्य उन वस्तुओं से है जो अन्य वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन के साधन के रूप में काम आती हैं। ये वे वस्तुएँ हैं जिनके द्वारा आवश्यकताओं की पूर्ति अप्रत्यक्ष रूप से अर्थात् उपभोग वस्तुओं के उत्पादन में सहयोग द्वारा, होती है, जैसे मशीनें, कल-कारखाने, औजार, पुर्जे, मकानात, गोदी, जहाज आदि। कोई वस्तु पूँजी है या नहीं, यह उस वस्तु के प्रयोग पर निर्भर करता है। एक ही चीज किसी एक सन्दर्भ में पूँजी हो सकती है और दूसरे सन्दर्भ में उप-भोग-वस्तु, जैसे व्यावसायिक भवन तथा निवास-स्थान। मजदूरों द्वारा उपभोग में लाया जाने वाला मनोरंजन का सामान व्यवसायी की नजर में पूँजी है। परन्तु वे ही वस्तुएँ मजदूर अपने घर पर काम

में लायें तो वे उपभोग-वस्तुएँ समझी जाती हैं। अतः पूँजी की अवधारणा के सरल तथा स्पष्ट होने पर भी इसका प्रयोग काफी उलझन-भरा होता है।

एक व्यक्ति या व्यवसाय के दृष्टिकोण के अनुसार वे सब वस्तुएँ, जिनमें भविष्य में अर्जन करने की या आय बढ़ाने की क्षमता है, पूँजी कहलाती हैं। मुद्रा या वित्त भी व्यक्ति या व्यवसाय के लिए पूँजी ही हैं। परन्तु मुद्रा एक व्यक्ति के लिए लेनदारी है, तो किसी अन्य के लिए देनदारी। अतः मुद्रा तथा अन्य वित्तीय परिसम्पत्तियाँ सामाजिक दृष्टिकोण से पूँजी नहीं हैं। वे किसी एक की भावी आय जितनी बढ़ाती हैं, उतनी ही किसी दूसरे की कम कर देती हैं। अतः उनकी सामाजिक नजरिये से आय बढ़ाने की क्षमता शून्य के बराबर है।

सामाजिक दृष्टि से पूँजी की अवधारणा एक भौतिक तथा कार्यकारी अवधारणा मात्र ही नहीं है। इसके दो दूसरे पहलू भी महत्त्वपूर्ण हैं। पहला तो यह कि पूँजी की कीमत मुद्रा में व्यक्त की जाती है। पूँजी दीर्घकालीन प्रयोग की वस्तु है। अतः यह सवाल उठता है कि किस समय की कौन-सी कीमत में तथा किस दर पर घिसावट काटकर उसका मूल्यांकन किया जाये। दूसरे, पूँजी का स्वामित्व व्यक्तिगत है, सामूहिक है या सामाजिक है, इस आधार पर पूँजी से सम्बन्धित लोगों के सामाजिक सम्बन्ध तय होते हैं। पूँजीवादी समाज-व्यवस्था में पूँजी का निजी स्वामित्व मजदूर वर्ग की सामाजिक-आर्थिक स्थिति का निर्धारण करता है। इसी प्रकार पूँजी का सामूहिक स्वामित्व एक निगम के उत्पादन-सम्बन्धों को तय करता है। एक समाजवादी समाज के समतापूर्ण सामाजिक सम्बन्धों की बुनियाद उस व्यवस्था की पूँजी की सामाजिक स्वामित्व प्रणाली है।

capital account (कैपिटल एकाउन्ट): पूँजी-खाता।

राज्य के बजट को साधारणतः दो भागों में बाँटा जाता है। पहले भाग में विभिन्न प्रकार के चालू खर्चे (जैसे प्रशासनिक व्यय, शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा, सुरक्षा, सहायता आदि के व्यय) दिखाये जाते हैं, दूसरे भाग में स्थायी तथा उत्पादक परिसम्पत्तियों पर किये गये व्यय दिखाये जाते हैं। यह भाग पूँजी-खाता कहलाता है। इस खाते से यह पता चलता है कि सार्वजनिक क्षेत्र में कितना तथा किस प्रकार का पूँजी-निर्माण हो रहा है। इस क्षेत्र का व्यय आर्थिक क्षेत्र में राज्य के भाग का अभिसूचक है।

वैसे किसी भी आर्थिक इकाई के पूँजी-सम्बन्धी लेन-देन का लेखा पूँजी-खाता कहा जा सकता है।

capital accumulation (कैपिटल ॲक्यूम्यूलेशन) : पूँजी-संचयन।

पूँजी-संचयन का प्रयोग पूँजी-निर्माण के अर्थ में किया जाता है जिसका आशय किसी समय-अवधि में देश की वास्तविक पूँजी में हुई निवल वृद्धि से है। किसी देश का आर्थिक विकास बहुत बड़ी सीमा तक पूँजी-संचयन अथवा पूँजी-निर्माण की दर पर निर्भर करता है।

देखिए : capital formulation investment.

capital appropriation (कैपिटल

एप्रोप्रिएशन) : पूंजी-विनियोजन ।

इसका आशय किसी फर्म की नयी मशीनें व संयन्त्र खरीदने की योजनाओं से है जिसके लिए संचालक-मण्डल अथवा अन्य जिम्मेदार अधिकारियों से स्वीकृति मिली होती है। विनियोजन और व्यय के वीच कुछ समय लग जाता है। संचयी विनियोजन सम्वन्धी आँकड़ों के सहारे भावी निवेश का मोटा अनुमान लगाया जा सकता है।

capital budget (कैपिटल वजट) : पूंजी बजट ।

पूंजी-व्यय के आयोजन और नियन्त्रण से सम्वन्धित वजट। इसमें पूंजी सम्वन्धी व्यय और उसके वित्तीयन का व्यौरा दिया जाता है। सरकारी वजट या फर्म के वजट के साधारणतया दो भाग होते हैं। एक भाग में चालू आय और व्यय की मदों का विवरण रहता है जिसे चालू या राजस्व वजट कहते हैं। दूसरे भाग में पूंजीगत व्यय और उसके लिए साधनों का व्यौरा शामिल किया जाता है जो पूंजी-वजट कहलाता है। लम्वी अवधि के कार्यक्रम के अन्तर्गत पूंजीगत व्यय के लिए वजट तैयार किया जाता है और फिर इसे वार्षिक वजट के रूप में प्रस्तुत किया जाता हैं। पूंजी-वजट बनाते समय उस अवधि में पूंजीगत व्यय की आवश्यकता और निवेश के लिए उपलब्ध साधनों को ध्यान में रखा जाता है।

capital consumption (कैपिटल कन्जम्पशन) : पूंजी-उपभोग ।

यदि किसी देश में पूंजी के क्षय और मूल्य ह्रास की तुलना में नई पूंजी का निर्माण कम होता है, तो उस देश में पूंजी की कुल मात्रा में कमी होगी। तव यह कहा जायेगा कि वह देश पूंजी का उपभोग कर रहा है। स्पष्टतः कोई भी देश किसी लम्वी अवधि तक पूंजी-उपभोग की क्रिया को चलने नहीं दे सकता क्योंकि इससे अन्ततः उत्पादन और उसके फलस्वरूप सारी अर्थव्यवस्था को ठेस पहुंचेगी। युद्ध-कालीन स्थिति में प्रायः ऐसी नौवत आ जाती है, जव कुछ समय के लिए क्षति और पुरानी पूंजी के प्रतिस्थापन की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जा पाता और युद्ध-सम्वन्धी साज-सामान बनाने में ही उपलब्ध साधनों का अधिकतम उपयोग अनिवार्य हो जाता है। ऐसा इस विश्वास से किया जाता है कि युद्ध-काल में पूंजी-उपभोग के कारण उत्पादन में होनेवाली क्षति युद्ध के वाद शीघ्र पूरी कर ली जायेगी।

capital duty (कैपिटल ड्यूटी) : पूंजी शुल्क ।

कम्पनी द्वारा जारी किये गये शेयर पर लगा स्टाम्प शुल्क।

capital expenditure (कैपिटल एक्सपेन्डीचर) : पूंजीगत व्यय ।

संयन्त्र, मशीन आदि स्थायी परिसम्पत्ति पर खर्च होनेवाली राशि। इसे 'पूंजी-निवेश' का नाम भी दिया जाता है। किसी देश की अर्थव्यवस्था के स्तर तथा विकास के साथ पूंजीगत व्यय का वहुत गहरा सम्बन्ध होता है। पूंजीगत व्यय की कम दर अल्प-विकसित देशों के धीमे विकास का एक महत्त्वपूर्ण कारण ठहराया जाता है।

capital flight (कैपिटल फ्लाइट) : पूंजी पलायन ।

बड़ी मात्रा में पूँजी का एक देश से दूसरे देश में जाना। जब आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक घटनाओं के प्रतिकूल प्रभाव से बचने के लिए एक देश से दूसरे देश को बड़ी मात्रा में पूँजी का अन्तरण होता है, तब वह क्रिया "पूँजी पलायन" कहलाती है। इसका एक मुख्य उदाहरण १९३०-४० की अवधि के अन्तिम वर्षों में सामने आया। उस समय युद्ध संकट के भय से भारी मात्रा में यूरोपीय निजी पूँजी का स्विट्जरलैंड, अमरीका आदि देशों में अन्तरण हुआ जहाँ राजनीतिक और आर्थिक स्थिरता बनी रहने की आशा थी। बड़ी मात्रा में इस पूँजी-पलायन के कारण अन्तर्राष्ट्रीय साधन-प्रवाह के क्षेत्र में भारी उथल-पुथल मची और जिन देशों से पूँजी निकलकर बाहर जा रही थी, उनके भुगतान-शेष में अधिकाधिक घाटा नजर आने लगा। इसके फलस्वरूप एक ओर तो करेंसी विषयक सट्टे को प्रोत्साहन मिला और दूसरी ओर इन देशों की सरकारें पूँजी-पलायन रोकने के लिए आवश्यक नियन्त्रण लागू करने के लिए बाध्य हो गयीं।

आजकल अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष अपने सदस्य-देशों के भुगतान-शेष में हो रहे अस्थायी घाटे को पूरा करने के लिए उन्हें अल्पकालिक ऋण देता है। इससे करेंसी सम्बन्धी सट्टा जोर नहीं पकड़ पाता और अस्थिर राजनीतिक परिस्थितियों के कारण पूँजी-पलायन के प्रभाव भी बड़ी सीमा तक घट जाते हैं।

capital formation (कैपिटल फॉरमेशन) पूँजी-निर्माण।

वास्तविक पूँजी (अर्थात् वे वस्तुएँ जिनकी सहायता से उत्पादन किया तथा बढ़ाया जाता है, जैसे मशीनें, औजार, कारखाने की इमारतें, कच्चा माल आदि) के भंडार में वृद्धि को पूँजी-निर्माण कहा जाता है। वास्तविक निवेश तथा पूँजी-संचयन इसी प्रक्रिया के दूसरे नाम हैं।

राष्ट्रीय आय में दो तरह की वस्तुएँ शामिल रहती हैं: पूँजीगत वस्तुएँ और उपभोग-वस्तुएँ। जो वस्तुएँ वर्तमान जरूरतों को सीधी तरह से पूरी करती हैं, वे उपभोग-वस्तुएँ कहलाती हैं। बहुत-सी उपभोग-वस्तुओं को उत्पादन बढ़ाने के काम में भी लगाया जा सकता है। स्पष्टतः पूँजी-निर्माण के लिए वर्तमान उपभोग को घटाकर उपभोग-वस्तुओं का प्रयोग पूँजीगत वस्तुओं के रूप में करना होगा। यदि इन वस्तुओं से, जिनका प्रयोग पूँजीगत कार्यों के लिए करना शुरू किया जा रहा है, उपभोग-वस्तुओं का निर्माण किया जाता है, तो उपभोग-स्थगन कम अवधि का होगा। परन्तु यदि इन वस्तुओं का प्रयोग और पूँजीगत वस्तुओं के निर्माण में किया जाता है, तो स्पष्टतः उपभोग-स्थगन की अवधि अपेक्षाकृत लम्बी होगी अर्थात् पूँजी-निर्माण के लिए उपभोग-स्थगन आवश्यक है। इस स्थगन का प्रतिफल इस बात में निहित है कि आगे चलकर पूँजी-निर्माण के कारण अधिक मात्रा में उपभोग-वस्तुओं की उपलब्धि सम्भव बन जाती है।

उपभोग-स्थगन के लिए लोगों को उपभोग-व्यय घटाना पड़ता है अर्थात् वे अपनी बचत बढ़ाते हैं। बचत की गई इस राशि से उत्पादन या पूँजीगत वस्तुएँ खरीदी जा सकती हैं। यह प्रक्रिया निवेश

कहलाती है। यह निवेश वास्तविक कहलाता है क्योंकि इससे अर्थव्यवस्था का पूंजी-भण्डार बढ़ता है।

इस बचत का एक अन्य तरह का प्रयोग भी सम्भव है। वास्तविक उत्पादन-वस्तुएँ खरीदने के बजाय बचत द्वारा शेयर, प्रतिभूतियाँ आदि विभिन्न वित्तीय परिसम्पत्तियाँ खरीदी जा सकती हैं। अधिकांश वित्तीय परिसम्पत्तियाँ किसी वास्तविक पूंजीगत वस्तु या उनके समूह के स्वामित्व का कानूनी प्रमाण होती हैं। इनके खरीदने-बेचने से यह स्वामित्व हस्तान्तरित होता है। बचत द्वारा इस प्रकार की वित्तीय परिसम्पत्तियाँ खरीदना वित्तीय निवेश कहलाता है। इस प्रकार के निवेश से पूंजी-निर्माण नहीं होता है, अपितु विद्यमान पूंजी के स्वामित्व का हस्तान्तरण ही होता है। बैंक बीमा कम्पनियाँ, यूनिट ट्रस्ट आदि वित्तीय संस्थाएँ अर्थव्यवस्था की बचतें एकत्रित कर उन्हें वास्तविक निवेशकर्ताओं को उपलब्ध कराती हैं। उत्पादन-वस्तुओं के निर्माण में लगे उद्योग भी पूंजी-निर्माण की प्रक्रिया में महत्त्वपूर्ण योगदान करते हैं। इस तरह बचत (उपभोग-स्थगन) पूंजीगत वस्तुओं का निर्माण तथा इन कार्यों हेतु लिये जाने वाले निर्णय पूंजी-निर्माण की प्रतिक्रिया के आधार-स्तम्भ हैं।

किसी अर्थव्यवस्था में पूंजी-निर्माण का स्तर अनेक तत्त्वों पर निर्भर रहता है। इनमें राष्ट्रीय आय और उसकी वृद्धि-दर, व्याज-दर; भविष्य के प्रति दृष्टिकोण, अर्थव्यवस्था का ढाँचा, पूंजीगत उद्योगों की प्रगति या विदेशों से पूंजीगत वस्तुओं के आयात की सम्भावनाएँ, बचत तथा निवेश की प्रवृत्ति, निवेशक वर्ग की शक्ति तथा स्थिति, देश की राजनीतिक स्थिति आदि कारक बहुत महत्त्वपूर्ण होते हैं। उपभोग-स्थगन, श्रम तथा नये उत्पादों एवं उत्पादन-विधियों के प्रति दृष्टिकोण, प्रतीक्षा करने की शक्ति आदि बातों की भी पूंजी-निर्माण की गति तथा उसके स्वरूप निर्धारण में महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। जहाँ पर व्यक्तिगत प्रयासों से पर्याप्त पूंजी-निर्माण नहीं हो पाता है, वहाँ इस दिशा में सामूहिक एवं राजकीय प्रयास जरूरी हो जाते हैं।

पूंजी-निर्माण अर्थव्यवस्था की जीवनदायिनी अपरिहार्य प्रक्रिया है। न केवल उत्पादन-क्षमता का विकास इस प्रक्रिया पर निर्भर है, वरन् तकनीकी प्रगति और उत्पादन-क्षमता के स्तर का स्थायित्व भी इस पर आधारित रहता है। पूंजीगत वस्तुएँ दीर्घ-प्रयोग साध्य तो हैं, परन्तु प्रयोग के साथ इनमें घिसावट होती रहती है। नयी उत्पादन-विधियों के विकास से भी विद्यमान पूंजीगत वस्तुएँ पुरानी पड़ जाती हैं। अतः नयी पूंजी का निर्माण आवश्यक हो जाता है। संक्षेप में, आर्थिक विकास के लिए पूंजी-निर्माण के महत्त्व के विषय में अतिशयोक्ति की सम्भावना बहुत कम है।"

देखिए : capital accumulation
investment

capital gains (कैपिटल गेन्स) : पूंजीगत अभिलाभ।

किसी पूंजीगत वस्तु अथवा परिसम्पत्ति की कीमत बढ़ जाने पर उसके

मालिक को जो अतिरिक्त आय होती है, उसे 'पूँजीगत अभिलाभ' कहते हैं। इस अभिलाभ के सम्बन्ध में मूल बात यह है कि यह सामान्य व्यापार या व्यवसाय के संचालन के दौरान या सम्बन्ध में नहीं, बल्कि उसके बाहर प्राप्त होता है।

किसी कम्पनी या व्यवसाय की प्रगति के फलस्वरूप उसके शेयर की कीमतें चढ़ जाती हैं, उसकी परिसम्पत्ति में अभिवृद्धि होती है तथा उनकी अर्जनशक्ति भी बढ़ जाती है। शेयरों की कीमतें ब्याज-दर के गिरने से भी बढ़ जाती हैं। किसी प्रदेश में स्थित अचल सम्पत्ति की कीमत भी कई कारणों से बढ़ सकती है। मुद्रास्फीति के दौरान जहाँ मुद्रा का मूल्य कम होता है, अचल सम्पत्ति की कीमतें बढ़ सकती हैं। इस स्थिति में जो पूँजीगत अभिलाभ होता है, वह मुद्रा के मूल्य के गिरने से समाप्त भी हो जाता है। इस प्रकार यह कोई वास्तविक पूँजीगत अभिलाभ नहीं है। किसी व्यवसाय के राष्ट्रीयकरण की एवज़ में मिला मुआवज़ा भी वास्तव में पूँजीगत अभिलाभ नहीं है। सामान्य व्यापार-प्रक्रिया में हुए अभिलाभ से भिन्न जब किसी एक विशेष सौदे में कोई मुनाफा हो, तब उसे इस कोटि में शामिल करेंगे। किन्तु यदि यही सौदा नियमित रूप से किया जाने लगे तब वह व्यावसायिक अभिलाभ होगा, पूँजीगत अभिलाभ नहीं। वास्तविक स्थिति में इस अन्तर को ध्यान में रखकर पूँजीगत अभिलाभ को पहचानना काफी कठिन होता है। इस मुनाफे या प्राप्ति पर जो कर लगाया जाता है, उसे पूँजीगत अभिलाभ-कर कह सकते हैं।

capital goods (कैपिटल गुड्स): पूँजीगत वस्तुएँ।

पूँजीगत वस्तुओं के अन्तर्गत वे सब वस्तुएँ आती हैं जो उपभोक्ता की आवश्यकताओं की सन्तुष्टि प्रत्यक्ष रूप से नहीं करतीं, बल्कि जिनका उपयोग अन्य वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन में किया जाता है। दूसरे शब्दों में, उत्पादक वस्तुओं का ही दूसरा नाम पूँजीगत वस्तुएँ हैं।

बहुत-से अर्थशास्त्री भूमि को पूँजीगत वस्तुओं के अन्तर्गत इसलिए नहीं रखते कि अन्य पूँजीगत वस्तुओं की तरह यह मानव-सृजित नहीं है। यह प्राकृतिक देन है और मात्रा की दृष्टि से सीमित है।

पूँजीगत वस्तुओं को कुछ लोग मध्यवर्ती वस्तुओं का नाम देते हैं, क्योंकि ये वस्तुएँ उत्पादन के अन्तिम चरण (जब वस्तुएँ उपभोक्ता के हाथ पहुँचती हैं) के पहले काम आनेवाली वस्तुएँ हैं।

पूँजीगत वस्तुओं को दो कोटियों में रखा जा सकता है: (i) एक-उपयोग साध्य पूँजीगत वस्तुएँ, और (ii) बहु अथवा दीर्घ उपयोग साध्य वस्तुएँ। वे पूँजीगत वस्तुएँ जिनका इस्तेमाल एक बार ही हो सकता है (जैसे कोयला, बीज, कपास, आदि) एक-उपयोग साध्य पूँजीगत वस्तुएँ कहलाती हैं। इसके विपरीत जिन पूँजीगत वस्तुओं का प्रयोग एक से अधिक बार किया जाता है, उन्हें दीर्घ-उपयोग साध्य पूँजीगत वस्तुएं कहते हैं। इनके अन्तर्गत मशीन, औजार, कारखाने की इमारतें आदि वस्तुएँ आती हैं।

वस्तुतः पूँजीगत वस्तु होने की कसौटी किसी वस्तु-विशेष के आन्तरिक गुण उतने नहीं हैं जितने कि किसी स्थिति-

विशेष में उनका प्रयोग। जैसे रुई एक कपड़ा मिल के लिए पूँजीगत वस्तु है। परन्तु जब कोई परिवार रुई के गद्दे भरवाता है, तब यह एक-उपयोग की वस्तु मानी जायेगी। अन्तिम रूप से उत्पादित होने से पहले कच्चा माल, अर्ध-निर्मित वस्तुएँ तथा निर्माणाधीन माल भी पूँजीगत वस्तुओं की कोटि में शामिल किये जाते हैं।

देखिए : producers' goods.

capital intensive technique (कैपिटल इन्टेनसिव टेकनीक) : पूँजी-प्रधान तकनीक।

उत्पादन की एक ऐसी तकनीक जिसमें प्रति इकाई उत्पादन में श्रम की मात्रा की अपेक्षा पूँजी की मात्रा अधिक प्रयुक्त होती है। एक तकनीक को हम किसी दूसरी तकनीक की तुलना में ही पूँजी-प्रधान कह सकते हैं। इस प्रकार यह एक सापेक्ष शब्द है। इसके विपरीत यदि श्रम की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक हो, तो हम उसको श्रम-प्रधान तकनीक कहेंगे। जहाँ श्रम की अधिकता होती है और पूँजी का अभाव, वहाँ पूँजी-प्रधान तकनीक का उपयोग उचित नहीं समझा जाता। किन्तु जहाँ पूँजी अधिक और श्रम अपेक्षाकृत कम होता है, वहाँ पूँजी-प्रधान तकनीक का सहारा लेना लाभप्रद होता है। वैसे इन तकनीकों के बीच चयन आर्थिक नीति के उद्देश्यों, समय-सम्बन्धी दृष्टिकोण, (अर्थात् शीघ्र ही कुछ आर्थिक उद्देश्य प्राप्त करने हैं या दीर्घावधि में) साधनों की उपलब्धि, विशेषतः मशीनों और तकनीकों की उपलब्धि, साधनों के प्रतिस्थापन की सम्भावना तथा संयन्त्र के संस्थापन-काल, आदि के आधार पर किया जाता है।

देखिए : capital-labour ratio, labour intensive technique.

capitalisation (कैपिटलाइजेशन) : पूँजीकरण।

किसी अर्जक परिसम्पत्ति की वर्तमान अर्जन-क्षमता का, चालू व्याज-दर के आधार पर पूँजीगत मूल्य का निर्धारण। इस पूँजीगत मूल्य पर जो व्याज प्राप्त होगा, वह इस अर्जक परिसम्पत्ति की आय के बराबर होगा। उदाहरणार्थ, यदि किसी परिसम्पत्ति से ५०० रुपये वार्षिक आय प्राप्त होती है और व्याज की दर ५ प्रतिशत वार्षिक है, तो उस परिसम्पत्ति का पूँजीकृत मूल्य १०,००० रुपये होगा।

capitalisation issue (कैपिटलाइजेशन इश्यू) : पूँजीकरणार्थ शेयर निर्गमन।

संयुक्त पूँजी कम्पनी या निगम अतिरिक्त पूँजी प्राप्त करने के लिए अवितरित लाभ के भंडार तथा अधिशेष-कोष का प्रयोग कर सकते हैं। ऐसा करने के लिए तात्कालिक हिस्सेदारों या अंशधारियों को उनके वर्तमान शेयर के अनुपात में नये शेयर (बोनस शेयर) जारी करके प्रदान किये जा सकते हैं। इस तरह शेयर जारी करने को पूँजीकरणार्थ शेयर निर्गमन कहते हैं। इस प्रक्रिया के फलस्वरूप सारी निर्गमित पूँजी कम्पनी की वास्तव में प्रयोग में लायी जाने वाली पूँजी का अधिक सही प्रतिविम्ब हो जाती है अथवा इस प्रकार कानूनी स्थिति वस्तुस्थिति के निकट आ जाती है। परन्तु

इससे अंशधारियों के हाथ आने वाले शेयरों का सम्पूर्ण मूल्य अनिवार्य रूप से नहीं बढ़ता । कारण, सामान्य रूप से साधारण शेयरों की बाजार-क़ीमत उनकी वास्तविक कीमत के करीब ही होती है।

capitalisation of reserves (कैपिटलाइज़ेशन ऑफ रिजर्वस्) : आरक्षित निधि का पूंजीकरण।

बोनस शेयर जारी करके आधुनिक निगमों या कम्पनियों द्वारा सुरक्षित कोष का प्रयोग।

देखिए : capitalisation issue

capitalised value (कैपिटलाइज्ड वैल्यू) : पूंजीकृत मूल्य।

किसी अर्जक परिसम्पत्ति का उसकी वर्तमान अर्जनक्षमता के आधार पर निर्धारित उसके सम्पूर्ण जीवन काल का मूल्य। इस पूंजीकृत मूल्य पर जो वार्षिक ब्याज प्राप्त हो सकता है, वह उस परिसम्पत्ति द्वारा अर्जित वार्षिक आय के बराबर या उससे कम होना चाहिए। यदि ऐसा नहीं है तो इस परिसम्पत्ति को बेचकर इस तरह प्राप्त राशि को ब्याज पर उधार देना परिसम्पत्ति के स्वामी के लिए लाभदायक होगा।

देखिए : capitalisation

capitalism (कैपिटलिज़्म) : पूंजीवाद।

पूंजीवाद एक सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था है। पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली के सहवर्ती पूंजीवादी समाज-व्यवस्था होती है। यह एक जीवन्त ऐतिहासिक व्यवस्था है जिसके प्रारम्भिक चिह्न १५वीं और १६वीं शताब्दी में स्पष्ट नजर आने लगे थे। आधुनिक औद्योगिक अर्थ-व्यवस्थाओं और पूंजीवाद का विकास साथ-साथ हुआ। सामन्तवाद के अन्तर-विरोधों से पूंजीवाद का उदय हुआ।

पूंजीवाद का मूल तत्त्व निजी स्वामित्व पर आधारित विनिमय-अर्थ-व्यवस्था है जिसमें उत्पादन-साधनों के स्वामी निजी उद्यम के आधार पर लाभ कमाने के उद्देश्य से आर्थिक क्रियाओं का संचालन करते हैं। इस व्यक्तिगत निजी स्वामित्व पर आधारित व्यवस्था में संगठित समाज विकेन्द्रित आर्थिक निर्णयों और क्रियाओं में न्यूनतम हस्तक्षेप करता है। परन्तु पूंजीवाद के विकसित स्तर में राज्य का हस्तक्षेप बढ़ जाता है।

पूंजीवाद लघु-वस्तु उत्पादन व्यवस्था से भिन्न है। यहाँ उत्पादन-साधनों पर एक अल्पसंख्यक वर्ग का अधिकार होता है। जनसंख्या का बहुसंख्यक वर्ग अपने श्रम के अतिरिक्त भौतिक उत्पादन के साधनों से विहीन होता है। साधन-सम्पन्न पूंजीपति वर्ग उत्पादन-प्रक्रिया का संचालन करता है। अन्य साधनों के साथ श्रमिकों से उनका श्रम खरीदकर बाजार की माँग को पूरा करने के लिए उत्पादन किया जाता है। उत्पादन को बेचकर मुनाफा कमाना पूंजीपति वर्ग का ध्येय होता है। बाजार की माँग को जितनी खूबी के साथ पूंजीपति पूरा करेंगे, उतना ही उनका मुनाफा बढ़ेगा। अधिकतम लाभ कमाने के उद्देश्य से उत्पादन-लागत को भी न्यूनतम रखने का प्रयास किया जायेगा।

श्रमिक-वर्ग उत्पादन-प्रक्रिया में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हुए भी पूंजीवाद में आर्थिक-सामाजिक शक्ति से वंचित

हो जाता है क्योंकि पूंजीपति वर्ग के हाथ में शक्ति का संचयन हो जाता है। वितरण-व्यवस्था में भी श्रमिक का शोषण होता है। आर्थिक अधिशेष पूंजीपति वर्ग के हाथ में बढ़ता जाता है।

विभिन्न पूंजीपति आर्थिक सत्ता तथा अधिशेष पर अधिकार के लिए प्रतियोगितापूर्ण संघर्ष में लगे रहते हैं। छोटी-छोटी आर्थिक इकाइयों तथा अनेक स्वतन्त्र पूंजीपतियोंवाली अर्थव्यवस्था में पूर्ण प्रतियोगिता के नियमों के आधार पर आर्थिक शक्तियों का सन्तुलन प्राप्त होता है। तकनीकी प्रगति, उत्पादन-तरीकों में सुधार, नये उत्पादों का प्रचलन, नये भूभागों की खोज, कच्चे माल के नये प्रयोग तथा सस्ते साधनों की खोज, नये तथा व्यापक निवेश द्वारा आर्थिक क्रियाओं का प्रसार, विश्वव्यापी व्यापार-व्यवस्था के उदय तथा पूंजीपति वर्ग द्वारा अधिकाधिक मुनाफे की प्राप्ति और फलस्वरूप इन विकासकारी क्रियाओं के नये क्रम का विस्तार पूंजीवाद के अन्तर्गत होता रहता है। सामाजिक उत्पादन-शक्तियाँ अभूतपूर्व रूप से विकसित होती हैं। सामन्तवादी अर्थव्यवस्थाओं के विकासावरोध के बाद एक नये गतिमय आर्थिक दौर का साक्षात्कार पूंजीवाद के अन्तर्गत होता है।

परन्तु पूंजीवादी आर्थिक विकास के अपने अन्तर्हित परिणाम होते हैं। पूंजीवाद की विकेन्द्रित निर्णय-व्यवस्था में विभिन्न आर्थिक निर्णयों में ताल-मेल बाजार की प्रक्रियाओं द्वारा निर्णयों को अमली जामा पहनाने के पश्चात् ही लाया जा सकता है। परन्तु इन निर्णयों को अमल में लाने में आर्थिक संसाधनों को एक विशिष्ट दीर्घकालिक रूप दिया जा चुका होता है। आर्थिक क्रियाओं की इस असयमिति के कारण उत्पादन प्रक्रिया में अराजकता, अपव्यय तथा असन्तुलन पैदा होता है। दूसरी ओर कुछ व्यवसाय अपनी सफलता के आधार पर विस्तृत होते रहते हैं। उनका लाभ तीव्र दर पर संचय तथा निवेश के विस्तार और तकनीकी प्रगति का स्रोत बनता है। इन विशाल इकाइयों तथा उनके विपुल साधनों की प्रतियोगिता में छोटी, कम साधनोंवाली इकाइयाँ ठहर नहीं पाती हैं। उत्पादन का स्तर भी बढ़ता है। इस तरह पूंजी तथा साधनों का केन्द्रीकरण होता है। प्रतियोगियों की संख्या कम हो जाती है तथा एकाधिकारात्मक प्रवृत्तियाँ पनपती हैं। पूंजीपतियों की प्रतियोगिता से छोटे कारीगर तथा किसान अपने स्वतन्त्र कार्य छोड़कर मजदूर-वर्ग में शामिल हो जाते हैं। श्रम की उत्पादिता तकनीकी प्रगति के कारण बढ़ती है। परन्तु मजदूरी की दर, श्रमिकसंघों के बावजूद भी, उत्पादिता-वृद्धि के समतुल्य नहीं हो पाती है। आर्थिक अधिशेष पूंजीपतियों के हाथ में बढ़ता जाता है। राज्य का आर्थिक जीवन में हस्तक्षेप तथा योगदान बढ़ता जाता है। आर्थिक उतार-चढ़ाव, मन्दी-तेजी, बेरोजगारी व मुद्रास्फीति का चक्र अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को भी प्रभावित करता है। कच्चे माल तथा बाजारों की खोज उपनिवेशी व्यवस्था को जन्म देती है। एकाधिकार साम्राज्यवादी संघर्षों का प्रणेता बनकर विश्व-युद्धों का जनक

बनता है । पूँजीवाद का संकट तथा संक्रमण सामाजिक उत्पादन-शक्तियों तथा सामाजिक उत्पादन सम्बन्धों के बीच पनपी गहरी खाई का ही प्रतिबिम्ब है। वर्ग-व्यवस्थापूर्ण पूँजीवादी व्यवस्था मूलत: एक प्रतिभावी समाज व्यवस्था है । इसके मूलभूत अन्तर्विरोध इसके विकास के रूप और गति को प्रभावित तथा निर्धारित करते हैं ।

पूँजीवाद एक विश्वव्यापी व्यवस्था है । पिछली शताब्दी इसके चरम विकास की शताब्दी रही है । इसी बीच कई देश पूँजीवाद को पीछे छोड़कर समाजवादी अर्थव्यवस्था के पथ पर अग्रसर होते रहे हैं। जहाँ कुछ देश अपने अन्तर्विरोधों के बावजूद पूँजीवाद के अन्तर्गत द्रुत आर्थिक विकास प्राप्त करने में सफल हुए हैं, वहाँ अनेक अल्पविकसित देश पूँजीवादी विकास की विश्वव्यापी प्रक्रिया के फल-स्वरूप अपनी आज की अर्धविकसित द्वैतपूर्ण स्थिति में फँस गये हैं। पूँजीवाद अपने प्रारम्भिक चरणों से बहुत दूर करीब चार शताब्दियों की यात्रा पूरी कर आज एक बहुत बदले हुए रूप में विद्यमान है । उसकी यह विकास-प्रक्रिया अन्ततः किस तरह पूँजीवाद की अन्य पिछली सामाजिक-आर्थिक व्यवस्थाओं की भाँति इतिहास की एक मंजिल मात्र रहने देगी जहाँ यह निश्चितप्राय है, वहाँ इस प्रक्रिया का आज ही पूरी तरह स्वरूप-निर्धारण कर सकना वैज्ञानिक दृष्टि से सम्भव नहीं है ।

capitalistic production (कैपिटलिस्टिक प्रोडक्शन) : पूँजीवादी उत्पादन ।

वह उत्पादन जो पूँजीवादी सिद्धान्तों के आधार पर संगठित तथा संचालित किया जाता है अर्थात् वह उत्पादन जहाँ पूँजी तथा अन्य उपकरण निजी स्वामित्व में होते हैं और मजदूरी के बदले प्राप्त श्रम उन उपकरणों व कच्चे माल का प्रयोग कर जो उत्पाद तैयार करते हैं, वे उत्पाद पूँजीपति की सम्पत्ति होते हैं । इन उत्पादों की बाजार में बिक्री करके पूँजीपति मुनाफा कमाते हैं ।

कभी-कभी पूँजी के प्रयोग द्वारा किये जानेवाले उत्पादन को पूँजीवादी उत्पादन कहा जाता है । परन्तु भौतिक साधन के रूप में पूँजी हर उत्पादन-प्रक्रिया में मौजूद रहती है । अतः यह अर्थ बेतुका-सा प्रतीत होता है ।

Capitalist Farming (कैपिटलिस्ट फार्मिंग) : पूँजीवादी खेती ।

पूँजीवादी उत्पादन का विशेष रूप । इसमें खेती की जमीन, उपकरण, साज-सामान तथा चल पूँजी निजी स्वामित्व में होती है और मजदूरी पर रखे श्रमिक कृषि-कार्य करते हैं ।

जब भूमि का वितरण बहुत असमान होता है और गैर कृषि क्षेत्रों में पूँजीवाद का प्रचलन बढ़ जाता है, तब कृषि में भी सामली खेती या कृषक-स्वामित्व खेती के स्थान पर पूँजीवादी खेती का प्रचलन बढ़ने लगता है। भूमिहीन लोग तथा बहुत कम जोतवाले किसान बड़े भूमि-पतियों के खेतों पर खेती करने लगते हैं । खेती के संचालन हेतु भी संयुक्त पूँजी कम्पनियाँ बनने लगती हैं । इस खेती में धीरे-धीरे पूँजी-प्रधान उत्पादन तरीकों का प्रयोग बढ़ता रहता है और उत्पादन बाजार-शक्तियों के अनुरूप होता है ।

पूँजीवादी खेती से सम्पत्ति और आय की असमानताएँ बढ़ेंगी तथा खेती में श्रम के लिए रोजगार के अवसर कम होंगे।

capitalist mode of production (कॅपिटलिस्ट मोड ऑफ प्रोडक्शन) : पूँजीवादी उत्पादन-व्यवस्था।

कार्ल मार्क्स की उत्पादन व्यवस्था की अवधारणा के अनुसार मानव समाज अनेक प्रकार की उत्पादन-व्यवस्थाओं के दौर से गुजरता है। इन उत्पादन-व्यवस्थाओं के क्रम में पूँजीवादी उत्पादन-व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वास्तव में मार्क्स ने अपनी अर्थशास्त्र-सम्बन्धी रचनाओं का बहुत बड़ा भाग इसी व्यवस्था के विश्लेषण पर लगाया है।

पूँजीवादी उत्पादन-व्यवस्था, उत्पादन-संसाधनों के निजी स्वामित्व पर आधारित, पूँजीपति और श्रमिक-वर्ग के उत्पादन-सम्बन्धों एवं अति उन्नत उत्पादन शक्तियों वाली वस्तु-उत्पादन व्यवस्था है। वर्ग-विभेद मूलक व्यवस्था होने के कारण इसे प्रति-रोधी उत्पादन-व्यवस्था कहा जाता है।

देखिए : modes of production, capitalistic production

capital levy (कॅपिटल लेवी) : पूँजी-कर।

व्यक्तिगत सम्पत्ति पर लगाया गया कर। यह व्यावसायिक संस्थाओं तथा अन्य संस्थानों पर भी लगाया जा सकता है। विशेष परिस्थितियों में केवल एक बार चुकाया जाने वाला पूँजी-कर भी लगाया जा सकता है। पूँजी-कर पड़नेवाले आर्थिक प्रभावों की दृष्टि से प्रायः सम्पत्ति कर जैसा ही होता है।

देखिए : wealth tax

capital market (कॅपिटल मार्केट) : पूँजी-बाजार।

वह बाजार जहाँ मध्यकालिक और दीर्घकालिक ऋणों का लेनदेन होता है। व्यावसायिक फर्मों को उद्योग और व्यवसाय चलाने के लिए अपेक्षाकृत लम्बी अवधि के लिए पूँजी की जरूरत होती है जिससे स्थायी निवेश किया जा सके। यह पूँजी शेयर, ऋणपत्र आदि जारी करके या अपनी आरक्षित निधि से प्राप्त की जा सकती है। फर्म द्वारा जारी किये गये शेयर को आम जनता, बीमा कम्पनियाँ निवेश-न्यास या यूनिट ट्रस्ट खरीदते हैं। सरकार और स्थानीय स्वायत्त संस्थाएँ बॉण्ड आदि के द्वारा पूँजी प्राप्त करती हैं। यह बाजार उन संस्थाओं, व्यक्तियों और फर्मों का समूह है, जिनके जरिये बचत-राशि और अर्थव्यवस्था की अधिशेष-निधि मध्यावधि ऋण या दीर्घावधि निवेश के लिए वाणिज्य, उद्योग, स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं, देश या विदेश की सरकारों को दी जाती हैं।

पूँजी-बाजार के विपरीत मुद्रा-बाजार में अल्पकालिक ऋणों का लेन-देन होता है।

देखिए : money market

capital movement (कॅपिटल मूवमेण्ट) : पूँजी-संचलन।

एक देश से दूसरे देश में पूँजी का जाना। इस तरह के संचलन दो प्रकार के होते हैं : (क) दूसरे देशों में निवेश के लिए पूँजी का आना-जाना, और (ख) सट्टे के लिए पूँजी का अल्पकालिक आयात-निर्यात।

दूसरे देशों में निवेश के लिए पूँजी

भेजने पर भुगतान-सन्तुलन उसी तरह प्रभावित होता है जिस तरह कि आयातित माल के लिए भुगतान के कारण होता है। इस संचलन के परिणामस्वरूप प्राप्त होनेवाला व्याज और लाभांश पूँजी भेजनेवाले देश की 'अदृश्य आय' कहलाते हैं।

पूँजी के अल्पकालिक संचलन का उद्देश्य ऊँची दर पर व्याज प्राप्त करना या मुद्रा के मूल्य ह्रास से पूंजी को बचाना होता है। ऐसा तभी किया जाता है जबकि देश के सामने भुगतान-सन्तुलन सम्बन्धी संकट होता है। इस प्रकार की पूँजी को 'हॉट मनी' या 'उत्प्रवाही मुद्रा' कहते हैं। चालू खाते के भुगतान-सन्तुलन का हिसाब लगाने के बाद पूँजी-संचलन को ध्यान में रखकर चालू और पूँजी-खाते के भुगतान-सन्तुलन का हिसाब लगाया जाता है।

देखिए : hot money
capital flight

capital-output ratio (कैपिटल आउटपुट रेशिओ) : पूँजी-उत्पादन अनुपात, पूँजी-निर्गत अनुपात।

निवेश की मात्रा में हुई वृद्धि और उसके परिणामस्वरूप उत्पादन मात्रा में होनेवाली वृद्धि का सम्बन्ध। उत्पादन-मात्रा में एक इकाई अतिरिक्त वृद्धि लाने के लिए पूंजी की जितनी मात्रा की आवश्यकता होती है, उसे 'पूँजी-उत्पादन' या 'पूँजी-निर्गत अनुपात' कहते हैं। यह अनुपात जितना ही कम होगा, अर्थात् उत्पादन की मात्रा में एक इकाई अतिरिक्त वृद्धि के लिए पूंजी की जितनी ही कम मात्रा की आवश्यकता होगी, पूँजी उतनी ही अधिक उत्पादक ठहरेगी। पूँजी-निर्गत अनुपात की गणना काफी दुरूह एवं विवादास्पद प्रक्रिया है। पूँजी की गणना की कठिनाइयाँ ही इसका मूल कारण है। यह अनुपात एक फर्म, उद्योग, क्षेत्रक, प्रदेश या समग्र अर्थव्यवस्था के लिए फैलाया जा सकता है।

पूँजी-निर्गत अनुपात सदा समान नहीं रहता। विकास के विभिन्न चरणों में यह अलग-अलग होता है। शुरू में यह अनुपात अधिक और बाद में कम होता है। इसी प्रकार विकसित देशों में पूंजी-उत्पादन अनुपात कम और विकासशील देशों में अपेक्षाकृत अधिक होता है।

पूँजी-निर्गत अनुपात की सही जानकारी आयोजन के लिए बहुत आवश्यक है। राष्ट्रीय आय में वृद्धि के लक्ष्य को ध्यान में रखकर इस अनुपात के आधार पर ही निवेश की मात्रा निर्धारित की जाती है।

capital stock (कैपिटल स्टॉक) : पूँजी-भण्डार, पूंजी स्टॉक।

किसी समय-विशेष पर पूंजी का विद्यमान भण्डार। यह अवधारणा एक व्यक्ति, फर्म, उद्योग, क्षेत्र, प्रदेश या समग्र अर्थव्यवस्था के सम्बन्ध में लागू की जा सकती है। जब सारी अर्थव्यवस्था अथवा किसी समूह के पूँजी-भण्डार की गणना की जाती है, तब उस गणना में ऐसी व्यक्तिगत पूँजी को शामिल नहीं किया जाता जो किसी एक व्यक्ति की परिसम्पत्ति हो तथा उसी समूह के किसी दूसरे व्यक्ति की देनदारी। पूँजी-भण्डार की अवधारणा के सम्बन्ध में एक बहुत विवादास्पद बात यह है कि किन कीमतों

पर पूंजी-पदार्थों का मूल्यांकन किया जाये। स्थायी पूंजी एक दीर्घकालिक प्रयोग-वाली वस्तु होती है और निर्माणाधीन वस्तुएँ कुछ समय बाद अन्तिम वस्तुओं का रूप धारण कर लेती हैं। अतः किसी कालावधि में इसके भण्डार का आगणन करने पर एक ही वस्तु को बार-बार गिनना पड़ेगा तथा कुछ पूंजी-वस्तुओं की गणना नहीं हो पायेगी। फलस्वरूप पूंजी-भण्डार की अवधारणा एक समय-बिन्दु से सम्बन्धित होती है। उदाहरण के लिए यह कहना या पूछना कि १९७० में किसी का पूंजी-स्टॉक क्या था, निरर्थक है। सही प्रश्न यह होगा कि ३१ दिसम्बर १९७० अथवा किसी एक दिन पूंजी-स्टॉक कितना था।

देखिए : capital

capitation tax (कैपिटेशन टैक्स) : प्रतिव्यक्ति कर।

यह एक स्थानीय कर है जो निश्चित राशि तय करके हर वयस्क पर लगाया जाता है। निर्धन व्यक्तियों एवं विकलांगों को इस कर से सामान्यतः मुक्त रखा जाता है। कई जगह ऐसे करदाता ही मत देने एवं कतिपय सुविधाएँ प्राप्त करने के अधिकारी होते हैं। इस कर का स्वरूप व्यक्ति-कर (पोल टैक्स) के समान होता है।

देखिए : poll tax

carrying cost (कैरिइंग कॉस्ट) : वहन लागत।

अमौद्रिक परिसम्पत्तियों का समय के साथ मूल्य ह्रास होता है। इनके रखने में लागत आती है। इनकी सुरक्षा और सँभाल की व्यवस्था करनी पड़ती है। इनसे इनका छीजन भी होता है। ये सब लागतें 'वहन लागत' कहलाती हैं। केन्स आदि अर्थशास्त्रियों ने परिसम्पत्तिअधिमान तथा निजी ब्याज-दर की अवधारणा का प्रतिपालन करते हुए इस अवधारणा का प्रचलन किया।

देखिए : own rate of interest

cartel (कार्टेल) : उत्पादक संघ, कार्टेल।

स्वतन्त्र फर्मों के सम्मिलन का एक रूप। कई स्वतन्त्र फर्में कभी-कभी अपने सामूहिक हित में समान नीति अपनाने के लिए आपस में समझौता करती हैं। ऐसा करने पर भी वे अपने स्वतन्त्र अस्तित्व को बनाये रखती हैं। समझौते के फलस्वरूप उनका एक सामूहिक संगठन बनता है जिसे 'उत्पादक संघ' अथवा 'कार्टेल' कहते हैं।

उत्पादक संघ के सदस्य-फर्मों के बीच वस्तुओं की कीमतों, बिक्री, कुल उत्पादन में प्रत्येक फ़र्म का भाग, बिक्री के भौगोलिक क्षेत्र, आदि के सम्बन्ध में सहमति होती है। दूसरे शब्दों में, सारे सदस्य-फर्म सर्वसम्मत कीमतों पर अपने माल को बेचते हैं। यह पहले से ही तय कर लिया जाता है कि सदस्य-फ़र्म कितना माल उत्पादित करेंगे। उनके बीच देशी और विदेशी बाज़ार का विभाजन कर दिया जाता है जिससे कि वे अपना माल पूर्व-निर्धारित बाज़ार में ही बेचें। इस प्रकार बाज़ार में कार्टेल के सदस्यों के बीच प्रतियोगिता नहीं होती और वे एकाधिकारी रूप धारण कर लेते हैं। परिणामस्वरूप वे सामान्यतः अपने माल को ऊँची कीमतों पर बेचते हैं। अतः कार्टेल को, संक्षेप में,

एक केन्द्रीय विक्रय संगठन कहा जा सकता है।

कार्टेल का उदय सर्वप्रथम जर्मनी में दो महायुद्धों के बीच के काल में हुआ था।

cash (कैश) : नकदी, रोकड़।

किसी व्यक्ति या फर्म के पास नोट और सिक्कों की जो कुल राशि होती है, उसे रोकड़ या नकदी कहते हैं। इस नकदी में बैंक के चालू खाते में जमा राशि को भी शामिल किया जा सकता है क्योंकि माँग करने पर यह तुरन्त उपलब्ध हो सकती है। बैंक के लिए नकदी के अन्तर्गत उसके पास पड़े नोट और सिक्कों के अलावा केन्द्रीय बैंक में इसकी जमा रकम को भी शामिल किया जाता है।

cash discount (कैश डिस्काउण्ट) : नकदी बट्टा।

प्रायः नकद भुगतान करने पर किसी वस्तु की कीमत में जो थोड़ी छूट (निश्चित राशि के रूप में या किसी विशेष अनुपात के हिसाब से) दी जाती है, इसे नकदी बट्टा कहते हैं। इस बचत या सुविधा के कारण क्रेता नकद भुगतान करने को अभिप्रेरित होते हैं और इस प्रकार विक्रेता को अपनी राशि शीघ्र प्राप्त हो जाती है।

cash flow (कैश फ्लो) : नकदी प्रवाह।

लाभ और मूल्य ह्रास छूट का जोड़। कुल नक़दी प्रवाह में अंशधारियों का भाग भी शामिल रहता है। जब इसमें से 'अंशधारियों का हिस्सा निकाल दिया जाता है, तब शेष राशि निवल नकदी प्रवाह कहलाती है। यह कम्पनी की, आत्म सृजित निधि होती है जो संयंत्र व मशीनरी के विस्तार और आधुनिकीकरण एवं कार्यकारी पूँजी के लिए प्रयोग में लाई जाती है।

cash ratio (कैश रेशिओ) : नकदी अनुपात।

वाणिज्य बैंक की आरक्षित नकदी राशि और कुल जमा-राशि का अनुपात।

हर वाणिज्य बैंक के सफलतापूर्वक कार्य करने के लिए आवश्यक है कि लोगों का उसमें पूर्ण विश्वास हो। दूसरे शब्दों में, जब भी कोई जमाकर्त्ता बैंक से अपनी जमा राशि निकालना चाहे, वह निकाल सके। बैंक जमाकर्त्ताओं के प्रति अपने दायित्व को ठीक से निभा सके और अपने में उनका विश्वास बनाये रखे, इसके लिए आवश्यक है कि बैंकों के पास उनकी माँग को पूरा करने के लिए पर्याप्त नकदी हो। अगर कोई बैंक शत-प्रतिशत जमा राशि को नकदी में रखे, तो वह मुनाफा बिलकुल नहीं कमा सकेगा। इसलिए दोनों उद्देश्यों—जमाकर्त्ताओं के विश्वास को बनाये रखने और अधिकतम मुनाफा कमाने—के बीच बैंक को सन्तुलन बनाये रखना पड़ता है।

अनुभव से मालूम होता है कि सब जमाकर्त्ता एक साथ अपनी सारी जमा-राशि बैंक से वापस लेने के लिए नहीं आते हैं। प्रतिदिन जमा राशि के एक बहुत ही छोटे हिस्से की माँग होती है। इसलिए बैंक कुल जमा राशि का एक हिस्सा ही नकदी रूप में सदा अपने पास रखते हैं। इस आरक्षित नकदी राशि और कुल जमा राशि के अनुपात को 'नकदी अनुपात' कहते हैं। सामान्यतया यह अनुपात कानून द्वारा निर्धारित

होता है। नकदी अनुपात कितना हो, यह अर्थव्यवस्था की स्थिति पर निर्भर होता है। जिस अर्थव्यवस्था में भुगतान प्रायः नकदी रूप में होता है और चैक द्वारा भुगतान कम होता है, वहाँ नकदी अनुपात ऊँचा होता है। ऐसी स्थिति प्रायः पिछड़े देशों में होती है। गृहयुद्ध, क्रान्ति, देश पर बाहरी आक्रमण आदि के फलस्वरूप भविष्य के प्रति अनिश्चितता या मुद्रास्फीति के फलस्वरूप मुद्रा के मूल्य में तेज़ी से गिरावट के कारण जमाकर्त्ता अपनी जमा पूँजी निकालने को असामान्य रूप से उद्यत हो जाते हैं। ऐसे समय में नकदी अनुपात को ऊँचा रखना पड़ता है।

नकदी अनुपात बैंक-ऋण की मात्रा को प्रभावित करता है। जहाँ नकदी अनुपात ऊँचा होता है, वहाँ ऋण का अनुपात अपेक्षाकृत कम होता है। नकदी अनुपात जितना ही कम होगा, बैंक-ऋण की मात्रा उतनी ही अधिक होगी। इसलिए नक़दी अनुपात को घटा-बढ़ाकर बैंक-ऋण की मात्रा और उसके द्वारा मुद्रा-बाजार एवं कीमतों को प्रभावित करने का प्रयत्न किया जाता है। इस प्रकार नक़दी अनुपात में परिवर्तन ऋण-नियन्त्रण का एक कारगर तरीका है।

casual labour (कैज़ुअल् लेबर) : अनियत श्रमिक।

ऐसे श्रमिक जिन्हें थोड़े समय के लिए कार्य पर लगाया जाता है और कार्यविशेष की समाप्ति पर उन्हें हटा दिया जाता है। ऐसे श्रमिकों को वे सब सुविधाएँ और लाभ नहीं मिलते जो स्थायी श्रमिकों को प्राप्त होते हैं। अतः अनियत श्रमिकों को सदा अपने अनिश्चित भविष्य की चिन्ता बनी रहती है। रोज़गार के सम्बन्ध में निश्चितता के अभाव के कारण इनको संगठित करना कठिन होता है और इनकी सौदाकारी शक्ति कमजोर होती है। साधारणतया ऐसे श्रमिकों के लिए कार्य की दशाएँ ठीक नहीं होतीं।

अनियत श्रम की अधिकता तब पायी जाती है, जबकि माँग की अपेक्षा श्रम की पूर्ति अधिक होती है और श्रम-संगठन कमज़ोर होते हैं। कई देशों में ऐसे श्रम के सम्बन्ध में कानूनी व्यवस्था है और न्यूनतम मजदूरी तथा कार्य की दशाएँ निर्धारित कर दी गयी हैं।

साधारणत: अनियत श्रमिकों की कोटि में शारीरिक कार्य करने वाले श्रमिकों को शामिल किया जाता है।

ceiling on urban property (सीलिंग ऑन अरबन प्रापरटी) : शहरी सम्पत्ति की सीमाबन्दी।

शहरी सम्पत्ति के स्वामित्व की उच्चतम सीमा का निर्धारण। आय और सम्पत्ति के वितरण में समानता लाने के उद्देश्य से इस नीति का सहारा लिया जाता है। यह सीमाबन्दी विभिन्न रूप में हो सकती है। उच्चतम सीमा-निर्धारण के आधार के लिए भूमि के आकार को जिस पर जायदाद बनी है या निवास-स्थान को अथवा सम्पत्ति के कुल मूल्य को लिया जा सकता है। निर्धारित सीमा से अधिक रखना ग़ैर-कानूनी बना दिया जाता है।

ceiling price (सीलिंग प्राइस) : उच्चतम निर्धारित कीमत।

कीमतों की अधिकतम सीमा का निर्धारण। इसके अन्तर्गत कीमतों की

उच्चतम सीमा निर्धारित कर दी जाती है और उन्हें इस निर्धारित सीमा से ऊपर नहीं जाने दिया जाता। साधारणतया युद्धकालीन परिस्थितियों में निर्वाह-व्यय में वृद्धि को रोकने एवं शान्तिकाल में मुद्रा-स्फीति के फलस्वरूप बढ़ती हुई कीमतों पर रोक लगाने के लिए इस नीति का व्यवहार किया जाता है।

census of population (सेन्सस् ऑफ पॉपुलेशन) : जनगणना।

समयविशेष में किसी देश या क्षेत्र की जनसंख्या की गणना। सामान्यत: जनगणना नियमित रूप से एक निश्चित अन्तराल (प्राय: हर दसवें वर्ष) के उपरान्त शासन द्वारा की जाती है। जनगणना का उद्देश्य न सिर्फ देश या क्षेत्रविशेष के निवासियों की कुल संख्या का पता लगाना होता है, बल्कि उनकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति के सम्बन्ध में भी सूचनाएँ इकट्ठी की जाती हैं। आयु, वैवाहिक स्थिति, बच्चों की संख्या, व्यवसाय, आय, आवास-स्थान, भाषा, शिक्षा, जन्म-दर, मृत्यु-दर, आवास-प्रवास, जनसंख्या की वृद्धि की दर आदि के सम्बन्ध में आँकड़े प्राप्त किये जाते हैं। नमूना-सर्वेक्षण के विपरीत, जनगणना के अन्तर्गत हर परिवार और व्यक्ति के सम्बन्ध में सूचनाएँ इकट्ठी की जाती हैं।

जनसंख्या से देश की सामाजिक और आर्थिक प्रगति का सही ज्ञान होता है तथा योजनाओं और उनके लक्ष्य-निर्धारण में सहायता मिलती है।

जनगणना की तरह ही पशु-गणना होती है, जिसमें विभिन्न प्रकार के मवेशियों की संख्या, उम्र, उनसे प्राप्त होनेवाले उत्पादों तथा आय आदि के सम्बन्ध में नियमित रूप से सूचनाएँ प्राप्त की जाती हैं।

विभिन्न उद्योगों की गणना के अन्तर्गत हर कारखाने के बारे में उत्पादन, पूँजी, काम के घण्टे, यन्त्र-क्षय, मुनाफा, लाभांश, मजदूरों की संख्या, कच्चे माल आदि से सम्बन्धित आँकड़े प्राप्त किये जाते हैं।

जैसाकि स्पष्ट है, गणना के अन्तर्गत किसी समूह या समुच्चय की प्रत्येक इकाई का अध्ययन किया जाता है और फिर उसके आधार पर उस समुच्चय के सम्बन्ध में निष्कर्ष निकाले जाते हैं।

census of production (सेन्सस् ऑफ प्रोडक्शन) : उत्पादन-गणना।

देश के प्रत्येक उद्योग के वास्तविक उत्पादन के परिमाणमूलक आँकड़े तैयार करना। यह कार्य सर्वप्रथम इंगलैंड में एक सरकारी एजेंसी बोर्ड ऑफ ट्रेड ने आरम्भ किया था। प्रत्येक उद्योग—कृषि, खानों, कारखानों—में कोयला, लोहा, गेहूँ, जौ, आलू, दूध, मोटरगाड़ियाँ, जूते, सूती कपड़ा, ऊनी कपड़ा, रासायनिक पदार्थ आदि का कितनी संख्या या मात्रा में उत्पादन किया गया, उसके आँकड़े एकत्र किये जाते हैं।

आज के युग में दूसरे विश्वयुद्ध के पश्चात् योजनाबद्ध विकास की प्रक्रिया अपनाने के लिए सभी देशों में ऐसे प्रयास किये जा रहे हैं और योजनाबद्ध विकास के लिए उत्पादन-गणना को एक ठोस आधार माना जाने लगा है।

central bank (सेन्ट्रल बैंक) : केन्द्रीय बैंक।

किसी देश की मौद्रिक एवं वित्तीय

व्यवस्था की केन्द्रीय संस्था, जो पूरी तरह या आंशिक रूप से राजकीय स्वामित्व में होती है और अनिवार्यतः शासकीय नियन्त्रण में काम करती है।

केन्द्रीय बैंक का मुख्य कार्य राज्य की मुद्रानीति का कार्यान्वयन करना होता है। यह मुद्रा का प्रचलन, उसकी मात्रा पर नियन्त्रण, उधार का नियमन, वाणिज्य बैंकों का नियन्त्रण, ब्याज-दर का निर्धारण तथा नियन्त्रण आदि कार्य करता है। पूंजी-बाजार तथा मुद्रा-बाजार का विकास तथा नियमन करना भी इसका काम है। यह विदेशी मुद्रा तथा उससे सम्बन्धित काम भी करता है। यह शासकीय बैंक भी है। अतः सरकारी कोष, हिसाब तथा राष्ट्रीय ऋण से सम्बन्धित काम भी केन्द्रीय बैंक का है।

केन्द्रीय बैंक को मुद्रा जारी करने का एकाधिकार होता है। यह सब वाणिज्य बैंकों का भी बैंक होता है। उनके कार्यों, उधार की मात्रा तथा शर्तों, नकदी अनुपात आदि पर नियन्त्रण रखता है। जरूरत पड़ने पर उनको यह उधार देता है और उनकी रिजर्व निधि अपने पास जमा रखता है। यह सरकारी प्रतिभूतियों का लेन-देन करता है, सरकार को आर्थिक प्रश्नों पर सलाह देता है तथा आर्थिक स्थिति का अध्ययन कर आर्थिक नीति के निर्धारण में सहायता करता है।

centralisation (सेन्ट्रलाइजेशन) : केन्द्रीकरण।

अर्थव्यवस्था के संगठन तथा प्रवन्ध का वह रूप जिसमें केन्द्रीय सत्ता (राज्य, समाज का प्रतिनिधि, संगठन या राज्य की कोई इकाई) सब आर्थिक निर्णय लेने का अधिकार अपने हाथ में केन्द्रित कर लेती है, तथा बाकी सब इकाइयां इस केन्द्रीय इकाई द्वारा किये गये निर्णयों को कार्यान्वित करती हैं।

इस तरह का पूर्ण केन्द्रीकरण वास्तव में पाया जाना असम्भव है। इसके कई कारण हैं। पहले तो सभी निर्णय केन्द्र द्वारा लिये जाने सम्भव नहीं हैं। कार्यान्वयन के समय कुछ निर्णय निम्नस्तरीय इकाइयों को लेने ही पड़ेंगे। दूसरे, ये केन्द्रीय निर्णय निम्न स्तर से पहुँचाई गई सूचनाओं पर निर्भर करते हैं। सूचना ऊपर पहुँचानेवाले अपनी सुविधा तथा हित के अनुरूप सूचनाओं को मोड़ देंगे। तीसरे, सूचना पहुँचने, उनके आधार पर निर्णय लेने, निर्णय संवहित करने आदि में इतना समय लगता है कि बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार केन्द्रीय स्तर पर निर्णयों में यथाशीघ्र परिवर्तन लाना सम्भव नहीं रहता। जब तक ये निर्णय लिये जायेंगे, तब तक तो हालत ही बदल जायेगी।

परन्तु इस पूर्ण स्तर से कम अंशों में केन्द्रीकरण सम्भव है। सामाजिक उद्देश्यों के लिए समष्टिगत चरों के सम्बन्ध में सारी अर्थव्यवस्था के स्तर पर उसके विकास, निकास की दर तथा उसके स्वरूप, चीजों की कीमत, मुद्रा, वित्त, विदेशी व्यापार, सामाजिक उपभोग, बचत तथा निवेश की मात्रा आदि विषयों का केन्द्रीकरण सम्भव है, परन्तु व्यक्तिगत विषयों का किस सीमा तक तथा किस रूप में केन्द्रीकरण किया जा सकता है, यह अनेक तत्त्वों पर निर्भर करता है।

पूंजीवादी प्रणाली में राज्य का बढ़ता हुआ कार्यक्षेत्र केन्द्रीकरण की बढ़ती हुई

आवश्यकता का द्योतक है। समाजवादी अर्थव्यवस्था में तो प्रणालीगत तत्त्वों के कारण ही केन्द्रीकरण का विशिष्ट स्थान होता है। उत्पादन-साधनों का सामाजिक स्वामित्व, सामाजिक नियन्त्रण तथा प्रवन्ध केन्द्रीकरण को अनिवार्य कर देता है। परन्तु केन्द्रीकरण के क्षेत्र, विषय-विस्तार तथा सीमा के वारे में समाजवाद का कोई पूर्वाग्रह नहीं होता है।

central planning (सेन्ट्रल प्लानिंग) : केन्द्रीय आयोजन ।

स्पष्ट सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सचेतन एवं सामूहिक रूप से किसी केन्द्रीय प्रतिनिधि संस्था के तत्त्वावधान में अर्थव्यवस्था की आर्थिक गतिविधियों के वारे में निर्णय लेना और उनके कार्यान्वयन की व्यवस्था करना केन्द्रीय आयोजन कहलाता है। इस प्रकार आयोजन द्वारा संगठित व संचालित अर्थव्यवस्था को योजनावद्ध अर्थव्यवस्था का नाम दिया जाता है। समाजवादी अर्थव्यवस्थाएँ अनिवार्य रूप से केन्द्रीय आयोजन का सहारा लेती हैं। उत्पादन-साधनों के सामाजिक स्वामित्व, नियन्त्रण तथा उनके सामूहिक हित में प्रयोग करने की आवश्यकता के कारण इन अर्थव्यस्थाओं को योजनावद्ध रूप से संचालित करना जरूरी हो जाता है। केन्द्रीय आयोजन अर्थव्यवस्था की सव इकाइयों के योजनावद्ध संचालन मात्र को ही नहीं कहते हैं, क्योंकि ऐसा करने में इन इकाइयों के आपसी सम्वन्ध (जो कि आर्थिक दृष्टि से वहुत महत्त्वपूर्ण हैं) तो अनायोजित ही रह जाते हैं। आयोजन का प्रत्याशित घटना-पूर्व सन्तुलन प्राप्त करना होता है। वाजार में लेन-देन तथा स्वायत्त रूप से आर्थिक इकाइयों का परिचालन केवल घटनोत्तर सन्तुलन देने की दिशा में काम का हो सकता है, परन्तु घटनापूर्व सन्तुलन प्रदान करने में पूर्णतया असमर्थ होता है। केन्द्रीय आयोजन ही इस प्रकार की सन्तुलित कार्यप्रणाली का साधन हो सकता है।

गैर-समाजवादी अर्थव्यवस्थाएँ आर्थिक नियमन तथा नियन्त्रण का सहारा लेकर कुछ अंशों तक केन्द्रीय आयोजन को अपना सकती हैं। व्यापक समष्टिगत समस्याओं के समाधान के लिए विकसित तथा अविकसित दोनों प्रकार की पूँजीवादी अर्थव्यवस्थाएँ केन्द्रीय आयोजन का सहारा लेने लगी हैं। विशेषतः विकासोन्मुख अर्थव्यवस्थाओं में आयोजन के अपनाने का पक्ष बहुत प्रवल है। निवेश में वड़ी मात्रा में वृद्धि, संरचनात्मक तथा संस्थागत परिवर्तन, सामाजिक स्थायी पूँजी में भारी वृद्धि आदि कार्यों के अल्पविकसित देशों में सुचारु रूप से सम्पन्न करने के लिए केन्द्रीय आयोजन एकमात्र तरीका है।

देखिए : centralisation
: command economy
planning
socialism

cess (सेस) : उपकर ।

सामान्य कर के साथ-साथ लिया जानेवाला कर। किसी विशेष वस्तु के उत्पादन को प्रोत्साहन देने के लिए उसकी प्रतिरूप अन्य वस्तु पर लगाया जानेवाला कर, अथवा किसी विशेष प्रयोजन को पूरा करने के निमित्त लगाया जानेवाला

अथवा भूमिसुधार के व्यय को पूरा करने के लिए भूमि-कर के अलावा लगाया गया कर उपकर कहलाता है। हमारे देश में खादी-उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए मिल के कपड़े पर प्रति मीटर कुछ अतिरिक्त उपकर लगाया जाता है जिसे खादी-उत्पादन को, प्रोत्साहन के रूप में, दिया जाता है।

ceteris paribus (सेटरिस पॅरिबस) : अन्य बातें पूर्ववत्।

लेटिन शब्द जिसका आशय अन्य बातों के पूर्ववत् बने रहने से है, अर्थात् अन्य विषयों में कोई परिवर्तन न हो। आर्थिक विश्लेषण की यह महत्त्वपूर्ण मान्यता है। इसका बहुत अधिक व्यवहार किया जाता है। इसका कारण यह है कि इस मान्यता के आधार पर अन्य बातों के पड़नेवाले प्रभाव को दूर रखकर किसी समस्या के एक विशेष पहलू का अलग से विश्लेषण करना सम्भव बन जाता है।

chain banking (चेन बैंकिंग) : शृंखला बैंकिंग।

वह बैंक-प्रणाली जिसमें बैंकों की बहुत-सी शाखाएँ होती हैं।

देखिए : branch banking

chain stores (चेन स्टोर्स) : शृंखला-स्टोर।

खुदरा व्यापार में लगी एक प्रकार का सामान बेचनेवाली एवं एक ही प्रबन्ध तथा स्वामित्व के अन्तर्गत आनेवाली बहुत-से स्थानों पर स्थित दुकानें। इन सब दुकानों का एक ही मुख्यालय से संचालन होता है। बड़े स्तर के कारोबार के लाभों के कारण इनकी औसत लागत कम होती है, विशेषतः बिक्री की अधिक मात्रा पर बंधी लागत के बँट जाने के कारण। ऐसी दुकानें थोक व्यापारी या उत्पादक भी खोला करते हैं। इस तरह वे अपने माल को बेचने के लिए विश्वस्त तथा बंधी कीमत वाले खुदरा विक्री-केन्द्रों की व्यवस्था करके तथा मध्यस्थों का मुनाफा समाप्त करके अपने व्यवसाय को सफल तथा कारगर बना सकते हैं।

changes in demand (चेन्जेज़ इन डिमान्ड) : माँग में परिवर्तन।

कीमतों में किसी प्रकार का परिवर्तन हुए बिना किसी वस्तु या सेवा की माँग में होनेवाली घट-बढ़। कीमतों में होनेवाली घट-बढ़ के साथ वस्तु या सेवा की माँग में होनेवाले परिवर्तन इससे भिन्न और अपेक्षाकृत अस्थायी होते हैं। माँग में परिवर्तन के लिए अनेक कारण जिम्मेदार हैं जैसेकि लोगों की रुचि या चलन में परिवर्तन, पुरानी वस्तुओं के स्थान पर बढ़िया किस्म की नयी वस्तुओं का प्रादुर्भाव, किसी देश की मुद्राराशि में परिवर्तन, लोगों की वास्तविक आय में परिवर्तन, जनसंख्या में होनेवाले संख्यात्मक तथा गुणात्मक परिवर्तन, उपभोग की अन्य वस्तुओं की कीमतों में होनेवाले परिवर्तन जिससे पुरानी के स्थान पर नवीन वस्तुएँ सस्ती पड़ती हैं, व्यापार की भावी सम्भावनाएँ जो उत्पादक माल की माँग को प्रभावित करती हैं, कीमतों में प्रत्याशित परिवर्तन और कराधान में परिवर्तन की आशा या आशंका। किसी वस्तु या सेवा की माँग में इन अनेक प्रकार की बातों के प्रभाव से होनेवाले परिवर्तन से उस वस्तु या सेवा की कीमत में भी परिवर्तन होता है।

changes in supply (चेन्जेज़ इन सप्लाई) : पूर्ति में परिवर्तन।

कीमतों में किसी प्रकार का परिवर्तन हुए विना किसी वस्तु या सेवा की पूर्ति में घट-वढ़। यदि किसी वस्तु का उत्पादन पूर्ववत् रहे तो वाजार में कीमत अधिक होने पर, उसकी पूर्ति वढ़ जाती है और कम होने पर पूर्ति घट जाती है। किन्तु ये परिवर्तन भी माँग की भाँति अस्थायी होते हैं। पूर्ति में परिवर्तन से जो आशय है उसके कारण भिन्न हैं; जैसे, उत्पादन-तकनीक में परिवर्तन, उत्पादन-लागत में परिवर्तन, जलवायु में परिवर्तन, कराधान में परिवर्तन आदि। इन अनेक करणों के प्रभाव से किसी वस्तु की पूर्ति में होने-वाले परिवर्तनों से उस वस्तु की कीमतों में भी परिवर्तन होने की सम्भावना बनती है।

chartism (चार्टिज्म) : चार्टरवाद, चार्टिज्म।

श्रमिक वर्ग का 'जनता के चार्टर' (पीपुल्स चार्टर) के आधार पर राज-नीतिक सत्ता प्राप्त करने का १८३८ ई० में ब्रिटेन में चला आन्दोलन। मज़दूर वर्ग की स्थिति सुधारने के लिए राजनीतिक सत्ता प्राप्त करना आवश्यक समझा गया था। अधिकांश चार्टरवादी वैधानिक तरीके अपनाने के पक्ष में थे, लेकिन कुछ सदस्य लक्ष्य-प्राप्ति के लिए शारीरिक शक्ति के प्रयोग के लिए भी तैयार थे। यह आन्दोलन एक दशक के करीब चलकर मन्द पड़ गया।

cheap money (चीप मनी) : सस्ती मुद्रा, अल्प व्याज मुद्रा।

मुद्रा-नीति का एक विशेष रूप जिसमें वैंक-दर को घटाकर सारी अर्थव्यवस्था में व्याज-दरें निम्न स्तर पर लायी जाती हैं। इस नीति के सहारे अर्थव्यवस्था में मुद्रा-मात्रा का प्रसार किया जाता है। इससे प्रभावी माँग में वृद्धि होती है जिसके फलस्वरूप निवेश-प्रेरणा को वल मिलता है। दूसरी ओर नीची व्याज-दर निवेश-प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देती है। इस प्रकार आर्थिक क्रियाओं के स्तर को ऊपर उठाने तथा उनको विस्तारशील मार्ग पर प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से सस्ती मुद्रा अथवा अल्प व्याज मुद्रा-नीति को अप-नाया जाता है। मन्दी का प्रतिकार करने-वाली नीतियों में इस नीति का प्रमुख स्थान होता है।

सस्ती मुद्रा-नीति की मूल मान्यता यह है कि व्याज-दर कम करने से निवेश बढ़ता है। निवेश की दर व्याज-दर से प्रभा-वित होकर जिस सीमा तक वढ़ेगी, सस्ती मुद्रा की नीति उस सीमा तक सफल हो हो सकेगी।

cheque (चेक) : चेक।

बैंक-जमा को हस्तान्तरित करने का माध्यम। सामान्यतया जमाकर्ता अपनी बैंक-जमा को पूर्ण या आंशिक रूप में दूसरे को हस्तान्तरित करने के लिए कई तरीके अपनाता है, इनमें चेक द्वारा भुगतान अधिक लोकप्रिय है। आमतौर पर बैंक उन्हीं जमाकर्ताओं को चेक के प्रयोग की सुविधा देते हैं, जो उनके द्वारा निर्धारित न्यूनतम राशि से अधिक रकम बैंक में रखते हैं।

चेक को मुद्रा या कानूनी मुद्रा नहीं माना जाता है। इसे स्वीकार करने के लिए किसी को वाध्य नहीं किया जा सकता। कोई

व्यक्ति चेक द्वारा तभी भुगतान स्वीकार करता है, जबकि उसको विश्वास होता है कि चेक देनेवाले के बैंक-खाते में पर्याप्त धनराशि है।

चेक कई प्रकार के होते हैं : वाहक चेक, आदेशी चेक और रेखित चेक। वाहक चेकधारी को विना किसी पूछताछ के भुगतान मिल जाता है। आदेशी चेकधारी को बैंक में खाता रखनेवाले किसी व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षर प्रमाणित किये जाने पर भुगतान मिलता है। रेखित चेकधारी को अपने या किसी अन्य व्यक्ति के खाते में उसे जमा करना पड़ता है। इस चेक का भुगतान नकदी में नहीं किया जाता। चेक का यह सबसे सुरक्षित रूप है।

chronic unemployment (क्रॉनिक अनएम्पलायमेंट): दीर्घकालिक वेरोजगारी।

व्यापार-चक्र से सम्बन्धित अस्थायी वेरोजगारी, जो प्रभावी माँग के घटने से उत्पन्न होती है, के विपरीत लम्बी अवधि तक बनी रहनेवाली वेरोजगारी। इस वेरोजगारी के कारण अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित होते हैं, जैसेकि जनसंख्या के अनुपात में पूँजी की कमी, खेती पर अत्यधिक निर्भर अर्थव्यवस्था, उद्योग-धन्धों तथा गैर-कृषि रोजगार-अवसरों का अभाव, आदि। अल्पविकसित देशों में इस तरह की बेकारी वहुत पायी जाती है। इस वेरोजगारी का हल आर्थिक विकास के साथ जुड़ा होता है।

circular flow (सरकूलर फ्लो) : चक्रीय प्रवाह।

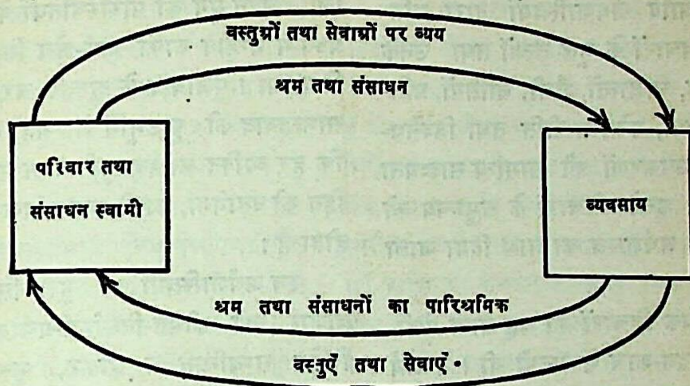
मुद्रा, वस्तुओं तथा सेवाओं का अर्थव्यवस्था के विभिन्न अंगों तथा क्षेत्रों में बार-बार आवर्तित प्रवाह।

अर्थव्यवस्था विभिन्न व्यक्तियों, परिवारों तथा व्यवसायों के आपसी सहयोग का संगठन है। फलस्वरूप इन सव घटकों में आर्थिक क्रियाओं से सम्वन्धित लेन-देन होते रहते हैं। आधुनिक अर्थव्यवस्थाओं में ये लेन-देन मुद्रा के माध्यम से होते हैं। परिवार तथा उत्पादन-साधनों के स्वामी व्यवसायों को श्रम तथा उत्पादन के संसाधन वेचते हैं। फलस्वरूप उन्हें मुद्रा-आय की प्राप्ति होती है। यह आय व्यवसायों तथा उद्योगों की उत्पादन-लागत होती है। व्यवसाय इन संसाधनों से वाजार में वेचने के लिए वस्तुएँ तथा सेवाएं उत्पादित करते हैं। ये वस्तुएँ तथा सेवाएं उपभोक्ता परिवारों को तथा अन्य व्यवसायों को वेच दी जाती हैं। इस प्रकार व्यवसाय लाभ-सहित अपनी लागत फिर से प्राप्त कर लेते हैं।

इस आय से वे फिर श्रम तथा अन्य संसाधन खरीद लेते हैं, वस्तुएं तथा सेवाएं उत्पादित करते हैं, संसाधन के वदले में लोगों को आय के रूप में भुगतान करते हैं, उत्पादित माल को वेचते हैं और फिर अपनी लागत तथा आय प्राप्त कर लेते हैं। इस प्रकार अर्थव्यवस्था में मुद्रा, संसाधनों तथा वस्तुओं और सेवाओं का चक्रीय आवर्त्ती प्रवाह वरावर चलता रहता है।

राज्य, वचत व निवेश, विदेशी व्यापार या मुद्रा-संचयन आदि वास्तविक पेचीदगियां शामिल करने पर भी इस चक्रीय क्रम की अवधारणा सही उतरती है। केवल इसकी जटिलता और बढ़ जाती है। इस अवधारणा की सहायता से आर्थिक क्रियाओं तथा उनके पारस्परिक सम्वन्ध को समझने में सहायता मिलती है। इसके

सरल रूप को निम्नांकित रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।



circulating capital (सरकुलेटिंग कैपिटल) : प्रचल पूँजी।

पूँजी का वह भाग जो उत्पादन-प्रक्रिया के एक चक्र के साथ समाप्त हो जाता है, अर्थात जिसका प्रयोग केवल एक उत्पादन-अवधि में ही होता है, वह प्रचल पूँजी कहलाता है। प्रचल पूँजी-वस्तुओं की पूरी कीमत अन्तिम तैयार वस्तुओं की कीमत में स्थानान्तरित हो जाती है। इस अवधारणा में मुद्रा (नकदी या बैंक खाते में जमा) भी शामिल की जाती है, क्योंकि अचल या स्थायी पूँजी-वस्तुएँ खरीदने के बाद भी व्यवसाय में कच्चे माल की खरीद, मजदूरी-भुगतान आदि के लिए मुद्रा की जरूरत होती है।

खुदरा व्यवसाय में प्रचल पूँजी के अन्तर्गत वस्तुओं का भण्डार, नकदी और दूसरों के ऊपर दावे आते हैं। जहाँ पर विक्री तेजी से होती है, वहाँ पर प्रचल पूँजी की मात्रा कम होती है। ऐसा आम तौर पर खुदरा सामान की दुकानों में होता है। इसके विपरीत जहाँ विक्री धीमी होती है वहाँ प्रचल पूँजी की मात्रा अधिक होती है। जो व्यवसायी उधार पर या स्थगित भुगतान पर माल नहीं बेचते हैं, उन्हें प्रचल पूँजी की कम मात्रा में जरूरत होती है। विनिर्माण उद्योग में प्रचल पूँजी के अन्तर्गत कच्चा माल, अर्धनिर्मित माल और नकदी आती है।

देखिए : fixed capital
working capital

classical economics (क्लासिकल इकॉनॉमिक्स) : संस्थापित अर्थशास्त्र, क्लासिकी अर्थशास्त्र।

ब्रिटेन में १७५०-१८५० ई० के बीच प्रसिद्ध अर्थशास्त्रियों, दार्शनिकों और विद्वानों ने आधुनिक अर्थशास्त्र की नींव रखी। उन्होंने अर्थशास्त्र की प्रसिद्ध अवधारणाओं, आर्थिक सिद्धान्तों और नीतियों का प्रतिपादन करते हुए आर्थिक साहित्य के अन्यतम ग्रन्थ रचे। इन अर्थशास्त्रियों के विचारों में विविधता के बावजूद एक बुनियादी एकता का तारतम्य है। एडम स्मिथ, डेविड रिकार्डो, टॉमस

मॉल्थस, रॉबर्ट टॉरेन्स, सीनियर, मैक-कुलॉक, जेम्स मिल, जॉन स्टुआर्ट मिल, बेन्थम आदि अर्थशास्त्रियों द्वारा प्रतिपातिद विचारों के मूल तत्त्वों तथा उनके दृष्टिकोण, सिद्धान्तों, शैली, नीतियों, प्रतिपाद्य विषयों, गवेषणा-रीति तथा विश्लेषणात्मक उपकरणों की सामान्य सादृश्यता के कारण इनके विचारों के समुच्चय को संस्थापित अर्थशास्त्र का नाम दिया जाता है।

आर्थिक विचारों की यह धारा पूँजीवाद के उदय-काल में पनपी थी। ये अर्थ शास्त्री एक तरह के समाज-सुधारक थे। इनके आर्थिक सिद्धान्तों तथा नीतियों ने बढ़ते हुए पूँजीवाद की समर्थक शक्तियों का पृष्टपोषण किया। राज्य का अत्यधिक हस्तक्षेप, व्यापार पर प्रतिबन्ध आदि पूँजीवाद तथा औद्योगीकरण के प्रतिकूल प्रभावों के स्थान पर राजकीय हस्तक्षेप-हीन, निर्बाध अर्थनीति तथा मुक्त व्यापार के समर्थक सिद्धान्त विकसित किये गये। उन्होंने पूँजीवादी पूँजी-निर्माण बढ़ानेवाली नीतियों का भी प्रतिपादन किया जिससे कि मुनाफा, बचत, निवेश तथा आर्थिक विकास को बढ़ावा मिल सके। इस प्रक्रिया में मजदूरी की न्यूनतम दर जैसे सिद्धान्त भी स्थापित किये गये जो श्रमिकों के हितों के प्रतिकूल ठहरते हैं।

वास्तव में संस्थापित अर्थशास्त्र को समझने के लिए इसे वाणिज्यवाद की राजकीय हस्तक्षेप नीति, सामन्तवादी जड़ता तथा मुक्त व्यापार-विरोधी नीति के खिलाफ प्रतिक्रिया के रूप में देखना चाहिए। पूँजी-निर्माण, औद्योगिक विकास तथा विश्वव्यापी व्यापार के प्रसार में ये नीतियाँ बाधक थीं। फिर भी ये अर्थशास्त्री रूढ़िवादी तथा अनुदार नहीं थे। राज्य के लिए अपने युग की परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में उन्होंने काफी कार्य-क्षेत्र निर्धारित किया था। पूँजीवाद के शुरू के चरणों में, सामन्तवाद की पृष्टभूमि में, यह मानना कि हर व्यक्ति का स्वस्फूर्त काम सामान्य हित को बढ़ायेगा, काफी स्वाभाविक प्रतीत होता है।

इन अर्थशास्त्रियों का मूल्य-सिद्धान्त बाजार की कीमत-निर्धारण-प्रणाली से विशेष सम्बन्धित न होकर, मूल्य के कारणों का, उसके मूल आधार का विश्लेषण है। अतः उसमें दार्शनिक तत्त्वों की पुट-सी है। हर व्यक्ति अपने हित का सर्वोत्तम ज्ञाता तथा संवर्धक है। विभिन्न विरोधी हितों में सामंजस्य बाजार की स्वतःचालित प्रक्रियाओं द्वारा बैठता है। वस्तुतः बाजार की निर्बाध प्रक्रिया निजी हित को सार्वजनिक हित के अनुकूल बनाती है। कराधान, सार्वजनिक सेवाओं, उपनिवेश-नीति, जनसंख्या आदि प्रश्नों पर भी क्लासिकी अर्थशास्त्र में समुचित सैद्धान्तिक प्रगति हुई थी। इस अर्थशास्त्र को आधुनिक अर्थशास्त्र का जनक कहा जा सकता है। आर्थिक विकास की समस्याओं के सिलसिले में यह आज भी काफी सार्थक है।

classical school (क्लासिकल स्कूल) : संस्थापक सम्प्रदाय।

संस्थापित अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों, नियमों, नीतियों तथा आर्थिक विचारों का सामूहिक नाम।

देखिए : classical economics

class struggle (क्लास स्ट्रगल) : वर्ग-संघर्ष।

वर्गों में विभाजित समाज में वर्ग-हितों की प्राप्ति के लिए अनवरत जारी संघर्ष, जिसके फलस्वरूप सामाजिक उत्पादन-सम्बन्धों का विकास होता है। कार्ल मार्क्स के समाज-विकास सम्बन्धी सिद्धान्तों, उसके राजनीतिक दर्शन तथा कार्यक्रम का 'वर्ग-संघर्ष' एक महत्त्वपूर्ण अंग है।

प्रत्येक समाज-व्यवस्था में उत्पादन-संसाधनों के स्वामित्व, नियन्त्रण तथा संचलन की एक विशेष प्रणाली प्रचलित होती है। जब कभी भी श्रमिक इन संसाधनों के स्वामित्व तथा नियन्त्रण से वंचित होते हैं, तब वही संसाधनों का एक छोटा नियन्त्रक वर्ग उत्पादन-प्रक्रिया का नियामक बन जाता है। ऐसी सब सामाजिक व्यवस्थाओं में जनसंख्या साधनहीन श्रमिक वर्ग तथा साधनस्वामी वर्ग में बँट जाती है। श्रमिक वर्ग आर्थिक शक्तिविहीन होता है तथा साधनसम्पन्न वर्ग द्वारा इसका शोषण होता है। यह संघर्ष दस्युव्यवस्था में दस्युवर्ग तथा दस्युपति, सामन्ती व्यवस्था में कृषक तथा भूमिपति और एक पूँजीवादी व्यवस्था में श्रमिक तथा पूँजीपति के बीच संघर्ष का रूप लेता है। इस संघर्ष का मूल कारण उत्पादन-शक्तियों के सामाजिक स्वरूप तथा उनके निजी स्वामित्व की व्यवस्था का बढ़ता अन्तर्विरोध है। इस वर्ग-संघर्ष द्वारा शोषित वर्ग अपने अधिकारों की प्राप्ति करता है।

वर्ग-संघर्ष का अन्त वर्गहीन समाज की स्थापना से सम्भव होता है। आदिम सामूहिक उत्पादन-व्यवस्था तथा समाजवाद में यह वर्ग-संघर्ष लुप्त हो जाता है; क्योंकि ये व्यवस्थाएँ वर्ग-विभेदविहीन हैं।

clearing house (क्लीयरिंग हाउस) : समाशोधन घर।

बैंकों के पारस्परिक लेन-देन को निबटानेवाली संस्था। प्रतिदिन वाणिज्य बैंक अपने जमाकर्त्ताओं से ऐसे चेक प्राप्त करते हैं जो दूसरे बैंकों के नाम होते हैं। किसी निश्चित संस्था के तत्त्वावधान में मिलकर बैंक इस तरह के चेकों से सम्बन्धित पारस्परिक लेनदेन को निबटाते हैं। हर चेक की राशि का लेनदेन न करके किसी एक बैंक द्वारा प्राप्त दूसरे बैंक पर जारी किये गये चेकों तथा दूसरे बैंक द्वारा प्राप्त पहले बैंक पर जारी किये गये चेकों की राशि का अन्तर ही लिया-दिया जाता है।

कई स्थानों पर विभिन्न परिवहन कम्पनियाँ भी समाशोधन घर के द्वारा यात्रियों से प्राप्त किराये का आपस में बँटवारा करती हैं। ऐसा सामान्यतः उस देश में होता है जहाँ विभिन्न परिवहन कम्पनियों द्वारा यात्रियों को दिये गये टिकट सबको मान्य होते हैं।

closed economy (क्लोज्ड इकॉनॉमी): संवृत अर्थव्यवस्था, बन्द अर्थव्यवस्था।

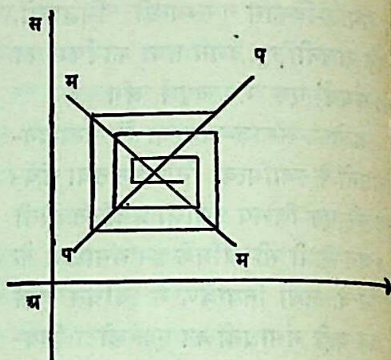
एक सैद्धान्तिक अवधारणा जिसके अनुसार एक अर्थव्यवस्था का विश्व की अन्य किसी अर्थव्यवस्था से कोई आर्थिक सम्बन्ध नहीं होता है। यह अर्थव्यवस्था पूरी तरह आत्मपूरित मानी जाती है। यह अवधारणा यथार्थ में लागू हो, ऐसा सम्भव नहीं है। साधारणतः यह अवधारणा किसी आर्थिक समस्या को बिना बाह्य आर्थिक प्रभावों से प्रभावित हुए समझने के लिए प्रयोग की जाती है। इस प्रकार के अध्ययन से किसी समस्या के आन्तरिक और बाह्य पहलुओं को पृथक्-पृथक् रूप

से समझने में सहायता मिलती है।

cobweb theorem (कॉबवेब थियोरम) : मकड़-जाल प्रमेय।

कुछ व्यवसायों में उत्पादन बढ़ाने में काफी समय लगता है। फलस्वरूप कीमत के घटने या बढ़ने से उत्पादन में एक विशेष प्रकार की अस्थिरता आती है। उत्पादन बढ़ाने में काफी समय लगने के कारण माँग और पूर्ति का सन्तुलन अल्पकाल में नहीं बैठ पाता है। यदि किसी वस्तु की माँग बढ़ जाये और पूर्ति अल्पकाल में नहीं बढ़ पाये, तो स्पष्ट है कि उस वस्तु की कीमत बढ़ेगी। इस बढ़ी हुई कीमत के कारण उत्पादकों को पूर्ति बढ़ाने की प्रेरणा मिलेगी। परन्तु बढ़ा हुआ उत्पादन काफी समय तक बाजार में नहीं आ पाता है। अतः माँग और पूर्ति का असन्तुलन काफी अर्से तक बना रहता है। अनेक उत्पादक उत्पादन बढ़ाने की योजनाएँ लागू करते हैं। परिणामस्वरूप कुछ समय बाद एकसाथ अधिक मात्रा में उत्पादन बाजार में आता है। यहाँ तक कि यह उत्पादन माँग की सीमा भी लाँघ जाता है।

अब पूर्ति की अधिकता के कारण कीमतें गिरेंगी। उत्पादकों को हानि उठानी पड़ेगी और वे पूर्ति घटा देंगे। उत्पादन में यह कमी इतनी अधिक हो सकती है कि हम पुनः माँग की अधिकता की स्थिति में आ सकते हैं। ऐसा होने पर फिर कीमतें बढ़ेंगी और फिर वही पूर्ति-आधिक्य की स्थिति उत्पन्न होगी। इस प्रकार व्यवसाय में सन्तुलित उत्पादन की स्थिति नहीं आ पायेगी। उत्पादन में समय-अन्तराल के कारण अस्थिरता पैदा होगी। यह स्थिति सामान्यतः कृषि क्षेत्र में अपेक्षित होती है। इस सम्भावना को एक माँग तथा पूर्ति के रेखाचित्र में दिखाने पर एक ऐसी स्थिति नजर आयेगी :



इस चित्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि माँग तथा पूर्ति का सन्तुलन इन परिस्थितियों में नहीं हो पाता है। यह रेखाचित्र मकड़ी के जाल जैसा नजर आता है। अतः इस कारण इस सम्भावना को 'मकड़-जाल प्रमेय' नाम से जाना जाता है। स्पष्ट है कि इस प्रमेय में एक सम्भावना को बहुत बढ़ा-चढ़ाकर दिखाया गया है।

coinage (क्वॉइनेज) : सिक्का-ढलाई।

धातुओं के टुकड़ों को मुद्रा के तौर पर इस्तेमाल किये जाने के लिए सिक्के का रूप देने की प्रक्रिया को सिक्का-ढलाई या टंकण कहते हैं। धातु-मुद्रा के चलन के पहले अनेक प्रकार की वस्तुएँ मुद्रा के रूप में इस्तेमाल की जाती थीं। उनमें अनेक कमियाँ मौजूद होने के कारण उनके स्थान पर धीरे-धीरे बहुमूल्य धातुओं का प्रयोग होने लगा। मुद्रा के तौर पर इनके इस्तेमाल में सुविधाएँ अपेक्षाकृत अधिक थीं।

आरम्भ में मुद्रा के लिए धातुओं का

प्रयोग टुकड़ों व ईंटों के रूप में किया जाता था। इससे व्यापार-क्षेत्र में बड़ी असुविधा होती थी, क्योंकि भिन्न-भिन्न वजन और मूल्य के होने के कारण हर बार इन धातु के टुकड़ों की जाँच व तुलना करनी पड़ती थी। आगे चलकर बड़े-बड़े व्यापारी उन पर अपनी मोहरें अंकित करने लगे। इससे कुछ असुविधा तो दूर हुई, लेकिन काफी बड़ी सीमा तक दिक्कतें बनी रहीं। अन्ततः इन कठिनाइयों को दूर करने के लिए सरकार द्वारा सिक्का-ढलाई का काम किया जाने लगा। वर्तमान समय में केवल सरकारी टकसालों में ही सरकार के अधीन सिक्के ढाले जाते हैं, और अब यह कार्य बहुत वैज्ञानिक ढंग से किया जाता है। सिक्कों के वजन, रंग-रूप और उनकी संरचना आदि में आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया जाता रहता है।

collateral security (कोलेटरल सिक्युरिटी) : समर्थक ऋणाधार।

वाणिज्य बैंक जिन लोगों को कर्ज देते हैं, उनसे उस ऋण के समर्थन में कोई ऐसा ऋणाधार लेते हैं जिसे आवश्यकता पड़ने पर बेचकर ऋण की राशि पुनः प्राप्त की जा सके। ऐसा करने से बैंकों द्वारा दिये गये उधार की सुरक्षा बढ़ती है। जो चीजें (जैसे, शेयर, हुण्डियाँ, गोदाम में रखा माल, सम्पत्ति के प्रमाण, बीमे की पॉलिसी आदि) कर्ज की सुरक्षा के लिए स्वीकार की जाती हैं, समर्थक ऋणाधार कहलाती हैं। बैंक की कर्ज देने की क्षमता की एक सीमा इस तरह समर्थक ऋणाधारों की मात्रा होती है। परन्तु किन चीजों को समर्थक ऋणाधार माना जाये, यह बैंकों पर भी निर्भर करता है। कभी-कभी वे किसी व्यक्ति या संस्था के नाम को ही पर्याप्त समझ लेते हैं। जो चीजें समर्थक ऋणाधार के रूप में स्वीकार की जाती हैं, उनकी तरलता बढ़ जाती है।

collective bargaining (कॅलेक्टिव बारगेनिंग) : सामूहिक सौदाकारी।

मजदूरी की दर, काम की दशाओं तथा औद्योगिक सम्बन्धों के सम्बन्ध में मजदूरों का संगठित, सामूहिक रूप से नियोक्ताओं से सौदा। श्रम-बाजार में यदि पूर्ण प्रतियोगिता विद्यमान हो, तो मजदूरी की दर तथा अन्य सम्बन्धित मामलों का निर्णय एक मजदूर तथा नियोक्ता के बीच सौदाकारी द्वारा होता है। एक अकेले मजदूर की तुलना में नियोक्ता की आर्थिक स्थिति मजबूत होती है। श्रम की प्रतिधारण कीमत शून्य होने, श्रम की पूर्ति का एक नगण्य भाग किसी अकेले मजदूर के अधिकार में होने तथा एक श्रमिक की जगह दूसरे के प्रतिस्थापन में अपेक्षाकृत सुविधा होने के कारण व्यक्तिगत स्तर पर सौदाकारी मजदूरों के लिए सहायक सिद्ध नहीं होती।

अतः मजदूर कुछ समूहों में मजदूर-संगठनों के रूप में संगठित होकर सौदाकारी करने लगे। सामूहिक सौदाकारी के फलस्वरूप काम के सम्बन्ध में अच्छी शर्तें प्राप्त करने की मजदूरों की क्षमता बढ़ जाती है। श्रम को पूरी तरह रोककर (हड़ताल द्वारा) मजदूर अपने अधिकार को मनवा सकते हैं।

मान्यताप्राप्त श्रमिक संघ आपसी बातचीत के निर्धारित एवं मान्य तरीके तथा गतिरोध हटाने के तरीके आदि सामू-

हिक सौदाकारी की सफलता के लिए आवश्यक हैं। प्रायः सामूहिक सौदाकारी स्वेच्छित होती है। अतः ऐसी माँगें, जो आर्थिक तौर पर किसी भी पक्ष की क्षमता से बाहर हों, नहीं मानी जा सकती हैं। सामूहिक सौदाकारी किसी एक व्यवसाय, उसके किसी विभाग, एक उद्योग, एक क्षेत्र या सारे राष्ट्र के स्तर पर हो सकती है। ऐसे उद्योगों में, जिनके उत्पाद अर्थ-व्यवस्था के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हैं तथा जिनकी कीमत-सापेक्ष माँग बेलोच है, सामूहिक सौदाकारी से मजदूरी बढ़ाई जा सकती है और सारा बढ़ा हुआ उत्पादन-व्यय बढ़ी कीमत के रूप में समाज से वसूल किया जा सकता है। इस प्रकार सामूहिक सौदाकारी से कीमत-स्तर बढ़ सकता है। इसलिए इस द्विपक्षीय समझौते में सरकार द्वारा शेष अर्थव्यवस्था के हितों का प्रतिनिधित्व आवश्यक समझा जाता है। औद्योगिक सम्बन्धों के नियमन में सामूहिक सौदाकारी लोकप्रिय एवं महत्त्वपूर्ण उपाय है। इससे सामाजिक न्याय बढ़ता है।

collective farming (कॅलेक्टिव फार्मिंग) : सामूहिक खेती।

खेती के संगठन का वह तरीका जिसमें सारी जमीन तथा अन्य उपकरण सामूहिक सम्पत्ति होती हैं और सम्पूर्ण निवल उत्पादन सभी सदस्यों में कार्यानुसार बाँट दिया जाता है। सामूहिक खेती कृषि-क्षेत्र में निजी सम्पत्ति के स्थान पर सामूहिक सम्पत्ति को स्थापित करती है। फिर भी खेती करनेवालों को निजी उपभोग हेतु उत्पादन करने के लिए कुछ जमीन, उपकरण तथा मवेशी व्यक्तिगत सम्पत्ति के रूप में रखने का अधिकार दिया जा सकता है।

सोवियत रूस में आयोजन के समय से व्यापक रूप से सामूहिक खेती को अपनाया गया।

collective wants (कॅलेक्टिव वॉन्ट्स): सामूहिक आवश्यकताएँ।

ऐसी आवश्यकताएँ जो समाज के सभी लोगों को सम्मिलित रूप से होती हैं। मकान, खाना, कपड़ा आदि की जरूरतें हर व्यक्ति अथवा परिवार की अलग-अलग होती हैं और उनकी सन्तुष्टि भी व्यक्तिगत अथवा पारिवारिक स्तर पर की जाती है। परन्तु कई आवश्यकताएँ ऐसी होती हैं जिनकी सन्तुष्टि व्यक्ति अकेले तौर पर नहीं कर सकता। सड़कें, उद्यान, शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, परिवहन तथा संचार के साधन आदि की आवश्यकताएँ सामूहिक होती हैं। जो वस्तुएँ इन सामूहिक आवश्यकताओं की तुष्टि करती हैं, उन्हें सामूहिक वस्तुएं या सम्पत्ति कहा जाता है।

collectivism (कॅलेक्टिविज्म) : सामूहिकवाद।

आर्थिक जीवन का संगठित सामाजिक रूप से एक इकाई के रूप में संचालन। उत्पादन आर्थिक जीवन का मूलाधार है। यह समाज के आपसी सहयोग से संचालित संयुक्त प्रक्रिया है। इस तरह व्यक्तिगत स्तर पर उत्पादन के साधनों का स्वामित्व, उत्पादन-प्रक्रिया का निजी क्रिया के रूपों में संचालन तथा विभिन्न व्यक्तियों की आर्थिक क्रियाओं का बाजार-प्रक्रिया द्वारा ताल-मेल समाज के आर्थिक जीवन की मूल प्रकृति के विपरीत है। इसलिए सामूहिकवाद के अनुसार आर्थिक क्रिया-

कलापों का संचालन समाज की प्रतिनिधि संस्था या संस्थाओं द्वारा एक सामूहिक इकाई के रूप में किया जाना चाहिए।

इस मत के अनुसार उत्पादन के समस्त भौतिक साधन सामाजिक सम्पत्ति हैं। उनके उपयोग तथा वृद्धि के बारे में निर्णय व्यक्तिगत रूप से नहीं किये जाने चाहिए। ये निर्णय तो समाज द्वारा सामूहिक रूप से लिए जाने चाहिए। इतनी जटिल तथा विस्तृत क्रियाओं के बारे में निर्णय बिना किसी योजना-बद्ध रीति के नहीं किये जा सकते हैं। अतः सामूहिकवाद आर्थिक जीवन के योजना-बद्ध संचालन के पक्ष में है। विभिन्न प्रकार के समाजवादी आर्थिक संगठन के विचार सामूहिकवाद की श्रेणी में आते हैं।

प्रायः राज्य को इन सामूहिक हितों का प्रतिनिधि माना जाता है जो सामूहिक उद्देश्यों (चाहे वे समाजवादी उद्देश्य हों या कोई अन्य) की प्राप्ति के योजनाबद्ध प्रयास करता है। इस सामूहिक आर्थिक संगठन में आर्थिक सिद्धान्तों के प्रचलन के बारे में कई विवाद अर्थशास्त्रियों में चले हैं। लुडविग फॉनमिजेस, एफ० ए० हायेक आदि के मतानुसार विवेकसम्मत आर्थिक सिद्धान्तों को सामूहिकवाद के अन्तर्गत लागू नहीं किया जा सकता। परन्तु परेटो, बेरोन, ऑस्कर लांगे, टेलर आदि अनेक अर्थशास्त्रियों के प्रयासों के फलस्वरूप सामूहिकवाद की विवेकसम्मत संचालन-क्षमता को स्वीकार कर लिया गया है। वस्तुतः सामूहिकवाद बाजार-कीमत-प्रक्रिया के सर्वथा विपरीत नहीं है। पूर्वी यूरोप तथा चीन की समाजवादी अर्थव्यवस्थाओं ने यह साबित कर दिया है कि सामूहिक-वाद अर्थव्यवस्था का सुचारु रूप से संचालन कर सकता है।

colonialism (कलोनिअलिज्म) : उपनिवेशवाद।

यह एक व्यापक शब्द है जिसके विभिन्न आर्थिक, राजनीतिक और कूटनीतिक अर्थ होते हैं। आर्थिक दृष्टि से उपनिवेशवाद का तात्पर्य समृद्ध राष्ट्रों द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सम्बन्धों के द्वारा अल्पविकसित राष्ट्रों का आर्थिक शोषण है। प्रायः आर्थिक शोषण अल्पविकसित देशों पर विकसित राष्ट्रों के राजनीतिक आधिपत्य या दबाव के साथ जुड़ा रहता है।

उपनिवेशवाद पूंजीवादी आर्थिक विकास का अपरिहार्य अन्तर्राष्ट्रीय पहलू है। पूंजीवादी आर्थिक विकास के लिए कच्चे मालों, पूंजी के लाभप्रद प्रयोग तथा तैयार उत्पादों के लिए विस्तृत बाजारों की जरूरत होती है। विकसित देश कच्चे माल की खरीद तथा तैयार माल की बिक्री के लिए अल्पविकसित देशों से सम्बन्ध जोड़ते हैं। फलस्वरूप विकसित देश उद्योग-धन्धों में और अल्पविकसित देश प्राथमिक उद्योगों में विशिष्टीकरण की नीति अपनाते हैं। विश्व व्यापार के इस रूप को उपनिवेशवादी रूप कहते हैं। प्राथमिक धन्धों की प्रधानता के कारण ये अर्थ-व्यवस्थाएँ असन्तुलित और अल्पविकसित रह जाती हैं। औद्योगीकरण के कारण इन पूंजीवादी देशों के विकास की गति बढ़ती रहती है।

विश्व व्यापार में प्राथमिक उद्योग-प्रधान देशों को प्रतिकूल व्यापार-अर्थ के कारण भी हानि होती है। उपनिवेशवादी देश अपनी सुदृढ़ आर्थिक स्थिति के कारण

उपनिवेशों की आर्थिक नीति को भी अपने हित में मोड़ लेते हैं। जहाँ उपनिवेशवाद के राजनीतिक रूप भी पूरे रूप से प्रकट नहीं होते हैं, वहाँ उपनिवेश की सीधी लूट-खसोट भी होती है। कुल मिलाकर उपनिवेशवादी ताकतें अपने आर्थिक विकास के लिए उपनिवेशों को साधन वना लेती हैं। पिछले दो सौ वर्षों से अफ्रीका, एशिया तथा लेटिन अमरीका के पिछड़े देश पश्चिम के पूँजीवादी राष्ट्रों द्वारा उपनिवेशवादी शोषण के शिकार रहे हैं।

combine (कॅम्वाइन) : गुट, संघ।

दो या अधिक पृथक् तथा स्वतन्त्र व्यावसायिक इकाइयों का एक संयुक्त संगठन के रूप में मिलना। यह सम्मिलन स्थायी या सावधिक, अस्थायी हो सकता है। यह व्यवसाय-संगठन के आकार को वढ़ाने का एक महत्त्वपूर्ण तरीका है। फर्म न केवल इस तरह वढ़ती ही है, वरन् वे अपने कार्य-क्षेत्र की विविधता भी बढ़ाती हैं। पूँजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत एकाधिकार तथा सम्पत्ति के केन्द्रीकरण में भी इस प्रक्रिया का वड़ा हाथ रहता है।

यह सम्मिलन-व्यवस्था स्वतः या राज्य की प्रेरणा से कर सकते हैं। उत्पादन के पैमाने का विस्तार, तकनीकी प्रगति, संचार-साधनों का विकास, कम्पनी कानून की व्यवस्था तथा पूँजीवादी उत्पादन की वुनियादी प्रवृत्ति के कारण इस प्रवृत्ति को वढ़ावा मिला है।

देखिए : amalgamation
cartil
merger

command economy (कमॉण्ड इकॉनॉमी) : निदेशित अर्थव्यवस्था।

केन्द्रीकरण की चरम स्थिति वाली वह अर्थव्यवस्था जहाँ केन्द्रीय आयोजन अधिकारी ही सव आर्थिक निर्णय करता है तथा उत्पादन-संगठनों का कार्य इन निर्णयों का कार्यान्वयन मात्र होता है। ये उत्पादन-संगठन सव सूचनाएँ केन्द्रीय योजनाकार को भेज देते हैं। फिर इन सूचनाओं तथा आर्थिक उद्देश्यों को दृष्टि में रखकर केन्द्रीय अधिकारी योजनाएँ वनाकर तथा समस्त सम्वन्धित निर्णय लेकर उन्हें कार्य रूप देने के लिए उत्पादकों को भेज देते हैं। केन्द्रीय योजनाकारों के अतिरिक्त अन्य सब आर्थिक इकाइयों का काम केन्द्रीय निदेशों का पालन करना-भर होता है, उनके वेतन तथा पुरस्कार इन निदेशों के पालन करने पर निर्भर होते हैं, केन्द्रीय योजनाकारों के निदेश कानून द्वारा समर्थित होते हैं।

योजनावद्ध अर्थव्यवस्था का यह केन्द्रीकृत रूप होता है। आर्थिक विकास के शुरू के दिनों में या युद्ध तथा आपत्काल में इस तरह की आयोजन-प्रणाली प्रायः अपरिहार्य हो जाती है। परन्तु साधारण स्थितियों में केन्द्रीकरण की इतनी सीमा व्यावहारिक दृष्टि से प्रायः सफल नहीं हो पाती।

देखिए : centralisation
planned economy

commerce (कॉमर्स) : वाणिज्य।

सब तरह का व्यापार और उससे सम्वन्धित सहायक क्रियाएँ। वाणिज्य के अन्तर्गत हम थोक, खुदरा, अन्तर्देशीय, आयात-निर्यात व्यापार तथा इनसे सम्वन्धित क्रियाएँ (जैसे, दलाली, वैंक, परिवहन, वीमा, विज्ञापन, प्रचार आदि) शामिल करते

हैं। इस प्रकार वाणिज्य तृतीयक क्षेत्र का बहुत महत्त्वपूर्ण अंग है। अर्थव्यवस्था के विकास के काफी बढ़े हुए स्तर पर वाणिज्य सारी आर्थिक क्रियाओं का अपेक्षाकृत बड़ा भाग बन जाता है। परन्तु विकास के शुरू के चरणों में किसी देश के उद्यमियों का उद्योगों की अपेक्षा वाणिज्य की ओर अधिक प्रवृत्त होना विकास की राह में बाधक ही होता है।

commercial bank (कॉमर्शियल बैंक) : वाणिज्य बैंक।

वे बैंक जो सब प्रकार के साधारण बैंकिंग सम्बन्धी कार्य करते हैं। ये सबसे अधिक प्रचलित किस्म के बैंक होते हैं।

देखिए : bank

commission agent (कमीशन एजेन्ट) : आढ़ती, कमीशन एजेन्ट।

वह व्यापारी जो वस्तुओं को कमीशन प्राप्त करने के लिए खरीदता और बेचता है। भारत में कृषि-उपज के वितरण में आढ़ती महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

commodity (कमॉडिटी) : वस्तु, पण्य।

बहुत व्यापक और मोटे अर्थ में उत्पादन-प्रक्रिया द्वारा तैयार उत्पादों को वस्तु कहा जाता है। परन्तु मार्क्सवादी अर्थशास्त्र में उन्हीं उत्पादों को वस्तु कहा जायेगा जो समाज के अन्य लोगों की आवश्यकताएँ पूरी करें, अर्थात् वस्तुएँ विनिमय के लिए उत्पादित की जाती हैं।

कुछ अस्पष्टताएँ 'वस्तु' शब्द के अर्थ के साथ जुड़ी रहती हैं। भौतिक रूप से सर्वथा समान उत्पादों को वस्तु माना जाये या उन सब उत्पादों को जो उपभोक्ता के लिए पूर्ण रूप से एक-दूसरे के लिए प्रतिस्थापनीय हैं? देश, काल और परिस्थिति के अनुसार भौतिक रूप से पूर्णरूपेण समान वस्तुएँ भी भिन्न-भिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं और उपभोक्ता की दृष्टि में उनकी उपयोगिता भी भिन्नतापूर्ण होती है। बिजली का पंखा भारतीय उपभोक्ता के लिए तो उपयोगी है, परन्तु जर्मनी में नहीं। इसी प्रकार दिसम्बर और जून में बिजली के पंखे को एक दृष्टिकोण से अलग-अलग वस्तु समझा जा सकता है। इस प्रकार वस्तु की बहुत नपी-तुली परिभाषा दे पाना बहुत मुश्किल है, क्योंकि वस्तुएं भौतिक तथा आत्मपरक दोनों दृष्टियों से देखी जाती हैं।

commodity money (कमॉडिटी मनी) : वस्तु-मुद्रा।

वे वस्तुएँ जो विनिमय-माध्यम के रूप में सर्व-साधारण रूप से स्वीकार की जाती हैं। विनिमय के शुरू-शुरू में किसी ऐसी वस्तु की तलाश थी जो स्वयं अपने-आपमें उपयोगी और मूल्यवान भी हो और साधारणत: लेन-देन में भी स्वीकार्य हो। इस प्रकार भिन्न-भिन्न देशों एवं ऐतिहासिक युगों में विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ (जैसे, मवेशी, चावल, नमक, कीमती पत्थर, धातुएँ आदि) मुद्रा के रूप में प्रयोग में लायी गयीं। परन्तु इन सबमें ही कमियाँ थीं। कुछ बहुत भारी नाशवान, लाने-ले जाने में कठिन तथा विविधतापूर्ण थीं और कुछ बहुत सस्ती, अविभाजनीय अथवा बहुत सीमित मात्रा में उपलब्ध थीं। अन्ततः पत्र या कागजी मुद्रा ही सर्वाधिक उपयुक्त सिद्ध हो रही है।

commodity production (कमॉडिटी प्रोडक्शन) : वस्तु-उत्पादन।

मार्क्सवादी अर्थशास्त्र की एक महत्त्वपूर्ण अवधारणा। इसके अनुसार जब उत्पाद समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए (न कि उत्पादक की व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए) तैयार किये जाते हैं, तब इसे वस्तु या पण्य-उत्पादन कहा जायेगा। स्पष्ट शब्दों में, वह उत्पादन जो व्यक्तिगत आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए नहीं, वरन् बाजार में बेचने के लिए किया जाये, वस्तु-उत्पादन कहलायेगा। इस प्रकार वस्तु-उत्पादन अर्थव्यवस्था का एक विशेष प्रकार का संगठन है जिसमें अलग-अलग, स्वतन्त्र आर्थिक इकाइयाँ विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन में विशेषज्ञता प्राप्त करती हैं और बाजार में आपसी विनिमय द्वारा समाज की आवश्यकताएँ पूरी करती हैं।

कुछ समाजवादी अर्थशास्त्रियों का मत था कि उत्पादन के भौतिक साधनों के निजी स्वामित्व के स्थान पर सामाजिक स्वामित्व स्थापित करते ही वस्तु-उत्पादन समाप्त हो जायेगा। परन्तु समाजवाद की स्थापना के बाद भी विभिन्न वस्तुएँ पृथक्-पृथक् इकाइयों में उत्पादित की जाती हैं और उत्पादन-शक्तियाँ इतनी विकसित नहीं होती हैं कि श्रम जीवन की मुख्य आवश्यकता बन जाये। फलस्वरूप लोग कुछ उत्पादन के बदले में अपनी आवश्यकता की वस्तुएँ प्राप्त कर सकते हैं। अतः वस्तु-उत्पादन समाजवाद में भी जारी रहता है।

common market (कॉमन मार्केट) : साझा बाजार।

सीमा-शुल्क संघ का दूसरा एवं अधिक प्रचलित नाम।

देखिए : customs union
economic integration

common stock (कॉमन स्टॉक) : सामान्य स्टाक।

संयुक्त पूँजी कम्पनी के साधारण शेयर या हिस्सों का दूसरा नाम।

देखिए : ordinary shares

communism (कम्युनिज्म) : साम्यवाद/कम्युनिज्म।

समाज-व्यवस्था का एक रूप। वैज्ञानिक अध्ययन के आधार पर कार्ल मार्क्स ने इस व्यवस्था का प्रतिपादन किया। इससे पहले साम्यवाद की कुछ यूटोपियन (काल्पनिक) विचारधाराएँ भी प्रचलित थीं। आज विश्व के अनेक राष्ट्र इन सिद्धान्तों के आधार पर समाज-पुनर्रचना में लगे हैं।

साम्यवाद ऐतिहासिक भौतिकवाद की दार्शनिक आधार-भूमि से उत्पादन साधनों के सामूहिक स्वामित्व के आधार पर समाज की उत्पादन-शक्तियों के ऐसे विकास की परिकल्पना करता है जहाँ एक वर्गहीन समाज में भाग लेता है और अपनी आवश्यकतानुसार उत्पादन के प्रतिफल का उपभोग करता है। उत्पादन शक्तियों का इतना विकास सामाजिक प्रक्रियाओं के विरोधाभासों को हटाने से सम्भव होता है।

साम्यवाद के प्रारम्भिक चरण समाजवाद में यह विकास-प्रक्रिया शुरू होती है। इस प्रक्रिया का परिपक्व फल साम्यवादी समाज है। इस अवस्था में शोषणहीन समाज का वह स्तर उपलब्ध होता है जहाँ राज्य 'व्यक्ति के प्रशासन' के स्थान पर केवल 'वस्तुओं का प्रशासन' करता है।

संाधनों की सीमितता के अन्त की यह अवस्था कब प्राप्त होगी, कहना मुश्किल है। परन्तु विरोधाभास रहित समाज की इस स्तर को प्राप्त कर सकने की सम्भावना को चुनौती देना दुष्कर है।

comparative advantage (कम्पैरेटिव एडवाण्टेज) : तुलनात्मक लाभ।

विशेषीकरण तथा श्रम-विभाजन के लाभों को दिखानेवाला सिद्धान्त। यदि हर व्यक्ति और अर्थव्यवस्था अपने अपेक्षाकृत अधिक लाभ वाले धन्धे में विशिष्टता प्राप्त करे, तो उत्पादन-मात्रा में वृद्धि होगी। उदाहरणार्थ यदि कोई प्रोफेसर अच्छा टाइपिस्ट भी हो, तो भी प्रोफेसर का लेख लिखना तथा किसी अन्य टाइपिस्ट द्वारा टाइप करना ही अधिक लाभकर होगा। कारण, जो समय प्रोफेसर टाइप करने में लगायेगा, उसमें लेख लिखने से उसे अधिक आय प्राप्त होगी। इस प्रकार हर व्यक्ति और देश उस व्यवसाय में विशेषज्ञता प्राप्त करेगा जिसमें उसका तुलनात्मक लाभ अधिक होगा। एक डॉक्टर खाना बनाने में अपने रसोइये से अधिक दक्ष हो सकता है, परन्तु फिर भी अपना समय वह चिकित्सा में ही लगायेगा और खाना बनाने के लिए नौकर रखेगा। तुलनात्मक लाभ जानने के लिए किसी अन्य से कुशलता की तुलना नहीं की जाती है, वरन् एक आर्थिक इकाई की विभिन्न कार्यों में दक्षता की तुलना की जाती है और जिस काम में वह सर्वाधिक कुशल हो, उस व्यवसाय में उसका तुलनात्मक लाभ माना जाता है।

comparative cost (कम्पैरेटिव कॉस्ट): तुलनात्मक लागत।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सन्दर्भ में विशेष रूप से प्रचलित सिद्धान्त, जिसके अनुसार वे वस्तुएँ निर्यात की जाती हैं जिनमें तुलनात्मक लागत सबसे कम हों। तुलनात्मक लाभ के सिद्धान्त से यह जुड़ा हुआ है और विशिष्टीकरण तथा श्रम-विभाजन के लाभ को दर्शाता है। इस सिद्धान्त के आधार पर यह भी स्पष्ट हो जाता है कि सम्पूर्ण आत्म-निर्भरता की नीति से आर्थिक हितों की हानि होती है। वैसे तो यह काफी पुराना सिद्धान्त है, परन्तु इसकी सुव्यवस्थित व्याख्या का श्रेय अंग्रेज़ अर्थशास्त्री डेविड रिकार्डो को है।

तुलनात्मक लागत को हम काल्पनिक उदाहरण द्वारा आसानी से समझा सकते हैं। मान लें कि संसाधनों की एक निश्चित मात्रा द्वारा भारत और नेपाल 'क' तथा 'ख' वस्तुओं का उत्पादन इस प्रकार करते हैं :

भारत		नेपाल	
'क'	१००	'क'	५०
'ख'	८०	'ख'	६०

'क' तथा 'ख' दोनों के उत्पादन में नेपाल की अपेक्षा भारत की लागत कम है। परन्तु 'ख' की तुलना में भारत की तुलनात्मक लागत 'क' के उत्पादन में कम है। इसी प्रकार नेपाल की लागत 'क' की अपेक्षा 'ख' के उत्पादन में कम है। अतः नेपाल के लिए 'ख' के उत्पादन में विशिष्टिता प्राप्त करना तथा इसका निर्यात करना लाभप्रद ठहरेगा।

comparative statics (कम्पैरेटिव स्टेटिक्स) : तुलनात्मक स्थैतिकी।

आर्थिक विश्लेषण का एक तरीका। आर्थिक प्रश्नों के अध्ययन के लिए

सैद्धान्तिक प्रारूप या मॉडेल तैयार किया जाता है। इस प्रारूप के विभिन्न तत्त्वों तथा चलों के पारस्परिक सम्बन्धों के अध्ययन के आधार पर उनके सन्तुलन तथा इस सन्तुलन के स्थायित्व की दशाओं का विवेचन किया जाता है। इस विवेचन का एक विशेष तरीका तुलनात्मक स्थैतिकी है जिसमें ऐसे दो सन्तुलन-विन्दुओं तथा उनकी प्राप्ति में सहायक अवस्थाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। परन्तु एक सन्तुलन अवस्था तक किस प्रकार पहुँचा जाता है, इसका अध्ययन इस विधि से नहीं किया जाता है। उदाहरणार्थ, राष्ट्रीय आय के सन्तुलन की दो स्थितियों की तुलना इस विधि द्वारा की जाती है। परन्तु यह परिवर्तन कैसे होता है तथा इस परिवर्तन की प्रक्रिया क्या है, इसका उल्लेख तथा विश्लेषण इसमें नहीं किया जाता है।

compensation principle (कम्पेन्सेशन प्रिन्सिपल) : क्षतिपूरक सिद्धान्त।

कल्याणमूलक अर्थशास्त्र का एक सिद्धान्त। अर्थशास्त्र की इस शाखा में समाज-कल्याण की सर्वोत्तम स्थिति की अवधारणा का केन्द्रीय स्थान होता है। समाज-कल्याण की सर्वोत्तम स्थिति की अवधारणा का इटेलियन अर्थशास्त्री परेटो द्वारा दी गयी परिभाषा सबसे अधिक प्रचलित है। परेटो के मतानुसार आर्थिक गतिविधियों का वह स्वरूप, जिसमें कोई भी ऐसा परिवर्तन कर सकना सम्भव नहीं होता जो कुछ लोगों की कल्याण-स्थिति बदतर किये बिना किसी की भी कल्याण-स्थिति सुधार सके, सामाजिक कल्याण की सर्वोत्तम स्थिति कहा जायेगा अर्थात् समाज-कल्याण की सर्वोत्तम स्थिति तब प्राप्त होगी, जब कि ऐसे सभी सुधार किये जा चुके होंगे जो कुछ लोगों की कल्याण-स्थिति में सुधार तो लायें परन्तु किसी की भी कल्याण-स्थिति बिगाड़ें नहीं।

यह समझना काफी सरल है कि आर्थिक जीवन में ऐसे परिवर्तन अपेक्षाकृत बहुत कम होंगे जिनमें बिना किसी को प्रतिकूल रूप से प्रभावित किये कुछ लोगों के कल्याण को अनुकूल रूप में प्रभावित किया जा सके। किसी भी वस्तु के उत्पादन के तरीकों में परिवर्तन, राजकीय, मौद्रिक या प्रत्यक्ष नियन्त्रण की नीति में परिवर्तन, नये उत्पादों या तकनीकों का प्रचलन आदि शायद ही कोई ऐसा आर्थिक परिवर्तन हो (संस्थागत परिवर्तन भी) जो सभी लोगों के हितों के प्रतिकूल बैठे। ऐसे आर्थिक परिवर्तन, जो कुछ लोगों के हितानुकूल हों और अन्य लोगों के लिए हानिकारक, परेटो के सिद्धान्त की परिधि में नहीं आते हैं। इन परिवर्तनों का मूल्यांकन करने के लिए कुछ लोगों के आत्मपरक लाभ की कुछ लोगों की आत्मपरक हानि से तुलना करना जरूरी है। इस तरह की अन्तर-व्यक्ति सन्तुष्टि की तुलना वैज्ञानिक तथा वस्तुपरक आधार पर नहीं की जा सकती। अतः परेटो आदि अर्थशास्त्रियों ने अपनी विषय-वस्तु उन क्षेत्रों तक सीमित कर ली जहाँ यह टेढ़ी पेचीदगी उपस्थित ही नहीं हो।

इस विषय-वस्तु सीमितता से बचने का तरीका निकोलैस कॉल्डोर तथा जे. आर. हिक्स आदि अर्थविदों ने 'क्षति-पूरक सिद्धान्त' के जरिये निकाला। इस सिद्धान्त के अनुसार यदि किसी आर्थिक परिवर्तन से लाभान्वित लोग हानिग्रस्त लोगों

को इतना मुआवजा दे दें या दे सकें कि हानिग्रस्त लोग कम-से-कम इस परिवर्तन से पहले की अपनी स्थिति में आ जायें ताकि वे इस परिवर्तन के प्रति तटस्थ हो जायें और फिर भी लाभान्वित होनेवाले लोग अपनी पूर्वस्थिति से वेहतर स्थिति में आ जायें, तो इस 'क्षतिपूरक' प्रक्रिया के आधार पर हम कह सकेंगे कि यह आर्थिक परिवर्तन सामाजिक कल्याण को वढ़ाता है। जव इस प्रकार के क्षतिपूरक सिद्धान्त के निकष पर खरे उतरनेवाले परिवर्तन करने की सव सम्भावनाओं का प्रयोग कर लिया जाये, तव हमें सामाजिक कल्याण की सर्वोत्तम स्थिति प्राप्त हो जायेगी।

इस सिद्धान्त में यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि यह मुआवजा परिवर्तनजन्य हानि के आत्मपरक मूल्यांकन पर आधारित होगा। क्या क्षति-पूर्ति की मात्रा का निर्धारण अन्य लोगों द्वारा किसी वस्तुगत आधार पर, जैसे आय या उपभोग में आयी कमी के आधार पर किया जायेगा? यदि क्षति-पूर्ति का यह तथाकथित वस्तुपरक आधार भी माना जाता है, तो भी सैद्धान्तिक या वैज्ञानिक दृष्टि से स्थिति सुधरती नहीं है। कारण, इस मत के पीछे भी कई मूल्यगत मान्यताएँ विद्यमान हैं, जैसे हर आय तथा उपभोग के स्तर पर हुई कमी को पूरा कर देने भर से लोगों की सन्तुष्टि यथावत् हो जायेगी और इस पर आय तथा उपभोग प्राप्त करने के तरीके का असर नहीं पड़ेगा। यह भी कि लोग केवल अपनी निरपेक्ष स्थिति को यथावत् बनाये रखने में संतुष्ट हो जायेंगे और अपनी सापेक्ष स्थिति के बदतर होने से उनकी सन्तुष्टि अप्रभावित रहती है।

क्षतिपूरक सिद्धान्त के कुछ प्रतिपादकों के अनुसार यह मुआवजा वास्तव में दिया जाना चाहिए और कुछ का मत है कि मुआवजा देने की सैद्धान्तिक क्षमता तथा सम्भावना का विद्यमान होना ही पर्याप्त है। जहाँ मुआवजे का सचमुच दिया जाना वहुत-सी पेचीदगियाँ उत्पन्न करेगा (जैसे लाभान्वित लोगों में मुआवजे के वोझ का वितरण कैसे किया जाये), वहाँ क्षति-पूर्ति करने की क्षमता की केवल सैद्धान्तिक सम्भावना वास्तव में हानिग्रस्त लोगों को कोई राहत नहीं दे पायेगी। और फिर, सैद्धान्तिक स्तर पर भी मुआवजे द्वारा लाया गया आय का पुनर्वितरण सन्दिग्ध उपयोगितापूर्ण हो सकता है। इन सव कारणों से क्षतिपूरक सिद्धान्त काफी खोखला प्रतीत होता है।

देखिए : Pareto optimum
welfare economics

compensatory fiscal policy (कम्पेन्सेटरी फिस्कल पॉलिसी) : प्रतिपूरक राजकोषीय नीति।

वह नीति जिसके द्वारा राज्य पूर्ण रोजगार की प्राप्ति तथा मन्दी के निवारण के लिए जान-वूझकर घाटे की वजट-व्यवस्था करता है ताकि माँग और उसके प्रभाव से आर्थिक गतिविधियों के वढ़ने में मदद मिल सके। ऐसी स्थिति में आय तथा रोजगार के अवसर वढ़ेंगे। इस प्रकार प्रतिपूरक राजकोषीय नीति घाटे की वजट-नीति का ही दूसरा नाम है।

देखिए : deficit financing
pump priming

competition: (कॉम्पिटीशन) प्रतियोगिता।

अनेक अर्थों में प्रयुक्त एक व्यापक शब्द।

साधारण बोलचाल में प्रतियोगिता मनोवैज्ञानिक अर्थ में विभिन्न व्यक्तियों के बीच विद्यमान होड़ या स्पर्धा के रूप में समझी जाती है। वैयक्तिक स्तर के इस अर्थ का अर्थशास्त्र में भी विभिन्न व्यक्तियों के बीच एक-दूसरे से अच्छे और कुशल तरीके से आर्थिक क्रियाओं का संचालन कर अपनी आर्थिक स्थिति अपेक्षाकृत अच्छी बनाने के अर्थ में प्रयोग होता है। इस अर्थ में प्रतियोगी प्रक्रिया साधारणतः व्यक्तिगत एवं भौतिक लाभ की प्रेरणा से जुड़ी होती है। परन्तु अमूर्त तथा सामाजिक उद्देश्यों के साथ भी इस प्रक्रिया को जोड़ा जा सकता है। इस अर्थ में यह जरूरी नहीं है कि यह प्रक्रिया केवल पूँजीवादी व्यवस्था के सन्दर्भ में ही लागू हो। समाजवाद भी प्रतियोगिता-प्रक्रिया का प्रयोग अपने व्यवस्थागत ढाँचे में कर सकता है।

इस व्यापक अर्थ में प्रतियोगिता का अर्थ अपने प्रयासों द्वारा किसी उद्देश्य की अन्य लोगों की अपेक्षा श्रेष्ठतर रूप में प्राप्ति है। आर्थिक कुशलता का एक सुदृढ़ आधार इस प्रक्रिया में विद्यमान है। प्रायः अधिक उत्पादन, न्यूनतम लागत की प्राप्ति, तकनीकी प्रगति तथा आविष्कार, वस्तुओं की गुणात्मक श्रेष्ठता, आर्थिक विकास की अधिकतम दर तथा जीवन-स्तर के सुधरते प्रतिमानों की प्राप्ति आदि उद्देश्यों के लिए प्रतियोगिता का प्रयोग होता है। इस व्यक्तिगत स्तर के अर्थ से हटकर प्रतियोगिता दो व्यापक सामाजिक दृष्टिकोणों से समझी जा सकती है। एक तो अपेक्षाकृत कम व्यापक स्तर पर, प्रतियोगिता के आधार पर बाजार की अवस्थाओं का वर्गीकरण किया जाता है। प्रतियोगिता के आंशिक, पूर्ण और शुद्ध रूपों के आधार पर अनेक प्रकार के बाजारों की अवधारणाओं का आर्थिक सिद्धान्तों में विकास हुआ है। प्रतियोगिता के दो विपरीत दिशाओं वाले सैद्धान्तिक चरम विन्दु पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार हैं। यद्यपि ये दोनों दशाएँ वास्तविक जीवन से बहुत दूर हैं, फिर भी इनके द्वारा सैद्धान्तिक विश्लेषण के उपयोगी तरीकों की प्राप्ति होती है। इस वर्गीकरण का आधार प्रायः बाजार के विभिन्न एककों की संख्या तथा उनके उत्पादन की मात्रा, गुण और कीमत सम्बन्धी आर्थिक अधिकार होते हैं। इन दो चरम विन्दुओं के बीच विभिन्न अंशों की अपूर्ण प्रतियोगिता वाले अनेक प्रकार के बाजार हैं, जैसे कि एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता, द्वैधिकार, अल्पसंख्यक अधिकार, एकमताधिकार आदि। विभिन्न प्रकार की प्रतियोगिता की अवस्था में मूल्य तथा उत्पादन-नीति के बारे में उत्पादक का व्यवहार भिन्न होगा। फलस्वरूप आर्थिक कल्याण के दृष्टिकोण से विभिन्न प्रतियोगिता की अवस्थाओं का मूल्यांकन भी भिन्न होगा। परम्परागत कल्याण के अर्थशास्त्र के अनुसार पूर्ण प्रतियोगिता में उत्पादन तथा विनिमय की सर्वोत्तम स्थिति प्राप्त होती है।

दूसरे, प्रतियोगिता को सामाजिक-आर्थिक संगठन की एक प्रक्रिया के रूप में लिया जाता है। प्रतियोगिता के पहले दो रूपों के प्रचलन के फलस्वरूप आर्थिक क्रियाओं का संचालन एक विशेष रूप

ग्रहण करता है। किन वस्तुओं का, किन मात्राओं में, तथा किन उत्पादन-प्रणालियों से उत्पादन किया जाये एवं समाज में उनके वितरण की क्या व्यवस्था की जाये, साधनों के प्रयोग तथा उनकी मात्रा-वृद्धि तथा उनके गुणों में सुधार आदि के विषय में निर्णय किस प्रकार लिये जायें आदि आर्थिक संगठन के महत्त्वपूर्ण प्रश्न हैं। प्रतियोगिता-प्रक्रिया के विभिन्न रूपों में प्रचलन से इन प्रश्नों का एक विशेष प्रकार का समाधान निकलता है। इस समाधान में प्रतियोगिता के रूप का हाथ रहता है और अन्य तत्त्वों से मिलकर यह अर्थव्यवस्था के स्वरूप-निर्धारण में सहायक होता है। उदाहरणार्थ, पूर्ण-प्रतियोगिता के प्रचलन से एक विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था की प्राप्ति होगी। इस व्यवस्था के साथ निजी स्वामित्व का प्रचलन पूँजीवादी व्यवस्था की रचना करेगा। दूसरी ओर यदि सामूहिक स्वामित्व तथा नियोजन का पूर्ण प्रतियोगिता से मिश्रण करें, तो लाँगे-लर्नर द्वारा प्रतिपादित विकेन्द्रित समाजवादी व्यवस्था का सृजन होगा। यदि प्रतियोगिता-प्रक्रिया इन समष्टिगत समस्याओं का समुचित समाधान नहीं कर पाये, तो उस प्रतियोगिता को अकुशल कहा जायेगा।

प्रतियोगिता की उपयुक्तता के बारे में विवाद में इसके तीनों अर्थों का अलग-अलग ध्यान रखना आवश्यक है। पहले अर्थ में प्रतियोगिता निजी प्रयासों को प्रेरित करने का कारगर तथा सफल तरीका है। दूसरे और तीसरे रूप में इसकी उपयुक्तता केवल आर्थिक प्रश्न नहीं है; यह मूल्यों तथा वर्गगत-स्वार्थों का सवाल है। परन्तु प्रतियोगिता की सफलता तथा सार्थकता के लिए अनेक दशाओं तथा सहायक संस्थागत व्यवस्थाओं की जरूरत होती है। यह कोई अपने-आपमें पूर्ण उपाय नहीं।

competitive advantage (कॉम्पटीटिव एडवाण्टेज) : तुलनात्मक लाभ, प्रतियोगी लाभ।

यह शब्द, दो अर्थों में प्रयुक्त किया जा सकता है। एक तो कभी-कभी अंग्रेजी शब्द 'कॉम्पटीटिव एडवाण्टेज' के समानार्थ यह शब्द काम में लाया जाता है। दूसरे, प्रतियोगितापूर्ण बाजार में एक फर्म या उत्पादन के साधन की अन्य फर्मों या संसाधनों की तुलना में कुछ विशिष्टतापूर्ण लाभप्रद स्थिति को भी उनका तुलनात्मक लाभ कहा जा सकता है। यह ऐसी स्थिति होती है, जिसके फलस्वरूप या तो सम्बन्धित फर्म की लागत अपेक्षाकृत कम होती है, या उसके उत्पादों में कुछ गुणगत विशेषता होती है जो कि अन्य फर्मों को प्राप्त नहीं है। इस तरह उनके उत्पादों की माँग अधिक एवं प्रबल होती है।

ये तुलनात्मक लाभ प्राकृतिक, परम्परागत, ऐतिहासिक, तकनीकी, बाजार-साख आदि कारणों से होते हैं। पेटेण्ट-अधिकारी द्वारा एक फर्म अपने तुलनात्मक लाभ का पूर्णाधिकार बनाये रखना चाहती है। विज्ञापन द्वारा तुलनात्मक लाभ की प्राप्ति तथा उसका संरक्षण करने की कोशिश की जाती है। उत्पादन-विभेद द्वारा फर्मों को ऐसे तुलनात्मक लाभ की प्राप्ति होती है जो चाहे वास्तविक हो या अवास्तविक, परन्तु उपभोक्ता के दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण होता है। यदि किसी

वस्तु के उत्पादन में नयी फर्मों के प्रवेश प्रतिवन्धित नहीं हैं तथा नयी फर्मों द्वारा सम्बन्धित वस्तु का उत्पादन सम्भव है तो इन तुलनात्मक लाभों के सर्वसुलभ होने के अवसर उत्पन्न होते हैं। अर्थात् किसी विशेष उत्पादक के तुलनात्मक लाभ के सामाजिक दृष्टिकोण से सबको मिलने में नये प्रतियोगियों का आगमन सहायक होता है।

competitive advertising (कॉम्पटीटिव एडवर्टाइजिंग): प्रतियोगी विज्ञापन।

वह विज्ञापन, जिसका उद्देश्य किसी प्रतियोगी फर्म या उत्पाद की तुलना में विज्ञापक फर्म या उसके उत्पाद की श्रेष्ठता स्थापित करना हो। विज्ञापन कई उद्देश्यों से किया जा सकता है। एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है: सूचना या ज्ञान का प्रसार। किसी उत्पाद, विशेषतः नये प्रचलित उत्पाद, के विषय में जनसाधारण को सूचना देना वड़ा आवश्यक कार्य होता है। इसे सूचनात्मक विज्ञापन कहते हैं। विज्ञापक-विशेष के दृष्टिकोण से भी ऐसे विज्ञापन की आवश्यकता होती है। इसके विपरीत प्रतियोगी विज्ञापन विज्ञापक के निहित सापेक्ष स्वार्थ के लिए होता है तथा इसके कारण अन्य लोगों को भी विज्ञापन का वढ़ा हुआ खर्च उठाना पड़ता है। अतः ऐसे विज्ञापन को सामाजिक दृष्टिकोण से अनावश्यक व्यवस्थागत व्यय मानना पड़ता है।

competitive demand (कॉम्पटीटिव डिमॉण्ड): प्रतियोगी माँग।

किसी वस्तु, सेवा या संसाधन की अन्य सहधर्मी वस्तुओं, सेवाओं या संसाधनों की तुलना में सापेक्ष माँग। यह माँग किसी फर्म की लाभ-अर्जन-क्षमता अथवा व्यावसायिक सफलता की महत्त्वपूर्ण कसौटी होती है। वस्तु के गुण, धर्म, स्वरूप, तकनीकी विशेषता, साख, सापेक्ष लागत आदि के अतिरिक्त प्रतियोगी विज्ञापन का भी इस माँग की मात्रा तथा उसकी दृढ़ता पर वड़ा प्रभाव पड़ता है। इस तरह से प्रतियोगी माँग फर्म या देश के तुलनात्मक लाभ तथा तुलनात्मक लागत का प्रतिफल होती है।

complementarity (कॉम्पलिमेण्टरिटी): अनुपूरकता।

वस्तुओं के एक साथ या संयुक्त रूप से माँगे जाने का गुण।

देखिए: complementary goods

complementary demand (कंम्पलिमेण्टरी डिमाँण्ड): पूरक माँग।

जब किसी एक वस्तु से पूर्ण तृप्ति प्राप्त करने के लिए उसके साथ-साथ किसी दूसरी वस्तु की भी माँग आवश्यक होती है, तव उस दूसरी वस्तु की माँग को पूरक माँग कहते हैं। एक के साथ दूसरी वस्तु की माँग अनिवार्य रूप से जुड़ी रहने के कारण इसे संयुक्त माँग भी कहते हैं। उदाहरण के लिए चाय के साथ चीनी, जूते के साथ फीतों, पेन के साथ स्याही और मोटर कार के साथ पैट्रोल की माँग आवश्यक होती है, कारण, इन पूरक वस्तुओं के बिना उनसे पूर्ण तृप्ति नहीं मिल सकती। अतः चीनी, फीते, स्याही और पैट्रोल पूरक माँग की वस्तुएँ होंगी। जब मुख्य वस्तु की माँग में घट-बढ़ होती है तब पूरक वस्तुओं की माँग में भी उसी के अनुरूप घट-वढ़ होती है। देश में उत्पादन योजना के उचित कार्यान्वियन के लिए पूरक

मांग का अध्ययन करना जरूरी है।

complementary goods (कॉम्पलिमेण्टरी गुड्स) : अनुपूरक वस्तुएँ।

अनुपूरकतायुक्त वस्तुएँ । जब दो या अधिक वस्तुएँ किसी एक आवश्यकता की तुष्टि के लिए संयुक्त रूप से या साथ-साथ काम आती हैं, तब इन वस्तुओं को अनुपूरक वस्तुएं कहते हैं । ऐसी वस्तुएँ संयुक्त वस्तुएँ भी कहलाती हैं।

इन वस्तुओं की माँग साथ-साथ घटती या बढ़ती है, ऐसी वस्तुओं की कीमतें परस्पर प्रभाव से एक ही दिशा में बदलेंगी। अनुपूरकता कई अंशों की हो सकती है। वे १ : १ के अनुपात में काम आ सकती हैं या भिन्न-भिन्न अनुपातों में। रोटी और घी, सिगरेट और माचिस, चाय और चीनी, मोटर और पैट्रोल आदि अनुपूरक वस्तुओं के उदाहरण हैं।

composite demand (कॉम्पोजिट डिमॉण्ड) : समूहित माँग।

किसी वस्तु के विभिन्न उपयोगों की सम्मिलित माँग। जब किसी एक उपयोग की माँग बदलती है, तब इससे अन्य उपयोगों के लिए उपलब्ध मात्रा प्रभावित होती है । इस्पात समूहित माँग का अच्छा उदाहरण है। जब मकानों के निर्माण के लिए इस्पात की माँग बढ़ती है, तब मशीनें, औजार, मोटर गाड़ियाँ, रेल-लाइन, जहाज आदि के लिए उपलब्ध इस्पात की मात्रा कम हो जायेगी। इससे इस्पात की कीमत बढ़ सकती है और कालान्तर में इस्पात का उत्पादन बढ़ सकता है, या बढ़ी कीमत के फलस्वरूप इस्पात का प्रतिस्थापन अन्य धातुओं या चीजों से किया जा सकता है।

concentration (कॅन्सेण्ट्रेशन): संकेन्द्रण।

अनेक सन्दर्भों में प्रयुक्त शब्द। संकेन्द्रण से तात्पर्य उत्पादन-प्रक्रिया के विस्तार के कुछ हाथों में केन्द्रित होने, पूंजीवादी आर्थिक प्रक्रिया के संचालन के फलस्वरूप सम्पत्ति तथा आय के साधनों के केन्द्रीभूत होने, आर्थिक शक्ति के केन्द्रीकृत होने तथा उद्योग-धन्धों या किसी विशेष उद्योग के किसी विशेष क्षेत्र में केन्द्रित होने आदि से है।

समाजवादी अर्थव्यवस्था में आयोजित अर्थव्यवस्था के निर्माण के लिए अर्थव्यवस्था के संगठन, संचालन तथा प्रबन्ध की क्रिया का संकेन्द्रण अपरिहार्य है। इस संकेन्द्रण के अनेक तरीके हो सकते हैं, जिससे कि यह व्यवस्था विभिन्न अंशों तक वास्तविक रूप में केन्द्रीकृत होगी।

हर किसी संकेन्द्रण-प्रक्रिया में संसाधनों के विशाल भण्डार के सामूहिक संचालन तथा वृहत् उत्पादन-स्तर की मितव्ययिताएँ तथा लाभ प्राप्त होते हैं। परन्तु साथ ही इतने बड़े स्तर पर सूचनाएँ एकत्रित करने, उनके आधार पर निर्णय लेने, निर्णयों से विशेष रूप से प्रभावित होकर उन्हें कार्यान्वित करनेवाले लोगों को नियन्त्रित एवं प्रेरित करने तथा विभिन्न क्रियाओं में ताल-मेल बैठाने की समस्याएँ एवं उनके समाधान की प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष लागतें भी आती हैं।

संकेन्द्रण का क्षेत्रीय या भौगोलिक अर्थ भी महत्त्वपूर्ण होता है। कोई उद्योग या उद्योग-समूह अनेक प्राकृतिक, ऐतिहासिक, आर्थिक और आर्थिकेतर कारणों से कुछ क्षेत्रों में केन्द्रित हो जाते हैं। फलस्वरूप अनेक प्रकार के आन्तरिक तथा

बाह्य सुलाभ प्राप्त होने लगते हैं। कुछ हानियाँ—जैसे अत्यधिक नगरीकरण, भीड़-भाड़, अस्वास्थ्यकर निवास-व्यवस्था, नीची श्रमउत्पादिता, यातायात तथा संचार के साधनों पर बोझ, आय-सम्पत्ति की असमानताएँ तथा प्रादेशिक असमानता का दुष्चक्र—भी इस संकेन्द्रण से उपज सकती हैं।

concentration of economic power (कॉन्सेण्ट्रेशन ऑफ इकॉनॉमिक पॉवर): आर्थिक शक्ति का संकेन्द्रण।

कुछ लोगों के हाथ में आर्थिक शक्ति के संचयित होने की प्रक्रिया और घटना। आर्थिक शक्ति, विशेषत: उत्पादन तथा वितरण की व्यवस्था को नियन्त्रित करने की शक्ति, उत्पादन-साधनों के स्वामित्व तथा प्रयोग पर आधारित होती है। सामाजिक उत्पादन-प्रक्रिया के सर्वप्रमुख नियामक उत्पादन-शक्तियों के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व के स्वामी होते हैं। यह अधिकार दस्यु-प्रणाली में दस्युपति, सामन्तवाद के अन्तर्गत भूमिपति और पूँजीवाद के अन्तर्गत पूँजीपति का होता है।

उत्पादन-प्रक्रिया में प्राय: यह प्रवृत्ति देखी गयी है कि उत्पादन-इकाइयों का आकार बढ़ता है। साधन-सम्पन्न वर्ग इस विस्तार को नियन्त्रित करते हैं। अत: विस्तार के साथ-साथ उनकी आर्थिक शक्ति भी बढ़ती है। निजी सम्पत्ति, बाजार में बिक्री हेतु उत्पादन, खरीद-बिक्री, बचत तथा निवेश के सम्बन्ध में निजी स्तर पर निर्णय एवं उद्यम की व्यवस्था, सम्पत्तिवानों के बीच प्रतियोगिता आदि पूँजीवादी व्यवस्था के तत्त्वं आर्थिक शक्ति के संकेन्द्रण को बढ़ाते हैं। इस तरह पूँजीवादी व्यवस्था आगे चलकर एकाधिकारवादी तथा साम्राज्यवादी व्यवस्था में बदल जाती है। यह व्यवस्था आर्थिक शक्ति के चरम संकेन्द्रण की है, जहाँ इस प्रक्रिया के अनुपात अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के हो जाते हैं। आर्थिक शक्ति का संकेन्द्रण पूँजीवादी विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था का न केवल अनिवार्य अंग है, वरन् पूँजीवादी आर्थिक विकास का महत्त्वपूर्ण सहायक तत्त्व भी है।

परन्तु इसी संकेन्द्रण के कारण कालान्तर में पूँजीवाद के अन्तर्विरोध उजागर होते हैं। आर्थिक अधिशेष के विशाल परिमाण में सृजन तथा कुछ हाथों में केन्द्रित होने की वजह से अल्प उपभोग, मन्दी, मुनाफे की दर में घटौती, अनावश्यक व विलासिता की वस्तुओं का उत्पादन, बेरोजगारी तथा गरीबी, उपनिवेशवादी आर्थिक शोषण, अन्तर्राष्ट्रीय कलह और युद्ध तथा 'तृतीय विश्व' का अल्प विकास आदि समस्याएँ प्रकट होती हैं।

समाजवाद में आर्थिक शक्ति का व्यक्तिगत तथा वर्गगत संकेन्द्रण समाप्त कर दिया जाता है। परन्तु समाज सामूहिक रूप से आर्थिक क्रियाओं का स्वामित्व और संचालन अपनी प्रतिनिधि संस्था या संस्थाओं को सौंपकर समाज की आर्थिक शक्ति का समाजीकरण करता है। इस व्यवस्था में आर्थिक शक्ति का कार्यानुसार तो संकेन्द्रण होता है, किन्तु वास्तविक अधिकार तथा नियन्त्रण समाज की प्रतिनिधि संस्थाओं के हाथ में देने से व्यक्तिगत तथा वर्गगत संकेन्द्रण के कारण उपजे अन्तर्विरोध मिटा दिये जाते हैं। जहाँ भी यह अधिकार प्रजातान्त्रिक प्रतिनिधि संस्थाओं के हाथ से निकल जाता है और

कुछ उपवर्ग अपने-आप या अपने मनोनीत प्रतिनिधियों द्वारा इन शक्तियों का प्रयोग करने लगते हैं, वहाँ इस सामाजिक शक्ति के निजी या समूहगत अधिकार के दुष्परिणाम तथा विरोधाभास प्रकट होने लगते हैं।

conciliation (कॅन्सिलिएशन): सुलह।

किसी भी विवाद में, विशेष रूप से औद्योगिक विवादों में, दोनों पक्षों की बातचीत द्वारा एक-दूसरे की बात समझाने तथा इस प्रकार विवाद के निपटारे की व्यवस्था। इस प्रकार विचार-विनिमय द्वारा सुलह कराने के लिए सरकार अपने श्रम-मन्त्रालय द्वारा विशिष्ट कर्मचारी भी नियुक्त कर सकती है। परन्तु यह सुलह कराने का काम मध्यस्थता की तरह अनिवार्य रूप से लागू होनेवाला निर्णय देना नहीं है। वस्तुतः सुलह करानेवाले अधिकारी को औपचारिक रूप से कोई भी मत प्रकट करने की आवश्यकता नहीं है। इस काम का सार-तत्त्व तो उचित अवसर पर सूझ-बूझपूर्ण हस्तक्षेप कर दोनों पक्षों को नजदीक लाना है। कुछ देशों में सुलह की व्यवस्था को नियमित करने की कानूनी व्यवस्था भी की जाती हैं।

concrete labour (कॉन्क्रीट लेबर): मूर्त श्रम।

उत्पादन-प्रक्रिया में लगा श्रम कोई-न-कोई ठोस, निश्चित रूप लेता है। वह श्रम किन्हीं विशेष गुणों से सम्पन्न होता है, किन्हीं विशेष औजारों, उपकरणों तथा तरीकों से सम्पन्न होता है, विभिन्न प्रकार के कच्चे मालों तथा अन्य वस्तुओं का प्रयोग करता है और इस श्रम का फल विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के रूप में प्रकट होता है। इन वस्तुओं की अलग-अलग उपयोगिता होती है। इस प्रकार श्रम का प्रयोग किसी एक सामान्य रूप में न होकर ठोस, निश्चित और विभिन्न उपयोगिता वाले रूपों में होता है। अतः हम कह सकते हैं कि उत्पादन-प्रक्रिया में लगे श्रम का मूर्त रूप वह होता है जो वस्तुओं की उपयोगिता का सृजन करता है और ठोस, निश्चित तथा उपयोगी रूप ग्रहण करता है। उदाहरणार्थ जब मनुष्य काम करता है, तब वह लुहार, बढ़ई, मोची, प्राध्यापक, अभिनेता आदि के श्रम के रूप में होता है। इस विविधतापूर्ण ठोस श्रम को उसका मूर्त रूप कहा जाता है।

कार्ल मार्क्स ने श्रम के इस रूप का प्रतिपादन करके वस्तुओं की प्रकृति की व्याख्या में इस अवधारणा का व्यवहार किया। वस्तुओं का उपयोग-मूल्य ठोस होता है, क्योंकि वह मूर्त श्रम पर निर्भर करता है।

consignment (कॅन्साइन्मेण्ट): प्रेषित माल।

साधारणतया विदेशी व्यापार के सन्दर्भ में प्रयुक्त शब्द। कभी-कभी निर्यातक वस्तुओं को विदेशी आयातक के पास भेज देते हैं और उन्हें यह निर्देश देते हैं कि जितनी अच्छी कीमत पर माल बेचा जा सके बेच दें।

इस प्रकार भेजा गया माल 'प्रेषित माल' कहलाता है। इसके विपरीत कुछ माल ऐसा होता है जो निश्चित आदेश (ऑर्डर) पर भेजा जाता है। इस माल के बेचने की शर्तें पहले ही तय कर ली जाती हैं।

consolidation of holdings (कॅनसाँलिडेशन ऑफ होल्डिंग्स) : जोतों की चकवन्दी।

विखरे तथा छोटे खेतों का एक बड़ी इकाई के रूप में एकत्रीकरण।

जनसंख्या-वहुल कृषि-प्रधान देशों में प्रायः खेतों का आकार छोटा होता है। साथ ही भूमि के गुणों की भिन्नता तथा समान रूप से पैतृक सम्पत्ति के वँटवारे के कारण एक कृषक की जोत भी दूर-दूर, पृथक्-पृथक् टुकड़ों में वँटी होती है। इससे वड़े स्तर के उत्पादन के लाभ प्राप्त नहीं हो पाते हैं और कृषक के श्रम और उपकरणों का अपव्यय होता है। फलतः कृषि की उत्पादिता कम हो जाती है। इन हानियों से बचने के लिए एक किसान की जमीन को विभिन्न किसानों की जोतों के आपसी विनिमय द्वारा एक चक में करने की व्यवस्था की जाती है। इस व्यवस्था को चकबन्दी कहते हैं।

प्रायः चकबन्दी का काम राजकीय पहल पर कानून द्वारा निर्धारित रीति से होता है। परन्तु कहीं-कहीं यह स्वैच्छिक आधार पर आपसी सहयोग द्वारा भी किया जाता है।

conspicuous consumption (कॅन्स्पिक्युअॅस कॅन्सम्प्शन) : प्रदर्शन-उपभोग।

उपभोग-वस्तुओं का वह चयन, जो अन्य लोगों को प्रभावित करने तथा उन पर अपने वैभव की धाक जमाने की भावना से किया जाता है। इस विचार के प्रचलन का श्रेय अमरीकनी समाजशास्त्री थोरस्टीन वेब्लेन को दिया जाता है। उनके आरामतलब वर्ग के सिद्धान्त के साथ यह विचार जुड़ा हुआ है। उन्हीं के शब्दों में "मूल्यवान वस्तुओं का प्रदर्शनकारी उपभोग आरामतलब वर्ग के सज्जनों के लिए प्रतिष्ठाप्राप्ति का साधन है"। उपभोग के ये उच्च स्तर उत्पादिता के वास्तविक स्तर पर आधारित नहीं होते हैं। ये उपभोग-वैभव का प्रदर्शन सुगमता से सबका ध्यान खींचनेवाले आकर्षक तीरीकों से करते हैं।

वेब्लेन ने मनुष्य के कार्यों तथा उसकी मनोदशाओं को एक तो उत्पादक और उपयोगी तथा दूसरे प्रदर्शनकारी और सम्मानाकांक्षी कोटियों में विभाजित किया है। इतिहास के प्रवाह में श्रम पर थोपी गयी लज्जा तथा हीनता के कारण श्रम दुखदायी तथा अप्रिय बन गया और दूसरी ओर जीवन के दैनिक क्रम से परे के कार्य और तौर-तरीके आरामपूर्ण एवं सम्माननीय बन गये। इस 'आरामतलब वर्ग' का निजी सम्पत्ति से सम्बन्ध होने पर सम्मान का सम्पत्ति के साथ नाता जुड़ा और समाज के उच्चवर्ग उत्पादक श्रम को त्यागकर वैभव के प्रदर्शन और उसकी प्राप्ति में जुट गये। इस तरह अकर्मण्यता ही पर्याप्त नहीं रही, वरन् उसके साथ महँगा मनोरंजन, खर्चीला आराम, 'उच्च-स्तर' की बुराइयाँ, समृद्धि का प्रदर्शन और इन तरीकों से दूसरों से श्रेष्ठतर होने का ढिंढोरा पीटना भी आवश्यक हो गया। इन्हीं सब प्रवृत्तियों का संक्षिप्त नाम प्रदर्शन-उपभोग है, जिसके द्वारा सम्मान की खोज में मूल्यवान वस्तुओं को व्यर्थ गँवाया जाता है।

इस प्रकार यह विचार विलासितापूर्ण उपभोग से मिलता-जुलता है। परन्तु विलासिता आवश्यक रूप से प्रदर्शनकारी

नहीं होती है। प्रदर्शनकारी उपभोग न केवल बचत को ही कम करता है, वरन् समाज के अन्य लोगों की बचत-प्रवृत्ति को भी कमजोर करता है। अतः यह विकासमान देशों के लिए तो अभिशाप है। एक विकसित पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में यह प्रभावकारी माँग को ऊँचे स्तर पर रख कर वहाँ पूर्ण रोजगार की स्थिति प्राप्त करने में सहायक हो सकता है।

constant capital (कॉन्स्टैण्ट कैपिटल) : अचल पूंजी।

कॉर्ल मार्क्स द्वारा प्रचलित अवधारणा। पूंजी का वह भाग, जो उत्पादन-साधनों—जैसे मशीन, कच्चा माल, औजार, कारखाने की इमारत आदि की खरीद—पर व्यय किया जाता है, अचल पूंजी कहलाता है। पूंजी का दूसरा भाग श्रम-शक्ति खरीदने पर लगाया जाता है जो चल पूंजी कहलाता है। मार्क्स के मतानुसार अचल पूंजी श्रम-प्रक्रिया के दौरान अपरिवर्तित रहती है। केवल यह जरूर होता है कि अचल पूंजी की जितनी मात्रा का श्रम-प्रक्रिया में उपभोग होता है, वह नये उत्पाद में तबदील हो जाती है। उदाहरणार्थ कच्चे माल का मूल्य पूरी तरह नये उत्पाद में स्थानान्तरित हो जाता है। इस अवधारणा के द्वारा मार्क्स को अधिशेष मूल्य का स्रोत स्पष्ट करने में सहायता मिली।

constant returns (कॉन्स्टैण्ट रिटर्न्स): समानुपातिक प्रतिफल।

उत्पादन-नियम का वह विशेष रूप, जिसके अनुसार जिस अनुपात में साधनों की मात्रा बढ़ायी जाती है, उसी अनुपात में उत्पादन की मात्रा भी बढ़ती है। इस नियम को इस तरह भी प्रकट किया जाता है कि जिस अनुपात में उत्पादन-लागत बढ़ती है, उसी अनुपात में उत्पादक का आगम भी बढ़ता है। अगर कीमतें अपरिवर्तित मानी जायें, तो दोनों प्रकार के वर्णनों में मूल तत्त्व एक ही नजर आयेगा। इस नियम में उत्पादन के सभी साधनों की मात्रा बढ़ती है और उनका अनुपात अपरिवर्तित रहता है। बढ़े हुए उत्पादन के स्तर का या तो कोई प्रभाव नहीं होता या उससे लाभ और हानि बराबर होते हैं।

देखिए : laws of returns

consumer credit (कॅन्ज्यूमर क्रेडिट) : उपभोक्ता-उधार, उपभोक्ता-ऋण।

वह उधार, जो उपभोग की आवश्यकताएं पूरी करने के लिए लिया जाता है। प्रायः मूल्यवान व दीर्घस्थायी वस्तुएँ खरीदने के लिए यह ऋण लिया जाता है। फसल नष्ट होने पर किसान आयहीन हो जाते हैं और उन्हें साधारण उपभोग की जरूरतें पूरी करने के लिए भी उधार लेना होता है। ऐसे ऋणों को विपत्ति-ऋण भी कहते हैं।

ये ऋण प्रायः किश्तों पर खरीददारी के उद्देश्य से लिये जाते हैं। किश्तों पर बिक्री करनेवाले संस्थान, बैंक, सहकारी ऋण समितियाँ, व्यापारी तथा साधारण व्यक्ति (मित्र, सम्बन्धी आदि) इस प्रकार के ऋणों के स्रोत होते हैं। मन्दी-काल के दौरान माँग बढ़ाने के लिए उपभोक्ता-ऋण आसान व उदार शर्तों पर उपलब्ध कराये जाते हैं।

consumer durables (कॅन्ज्यूमर ड्यूरेबल्स) : दीर्घस्थायी उपभोक्ता वस्तुएँ।

उपभोक्ता वस्तुओं की वह विशेष कोटि, जो काफी समय तक बार-बार

उपभोक्ताओं की जरूरतें पूरी करती है, जैसे निवास-स्थान, मोटर, फ्रिज, फर्नीचर आदि। आय के ऊँचे स्तर पर लोग इस प्रकार की वस्तुओं का अपेक्षाकृत अधिक उपयोग करने लगते हैं। इन वस्तुओं का उत्पादन व्यापार-चक्र के उतार-चढ़ाव से विशेष रूप से प्रभावित होता है। मुद्रा-नीति, व्याज-दर तथा किश्त-खरीद पर नियन्त्रण सम्बन्धी नीति का भी इन वस्तुओं की माँग पर काफी असर पड़ता है। जब आपत्काल या अन्य किसी विशेष परिस्थिति में उपभोग-नियंत्रण या कमी की नीति अपनायी जाती है, तब भी दीर्घ-स्थायी उपभोक्ता वस्तुओं की माँग सबसे पहले प्रभावित होती है।

consumers' goods (कॅन्ज्यूमर्स गुड्स): उपभोक्ता वस्तुएँ।

आवश्यकता की प्रत्यक्ष तुष्टि के लिए काम आनेवाली वस्तुएँ। ये वस्तुएँ उसी रूप में होती हैं, जिसमें उपभोक्ता उन्हें काम में लाना चाहते हैं। उत्पादन के वाद वस्तुओं का यह अन्तिम चरण होता है। कुछ उपभोक्ता वस्तुएँ—जैसे फल-फूल, खाद्य पदार्थ, मछली आदि शीघ्र नाशवान होती हैं। इसके विपरीत मकान, मोटर, मेज-कुर्सी आदि दीर्घस्थायी उपभोक्ता वस्तुएँ हैं। प्रति-व्यक्ति उपभोक्ता वस्तुओं की मात्रा किसी देश के जीवन-स्तर का अच्छा संकेतक है।

consumer price index (कॅन्ज्यूमर प्राइस इण्डेक्स) : उपभोक्ता कीमत सूचकांक।

उपभोक्ता वस्तुओं की खुदरा कीमतों का सूचकांक। किसी एक वर्ष की कीमतों को आधार मानकर विभिन्न वर्षों के लिए कितना भार निर्धारित किया जाये, यह 'उपभोक्ता कीमत सूचकांक' की गणना की महत्त्वपूर्ण समस्या है। एक विकसित देश में सेवाओं का भार अधिक होता है, जबकि गरीब देशों में खाद्य-पदार्थों की कीमतों का भार अधिक होता है। उपभोक्ता वस्तुओं की कीमतों के सूचकांक का एक बहुत प्रचलित प्रयोग सामूहिक सौदाकारी द्वारा मजदूरी-दर के निर्धारण में भी होता है। विभिन्न आय-वर्गों के लिए पृथक्-पृथक् सूचकांक तैयार किये जाते हैं।

consumers' sovereignty (कॅन्ज्यूमर्स सॉवरॅण्टी) : उपभोक्ता-प्रभुता।

पूंजीवादी व्यवस्था के संचालन और उसमें उपभोक्ता के स्थान के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण अवधारणा। व्यापक अर्थ में इसका तात्पर्य उपभोक्ता की अपनी आय को इच्छानुसार विभिन्न वस्तुओं पर खर्च करने की आजादी से है। अपेक्षाकृत सीमित अर्थ में उपभोक्ताओं के उपभोग सम्वन्धी निर्णयों द्वारा उत्पादन-ढाँचे के निर्धारण को उपभोक्ता-प्रभुता कहते हैं।

उपभोक्ता अपनी खरीद द्वारा कुछ वस्तुओं को स्वीकार और कुछ को अस्वीकार करते हैं। इस अवधारणा के अनुसार उपभोक्ताओं द्वारा अस्वीकृत वस्तुओं का उत्पादन घटेगा और स्वीकृत वस्तुओं का उत्पादन बढ़ेगा। उत्पादकों का उद्देश्य विनिर्मित माल को वेचकर मुनाफा कमाना है। लाभ-सहित उत्पादन-लागत पर वस्तुओं के बेचे जाने से उत्पादकों के उद्देश्य की पूर्ति होगी। अतः जिन वस्तुओं को बाजार में रख पाना सम्भव नहीं हो सकेगा, उनका उत्पादन रोका या घटाया जायेगा। इस प्रकार जिस दिशा में उपभोक्ताओं की माँग परिवर्तित होगी, उसी दिशा में

उत्पादन भी बदलेगा।

एकाधिकारी भी इस नियम के अनुसार ही चलते हैं, क्योंकि वे भी या तो अपने उत्पादन की कीमत निर्धारित कर सकते हैं या उत्पादन की मात्रा। दोनों बातों के निर्धारण की क्षमता न होने के कारण एकाधिकारी को भी उपभोक्ता की माँग के अनुसार ही अपनी नीति निर्धारित करनी पड़ेगी। हाँ, यह बात अवश्य है कि पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति की तुलना में उपभोक्ता की शक्ति एकाधिकार की स्थिति में काफी कम होगी। फिर भी एकाधिकारी उपभोक्ता को पूरी तरह नजरन्दाज नहीं कर सकता।

इस अवधारणा में अनेक कमियाँ हैं। जब तक उपभोक्ता को अपनी आय इच्छानुसार खर्च करने की आजादी है, तब तक वह इस प्रश्न को अर्थहीन-सा समझेगा कि क्या उत्पादन के स्वरूप का निर्धारण भी उसकी माँग के अनुसार ही होता है। आवश्यकताओं के सृजन में सामाजिक वातावरण का इतना प्रभाव होता है कि उपभोक्ता के चयन का क्षेत्र विद्यमान वस्तुएँ ही होती हैं। नयी वस्तुओं का प्रचलन उद्यमी पर निर्भर होता है। और फिर, यदि हम अधिकतम मुनाफे को ही उत्पादक की मूल प्रेरणा न मानें और उत्पादक के अन्य आर्थिकेतर उद्देश्यों पर भी ध्यान न दें तो उपभोक्ता की प्रभुसत्ता के पैर हिलने लगेंगे। साथ ही आय, सम्पत्ति तथा प्रतिष्ठा की असमानतापूर्ण समाज-व्यवस्था में यह प्रभुसत्ता सब उपभोक्ताओं की न रहकर कुछेक साधन-सम्पन्न वर्गों की ही रह जायेगी। उत्पादक विज्ञापन तथा बिक्री अभियानों द्वारा भी अपने लिए ग्राहकों का निर्माण कर इस अवधारणा का उपहास करते हैं। इस अवधारणा के प्रचलन का सामाजिक तथा दीर्घकालिक सामूहिक हितों सम्बन्धी वस्तुओं के उत्पादन पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।

इस अवधारणा की अन्तर्निहित दृढ़ व्यक्तिवादी मान्यताएँ आज की जटिल, सहयोगमयी अर्थव्यवस्थाओं के मूलाधारों के प्रतिकूल हैं। अतः इस अवधारणा का व्यापक अर्थ (उपभोक्ता की आय को विभिन्न उत्पादित वस्तुओं पर इच्छानुसार व्यय करने की आजादी) ही संगत प्रतीत होता है। जिस किसी भी अर्थव्यवस्था में आय को मौद्रिक रूप में बाँटा जाता है तथा वस्तुओं की बिक्री पर नियंत्रण नहीं होता है, वहाँ यह अवधारणा खरी उतरती है। फिर भी आजकल की अर्थव्यवस्थाओं में विभिन्न करों, आयात्-नियन्त्रण तथा अन्य राजकीय नियमों (जैसे कि मद्य-निषेध आदि) द्वारा इसका क्षेत्र सीमित हो जाता है। युद्ध तथा संकटकालीन स्थिति में तो कानूनी नियन्त्रण लागू किये जाते हैं और इस तत्त्व के लागू होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

consumers' surplus (कॅन्ज्यूमर्स सर्प्लस्) : उपभोक्ता-अधिशेष, उपभोक्ता-बचत।

प्रायः अल्फ्रेड मार्शल के नाम से जुड़ी अवधारणा। ह्रासमान सीमान्त उपयोगिता की अवधारणा से यह निष्कर्ष निकलता है कि अन्तःसीमान्त इकाइयों से प्राप्त उपयोगिता की अपेक्षा उपभोग की सीमान्त इकाई से प्राप्त उपयोगिता कम होती है। मारिस के सिद्धान्त के अनुसार जब किसी वस्तु की सीमान्त उपयोगिता उस वस्तु

की कीमत के बराबर हो जाती है तब उपभोक्ता को अधिकतम सन्तुष्टि (उपभोक्ता के सन्तुलन) की प्राप्ति होती है। पूर्ण प्रतियोगिता में किसी वस्तु की सब इकाइयों की कीमत एक ही होती है। अतः उपभोक्ता को अपनी अन्तःसीमान्त इकाइयों की खरीद पर कीमत से अधिक उपयोगिता प्राप्त होती है। यही अतिरिक्त सन्तुष्टि उपभोक्ता-अधिशेष या उपभोक्ता-बचत के नाम से जानी जाती है।

कीमत-विभेद की नीति से यह अधिशेष कम किया जा सकता है। मार्शल ने इस अवधारणा द्वारा उपभोक्ताओं को होने वाले लाभ को स्पष्ट किया। माँग के उपयोगिता-सिद्धान्त की सारी कमियाँ इस अवधारणा के साथ जुड़ी हुई हैं।

consumption (कॅन्जम्प्शॅन) : उपभोग।

आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वस्तुओं तथा सेवाओं का प्रयोग उपभोग कहलाता है। आर्थिक क्रियाओं का एक मुख्य उद्देश्य उपभोग या आवश्यकताओं की सन्तुष्टि होता है। उपभोग के अध्ययन में व्यक्ति तथा बाजार की माँग, पारिवारिक बजट, जीवन-स्तर आदि विषयों का अध्ययन किया जाता है। परम्परागत अर्थशास्त्र में आवश्यकताओं के उत्पन्न होने की प्रक्रिया, उसे प्रभावित और परिवर्तित करनेवाले तत्त्वों तथा विभिन्न व्यक्तियों की उपभोग-क्षमता का अध्ययन नहीं किया जाता है। अर्थशास्त्र की इस प्रवृत्ति के पीछे इसका व्यक्ति-प्रधान रुझान रहा है। परन्तु जहाँ तक अर्थशास्त्र को एक सामाजिक विज्ञान समझा जाता है, आवश्यकताओं का रूप बाहरी शक्तियों द्वारा निर्धारित मानना उचित नहीं है। जब सामाजिक अर्थशास्त्र उपभोग की प्रवृत्ति को समझाने का प्रयास करता है, तो आवश्यकताओं के उद्गम का सवाल अर्थशास्त्र क्यों नहीं उठायेगा।

यदि हम मान-सम्मान, सामाजिक प्रतिष्ठा, शक्ति तथा प्रेम आदि उद्देश्यों की पूर्ति को भी आर्थिक अध्ययन में शामिल करें, तो उपभोग का क्षेत्र वस्तुओं तथा सेवाओं से भी ज्यादा विस्तृत किया जा सकता है। मानव-व्यवहार तथा सामाजिक सम्बन्धों का जो ज्ञान उपभोग की इस व्यापक परिभाषा द्वारा मिलेगा, उसके बदले उपभोग के अध्ययन की कठिनाई अवश्य बढ़ जायेगी।

consumption capital (कॅन्जम्प्शॅन कॅपिटल): उपभोग-पूँजी।

इस अवधारणा का प्रयोग अलफ्रेड मार्शल ने उपभोग-वस्तुओं के अर्थ में किया है। यह वस्तुएँ उस रूप में होती हैं जिसमें कि उपभोक्ता उन्हें लेना या उनका उपभोग करना चाहते हैं।

consumption function (कॅन्जम्प्शॅन फॅन्क्शन) : उपभोग-फलन।

उपभोग-प्रवृत्ति की व्याख्या करनेवाले तत्त्वों तथा उपभोग-मात्रा का पारस्परिक सम्बन्ध। केन्स ने राष्ट्रीय आय तथा रोजगार-स्तर को समझाने के लिए सम्पूर्ण प्रभावी माँग की अवधारणा का प्रयोग किया। उपभोग व्यय सम्पूर्ण प्रभावी माँग का महत्त्वपूर्ण घटक है। इस घटक की व्याख्या करने एवं उसके निर्धारक तत्त्वों को स्पष्ट करने के लिए अनेक वस्तुगत व आत्मगत कारकों की परिकल्पना की गयी। आय-सम्पत्ति की मात्रा, कीमत-स्तर, ब्याज दर, कर-नीति, परिवार का

आकार आदि उपभोग को प्रभावित करने-वाले वस्तुगत तत्त्व हैं। रुचि, फैशन, अन्य लोगों के उपभोग-स्तर व प्रणाली का प्रभाव, क़ीमत, आय व सम्पत्ति की मात्रा सम्बन्धी प्रत्याशाएँ आदि आत्मगत प्रभाव हैं। उपभोग-फलन इन विभिन्न तत्त्वों तथा उपभोग-मात्रा के सम्बन्ध को स्पष्ट करता है।

देखिए : propensity to consume

consumption goods (कॅन्जम्प्शन गुड्स) उपभोग-वस्तुएँ।

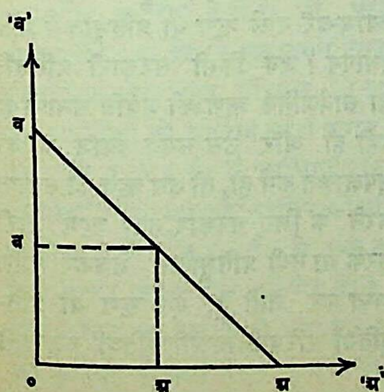
उपभोक्ता-वस्तुओं के लिए एक वैकल्पिक नाम।

देखिए : consumers' goods

consumption line (कॅन्जम्प्शॅन लाइन): उपभोग-रेखा।

एक रेखाचित्र में किन्हीं दो वस्तुओं के उपभोग की समस्त सम्भावनाओं को दर्शानेवाली रेखा। यह रेखा यह बताती है कि आय, कीमत तथा अधिमान की एक विशेष स्थिति में किन्हीं दो वस्तुओं के किन विभिन्न जोड़ों के बीच चयन करना किसी उपभोक्ता के लिए सम्भव है। इस रेखा को 'आय-कीमत रेखा' भी कहा जाता है।

निम्न रेखाचित्र में एक ऐसी उपभोग-रेखा दिखायी गयी है :



अगर हम एक उपभोक्ता की आय तथा 'अ' और 'ब' दो वस्तुओं की कीमतों के एक विशेष स्तर की परिकल्पना करें, तो हमारे रेखाचित्र में यह उपभोक्ता अपनी सारी आय 'अ' वस्तु पर खर्च करके ०-अ मात्रा में 'अ' का तथा सारी आय 'ब' पर खर्च करके ०-ब मात्रा में 'ब' का उपभोग कर सकता है। यदि हम 'अ' तथा 'ब' बिन्दुओं को मिलाती हुई रेखा खींचें, तो जो 'अ-ब' रेखा बनेगी वह उपभोग-रेखा कहलायेगी। इसका कोई भी बिन्दु इन दो वस्तुओं के एक विशेष जोड़े का द्योतक है, जिसका उपभोक्ता चयन कर सकता है। उपभोक्ता-माँग के विश्लेषण में यह रेखा काफी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

consumption tax (कॅन्जम्प्शॅन टैक्स) : उपभोग-कर।

उपभोग पर लगाया गया कर। यह व्यय-कर से काफी मिलता-जुलता है। ऐसे करों का मुख्य उद्देश्य अर्थव्यवस्था में उपभोग-व्यय में कमी लाना और बचत को बढ़ाना होता है। उपभोग-व्यय में कमी करने का अप्रत्यक्ष प्रभाव उपभोग के स्वरूप पर भी पड़ता है। युद्ध या संकट का सामना करने तथा आर्थिक विकास को बढ़ाने के लिए यह कर लगाया जाता है।

contraction (कॅण्ट्रैक्शन) : संकुचन।

व्यापक रूप में आर्थिक कार्यकलापों में होनेवाली घटी। ऐसी स्थिति अपकर्ष अथवा मन्दी-काल में देखने को मिलती है। चरम स्तर पर आर्थिक क्रिया के पहुँच लेने पर संकुचन का प्रारम्भ होता है और यह क्रम मन्दी की निम्नतम सीमा तक चलता रहता है। संकुचन की मात्रा और इसकी अवधि निश्चित नहीं है।

समय-समय पर इनमें बड़ी भिन्नता नज़र आती है।

controls (कॅण्ट्रोल्स) : नियन्त्रण।

आर्थिक नीति के विश्लेषण में अनेक प्रकार की नीतियों का मूलाधार तथा स्वरूप नियन्त्रण के नाम से जाना जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि आर्थिक नियन्त्रण की आवश्यकता स्वीकार करने पर इन नीतियों को अपनाया जाता है। दूसरी ओर, अधिकांश सक्रिय आर्थिक नीतियाँ मूलत: किसी-न-किसी प्रकार का नियन्त्रण ही होती हैं। यहाँ हमारा तात्पर्य आर्थिक नियन्त्रण से है। व्यक्तियों, व्यवसायों एवं संस्थानों का आर्थिक कार्यों में सामाजिक या राजकीय हस्तक्षेप 'आर्थिक नियंत्रण' कहा जाता है। यह नियन्त्रण कुछ प्रकार के आर्थिक निर्णयों तथा कार्यों के पूर्णत: निषेध से लेकर इन कार्यों को विभिन्न दिशाओं, मात्राओं तथा सभी में प्रभावित करने तक का रूप लेता है। किसी-न किसी प्रकार से समाज तथा राज्य हमेशा व्यक्तिगत आर्थिक क्रियाओं को प्रभावित, परिवर्तित एवं परिवर्धित करते रहे हैं।

इस काम के तरीके बदलते रहे हैं। ये तरीके प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष तथा दोनों के मिश्रण हो सकते हैं। सामन्ती आर्थिक प्रणाली में परम्परा एवं कानून द्वारा नियन्त्रण लागू किया जाता था। पूँजीवादी व्यवस्था में मौद्रिक नीति, कराधान नीति, प्रत्यक्ष कानूनी नियन्त्रण, आर्थिक आयोजन, तटकर नीति आदि तरीकों से आर्थिक नियंत्रण की व्यवस्था की जाती है। आर्थिक नियंत्रण की आवश्यकता का सबसे मुख्य कारण आर्थिक प्रश्नों व प्रक्रियाओं के सामाजिक स्वरूप एवं उनके व्यक्ति या व्यक्ति-समूह स्तर पर सुलझाने तथा संचालन का अन्तर्विरोध है। इस अन्तर्विरोध को मिटाने के लिए राज्य या समाज द्वारा आर्थिक क्रियाओं में हस्तक्षेप किया जाता है।

आर्थिक नियन्त्रण की आवश्यकता, स्वरूप सीमा तथा तरीकों को लेकर, विशेष रूप से कुछ खास प्रश्नों को लेकर, अर्थशास्त्र में अनेक सिद्धान्तों, विचारों तथा विचारधाराओं का विकास हुआ है। जिस मूलभूत अन्तर्विरोध के कारण आर्थिक नियन्त्रण की जरूरत होती है, समाजवाद में उसे समाप्त करने की कोशिश की जाती है। सामाजिक-आर्थिक प्रक्रिया का सामाजिक स्तर पर संचालन करना समाजवाद का महत्त्वपूर्ण मुद्दा है। इसके अन्तर्गत आर्थिक नियन्त्रण का स्थान सम्पूर्ण आर्थिक तन्त्र का प्रबन्ध तथा संगठन ले लेता है। नियन्त्रण के सम्बन्ध में बहुत-सी बहस नियन्त्रण के गुण-दोष से सम्बन्धित न होकर बहुधा नियन्त्रण के विभिन्न तरीकों के सापेक्ष गुण-दोष के विषय में होती है।

conversion (कॅन्वरशॅन) : परिवर्तन, रूपान्तरण।

किसी ऋण या प्रतिभूति का दूसरे कम ब्याज-दर वाले ऋण या प्रतिभूति से प्रतिस्थापन। जब किसी सरकारी प्रतिभूति या सार्वजनिक ऋण की अवधि समाप्त हो रही हो और उस समय ब्याज की दर अपेक्षाकृत कम हो, तो उस ऋण को समाप्त करने के लिए सरकार नया ऋण जारी करके या नयी प्रतिभूतियाँ बेचकर राशि प्राप्त कर लेती है; ऐसे ऋण या प्रतिभूतियाँ 'परिवर्तनीय प्रतिभूतियाँ' कहलाती हैं।

convertible debentures (कॅन्वर्टिबल डिबेंचर्स) : सम्परिवर्ती ऋणपत्र।

वे ऋणपत्र, जिनके धारकों को कुछ समय बाद या कुछ अवस्थाओं में उन्हें (ऋणपत्रों को) साधारण शेयर में वदलने का अधिकार होता है। भारत में सार्वजनिक वित्तीय संस्थाओं को निजी क्षेत्र की औद्योगिक इकाइयों को दिये अपने ऋणों को साधारण शेयर में वदलने का अधिकार दिया गया है।

convertibility (कॅन्वर्टिबिलिटी) : परिवर्तनीयता।

किसी करेन्सी का विदेशी मुद्राओं में परिवर्तनीय होने का गुण। जव कोई करेन्सी हर परिस्थिति में विनिमयसाध्य होती है, तव ऐसी करेन्सी को पूर्णतया परिवर्तनीय कहा जाता है। बहुपक्षीय व्यापार परिवर्तनीयता की दशा में ही सम्भव है।

convertibility crises (कॅन्वर्टिविलटी क्राइसिस) : मुद्रा-परिवर्तन संकट।

पौण्ड स्टर्लिंग को डालर में परिवर्तित करने की दुरूह कठिनाई। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् ब्रिटेन की आर्थिक स्थिति डाँवाडोल हो गयी थी। उसने अमरीका के साथ-साथ यूरोपीय देशों से भी भारी आयात किया था जिसके फलस्वरूप उसका भुगतान-सन्तुलन बहुत प्रतिकूल हो गया था। अमरीका को भुगतान सरल बनाने के उद्देश्य से १९४६ ई० में 'वाशिंगटन ऋण समझौता' किया गया और स्टर्लिंग की परिवर्तनीयता को १९४७ ई० में मुक्त कर दिया गया। फलत: जिन यूरोपीय देशों के पास स्टर्लिंग था, उन्होंने भी अमरीकी माल को खरीदने के लिए अपने पौण्ड पावने को डालर में वदल डाला।

ब्रिटेन को पहले ही अमरीका को लगभग इतना ही डालर अपने आयातों के लिए भुगतान करना था। नतीजा यह हुआ कि ब्रिटेन के डालर-शेष पर इतना दवाव वढ़ा कि पाँच सप्ताह बाद ही स्टर्लिंग की परिवर्तनीयता को रोक देना पड़ा। अमरीका को यह पता नहीं था कि ब्रिटेन की आर्थिक स्थिति इतनी कमजोर है। लेकिन वाद में ब्रिटेन के आर्थिक पुनरुत्थान के निमित्त अमरीका ने 'मार्शल सहायता योजना' के रूप में ब्रिटेन ही नहीं, अन्य यूरोपीय देशों की अर्थव्यवस्थाओं का भी उद्धार किया।

cooperation (कोऑपरेशन) : सहकारिता।

ऐसा उद्यम, कार्यकलाप या संगठन जिसके जन्मदाता और उपयोगकर्ता उसके सदस्य होते हैं और जिसका संचालन सदस्यों के हितलाभ के लिए किया जाता है तथा उसके लाभ-हानि के भागीदार भी उसके सदस्य ही होते हैं।

सहकारिता के विचार का जन्म उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में प्रतियोगिता के विकल्प के रूप में हुआ था। रावर्ट ओवन (१७७१-१८५८) ने उत्पादन-सहकारिता का सबसे पहले सफल प्रयोग किया था। उत्पादन-सहकारिताएँ इंगलैंड की अपेक्षा यूरोप में अधिक सफल सिद्ध हुईं। उत्पादन के पश्चात् उपभोक्ता-सहकारिता का भी परीक्षण किया गया, किन्तु आरम्भिक असफलताओं के बाद १८८० ई० से ही सहकारिता आन्दोलन ने अपनी जड़ें मजबूत करनी शुरू कर दी थीं।

आज उग्र साम्यवाद और घोर पूंजीवाद के ध्रुवों के मध्य विकासशील देशों

में सहकारिता को विकास के लिए राम-बाण माना जाने लगा है और आर्थिक विकास के विभिन्न क्षेत्रों में इसका प्रयोग किया जा रहा है। उत्पादक तथा उप-भोक्ता सहकारिताओं के साथ-साथ गृह-निर्माण, बचत-उधार, क्रय-विक्रय, सेवाओं आदि में सहकारिता-सिद्धान्त का सफलता से प्रयोग किया जा रहा है।

cooperative farming (कोऑपरेटिव फार्मिंग) : सहकारी खेती।

सहकारी सिद्धान्तों पर आधारित कृषि-व्यवस्था। इसके अन्तर्गत किसी स्थान के कृषक स्वेच्छा से समानता के आधार पर मिलकर संयुक्त रूप में कृषिकार्य चलाते हैं। यहाँ भूमि पर निजी अधिकार बना रहता है। कृषक केवल खेती करने के लिए अपनी-अपनी जोतें एक में मिलाते हैं। सहकारी खेती के सदस्यों को उनकी जमीन के अनुसार लाभांश प्राप्त होता है और कार्य करने के बदले मजदूरी।

सहकारी खेती के सहारे छोटी-छोटी एवं बिखरी हुई जोतों की समस्या स्थायी रूप से हल हो जाती है। इसके अतिरिक्त, सहकारी खेती के अन्तर्गत छोटे किसानों को उत्पादन, ऋण-प्राप्ति एवं विपणन के क्षेत्रों में बड़े पैमाने के महत्त्वपूर्ण सुलाभों की उपलब्धि सम्भव हो जाती है जो उनको वैसे व्यक्तिगत रूप में प्राप्त नहीं हो सकते थे। इस प्रकार सहकारी खेती के सहारे छोटे किसान भी सफलता-पूर्वक वैज्ञानिक ढंग से खेती कर सकते हैं। इसी कारण से आजकल भारत में सहकारी खेती को बढ़ावा देने पर जोर दिया जा रहा है।

सहकारी खेती और सामूहिक खेती के बीच मुख्य अन्तर यह है कि सहकारी खेती के अन्तर्गत भूमि पर निजी स्वामित्व बना रहता है और कृषक बिना किसी बाहरी दबाव के इस व्यवस्था को अपनाते हैं, जबकि सामूहिक खेती के अन्तर्गत भूमि पर निजी अधिकार समाप्त हो जाता है और स्वेच्छा का तत्त्व भी जाता रहता है।

co-ordination (को-ऑरडिनेशन) : समन्वय, तालमेल।

विभिन्न वस्तुओं, शक्तियों, कार्यों और प्रक्रियाओं को आपस में एक-दूसरे के साथ लाना या जोड़ना तथा उनके आपसी विरोध या विभेद को दूर करना। उत्पादन साधनों की मात्रा तथा विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन के कार्यक्रम को समन्वित करना आवश्यक है। अन्यथा कुछ साधन अनुपयुक्त रह जायेंगे और कुछ साधनों का अभाव होने से उनकी कीमतें बढ़ने लगेंगी। आर्थिक क्रियाओं की आपसी निर्भरता के कारण उनमें ताल-मेल या समन्वय स्थापित करना आर्थिक जीवन की मूलभूत समस्या है। बाजार, आयोजन आदि ताल-मेल बिठानेवाली संस्थाएँ हैं।

ताल-मेल की समस्या अनेक रूपों में प्रकट होती है। अर्थव्यवस्था में आय तथा लाभ के रूप में वितरित आय और उप-भोग-वस्तुओं के उत्पादन की मात्रा में ताल-मेल बिठाना आवश्यक है। आर्थिक सिद्धान्तों की महत्त्वपूर्ण 'सन्तुलन' की अवधारणा एक तरह से ताल-मेल की व्यापक समस्या के ही विभिन्न विशिष्ट रूपों से सम्बन्धित है। विभिन्न आर्थिक प्रणालियों में ताल-मेल बिठाने की अलग-अलग पद्धतियाँ अपनायी जाती हैं।

co-partnership (को-पार्टनरशिप) : सह-साझेदारी।

उद्योग-व्यवसायों के प्रवन्ध की वह व्यवस्था जिसमें मालिक तथा मजदूर औपचारिक समझौते के अन्तर्गत लाभ को आपस में बाँटते हैं। वस्तुतः इस व्यवस्था के अन्तर्गत मजदूरों को शेयरधारियों के समान मान लिया जाता है और उन्हें प्रवन्ध में भी हिस्सा दिया जा सकता है। वैसे सह-साझेदारी श्रमिकों की प्रवन्ध में भागीदारी से अलग व्यवस्था है। स्पष्ट है कि इस व्यवस्था में कर्मचारियों को अधिक प्रेरणा, सन्तुष्टि और आर्थिक लाभ की प्राप्ति होती है।

copy right (कॉपी राइट): स्वत्वाधिकार।

किसी साहित्यिक, कलात्मक या वैज्ञानिक कृति या उपलब्धि या पुस्तक को पुनरुत्पादित करने का अथवा किसी अन्य विधि से उसका व्यावसायिक प्रयोग करने का एकछत्र अधिकार। यह अधिकार लेखक, कलाकार, वैज्ञानिक, उनके नियोक्ता, सरकारी विभाग आदि में निहित हो सकता है। लेखकों के जीवनपर्यन्त तथा उसके बाद के पचास साल तक स्वत्वाधिकार बना रहता है। इस विषय पर हर देश में अपना-अपना कानून होता है।

इस प्रकार के अधिकार द्वारा एक तरह की सर्वाधिकारी स्थिति उत्पन्न होती है। इससे ऐसे उत्पादों की कीमत ऊँची रहने की सम्भावना पैदा होती है। परन्तु साथ ही लेखकों को प्रतियोगिता से सुरक्षित लाभ प्राप्त करने के अवसर मिलते हैं। ऐसा सोचा जाता है कि इससे उन्हें अधिक और अच्छा काम करने की प्रेरणा मिलती है। परन्तु अधिकांश देशों में इस अधिकार की अवधि अनावश्यक रूप से लम्बी होती है।

cornering (कॉर्नरिंग): बाजार समेटना।

बाजार को मुट्ठी में करने का प्रयास। जब कोई व्यापारी एकाधिकार पाने के उद्देश्य से बाजार में उपलब्ध सारा माल खरीद लेता है, तब उसकी यह क्रिया 'बाजार समेटना' कहलाती है। इस प्रकार इसका आशय एकाधिकारात्मक क्रय से है।

corporate income tax (कॉर्पोरेट् इनकॅम टैक्स): निगम आय-कर, कम्पनी आय-कर।

संयुक्त पूँजी कम्पनियों तथा निगमों की आय पर लगाया गया कर। संयुक्त पूँजी कम्पनियों तथा निगमों की आय पर भी व्यक्तियों की आय की ही तरह कर लगाया जा सकता है। यहाँ कम्पनियों की आय से तात्पर्य उनके मुनाफे से है तथा यह कर मुनाफे को लाभांश के रूप में वितरित करने के पहले लगाया जाता है। आधुनिक पूँजीवादी देशों में, जहाँ ये निगम बहुत प्रचलित हैं, यह कर प्रत्यक्ष करों में बहुत महत्त्वपूर्ण हो गया है। यह कर काफी प्रगतिशील माना जाता है।

corporate saving (कॉरपोरेट सेविंग); कम्पनी-बचत, निगम-बचत।

संयुक्त पूँजी कम्पनियों या निगमों का अवितरित लाभ। यह कम्पनियों की आन्तरिक बचत है और आजकल इसकी मात्रा काफी बड़ी होने लगी है। कम्पनियाँ इस आन्तरिक बचत से अपना विस्तार या

नया पूंजीगत खर्च करती हैं। चूंकि यह बचत उनके अपने नियन्त्रण में होती है, इसलिए कम्पनियों के प्रवन्धक नये निवेशों के लिए मुद्रा तथा पूंजी-बाजार से स्वतन्त्र होकर इसके सम्बन्ध में निर्णय ले सकते हैं। आर्थिक शक्ति के संकेन्द्रण में कम्पनी-बचत, प्रवन्धकों की बाजार से स्वतन्त्रता बढ़ाकर, सहायक सिद्ध होती है।

corporation (कॉरपोरेशन) : निगम।

संयुक्त पूंजी कम्पनी का ही अमरीका आदि देशों में प्रचलित नाम।

देखिए : joint stock company

cosmopolitan wealth (कॉस्मोपालिटन् वेल्थ): सर्वदेशीय धन।

इस अवधारणा का प्रयोग एल्फ्रेड मार्शल ने किया है। इसका आशय उस धन से है जिस पर सब देशों का सामूहिक अधिकार होता है; जैसे कि समुद्र, वायु-मण्डल, अन्तरिक्ष आदि।

cost (कॉस्ट) : लागत।

किसी वस्तु के उत्पादन में लगे संसाधनों की कीमतों का जोड़ उस वस्तु की उत्पादन-लागत कहलाता है। उत्पादन-मात्रा के एक निश्चित स्तर पर ही लागत की अवधारणा सार्थक होती है, क्योंकि विना उत्पादन-मात्रा को निर्दिष्ट किये लागत निश्चित नहीं की जा सकती है। लागत की सारी मात्रा आवश्यक रूप से अन्य लोगों को भुगतान नहीं की जाती। कारण, फर्म या उत्पादन-इकाई कई संसाधन आन्तरिक रूप से भी प्रदान कर सकती हैं। अतः लागत की गणना में उत्पादन में काम आये सभी संसाधनों की कीमतें शामिल की जानी चाहिए। आन्तरिक रूप से प्रदान किये गये संसाधनों की तात्कालिक बाजार-कीमत के आधार [पर] गणना की जानी चाहिए।

उत्पादन-लागत के सम्बन्ध में कु[ल] लागत, चल लागत, स्थिर लागत, औ[सत] लागत, सीमान्त लागत, समस्त उद्योग [की] औसत लागत आदि कई अवधारणाएँ [हो] सकती हैं। लागत का स्तर किसी फर्म [या] उद्योग की कुशलता की अच्छी तकनी[की] कसौटी है।

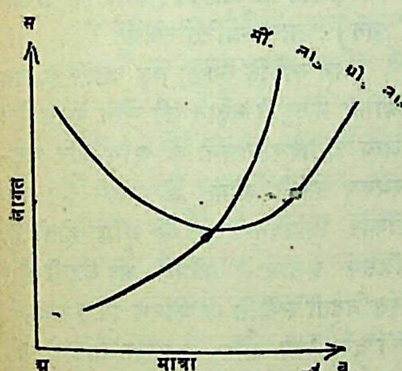
संसाधनों की कीमतों के जोड़ के अ[ति]रिक्त लागत की कई अन्य प्रकार की अ[व]धारणाएँ भी अर्थशास्त्र में प्रचलित [र]हैं। किसी वस्तु को प्राप्त करने के लि[ए] सीमित साधनों की स्थिति में जिन विक[ल्पों] का परित्याग करना पड़ता है, उसे 'विक[ल्प] लागत' कहा जाता है। काम करने [में] कुछ मनोवैज्ञानिकों के मतानुसार, कु[छ] शारीरिक-मानसिक कष्ट होता है। लाग[त] की एक गणना मानसिक कष्ट के पैमाने [पर] भी की जा सकती है। इसे 'वास्तवि[क] लागत' कहा जाता है।

लागत का अर्थ सामाजिक सन्दर्भ [में] भी लिया जा सकता है। उसे 'सामाजि[क] लागत' कहा जाता है। किसी वस्तु [के] उत्पादन में अनेक ऐसी चीजें सहायक हो[ती] हैं जिनके लिए किसी उत्पादक या फर्म [को] कोई भुगतान नहीं करना पड़ता; जैसे [कि] शान्ति और व्यवस्था का वातावरण, कि[सी] एक उद्योग में तकनीकी प्रगति के का[रण] किसी अन्य उद्योग में काम आने[वाले] संसाधनों की लागत में आयी कमी आदि[।] वास्तव में हर फर्म को कुछ बाह्य मि[त]व्ययिताएँ प्राप्त होती हैं। समाज को [तो] इनकी कीमतें चुकानी पड़ती हैं, पर कि[सी] फर्म या उत्पादकों को नहीं। इसी प्र[कार]

किसी एक फर्म के उत्पादन से कुछ अलाभ या अमितव्ययिताएँ भी उत्पन्न होती हैं। उदाहरण के लिए, किसी कारखाने की चिमनी से निकले धुएँ के कारण उस स्थान के आसपास रहनेवाले लोगों को सफाई, चिकित्सा, घूमने-फिरने आदि पर अतिरिक्त व्यय करना पड़ता है। यद्यपि वह फर्म उस व्यय को वहन नहीं करती है, फिर भी वह इस व्यय का कारक तो है ही; ऐसी लागतें भी 'सामाजिक लागत' में शामिल की जाती हैं।

cost curve (कॉस्ट कर्व) : लागत वक्र।

लागत का आरेखीय निरूपण। विभिन्न प्रकार की लागतों को वक्र खींचकर दिखाया जा सकता है। निम्न रेखाचित्र में औसत लागत और सीमान्त लागत को वक्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है:



इस रेखाचित्र को देखने से पता चलता है कि सीमान्त लागत (सी० ला०) औसत लागत (औ० ला०) को उसके न्यूनतम विन्दु पर काटती है। इस न्यूनतम बिन्दु पर औसत लागत और सीमान्त लागत एक-दूसरे के बराबर होती हैं। इस बिन्दु के पहुँचने के पहले सीमान्त लागत की अपेक्षा औसत लागत अधिक होती है, जबकि इस बिन्दु के बाद सीमान्त लागत अपेक्षाकृत अधिक होती है।

cost of living (कॉस्ट ऑफ़ लिविंग) : निर्वाह-खर्च।

एक निश्चित जीवन-स्तर की व्यवस्था के लिए आवश्यक वस्तुओं और सेवाओं की खरीदारी में जो खर्च होता है, वह 'निर्वाह-खर्च' कहलाता है। भिन्न-भिन्न स्थान, व्यक्ति व वर्ग के जीवन-स्तरों में भारी अन्तर दिखायी देता है। जीवन-स्तर का आशय उन सब वस्तुओं व सेवाओं के जोड़ से है जिन्हें कोई व्यक्ति, परिवार या वर्ग आवश्यक समझता है अथवा जिनके उपभोग का वह आदी हो जाता है।

cost of living bonus (कॉस्ट ऑफ़ लिविंग बोनस) : निर्वाह-खर्च बोनस।

फुटकर कीमतों के सूचकांक पर आधारित मूल वेतन के अतिरिक्त मिलनेवाली राशि। इस प्रकार की व्यवस्था की जा सकती है कि निर्वाह-खर्च में एक निश्चित सीमा के उपरान्त वृद्धि होने पर (जिसकी जानकारी फुटकर कीमतों के सूचकांक द्वारा हो सकती है) निर्वाह-खर्च बोनस अपने-आप बढ़ता रहे। दोनों विश्वयुद्धों के दौरान अनेक श्रमिक-वर्गों के लिए इस प्रकार के बोनस की व्यवस्था की गयी थी, जिसे आगे चलकर मूल वेतन का अंग बना दिया गया। स्पष्टतः जब तक सूचकांक श्रमिकों के वास्तविक जीवन-स्तर पर आधारित न होगा, तब तक निर्वाह-खर्च में वृद्धि के कारण हुई क्षति पूरी करने का यह ढंग अनुचित या मनमाना ही ठहरेगा।

cost of living index (कॉस्ट ऑफ़ लिविंग इण्डेक्स) : निर्वाह-खर्च सूचकांक।

एक विशेष आय-वर्ग के लोगों के निर्वाह-खर्च में हो रहे परिवर्तनों की माप और तुलना के लिए बनाये गये सूचकांक। इस प्रकार के सूचकांक बनाने के लिए उस वर्ग-विशेष से सम्बन्धित प्रतिनिधि वस्तुएँ चुनी जाती हैं और फिर उस वर्ग के सदस्यों द्वारा उपभोग-मात्रा के अनुसार यह निर्णय किया जाता है कि उन वस्तुओं को कितना महत्त्व या भार दिया जाये। साथ ही एक आधार-वर्ष ले लिया जाता है, जिसे १०० सूचकांक के बराबर मान लेते हैं। फिर आगामी वर्षों में उन वस्तुओं की कीमतों को सूचकांक के रूप में दिखाया जाता है। इस प्रकार आधार-वर्ष के सूचकांक के साथ तुलना करके यह मालूम किया जा सकता है कि विचाराधीन अवधि में निर्वाह-खर्च में कितने प्रतिशत वृद्धि या घटी हुई।

cost of production (कॉस्ट ऑफ़ प्रोडक्शन) : उत्पादन-लागत। लागत का पूरा नाम।

देखिए : cost
cost curves
cost schedule

cost plus principle (कॉस्ट प्लस प्रिन्सिपल) : लागतोपरि सिद्धान्त।

कीमत-निर्धारण का वह सिद्धान्त, जिसके अनुसार किसी वस्तु की उत्पादन-लागत में एक निश्चित राशि जोड़कर कीमत तय की जाती है। स्पष्टत: ऐसा पूर्ण प्रतियोगिता-सम्पन्न स्थिति में ही हो सकता है। आजकल कई उद्योगों में यह कीमत-नीति अपनायी जाती है। प्रायः उत्पादन-लागत का एक विशेष प्रति[...] उसमें जोड़कर कीमत निश्चित की [...] है। ऐसी कीमत-नीति में आर्थिक क्ष[...] को बहुत नीची प्राथमिकता मिलती [...] क्योंकि इसके अन्तर्गत लागत न्यूनतम [...] की कोई प्रेरणा नहीं रहती। उल्टे जि[...] ही लागत अधिक होगी, उतनी ही अ[...]रिक्त राशि उसमें जोड़ी जायेगी। [...] कीमत-नीति का व्यवहार बचत बढ़ा[ने के] लिए किया जाता है, वहाँ कीमत-निर्धा[रण] का यह सूत्र सहायक सिद्ध होता है।

cost price (कॉस्ट प्राइस) : ला[गत] कीमत।

कीमत-निर्धारण का वह सूत्र, जि[सके] अनुसार कीमत लागत के बराबर [...] है। अर्थात् कीमत 'बिना लाभ, बि[ना] हानि' सिद्धान्त के आधार पर निश्चित [की] जाती है।

cost push inflation (कॉस्टपुश इन्फ्ले[...]शन) : लागत-प्रेरित स्फीति।

जब स्फीति काफी बढ़ जाती है, [...] श्रमिक मजदूरी बढ़ाने की माँग करते [...] अन्य उत्पादन-साधनों की माँग और [...] स्वरूप उनकी कीमतें भी बढ़ती हैं। [इस] प्रकार उत्पादन-लागत में वृद्धि होती [...] जिसके प्रभाव से कीमतें भी बढ़ती [...] इस बढ़ती स्फीति के कारण फिर मज[दूरी] की दर तथा अन्य उत्पादन-साधनों [की] कीमतें बढ़ती हैं। इस प्रकार कीमतों [के] बढ़ने का क्रम अपने को दोहराता [...] है। यह दुष्चक्रात्मक क्रम निरन्तर ज[ारी] रहकर स्फीति को और बढ़ाता है। इ[से] लागत-प्रेरित स्फीति कहते हैं। [...] यह किसी अर्थव्यवस्था के त्वरित [...] स्फीति के चक्र में बुरी तरह फँस [...]

का परिणाम है ।

देखिए : galloping inflation
wage-price spiral

cost schedule (कॉस्ट शेड्यूल) : लागत अनुसूची ।

इसका आशय उस अनुसूची से है, जिसमें भिन्न-भिन्न उत्पादन-मात्राओं की कुल लागत, औसत लागत, सीमान्त लागत, स्थिर एवं अस्थिर लागत अथवा इनमें से किसी एक या अधिक लागतों को दिखाया जाता है। इसी अनुसूची के आधार पर लागत-वक्र खींचे जाते हैं । प्रायः इस तालिका में उत्पादन-मात्रा में छोटी-छोटी मात्रा में हुए परिवर्तनों के कारण लागत में आये परिवर्तन दिखाये जाते हैं ।

cottage industry (कॉटेज इण्डस्ट्री) : कुटीर उद्योग ।

वे काम-धन्धे तथा व्यवसाय जो घरेलू तौर पर, पारिवारिक श्रम की सहायता से, अपेक्षाकृत कम पूंजी से, प्रायः परम्परागत वस्तुओं का परम्परागत तकनीक के सहारे उत्पादन करते हैं । वे उद्योग श्रमप्रधान होते हैं । ऐसे उद्योग गाँवों में विशेष रूप से पनपते हैं । इस विकेन्द्रित तथा श्रम-प्रधान प्रकृति के कारण रोजगार की समस्या के अल्पकालिक समाधान, शहरी-करण से बचने, कलात्मक वस्तु उत्पादित करने तथा आय और सम्पत्ति की समानता बढ़ाने में इन उद्योगों का विशेष योगदान होता है । ऐसे ही कारणों से महात्मा गाँधी ने भारत में कुटीर उद्योगों को बढ़ावा देने की नीति प्रतिपादित की थी ।

countervailing duty (कॉउण्टर्वेलिंग ड्यूटी) : प्रतिकारी शुल्क ।

अवांछित विदेशी प्रतियोगिता से स्वदेशी उद्योग को बचाने के लिए लगाये गये आयात-शुल्क । कभी-कभी निर्यातकों को किसी वस्तु के निर्यात पर सरकार द्वारा उपदान देने की व्यवस्था होती है । इससे दूसरे देशों की मण्डियों में ऐसे निर्यात सस्ते हो जाने के कारण उनकी प्रतियोगिता शक्ति बढ़ जाती है । इससे निर्यात-संवर्द्धन में सहायता मिलती है । प्रायः ऐसी स्थिति में स्वदेशी उद्योग को संरक्षण देने एवं उस प्रकार के अन्य आयातों के साथ समानता स्थापित करने के उद्देश्य से आयातक देश की सरकार ऐसे उपदानप्राप्त माल के आयात पर प्रतिकारी शुल्क लगाने की व्यवस्था करती है । इस प्रकार की नीति अपनाने से उपदानप्राप्त निर्यात को होने-वाला विशेष लाभ कट जाता है । साधारणतः प्रतिकारी शुल्क की मात्रा उपदान की मात्रा के बराबर होती है । अस्तु, प्रतिकारी शुल्क उपदानप्राप्त निर्यात से स्वदेशी मण्डियों को पाटने की विदेशी सरकार की नीति को निष्फल करने का एक तरीका है ।

countervailing power (कॉउण्टर्वेलिंग पॉवर) : प्रतिकारी शक्ति ।

अमरीकी अर्थशास्त्री जॉन केनेथ गॉलब्रेथ द्वारा आर्थिक क्षेत्र में प्रचलित अवधारणा । जब बहुस्पर्धी पूंजीवादी व्यवस्था में एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता तथा एकाधिकारी प्रवृत्तियाँ पनपने लगती हैं, तब प्रतियोगिता पर आधारित पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के नियम लागू नहीं हो पाते । ऐसी अवस्था में गॉलब्रेथ ने बताया कि विक्रेताओं में आपसी प्रतियोगिता कम होने पर बाज़ार में क्रेताओं की दिशा से प्रतियोगिता प्रकट होने लगती है

उस समय श्रमिक संघ, उपभोक्ता सहकारी समितियाँ, कच्चे माल के सम्भरकों के संगठन, राजकीय आर्थिक हस्तक्षेप आदि प्रतियोगिता कायम रखने में सहायक होते हैं। इस प्रकार मूल रूप में प्रतियोगितात्मक अर्थप्रणाली के नियम बने रहते हैं।

creative destruction (क्रिएटिव डिस्ट्रक्शन) : सर्जनात्मक विनाश।

जोसेफ शुम्पीटर द्वारा प्रस्तुत तकनीकी प्रगति की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता। तकनीकी प्रगति द्वारा पुरानी तकनीकी प्रक्रिया के स्थान पर नयी प्रक्रिया का प्रयोग किया जाता है। इस तरह पहले से चलती आ रही मशीनें, जो अभी और उत्पादन करने में सक्षम हैं, बेकार हो जाती हैं। इन मशीनों का परित्याग करना पड़ता है। परन्तु उनकी उपयोगी जिन्दगी का यह विनाश नयी और अधिक सर्जनात्मक क्षमताओं का उपयोग करने के लिए किया जाता है। नयी प्रक्रिया और मशीनें या तो उत्पादन-लागत घटाकर साधनों की बचत करती है या नये और उन्नत किस्म के उत्पाद द्वारा आवश्यताओं की श्रेष्ठतर ढंग से सन्तुष्टि करती है। इस तरह शुम्पीटर ने पूँजीवादी आर्थिक विकास की गतिशीलता को इस नाटकीय शब्द द्वारा स्पष्ट किया है।

credit (क्रेडिट) : उधार।

ऐसा लेन-देन, जिसमें भुगतान भविष्य में किया जाता है। व्यापारिक उधार वह होता है, जिसमें किसी वस्तु या सेवा की खरीद के बदले भुगतान किसी भावी समय में (जो प्रायः पहले ही निश्चित कर लिया जाता है) किया जाता है। इस प्रकार के सौदों में स्वाभाविक है कि वस्तु की सामान्य कीमत से कुछ ज्यादा कीमत लगायी जाती है। मुद्रा-बाजार में भी विभिन्न व्यावसायिक संस्थान एक-दूसरे को उधार दे सकते हैं। बैंक उधार से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण वित्तीय संस्था है।

देखिए : bank credit
loan
money market

credit control (क्रेडिट कॅण्ट्रोल): उधार-नियंत्रण।

अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देने अथवा स्फीतिकारी दबावों को कम करने के उद्देश्य से उधार-निन्यत्रण की नीति का सहारा लिया जाता है। इसके अन्तर्गत उधार की मात्रा एवं उसके प्रयोग पर नियन्त्रण लगाया जाता है। बैंकों को यह आदेश दिया जाता है कि वे अमुक राशि से अधिक उधार न दें अथवा अमुक-अमुक कार्यों के लिए उधार देना बन्द कर दें या निर्धारित मात्रा में ही दें।

देखिए : credit squeeze

credit squeeze (क्रेडिट स्क्वीज) : उधार-निरोध।

मुद्रा-नीति का वह विशेष रूप, जिसमें महँगी मुद्रा-नीति को अपनाकर कड़ाई के साथ उधार की मात्रा को कम किया जाता है। अर्थव्यवस्था में माँग घटाने का यह बहुत प्रभावपूर्ण तरीका होता है।

देखिए : **credit control**
dear money

creeping inflation (क्रीपिंग इन्फ्लेशन): मन्द स्फीति।

सामान्य कीमत-स्तर में मन्द गति से हो रही निरन्तर वृद्धि। जब कीमतों में २ या ३ प्रतिशत वार्षिक दर से लगातार

वृद्धि होती रहती है तब उसे मन्द स्फीति की स्थिति कहते हैं। तेजी से बढ़ती हुई कीमतों को तो प्रायः सभी अर्थशास्त्री बहुत खतरनाक एवं हानिकर मानते हैं। इससे आर्थिक, सामाजिक, नैतिक आदि विभिन्न क्षेत्रों में तरह-तरह की गम्भीर समस्याएँ पैदा होती हैं, जिनके फलस्वरूप आर्थिक प्रगति रुक जाती है और अन्ततः सारी अर्थव्यवस्था अस्त-व्यस्त हो जाती है।

लेकिन मन्द स्फीति के लाभ और हानि के सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों के बीच काफी मतभेद पाया जाता है। कुछ अर्थशास्त्री अर्थव्यवस्था के विकास की दृष्टि से मन्द स्फीति को लाभकारी तथा वांछनीय ठहराते हैं। इनके अनुसार मन्द स्फीति की स्थिति में उत्पादकों के लाभ में वृद्धि होती है, क्योंकि वस्तु-कीमतों में साधन-कीमतों अथवा लागत से आगे बढ़ने की प्रवृत्ति पायी जाती है। लाभ में इस वृद्धि से नये-नये निवेश-कार्यों को करने में सहायता व प्रेरणा मिलती है, जिसके फलस्वरूप रोज़गार, उत्पादन और आय में वृद्धि होगी। इस प्रकार अर्थव्यवस्था के लिए पूर्ण रोज़गार की स्थिति की प्राप्ति एवं अधिकाधिक आर्थिक विकास की दिशा में आगे बढ़ना सम्भव हो सकेगा।

लेकिन दूसरी ओर अन्य अर्थशास्त्री मन्द-स्फीति के प्रतिकूल प्रभावों पर बल देते हैं। इस सम्बन्ध में वे मुख्य रूप से दो बातें कहते हैं। एक, यदि कुछ वर्षों के समय को मिलाकर देखा जाये, तो मन्द स्फीति का पुनर्वितरणकारी प्रभाव बहुत बुरा और गम्भीर नजर आयेगा। कीमतें यदि ३ प्रतिशत वार्षिक दर से बढ़ें, तो लगभग २३ वर्षों में कीमत-स्तर दुगुना हो लेगा। दूसरे, मन्द-स्फीति के मन्द ही बने रहने की सम्भावना कम ही रहती है। इसके साथ यही आशंका लगी रहती है कि कहीं यह मन्द रूप छोड़कर अति-स्फीतिकारी रूप धारण न कर ले।

cross clasticity of demand (क्रॉस इलास्टिसिटी ऑफ डिमाण्ड) : माँग की प्रतिलोच।

किसी वस्तु की कीमत में हुए परिवर्तन के दूसरी वस्तु की माँग पर पड़नेवाले प्रभाव की माप। इसका सम्बन्ध ऐसी वस्तुओं से है जो एक-दूसरे की परिपूरक होती हैं; जैसे गेन्द और बल्ला जो एक-दूसरे की प्रतिस्थापक होती है; या जैसे कि कॉफ़ी और चाय। माँग की प्रतिलोच किसी वस्तु की माँग में प्रतिशत-परिवर्तन को दूसरी वस्तु की कीमत में प्रतिशत-परिवर्तन से भाग देकर मापी जा सकती है। उदाहरण के लिए मान लें कि किसी वस्तु की कीमत में १० प्रतिशत परिवर्तन होने से दूसरी वस्तु की माँग में २० प्रतिशत परिवर्तन होता है। ऐसी दशा में माँग की प्रतिलोच २ होगी। इसका हिसाब इस प्रकार लगाया जा सकता है :

$$\frac{\frac{१००}{१०}}{\frac{१००}{२०}} = \frac{१००}{१०} \times \frac{२०}{१००} = २$$

प्रतिपूरक वस्तुओं की माँग की प्रतिलोच ऋणात्मक होती है। गेन्दों की कीमत गिरने से बल्लों की माँग बढ़ जायेगी। इसके विपरीत प्रतिस्थापक वस्तुओं की माँग की प्रतिलोच धनात्मक होती है। ऐसी वस्तुओं के सम्बन्ध में एक वस्तु का जब भाव कम होगा, तब दूसरी वस्तु की माँग

कम हो जायेगी। उदाहरणतया कॉफ़ी की कीमत गिरने से चाय की माँग घट जायेगी।

cross rate (क्रॉस रेट) : प्रतिदर, क्रास रेट।

इसका आशय दो देशों की करेन्सी के बीच उस विनिमय-दर से है, जिसका परिकलन किसी तीसरे केन्द्र या स्थान के माध्यम से किया जाता है। इसे अप्रत्यक्ष विनिमय समता भी कहते हैं।

cumulative preference shares (क्यूम्यूलेटिव प्रेफरेन्स शेयर्स) : संचयी अधिमान शेयर।

किसी कम्पनी द्वारा जारी किये गये एक विशेष प्रकार के शेयर। अधिमान शेयर की यह विशेषता होती है कि साधारण शेयर पर लाभांश बाँटने के पहले इन पर एक निश्चित दर से लाभांश बाँटा जाता है। इनमें से कुछ अधिमान शेयर इस प्रकार के होते हैं कि यदि किसी वर्ष उन पर लाभांश का भुगतान न किया जा सके, तो लाभ की स्थिति आने पर आगे चलकर उस राशि की प्राप्ति पर उनके धारकों का पूर्वाधिकार होता है। अर्थात् लाभांश की बकाया रकम जुड़ती रहती है और साधारण शेयरों पर लाभांश-वितरण के पहले इस रकम का भुगतान करना होता है। इस प्रकार के अधिमान शेयरों को 'संचयी अधिमान शेयर' कहते हैं।

cumulative process (क्यूम्यूलेटिव प्रोसैस) : संचयी प्रक्रिया।

कोई भी ऐसी आर्थिक प्रक्रिया, जो एक बार प्रारम्भ होने पर अपनी आन्तरिक शक्ति के आधार पर और अधिक तेजी से निरन्तर आगे बढ़ती रहती है। इस प्रकार की प्रक्रिया में एक तरह का चक्रवत् का प्रभाव सम्बन्ध होता है। आर्थिक वि प्रायः एक संचयी प्रक्रिया के रूप में होता है। अवरुद्ध विकास आर्थिक पि पन को बढ़ाता है और आज का वि विकास कल के विकास को और बल देता है। प्रत्याक्षाएँ भी संचयी प्र की तरह बदलती हैं। कई बार मुनाफा, आय आदि भी संचयी प्रक्रि रूप ले लेते हैं।

देखिए : cobweb theorem

currency (करेन्सी) : करेन्सी, मुद्रा

किसी देश की कुल मुद्रा-पूर्ति का भाग, जो विधिग्राह्य रूप में संचल होता है। भारत में रिजर्व बैंक इण्डिया व भारत सरकार के नोट सिक्के करेन्सी की कोटि में आते हैं लेन-देन में विधिग्राह्य होते हैं। साधार 'मुद्रा' शब्द का अपेक्षाकृत अधिक अर्थ में प्रयोग किया जाता है। करेन्स अतिरिक्त इसमें बैंक-जमा को भी शा किया जाता है।

currency appreciation (करे एप्रीशिएशन) : करेन्सी-मूल्य-वृद्धि

विदेशी विनिमय बाज़ार में करेन्सी के रूप में किसी करेन्सी के में वृद्धि होना। इस अवधारणा का विशेष रूप से उस विदेशी विनिमय-प्र के सन्दर्भ में किया जाता है, जिसके गंत माँग और पूर्ति में परिवर्तनों के अ बाज़ार में करेन्सी के मूल्यों में स्वतन्त्र से उतार-चढ़ाव होता है। उदाहर लिए, यदि आयात की तुलना में देश के निर्यात अधिक हैं, तो बाज़ार उस देश की करेन्सी की पूर्ति घट जा

ऐसी स्थिति में उस देश की करेन्सी का मूल्य वढ़ जायेगा। करेन्सी से मूल्य में इस वृद्धि के फलस्वरूप आयात सस्ते हो जायेंगे और विदेश के लोगों के लिए ऐसे देश के निर्यात महँगे बन जायेंगे। स्पष्टतः ऐसा होने पर आयात में वढ़ने की और निर्यात में घटी होने की प्रवृत्ति ज़ोर पकड़ेगी और यह प्रवृत्ति उस समय तक वनी रहेगी, जब तक कि फिर से सन्तुलन की स्थिति स्थापित न हो जायेगी।

currency depreciation (करेन्सी डिप्रीसिएशन) : करेन्सी-मूल्यह्रास।

यह करेन्सी-मूल्य-वृद्धि का विपरीतार्थक शब्द है। जब विदेशी विनिमय बाज़ार में किसी देश की करेन्सी का मूल्य, किसी अन्य देश या देशों की करेन्सी के सन्दर्भ में, गिर जाता है, तब वह करेन्सी-मूल्यह्रास कहलाता है। इस अवधारणा का सम्बन्ध ऐसे विदेशी विनिमय बाजार से है जहाँ करेन्सी के मूल्यों अथवा विनिमय-दरों में, स्वतन्त्र रूप से, माँग और पूर्ति विषयक परिवर्तनों के अनुसार घट-बढ़ होती है। उदाहरणतया निर्यात की अपेक्षा आयात अधिक होने पर बाज़ार में देश-विशेष की करेन्सी की पूर्ति बढ़ जायेगी और इस कारण उसके मूल्य में घटी होगी। करेन्सी के मूल्य में इस घटी के फलस्वरूप एक ओर तो आयात महँगा हो जायेगा और इस कारण आयात में कमी होगी और दूसरी ओर अन्य देशों के लिए निर्यात के सस्ता होने के कारण निर्यात को प्रोत्साहन मिलेगा। इस प्रक्रिया के फलस्वरूप अन्ततः सन्तुलन पुनःस्थापित हो जायेगा।

currency school (करेन्सी स्कूल) : करेन्सीवादी सम्प्रदाय।

अर्थशास्त्रियों का वह समुदाय, जो यह मानता था कि कागजी मुद्रा के निर्गम के पीछे स्वर्ण का शत-प्रतिशत समर्थन होना चाहिए। क्योंकि धातुमान के अन्तर्गत यदि विदेशों को स्वर्ण जाता है अथवा वहाँ से स्वर्ण आता है, तो संचलनगत मुद्रा की मात्रा अपने-आप घट या बढ़ जायेगी और इससे कीमत-स्तर पर तत्काल प्रभाव पड़ेगा, इसलिए आयात-निर्यात व्यापार भी स्वतः नियन्त्रित होता रहेगा।

इंगलैण्ड में उन्नीसवीं शताब्दी में यह सम्प्रदाय उस समय प्रकाश में आया, जब प्रत्ययी मुद्रा के निर्गम के फलस्वरूप १८२५-३९ ई० के बीच अनेक आर्थिक संकटों ने उत्पात मचा दिया था। इन अर्थशास्त्रियों का कहना था कि धातु-आरक्षण की तुलना में कागजी मुद्रा कहीं अधिक मात्रा में जारी करने के कारण ऐसा हुआ। उन्होंने मुद्रा-निर्गम का कठोर नियन्त्रण करने की दलील दी। जबकि इसके विपरीत बैंकिंग सम्प्रदाय के समर्थकों का कहना था कि नोट-निर्गम लोचदार होना चाहिए, जिससे बढ़ते हुए व्यापार की जरूरतें पूरी की जा सकें। करेन्सीवादी सम्प्रदाय नोट तथा सिक्कों को ही मुद्रा मानते थे, अन्य प्रत्ययी मुद्रा को वे मुद्रा नहीं मानते थे। लेकिन बैंकिंग सम्प्रदाय प्रत्ययी मुद्रा को भी मुद्रा ही मानते थे। उनकी मान्यता थी कि व्यापार के परिमाण के अनुसार ही मुद्रा-निर्गम में विस्तार और संकुचन स्वतः हो जायेगा। अतः इसके लिए किसी कानूनी नियन्त्रण की कोई जरूरत नहीं है।

current accoult (करेण्ट अॅकाउण्ट) : चालू खाता।

चालू खाता वह बैंक लेखा है, जिसमें

से जमाकर्त्ता जमा की गयी राशि को अपने इच्छानुसार जब व जितना चाहें, चैक द्वारा निकलवा सकते हैं। स्पष्ट है कि चेक चालू खाते में जमा राशि का प्रयोग स्वतन्त्र रूप से नहीं कर सकता, क्योंकि जमाकर्त्ता पूर्व-सूचना के विना किसी भी समय यह रकम निकाल सकते हैं। इसीलिए वैंक चालू खाते की रक़म पर प्राय: व्याज नहीं देते या वहुत कम देते हैं। इसके विपरीत जमा की रकम निर्धारित न्यूनतम मात्रा से कम हो जाने की स्थिति में तो वैंक उस पर प्राय: कमीशन लेते हैं। 'चालू खाते' को 'अल्पकालिक खाता' भी करते हैं।

चालू खाते का प्रयोग विदेशी भुगतान-शेष के सम्बन्ध में भी किया जाता है। इस लेखे में सब प्रकार के चालू अन्तर्राष्ट्रीय सौदों का व्यौरा दिया जाता है। इसमें आयात व निर्यात की दृश्य मदें (वस्तुएँ) तथा अदृश्य मदें (सेवाएँ), दोनों शामिल रहती हैं।

current assets (करेण्ट अॅसेट्स) : चालू परिसम्पत्तियाँ।

नकदी या अन्य ऐसी मदें, जो सामान्य रूप से एक वर्ष में नकदी का रूप धारण कर लेती हैं तथा ऐसी परिसम्पत्तियाँ, जो एक वर्ष की अवधि में फ़र्म के परिचालन में प्रयुक्त हो जाती हैं, 'चालू परिसम्पत्ति' के नाम से जानी जाती हैं। चालू परि-सम्पत्ति में इस तरह की अनेक मदें शामिल रहती हैं; जैसे कि अपने पास या वैंक में रखी नकदी, प्राप्त होनेवाली राशियाँ, कच्चा माल, विक्री माल, विक्रेय प्रति-भूतियाँ अथवा ऐसे ख़र्चे जिनका पहले ही भुगतान किया जा चुका हो। स्पष्टत: किसी फ़र्म के वने रहने के लिए यह आवश्यक है कि चालू देनदारियों की तुलना में चालू परिसम्पत्ति की मात्रा अधिक हो। चालू परिसम्पत्ति की यह अपेक्षाकृत अधिक मात्रा, फ़र्म की 'कार्यशील पूंजी' कहलाती है।

देखिए : assets

current balance (करेण्ट वैलेन्स): चालू शेष।

इसका प्रयोग मुख्यत: विदेशी भुगतान-लेखे के सन्दर्भ में किया जाता है। निर्यात और आयात की दृश्य एवं अदृश्य मदों के मूल्यों का हिसाब-किताव करते समय जो शेष निकलता है, उसे 'चालू शेष' का नाम दिया जाता है। इस लेखे में पूंजी-परिचा-लन को शामिल नहीं किया जाता।

current liabilities (करेण्ट लाइअवि-लिटीज़) : चालू देयता।

इसका आशय किसी फ़र्म की उन देन-दारियों से है, जिनका साधारणतया एक वर्ष के भीतर भुगतान करना होता है। चालू देयता या देनदारियों के प्रमुख रूप ये हैं—मज़दूरी, कर, व्याज, लाभांश आदि भुगतान की जानेवाली मदें। चूंकि चालू देनदारियों को शीघ्र चुकाना होता है, इस-लिए फर्म के पास चालू देयता की तुलना में चालू परिसम्पत्ति का अधिक मात्रा में होना अनिवार्य है। कारण, उसी दशा में फ़र्म अपने को वनाये रख सकेगी। चालू देयता की तुलना में चालू परिसम्पत्ति की यह अधिक मात्रा फ़र्म की 'कार्यशील पूंजी' कहलाती है और इसका प्रयोग व्यवसाय के दैनिक परिचालन के लिए किया जाता है।

current ratio (करेण्ट रेशिओ) : चालू अनुपात।

किसी फ़र्म की चालू परिसम्पत्ति और

चालू देनदारियों के बीच का सम्बन्ध या अनुपात। उदाहरण के लिए, यदि किसी फ़र्म की चालू परिसम्पत्ति का मूल्य २ लाख रुपये है और चालू देनदारियाँ १ लाख रुपये के बराबर हैं, तो उसका चालू अनुपात २:१ होगा। दूसरे शब्दों में, प्रत्येक १ रुपये की देनदारी के पीछे फ़र्म के पास २ रुपये के मूल्य के बराबर चालू परिसम्पत्ति हैं। चूँकि चालू अनुपात के परिगणन में ऐसी चीज़ों का भी मूल्य शामिल रहता है, जिनकी अभी बिक्री नहीं हुई है; इसलिए चालू अनुपात को देखकर किसी फ़र्म की वर्तमान आर्थिक स्थिति का सही-सही अनुमान नहीं लगाया जा सकता।

customs drawbac (कस्टॅम्स् ड्रॉवैक): सीमा-शुल्क-वापसी।

कभी-कभी किसी देश में कुछ प्रकार की वस्तुओं, विशेषत: कच्चे माल के आयात पर सीमा-शुल्क का जो भुगतान किया जाता है, उसे उन वस्तुओं अथवा उनके सहारे बनी वस्तुओं के पुन: निर्यात पर लौटाने की व्यवस्था होती है। इसे 'सीमा-शुल्क-वापसी' कहते हैं। साधारणतया इस प्रकार की व्यवस्था निर्यात-संवर्द्धन के उद्देश्य से की जाती है

देखिए : drawback

customs duties (कस्टॅम्स् ड्यूटीज़): सीमा-शुल्क।

सीमा-शुल्क से आशय आयात और निर्यात के करों से है। ये कर माल के आयात और निर्यात पर देश की सरकार द्वारा लगाये जाते हैं तथा माल के देश की सीमाओं को पार करते समय आयातक व निर्यातक द्वारा इन करों का भुगतान किया जाता है। वैसे तो आयात और निर्यात दोनों पर सीमा-शुल्क लगाये जा सकते हैं, लेकिन प्राय: आयात पर ही सीमा-शुल्क लगाये जाते हैं। इस प्रकार मोटे तौर से सीमा-शुल्क का अर्थ केवल आयात-कर से भी लगाया जाता है।

सीमा-शुल्क लगाने की प्रथा बहुत प्राचीन है। यह करों का बहुत पुराना रूप है। आरम्भ में विशेष कार्यों के लिए, जैसे कि गोदी, बन्दरगाह आदि के सिलसिले में होनेवाले व्यय को पूरा करने के उद्देश्य से, सीमा-शुल्क लगाये जाते थे। आगे चलकर सीमा-शुल्क ने सरकारी राजस्व के एक सामान्य स्रोत का रूप धारण कर लिया। आधुनिक काल में राजस्व-प्राप्ति के एक साधन के अतिरिक्त आयात को सीमित व नियमित करके देश के उद्योगों को संरक्षण प्रदान करने एवं अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान-शेष सम्बन्धी स्थिति को सुधारने के लिए सीमा-शुल्क को एक महत्त्वपूर्ण उपाय के रूप में प्रयोग किया जाने लगा है।

वैसे तो सीमा-शुल्क व्यापार के तुलनात्मक लागत-सिद्धान्त के विपरीत बैठते हैं, और इस कारण सैद्धान्तिक दृष्टि से ये अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के पूर्ण विकास में बाधक माने जाते हैं। फिर भी अनेक आर्थिक एवं आर्थिकेतर बातों के आधार पर इनको आवश्यक और न्यायसंगत समझा जाता है। भुगतान-शेष में सुधार करने, नवजात उद्योगों को संरक्षण देने और देश की अर्थव्यवस्था को अभिप्रेरित करने के प्रयोजन से विभिन्न देश समय-समय पर काफ़ी बड़ी सीमा तक सीमा-शुल्क का सहारा लेते रहे हैं। हाँ, यह बात अवश्य है कि द्वितीय महायुद्ध के बाद से भुगतान-शेष, आर्थिक विकास एवं तत्सम्बन्धी

समस्याओं के समाधान के लिए सीमा-शुल्क की बजाय अन्य उपायों, विशेष रूप से विदेशी सहायता, के प्रयोग की ओर झुकाव बढ़ रहा है।

देखिए : tariffs

customs union (कस्टॅम्स यूनियन) : सीमा-शुल्क संघ, कस्टम यूनियन।

कुछ देशों द्वारा स्थापित एक संघ, जिसके अन्तर्गत, एक समझौते के अनुसार, सदस्य देश अपने-अपने क्षेत्रों में सीमा-शुल्कों को पारस्परिक व्यापार के लिए हटा लेते हैं तथा बाहरी देशों के साथ व्यापार करने के लिए एक-जैसी प्रशुल्क-नीति अथवा टैरिफ अपनाते हैं। इस समझौते का सम्बन्ध केवल आयात और निर्यात-शुल्कों के साथ ही नहीं, बल्कि अन्य प्रकार के प्रभारों व कोटा-नियन्त्रणों के साथ भी हो सकता है। सीमा-शुल्क-संघों का आर्थिक आधार तुलनात्मक लागत-सिद्धान्त में निहित है, जिसके अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर लगे नियन्त्रणों को हटाने या कम करने से कुल उत्पादन और व्यापार में वृद्धि होने की सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं। इस प्रकार अपेक्षाकृत बड़े बाज़ार में माल बेचने की सुविधा प्राप्त करने के उद्देश्य से कुछ देश व्यापार-प्रतिबन्ध के परम्परागत उपायों के सहारे अपने उद्योगों को सदस्य देशों से संरक्षण देने का अपना अधिकार त्यागकर सीमा-शुल्क संघ के सदस्य बनने का कदम उठाते हैं।

इतिहास में 'सीमा-शुल्क संघ' के अनेक छोटे-बड़े उदाहरण मिलते हैं, जैसे कि यूरोपीय साझा बाज़ार, यूरोपीय आर्थिक सहयोग संगठन, लैटिन-अमरीकी मुक्त व्यापार-क्षेत्र आदि। 'सीमा-शुल्क संघ' वस्तु-विशेष के लिए भी बनाये जा सकते हैं और सम्पूर्ण आर्थिक संघटन के लिए भी। ऐसा भी होता है कि आरम्भ में किसी एक वस्तु के लिए कुछ देश मिलकर संघ स्थापित करते हैं और सफलता मिलने पर आगे चलकर उसका क्षेत्र विस्तृत कर दिया जाता है।

देखिए : common market
economic integration

cut-throat competition (कट-थ्रोट कॉम्पिटीशन) घातक प्रतियोगिता।

प्रतियोगिता का अत्यन्त उग्र अथवा विनाशकारी रूप। इस प्रकार की स्थिति पैदा होने की आशंका प्रायः उस समय अधिक होती है, जबकि उत्पादकों की संख्या थोड़ी होती है और उनकी वस्तुएँ केवल नाम, छाप आदि में ही एक-दूसरे से भिन्न होती हैं, वस्तुतः नहीं। 'घातक प्रतियोगिता' साधारणतः कीमत-संघर्ष के रूप में प्रकट होती है। बड़े उत्पादक वस्तु की कीमत घटा देते हैं, ताकि छोटे उत्पादकों के लिए प्रतियोगिता में ठहर पाना कठिन बन जाये और अन्ततः वे बाज़ार से बाहर निकलने के लिए विवश हो जायें। इसी कारण इस प्रकार की प्रतियोगिता को 'घातक' कहा जाता है।

कीमत-संघर्ष का बुरा प्रभाव लगभग सब प्रतियोगियों पर कम या अधिक मात्रा में पड़ता है। इस कारण आजकल अधिकतर 'घातक प्रतियोगिता' कीमत-संघर्ष के स्थान पर विज्ञापन-संघर्ष का रूप धारण करती है। विज्ञापन-संघर्ष में भाग लेकर प्रतियोगी अपने ग्राहक बनाये रखने और दूसरों के ग्राहक तोड़ने का प्रयास करते हैं। कभी-कभीं विज्ञापन-संघर्ष के साथ-साथ

कीमतों में कमी करने का भी कदम उठाया जाता है।

cyclical fluctuations (साइक्लिकल् फ्लक्चुएशन्स) : चक्रीय उतार-चढ़ाव।

व्यापार-क्षेत्र में तेज़ी और मन्दी का नियमित रूप से आना। स्पष्ट शब्दों में 'चक्रीय उतार-चढ़ाव' का आशय व्यापार-चक्र से है।

देखिए : trade cycle
business cycle

cyclical unemployment (साइक्लिकॅल अनएँम्पलायमेण्ट) : चक्रीय बेरोज़गारी।

व्यापार-चक्र के मन्दी-काल के दौरान पैदा होनेवाली बेरोज़गारी। इसका तात्कालिक कारण यह है कि अर्थव्यवस्था में मन्दी की स्थिति आने के फलस्वरूप समस्त उत्पादन-प्रणाली अस्त-व्यस्त हो जाने के कारण श्रम की माँग घट जाती है। चूँकि इस बेरोज़गारी का सम्बन्ध मन्दी से होता है, इस कारण इसका प्रभाव काफ़ी व्यापक होता है। उत्पादन के लगभग सभी क्षेत्रों पर इसका प्रभाव पड़ता है। फिर भी भिन्न-भिन्न प्रकार के उद्योगों और श्रमिकों पर 'चक्रीय बेरोज़गारी' का भिन्न-भिन्न प्रभाव पड़ता है। साधारणतः पूंजी-पदार्थ तैयार करनेवाले उद्योगों में इस प्रकार की बेरोज़गारी अधिक फैलती है, क्योंकि मन्दी की स्थिति में इन उद्योगों के माल की माँग में भारी कमी हो जाती है। 'चक्रीय बेरोज़गारी' दूर करने के लिए व्यापार-चक्र के उतार-चढ़ाव का नियन्त्रण आवश्यक है।

D

days of grace (डेज़ ऑफ़ ग्रेस) : रियायती दिन।

प्रायः व्यावसायिक क्षेत्र में निर्धारित भुगतान-तिथि के बाद भी कुछ दिनों तक बिना हर्जाना भुगतान करने के लिए छूट दी जाती है। छूट की इस विशेष अवधि को रियायती दिन अथवा अनुग्रह-दिन कहते हैं। ऐसी छूट प्रायः ऋण, बीमा के प्रीमियम और करों आदि के भुगतान के लिए दी आती है। हुण्डियों (दर्शनी हुण्डियों को छोड़कर) के भुगतान के लिए तीन दिन की छूट दी जाती है।

dead stock (डेड स्टॉक) : निष्क्रिय स्टॉक।

ऐसी वस्तुएँ, जो बिक्री योग्य न हों अथवा वह पूंजी, जो अप्रयुक्त पड़ी हो।

dead weight debt (डेड वेट डेट्) : अप्रतिभूत ऋण।

वह ऋण जो चालू व्यय को पूरा करने के हेतु लिया जाता है अथवा किसी अन्य कारण-तथा जिसके पीछे कोई वास्तविक परिसम्पत्ति नहीं होती। युद्ध के लिए प्रायः सरकार अप्रतिभूत ऋण का सहारा लेती है।

dear money (डीअर मॅनी) : महँगी मुद्रा, उच्च ब्याज-मुद्रा।

मुद्रा-नीति का वह विशेष रूप, जिस में ब्याज-दर बढ़ाकर मुद्रा की कुल मात्रा को घटाने और इस प्रकार माँग की अधिकता को सीमित करके स्फीतिकारी दवावों को ढीला करने का प्रयास किया जाता है। मुद्रा-स्फीति, तेजी अथवा आर्थिक क्रियाओं में हो रहे द्रुत विस्तार के समय यह सोचा जाता है कि प्रभावी माँग को घटाने से अर्थव्यवस्था स्थिरता की ओर अग्रसर हो सकेगी। ब्याज-दर में वृद्धि से उधार लेना महँगा पड़ेगा। उधार में इस कमी से समस्त माँग में कमी आयेगी। ब्याज-दर के बढ़ने से निवेश की प्रवृत्ति भी हतोत्साहित होगी। साथ ही इससे वाण्ड या बन्ध-पत्रों की कीमतें भी घटेंगी। अतः लोग इनको वेचकर पूँजी-हानि से वचने की कोशिश करेंगे। किश्तों पर खरीदी जानेवाली टिकाऊ उपभोक्ता-वस्तुओं की माँग भी गिरेगी। इस प्रकार कुल मिलाकर महँगी मुद्रा अथवा उच्च ब्याज-मुद्रा-नीति से समस्त प्रभावी माँग को घटाने तथा विदेशों से अल्पकालिक पूँजी आकर्षित करने में सहायता मिलती है। केन्द्रीय मुद्रा अधिकारी तथा राज्य इस नीति के व्यवहार से अपनी आर्थिक नीति के अनुकूल मनोवैज्ञानिक वातावरण भी तैयार करते हैं।

death duty (डेथ ड्यूटी) : मृत्यु-शुल्क।

मृत व्यक्ति की सम्पत्ति पर लगा प्रत्यक्ष शुल्क या कर। किसी व्यक्ति के मरने के बाद उसकी सम्पत्ति का मूल्यांकन करके यह कर लगाया जाता है। कर की राशि का भुगतान करने के वाद ही उसके वारिसों के बीच उसकी सम्पत्ति का [illegible] वारा होता है। इस रूप में इसे [illegible]धिकार-कर या शुल्क भी कहा जाता है।

साधारणतः एक निर्धारित न्यू[illegible] सीमा से कम मूल्य वाली सम्पत्ति को कर से छूट दे दी जाती है और ऊँची [illegible] वाली सम्पत्तियों पर आरोही क्रम से [illegible] लगाया जाता है। मृत्यु-शुल्क या कर [illegible] उद्देश्य सरकार के लिए आय प्राप्त [illegible] के साथ-साथ सम्पत्ति और आय-वि[illegible] की विषमताओं को कम करना है। उत्त[illegible]धिकार से प्राप्त सम्पत्ति आय की असम[illegible]ताओं का एक वड़ा कारण है। इस [illegible] द्वारा आय की विषमताओं के इस प्र[illegible] साधन के एक भाग को व्यक्तिगत स्वामि[illegible] से राजकीय स्वामित्व में हस्तान्त[illegible] करके वितरण-विषमताओं को कम कि[illegible] जाता है।

देखिए : estate duty

death rate (डेथ रेट) : मृत्यु-दर।

प्रति एक हज़ार जनसंख्या के [illegible] एक वर्ष की अवधि में हुई मौतों [illegible] औसत संख्या 'मृत्यु-दर' कहलाती है। मृ[illegible] दर में पिछली दो शताब्दियों में प्र[illegible] सभी देशों में कमी आयी है। फलतः [illegible] संख्या-वृद्धि की दर बढ़ी है। आर्थि[illegible] विकास के ऊँचे स्तर पर मृत्यु-दर गिर[illegible] लगभग स्थिर-सी हो जाती है। तब [illegible] परिवर्तन बहुत ही दीर्घकालिक [illegible] लगते हैं। परन्तु आर्थिक विकास [illegible] आधुनिकीकरण के शुरू के दिनों में [illegible] दर में तेज़ी से कमी होती है। [illegible] विकसित देशों में 'जनसंख्या-विस्फोट' [illegible] एक मुख्य कारण मृत्यु-दर का तेज़ी [illegible] गिरना है।

debasement (डिवेसमेण्ट) : धातुह्रासन।

अंकित मूल्य के हिसाब से सिक्कों के धातु-मूल्य में कमी करने की क्रिया। धातु-मुद्रा के हिसाब से काफी लम्बे समय तक सिक्कों का अंकित मूल्य उनके आन्तरिक या धातु-मूल्य के वरावर हुआ करता था। ऐसी आशा की जाती थी कि सरकारी मुद्रा-प्राधिकारी पूरे मूल्य के सिक्के जारी करेगा; अर्थात उनका अंकित मूल्य उनके धातु-मूल्य के वरावर होगा। जब ऐसा न किया जाकर कीमती धातु में मिलावट करके अंकित मूल्य से कम धातु-मूल्य के सिक्के जारी किये जाते थे, तव वह करेन्सी धातुह्रासन कहलाता था। सामान्य तौर से धातु-ह्रासन का सहारा उस समय लिया जाता था जवकि सरकार जितना खर्च करना चाहती थी, उतनी राशि की प्राप्ति करों द्वारा सम्भव दिखायी न पड़ती थी। धातु-ह्रासन के सहारे मुद्रा-पूर्ति में वृद्धि लाकर वित्तीय कठिनाई का सामना सरकार के लिए सम्भव तो हो जाता है, लेकिन इससे मुद्रास्फीति की समस्या पैदा होती है। इस कारण साधारणतया धातुह्रासन की क्रिया अनुचित ठहरायी जाती है।

आजकल धातुह्रासन-क्रिया का व्यवहार नहीं किया जाता, क्योंकि अव मुद्रा का मूल्य धातु की मात्रा पर निर्भर नहीं करता। मुद्रा-प्राधिकारी के अतिरिक्त सिक्कों का धातुह्रासन अन्य व्यक्तियों द्वारा भी किया जा सकता है। सदा ही यह एक दण्डनीय अपराध माना गया है।

debenture (डिवेंचर) : ऋणपत्र।

संयुक्त पूंजी कम्पनी द्वारा पूंजी एकत्रित करने का एक साधन। विभिन्न प्रकार के शेयर जारी करने के अतिरिक्त कम्पनी ऋणपत्र जारी करके पूंजी प्राप्त कर सकती है। यह कम्पनी की कर्ज-पूंजी होती है। ऋणपत्र कंम्पनी के कर्ज होते हैं और ऋणपत्रधारियों के लिए परिसम्पत्ति। ऋणपत्रधारी कम्पनी के साहूकार या ऋणदाता होते हैं। ऋणपत्रों के साथ उद्यम-सम्बन्धी कोई कार्य जुड़ा नहीं होता। कम्पनी के लाभ में से लाभांश वाँटने के पहले ऋणपत्रों पर व्याज चुकाया जाता है। व्याज की दर पूर्वनिर्धारित होती है। इस प्रकार शेयर की भाँति इनमें कोई अनिश्चितता और जोखिम का अंश मौजूद नहीं होता। किसी भावी तिथि पर ऋणपत्र सममूल्यता पर प्रतिदेय होते हैं। लेकिन कभी-कभी अप्रतिदेय ऋणपत्र भी जारी किये जाते हैं।

debit (डेविट्) : नाम खाता।

दोहरी वहीखाता-प्रणाली में वायीं ओर का खाना। इस खाने में देय धन को लिखा जाता है और उसके बारे में ब्यौरा दिया जाता है।

debt capital (डेट् कैपिटल) : ऋण-पूंजी।

किसी कम्पनी की पूंजी का वह भाग जो ऋणपत्रों के रूप में होता है और जिस पर व्याज का भुगतान करना पड़ता है, चाहे कम्पनी को लाभ हो रहा हो या नहीं। इसके विपरीत शेयर-पूंजी पर लाभांश का वितरण उसी स्थिति में होता है जवकि कम्पनी लाभ कमा रही हो।

debt conversion (डेट् कॅन्वर्शन) : ऋण-परिवर्तन।

पुराने सरकारी ऋण को नये ऋण में बदलना। बहुधा सरकार को ऐसे समय

कर्ज लेना पड़ता है, जबकि ब्याज-दर ऊँची होती है। जब ऐसे ऋण के प्रतिदान के समय ब्याज-दर नीची होती है, तब सरकार नये ऋण की व्यवस्था करके ऋण-लागत कम करने का प्रयास करती है। इस प्रकार ऊँची ब्याज-दर के ऋण को नीची ब्याज-दरवाले ऋण में बदलने की क्रिया ऋण-परिवर्तन कहलाती है।

debt limit (डेट् लिमिट) : ऋण-सीमा।

कानून द्वारा निर्धारित ऋण की अधिकतम मात्रा, जो किसी समय बकाया रह सकती है। आम तौर से इस शब्द का प्रयोग लोक-वित्त के क्षेत्र में होता है जहाँ इसका आशय सरकार द्वारा लिये जानेवाले ऋण के सीमा-निर्धारण से होता है। इस ऋण-सीमा का उद्देश्य इस प्रकार का प्रतिबन्ध लगाना होता है, जिससे कि चालू राजस्व प्राप्तियों से सरकार का चालू खर्च निश्चित मात्रा से अधिक न होने पाये।

debt management (डेट् मैनेजमेण्ट) : ऋण-प्रवन्धन।

राष्ट्रीय ऋण की व्यवस्था-सम्बन्धी कार्य। आधुनिक राज्यों के बढ़े हुए एवं वर्धमान व्यय को पूर्ण करने के लिए जनता से ऋण लेने के तरीके का प्रचलन बढ़ता ही जा रहा है। यह सारा सार्वजनिक ऋण कई देशों में तो राष्ट्रीय आय से भी कहीं अधिक हो गया है। इस ऋण पर चुकाया जानेवाला ब्याज सार्वजनिक व्यय का एक महत्त्वपूर्ण भाग बन गया है। यह ऋण या तो सावधिक होता है या अनिश्चित अवधिवाला।

इस ऋण से सम्बन्धित निर्णय लोक-वित्त तथा आर्थिक संगठन के मुख्य प्रश्न बन गये हैं। इन निर्णयों के महत्त्वपूर्ण एवं दूरगामी प्रभाव होते हैं। इस प्रकार सारी आर्थिक नीति, विशेष रूप से मुद्रा-नीति राष्ट्रीय ऋण-प्रवन्धन द्वारा प्रभावित होती है। दूसरे शब्दों में राष्ट्रीय ऋण-प्रवन्धन ने आर्थिक नीति के एक महत्त्वपूर्ण उपकरण का रूप धारण कर लिया है।

कितना सार्वजनिक ऋण लिया जाये, वह कितनी अवधि का हो, उसकी ब्याज-दर क्या हो, बैंक तथा अन्य वित्तीय संस्थानों के रिजर्व किस अनुपात में सरकारी प्रतिभूतियों में लगवाये जायें अथवा प्रतिदान के समय ऋण का भुगतान किया जाये या पुराने ऋण के स्थान पर नया ऋण लेने की व्यवस्था की जाये आदि प्रश्नों के सम्बन्ध में निर्णय आर्थिक नीति की सामान्य एवं विशिष्ट आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर लिये जाते हैं। केन्द्रीय बैंक राष्ट्रीय ऋण के प्रवन्धन में बहुत सहायक हुआ करते हैं। मुद्रा की मात्रा, तरलता की स्थिति तथा ब्याज-दर को प्रभावित करके ऋण-प्रबन्धन मुद्रा-नीति से विशेष सम्बन्ध स्थापित कर लेता है।

debtor nation (डेटर नेशन) : ऋणी राष्ट्र।

वह राष्ट्र, जिसे अन्य राष्ट्रों से ब्याज और लाभांश की जो राशि प्राप्त होती है उससे अधिक राशि का भुगतान वह उनको करता है। अल्पविकसित देश प्रायः ऐसी स्थिति में होते हैं।

decentralistion (डिसेण्ट्रलाइजेशन) : विकेन्द्रीकरण।

वह व्यवस्था, जिसमें आर्थिक निर्णय लेने एवं आर्थिक क्रियाओं के संचालन का

अधिकार अनेक छोटी-छोटी इकाइयों के हाथ में होता है। पूर्ण प्रतियोगी लघु-एकक पूँजीवादी अर्थव्यवस्था विकेन्द्रीकरण का एक उत्तम उदाहरण है। यहाँ हर उपभोक्ता, उत्पादक तथा संसाधनों का सम्भरक अपने कार्य से सम्वन्धित सब निर्णय स्वयं ही लेता है। इस प्रकार सूचनाएँ एकत्रित कर किसी उच्चतर संस्था को भेजने तथा उससे प्राप्त निर्णयों को आदेश मानकर परिपालन करने का इस व्यवस्था में कोई प्रश्न ही नहीं उठता। परन्तु विभिन्न इकाइयों के निर्णय परस्पर सम्वन्धित होते हैं। इन सम्वन्धों का पूरा लेखा-जोखा रखते हुए आपस में अनुकूल निर्णय लिये विना विकेन्द्रित निर्णय सही तथा उचित नहीं हो सकते। वाज़ार में तो निर्णय लेने के वाद ही विभिन्न निर्णयों के बीच समुचित तालमेल बैठाया जा सकता है। कीमतों द्वारा संकेत न तो पूरी तौर से दिये जा सकते हैं और न ही सही-सही ग्रहण किये जा सकते हैं। फलस्वरूप विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था निर्णयों की आपसी प्रतिकूलता से ग्रस्त हो जाती है। इससे संसाधनों की वर्वादी होती है और आर्थिक स्थिरता प्राप्त नहीं हो पाती।

विकेन्द्रीकरण को काफी अंशों तक समाजवादी योजनाबद्ध अर्थव्यवस्थाएँ भी अपना सकती हैं, विशेष रूप से आर्थिक अवरोध की प्रारम्भिक अवस्था को पार कर विकास के एक ऊँचे स्तर को प्राप्त करने के बाद उत्पादक संगठनों को प्रत्यक्ष रूप से आदेश न देकर अप्रत्यक्ष रूप से प्रेरणा तथा प्रोत्साहन द्वारा केन्द्रीय अनुशासन वाले निर्णय विकेन्द्रित रूप से भी लिवाये जा सकते हैं। इस प्रकार की व्यवस्था में केन्द्रीकरण के अत्यधिक कागजी काम, उसके व्यय तथा उसकी कमियाँ काफी वड़ी सीमा तक दूर की जा सकती हैं और अमलकारी इकाइयाँ अपने काम को प्रभावपूर्ण ढंग से कुशलतापूर्वक निभा सकती हैं।

decreasing marginal cost (डिक्रीज़िग मार्जिनल कॉस्ट) : ह्रासमान सीमान्त लागत।

ऐसा उस समय होता है, जवकि अतिरिक्त इकाइयों के उत्पादन की लागत पिछली इकाइयों की उत्पादन-लागत की तुलना में कम होती रहती है। वड़े पैमाने की किफायतों के फलस्वरूप ऐसा सम्भव हो जाता है। एक सीमा के बाद ह्रासमान प्रतिफल की स्थिति पैदा होने पर सीमान्त-लागत वढ़ने लगेगी।

deductive method (डिडक्टिव मेथॅड): निगमन विधि।

अध्ययन व सिद्धान्त-स्थापना का एक तरीका। निगमन विधि में पूर्वप्राप्त सामान्य कथन या नियम के आधार पर किसी विशेष घटना का अध्ययन किया जाता है तथा प्राप्त निष्कर्षों का सत्यापन किया जाता है। इसे काल्पनिक विधि भी कहा जाता है, क्योंकि यह सम्भव है कि कुछ मान्यताएँ वास्तविक तथ्यों के अनुरूप न हों। परम्परावादी अर्थशास्त्रियों ने अर्थशास्त्र के अध्ययन में इस विधि को विशेष रूप से अपनाया।

deed of partnership (डीड ऑफ पार्टनरशिप) : साझेदारी इकरारनामा, साझापत्र।

किसी व्यवसाय में विभिन्न साझेदारों की स्थिति और सम्बन्धों को स्पष्ट करने-

वाला दस्तावेज। साझेदारी व्यवस्था के अन्तर्गत किसी फर्म की स्थापना के समय प्राय: एक दस्तावेज तैयार किया जाता है, जिसमें साझेदारों के नाम और पूर्ण विवरण के अतिरिक्त उनके द्वारा लगायी जानेवाली पूंजी, उनके दायित्व, कार्य, अधिकार तथा लाभ-वितरण आदि का पूरा-पूरा ब्यौरा दिया होता है। इस दस्तावेज को 'साझेदारी इकरारनामा' अथवा 'साझापत्र' कहते हैं।

कई देशों में साझेदारी फर्म की स्थापना के समय साझापत्र उचित प्राधिकारी को प्रेषित करके उसकी स्वीकृति प्राप्त कर ली जाती है। फर्म का संचालन साझापत्र में उल्लिखित निर्देशों के अनुसार होता है। साझेदारों की सहमति से साझापत्र में आवश्यक संशोधन लाया जा सकता है। किसी भी साझेदार के मर जाने या फर्म से अलग हो जाने पर उस साझापत्र की वैधानिकता समाप्त हो जाती है।

deferred annuity (डेफर्ड ऐन्यूटी) : आस्थगित वार्षिकी।

वह वार्षिकी, जिसकी शुरुआत किसी निश्चित भावी तिथि से होनी होती है। भुगतान शुरू होने की तिथि के पहले किश्तों में इसकी क्रय-कीमत निर्धारित अवधि के भीतर चुकायी जाती है।

deferred payment (डेफर्ड पेमेण्ट) : आस्थगित भुगतान।

किसी वर्तमान सौदे का भुगतान कुछ समय बाद किसी आगामी तिथि पर करना। इस प्रकार आस्थगित भुगतानवाला सौदा ऋण का सौदा बन जाता है। मुद्रा के कारण यह कार्य सरल हो जाता है, क्योंकि साधारणतः भुगतान-स्थगन की अवधि में मुद्रा के मूल्य में परिवर्तन की सम्भावना कम ही रहती है।

deferred shares (डेफर्ड शेयर्स) : आस्थगित शेयर।

वे शेयर, जिन पर लाभांश का भुगतान अधिमान शेयर और साधारण शेयर के बाद किया जाता है, 'आस्थगित शेयर' कहलाते हैं। आम तौर से इस प्रकार के शेयर पर एक निश्चित दर से लाभांश के वितरण के बाद लाभ की जो राशि शेष बचती है, वह आस्थगित शेयरधारियों के बीच विभाजित की जाती है। आजकल इस प्रकार के शेयर बहुत कम जारी किये जाते हैं।

deficit financing (डेफिसिट फाइनेन्सिग) : घाटा-वित्तीयन।

पश्चिमी देशों और भारत में इस अवधारणा के अलग-अलग अर्थ होते हैं। राजकीय व्यय तथा राजकीय आगम में समानता लानेवाले स्रोतों को घाटा-वित्तीयन कहा जाता है। परन्तु किन स्रोतों की गणना राजकीय आगम में की जाये और किन स्रोतों की घाटा-वित्तीयन में, इस विषय में काफी मतभेद पाये जाते हैं। भारतीय परिभाषा के अनुसार राज्य की बजट-नीति द्वारा मुद्रा की पूर्ति की मात्रा में आयी वृद्धि को ही घाटा-वित्तीयन कहते हैं। स्पष्ट शब्दों में घाटा-वित्तीयन से तात्पर्य सार्वजनिक व्यय (चालू तथा पूँजीगत) तथा राजकीय आगम (करों से आगम, राज्य की सम्पत्ति तथा इसके व्यावसायिक संस्थानों से प्राप्त आय, शुल्क, विविध आय, ऋणों का भुगतान, विभागीय व्यावसायिक संस्थानों का अवितरित मुनाफा, पूँजी-कर आदि

पूँजीहस्तान्तरण, भविष्यनिधि व अन्य कोष तथा जनता, बैंकों एवं विदेशों से प्राप्त निवल ऋण) का अन्तर है। यह अन्तर (क) ट्रेजरी बिलों की निवल बिक्री रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया को करके, (ख) सरकार के रिजर्व बैंक के पास जमा नकद को निकालकर तथा (ग) वित्तविभाग द्वारा एक रुपये के नोट जारी करके पूरा किया जाता है। इन तीनों तरीकों से अर्थव्यवस्था की सम्पूर्ण संचलनगत मुद्रा की मात्रा में वृद्धि होती है। इस तरह घाटा-वित्तीयन से अभिप्राय प्रायः सारे बजट के घाटे को पूरा करने की व्यवस्था से है।

पश्चिमी परिभाषा मुद्रा की संचलनगत मात्रा में वृद्धि से सम्बन्धित नहीं है, अपितु इसका अभिप्राय सारी प्रभावी माँग की मात्रा में बजट-नीति के कारण आयी निवल वृद्धि से है। इसमें घाटा सार्वजनिक ऋण को निकालकर गिना जाता है। अर्थात् केवल मुद्रा की मात्रा में वृद्धि ही नहीं, वरन् समस्त सकल राजकीय ऋण घाटा-वित्तीयन में शामिल किया जाता है। इस प्रकार पश्चिमी परिभाषा में घाटा-वित्तीयन का क्षेत्र भारतीय परिभाषा से व्यापक ठहरता है।

घाटा-वित्तीयन की नीति का प्रारम्भ मन्दी, अवस्फीति तथा बेरोजगारी की समस्या का सामना करने के लिए किया गया। प्रभावी माँग की कमी को पूरा करने के लिए सरकारी खर्च को बढ़ाने की तजवीज इस नीति द्वारा की जाती है। माँग की कमी के कारण विकसित अर्थव्यवस्थाओं में उनकी सारी उत्पादन-क्षमता का प्रयोग नहीं हो पाता। घाटा-वित्तीयन द्वारा राजकीय व्यय बढ़ाकर अप्रयुक्त उत्पादन-क्षमता को सक्रिय बनाया जाता है।

अल्पविकसित देश भी पूँजी-निर्माण तथा औद्योगीकरण की पूँजीगत जरूरतों को पूरा करने के लिए इस नीति का काफी सहारा लेने लगे हैं। इन देशों की समस्या बेकार उत्पादन-क्षमता को काम में लाने की नहीं, वरन् नयी उत्पादन-क्षमता बनाकर उत्पादन बढ़ाने की है। इसलिए घाटा-वित्तीयन का प्रयोग अनिवार्य तथा जबरन बचत करवाने के तरीके के रूप में किया जाता है। परन्तु कीमतें बढ़ने के कई अनायोजित प्रभाव भी होते हैं। जहाँ एक ओर घाटा-वित्तीयन द्वारा कीमतें बढ़ने के कारण सामूहिक या समष्टिगत रूप से बचत बढ़ती है, वहाँ बढ़ती कीमतों की प्रक्रिया से स्वतःस्फूर्त बचत की प्रवृत्ति कमजोर होती है। अतः एक सीमा के बाद घाटा-वित्तीयन बचत बढ़ाने के विपरीत असर पैदा कर सकता है। खास कर मुद्रास्फीति की स्थिति पैदा होने पर घाटा-वित्तीयन की नीति ऋणात्मक उपयोगितावाली नीति बन जाती है। यदि घाटा-वित्तीयन के कारण शीघ्र ही उत्पादन बढ़ता है, तब या तो उपभोक्ता पदार्थों के उत्पादन को तेजी से बढ़ानेवाले निवेश किये जाने चाहिए या उपभोग पर कड़ा भौतिक नियन्त्रण लागू किया जाना चाहिए। कहने का तात्पर्य यह है कि आर्थिक विकास के लिए घाटा-वित्तीयन-नीति का सफल प्रयोग काफी अनुशासन, एवं दृढ़तापूर्ण आर्थिक, राजनीतिक तथा सामाजिक नीतियों की अपेक्षा रखता है।

deflation (डिफ्लेशन) : अवस्फीति।

आर्थिक क्रियाओं में कमी व आय, रोजगार तथा कीमतों के गिरने की स्थिति। साधारणत: मन्दी की स्थिति को अवस्फीति समझा जाता है। इस स्थिति में अर्थ-व्यवस्था अपने सारे उत्पादन-संसाधनों का प्रयोग करने में असमर्थ हो जाती है। इससे उत्पादन तथा आय घटती है और फल-स्वरूप माँग कम हो जाती है। माँग में कमी आने से निवेश कम हो जाता है। उत्पादक-वस्तुओं का उत्पादन घट जाता है, श्रम की छँटनी की जाती है और बेकारी बढ़ती है। कीमतें गिरने लगती हैं, मुनाफे कम हो जाते हैं और उद्यमकर्त्ता पस्तहिम्मत हो जाते हैं।

कीमतें घटने से मुद्रा का मूल्य बढ़ जाता है। वस्तुओं की माँग की अपेक्षा मुद्रा की माँग बढ़ती है। सामान्य मनो-वैज्ञानिक वातावरण निराशापूर्ण हो जाता है। राजकीय हस्तक्षेप द्वारा सम्पूर्ण प्रभावी माँग बढ़ाकर अवस्फीति का मुकाबला किया जाता है। इसमें राजकोषीय, मौद्रिक तथा प्रत्यक्ष हस्तक्षेप आदि सभी नीतियों का सहारा लेना पड़ता है। सबसे मुख्य बात इन नीतियों के मनोवैज्ञानिक प्रभाव की है, ताकि निजी निवेश तथा उपभोग-माँग को प्रोत्साहित किया जा सके।

देखिए : depression

deflationary gap (डिफ्लेशनरी गैप) : अवस्फीति अन्तराल।

पूर्ण रोजगार की स्थिति के लिए सार्व-जनिक और निजी निवेश की एक मात्रा आवश्यक होती है। यदि पूर्ण रोजगार की स्थिति मौजूद नहीं है तो निवेश की वह अतिरिक्त मात्रा, जो रोजगार को पूर्ण रोजगार के स्तर पर ले जाने के लि आवश्यक है, अवस्फीति अन्तर कहलायेगी। इस प्रकार अवस्फी अन्तराल का आशय निवेश की उस से है, जिसे दूर करके पूर्ण रोजगार स्तर प्राप्त किया जा सकता है।

degressive tax (डिग्रेसिव टैक्स) ह्रासमान आरोही कर।

वह आरोही कर, जो ह्रासमान से बढ़ता है। यह कर वर्धमान तो है क्योंकि कर के आधार अथवा की मात्रा में वृद्धि के साथ कर की वढ़ती रहती है, लेकिन आय में प्र अतिरिक्त वृद्धि के साथ कर की दर ह्रासमान गति से वृद्धि होती है।

demand (डिमाण्ड) : माँग।

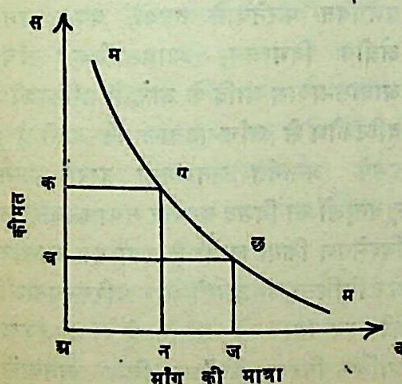
किसी व्यक्ति को वस्तुओं या सेवा की आवश्यकता हो, वह उन्हें खरीदने तैयार हो तथा उसके पास इन वस्तुओं सेवाओं को प्राप्त करने के साधन विद्यम हों, तो अर्थशास्त्र की भाषा में यह क जायेगा कि उस व्यक्ति को इन वस्तुओं सेवाओं की माँग है। वे आवश्यकता जिनकी सन्तुष्टि की लोगों को इच्छा हो जिनकी सन्तुष्टि के साधन विद्यमान हों, मां कहलाती हैं। माँग इच्छा या आवश्य से काफी सम्बन्धित है। फिर भी वह इ भिन्न है। एक तरह से माँग को प्रभाव इच्छा या आवश्यकता कह सकते हैं, क्यों यह केवल दिमागी ख्याल या सैद्धा परिकल्पना नहीं है। यह एक ऐसी इ है, जिसे पूरा करने की तत्परता तथा करने के साधन विद्यमान होते हैं।

माँग के निर्धारण में आवश्यकता इच्छाएँ, आय, कीमत, आय के स्वरूप त

स्रोत, सामाजिक प्रभाव तथा मूल्य, फैशन, रुचि, भविष्य की परिकल्पना आदि अनेक आर्थिक तथा आर्थिकेतर प्रभाव काम करते हैं। परन्तु अर्थशास्त्र में साधारणतः आय, कीमत, अन्य वस्तुओं की कीमतों, कीमतों में परिवर्तन की आशा आदि शुद्ध आर्थिक प्रभावों को ही माँग से सम्बन्धित किया जाता है। सर्वाधिक ज्ञात माँग का नियम, अन्य बातें यथावत् रहने पर, माँग तथा कीमत में प्रतिलोम सम्बन्ध की स्थापना करता है। माँग उपभोग के अध्ययन का केन्द्र-विन्दु है। अतः इसका अर्थशास्त्र में महत्त्व स्पष्ट है। माँग को सन्तुष्टि से जोड़कर अनेक प्रकार के माँग के सिद्धान्त विकसित किये गये हैं। प्रत्याशाओं के समावेश से तथा अनिश्चितताओं को माँग के अध्ययन-वृत्त में शामिल करने पर माँग का अध्ययन बहुत जटिल हो जाता है।

demand curve (डिमाण्ड कर्व) : माँग-वक्र।

माँग तथा कीमत के सम्बन्ध को, अन्य बातें पूर्ववत् रखने पर, द्विअक्षीय रेखा-चित्र में प्रदर्शित करने की विधि। माँग



तथा कीमत में प्रतिलोम सम्बन्ध होने के कारण माँग-वक्र ऊपर से नीचे दायीं ओर झुका हुआ बढ़ता है, जो इस बात का सूचक है कि किसी वस्तु की माँग-मात्रा उसकी कीमत में कमी होने पर अधिक तथा कीमत में वृद्धि होने पर कम हो जाती है। एक काल्पनिक माँग-वक्र का उदाहरण यहाँ दिया गया है।

माँग-वक्र एक व्यक्ति, परिवार या सारे बाज़ार के लिए खींचा जा सकता है।

demand deposits (डिमाण्ड डिपॉजिट्स) : माँग-जमा।

'चालू खाते' के लिए प्रयुक्त एक वैकल्पिक शब्द। यह विशेष रूप से संयुक्त राज्य अमरीका में प्रचलित है। इस खाते में जमा राशि चेक द्वारा कभी भी निकलवायी जा सकती है।

देखिए : current accounts

demand for money (डिमाण्ड फॉर मनी) मुद्रा की माँग।

'तरलता अधिमान' का दूसरा नाम। इसका अर्थ है किसी अन्य परिसम्पत्ति में निवेश के लिए नहीं, स्वयं मुद्रा को परिसम्पत्ति-रूप में रखने के लिए मुद्रा की माँग। अनेक कारणों से निवेशकों को अन्य परिसम्पत्तियों की तुलना में मुद्रा अधिक आकर्षक प्रतीत होती है।

demand price (डिमाण्ड प्राइस) : माँग-कीमत।

वह कीमत, जिस पर किसी वस्तु की एक विशेष मात्रा माँगी जाती है। माँग-अनुसूची में विभिन्न काल्पनिक कीमतों पर माँगी जानेवाली मात्रा दिखायी जाती है। ऐसी किसी माँग-सूची में दिखायी गयी बाज़ार-कीमत को छोड़ अन्य कीमतें 'माँग-कीमत' कहलाती हैं।

देखिए : demand schedule

demand schedule (डिमाण्ड शेड्यूल) : माँग-अनुसूची।

एक काल्पनिक तालिका, जिससे किसी उपभोक्ता या बाज़ार की किसी वस्तु के लिए विभिन्न कीमतों पर माँग की मात्रा दर्शायी जाती है। नीचे एक काल्पनिक माँग-अनुसूची का नमूना दिया गया है।

आलू की कीमत (प्रति किलोग्राम)	माँग की मात्रा (किलोग्राम)
३.५०	५०
३.००	७५
२.५०	१००
२.००	१५०
१.५०	२२५

इस अनुसूची को रेखा-चित्र के रूप में दिखाने पर माँग-वक्र प्राप्त होता है।

demonstration effect (डिमॉन्स्ट्रेशन इफेक्ट) : प्रदर्शन-प्रभाव।

उपभोग, उत्पादन एवं तकनीक के सम्बन्ध में अल्पविकसित देशों पर विकसित देशों का पड़नेवाला प्रभाव। विकसित औद्योगिक राष्ट्रों के उच्च तथा उन्नत जीवन-स्तर से परिचित होने पर विकासशील देशों में भी उसके अनुकरण की प्रवृत्ति जागती है। जब यहाँ के लोगों की आय में वृद्धि होती है, तब बढ़ी हुई सीमान्त उपभोग-प्रवृत्ति के कारण आय-वृद्धि का काफी बड़ा भाग विकसित देशों में प्रचलित उपभोग-वस्तुओं के अपनाने में खर्च होने लगता है। इससे आयात में भी वृद्धि होती है, और बचत भी बढ़ने नहीं पाती। फलस्वरूप निवेश तथा पूँजी-निर्माण के कार्य बढ़ाये नहीं जा पाते। इस प्रकार विकास-प्रक्रिया के रास्ते में प्रदर्शन-प्रभाव बाधक बन जाते हैं।

प्रदर्शन-प्रभाव इस तरह केवल प्रतिकूल ही बैठे, यह आवश्यक नहीं है। उन्नत देशों की उत्पादन-प्रणालियों, उनकी ऊँची उत्पादिता, विशिष्ट कुशलता, बचत तथा निवेश-प्रवृत्ति आदि के अपनाने का भी अल्पविकसित देश प्रयास कर सकते हैं। इस प्रकार विकास के लिए प्रदर्शन-प्रभाव बहुत सहायक सिद्ध हो सकते हैं। लेकिन उपभोग पर पड़नेवाला प्रदर्शन अपेक्षाकृत सरल एवं प्रत्यक्ष होता है और इस कारण अधिक सबल भी। इसके विपरीत तकनीक और उत्पादन-प्रणालियों के अनुकरण के लिए बचत की आवश्यकता होती है, जोकि उपभोग पर प्रदर्शन-प्रभाव के कारण निम्न स्तर पर रहती है।

देखिए : conspuuous consumption

demography (डिमोग्राफी) : जनांकिकी।

जनसंख्या का अध्ययन। इसमें जनसंख्या की प्रवृत्ति, उसकी संरचना, आकार, जन्म-दर, मृत्यु-दर, परिवार का औसत आकार, जनसंख्या के विभिन्न पहलुओं को प्रभावित करनेवाले तत्त्वों, वय-संघटन, क्षेत्रीय विभाजन, व्यावसायिक ढाँचे, आवास-प्रवास आदि के बारे में सांख्यिकीय दृष्टिकोण से जाँच-पड़ताल की जाती है। इसके अन्तर्गत जनगणना द्वारा प्राप्त सूचनाओं का विशद गम्भीर तथा व्यवस्थित विश्लेषण किया जाता है तथा इस आधार पर विभिन्न सिद्धान्तों और परिकल्पनाओं की स्थापना की जाती है। आजकल आर्थिक विकास के लिए किये जानेवाले सचेतन राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय प्रयासों

के सन्दर्भ में ऐसे अध्ययन का महत्त्व और भी अधिक हो गया है।

demonetisation (डिमॉनिटाइज़ेशन) : विमुद्रीकरण।

इस पद के दो अर्थ प्रचलित हैं। एक अर्थ के अनुसार कुछ विशेष प्रकार या मूल्य के सिक्कों अथवा करेन्सी नोटों की विधि-ग्राह्यता समाप्त कर देना 'विमुद्रीकरण' कहलाता है। जैसे, भारत सरकार एक आदेश द्वारा १०० रुपये के नोटों को संचलन से हटा सकती है और उन्हें कानूनी रूप से वैध मानना अस्वीकार कर सकती है। यह १०० रुपये के नोटों का विमुद्रीकरण कहलायेगा। दूसरे अर्थ में, जिन देशों में धातु-मुद्रा का प्रयोग होता है, वहाँ यदि एक धातु, जैसे चाँदी, के स्थान पर किसी अन्य धातु, जैसे सोने, के सिक्के जारी कर दिये जायें तो कहा जायेगा कि चाँदी के सिक्कों का विमुद्रीकरण हो गया है।

demvrrage (डिमरेज) : विलम्ब-शुल्क।

जब कोई रेल, जहाज आदि परिवहन-कम्पनी के माध्यम से माल मँगाता है और नियत समय के भीतर माल नहीं छुड़ाता, तब इस समय के ऊपर प्रतिदिन के हिसाब से उसे अतिरिक्त भुगतान करना पड़ता है। यह अतिरिक्त भुगतान विलम्ब-शुल्क कहलाता है।

department store (डिमार्टमेण्ट स्टोर) : बहुविभागी भण्डार।

वह व्यवसाय, जिसके अनेक विभाग होते हैं और जो एक ही इमारत और प्रबन्धन के अन्तर्गत चलाया जाता है। प्रत्येक विभाग किसी खास खुदरा व्यापार से सम्बन्धित होता है। इस प्रकार इसमें एक ही स्थान पर तरह-तरह की चीजों की बिक्री की जाती है। इस प्रकार के संगठन का उदय सर्वप्रथम फ्रान्स में हुआ, लेकिन अब अमरीका, इंगलैण्ड आदि अनेक देशों में बहुविभागी भण्डार देखने को मिलते हैं। भारत में हाल में स्थापित 'सुपर बाजार' बहुविभागी भण्डार के ही उदाहरण हैं, यद्यपि ये बहुत विशाल नहीं हैं। कुछ देशों के बहुविभागी भण्डारों में तो २५० से भी अधिक विभाग होते हैं, जहाँ से लगभग सभी छोटी-बड़ी चीजें खरीदी जा सकती हैं।

deplition (डिप्लीशन) : अवक्षय।

निस्सारण से भूमि, खान, वन, तेल के कुएँ आदि प्राकृतिक संसाधनों के मूल्य में होनेवाली कमी को अवक्षय कहते हैं। वैसे तो अवक्षय मूल्यह्रास के समतुल्य है, क्योंकि दोनों का ही अर्थ स्थायी परिसम्पत्तियों के मूल्य में कमी होने से है। लेकिन जबकि मूल्यह्रास का आशय भौतिक अवह्रासन के कारण किसी परिसम्पत्ति के गुण व उपयोगिता में घटी से है, अवक्षय का प्रयोग किसी परिसम्पत्ति के परिमाण में होनेवाली कमी के लिए किया जाता है। समय और इस्तेमाल, दोनों से ही मूल्यह्रास होता है, लेकिन जहाँ तक अवक्षय का प्रश्न है, यह लगभग सदैव परिसम्पत्ति को इस्तेमाल के लिए ले जाने के कारण होता है।

depopulation (डिपॉपुलेशन) : निर्जनीकरण, जनह्रास।

किसी स्थान या क्षेत्र में जनसंख्या का घटना। जन्म-दर के बराबर गिरते

रहने अथवा किसी स्थान से लोगों के चले जाने के कारण ऐसी स्थिति पैदा होती है। १८७० ई० के बाद जन्म-दर के उत्तरोत्तर घटते रहने से पश्चिमी यूरोप और उत्तरी अमरीका में यह आशंका मजबूत होने लगी थी कि भविष्य में इन देशों को निर्जनीकरण का सामना करना पड़ेगा। लेकिन ऐसा हुआ नहीं। कारण, अनेक देशों में जन्म-दर प्रथम विश्व-युद्ध के पूर्व की तुलना में सामान्यत: ऊँचे स्तर पर रही है। कई देशों में तो ऐसी सम्भावना है कि जनसंख्या में द्रुत गति से वृद्धि होगी।

deposit (डिपॉज़िट) : जमा, निक्षेप।

१. यह वह राशि है, जिसे विभिन्न खाताओं के अन्तर्गत ग्राहक बैंक में रखते हैं। बैंक इस राशि को निर्धारित नियमों के अनुसार ग्राहकों को निकलवाने का अधिकार देता है। कुछ किस्म के जमा-खाते पर निश्चित दर से व्याज देने की व्यवस्था रहती है।

२. किराया-खरीद के सम्बन्ध में इसका अर्थ उस रकम से होता है जो ग्राहक को बतौर पहली किश्त के भुगतान करना पड़ता है। कानूनी तौर से इस जमा की रकम को घटा-बढ़ाकर सरकार आवश्यकतानुसार खरीदारी को प्रोत्साहित या निरुत्साहित कर सकती है। माँग को प्रभावित करने की आधुनिक मुद्रा-नीति का यह एक उपकरण बन गया है।

deposit turnover (डिपॉज़िट टर्न-ओवर) : जमा आवर्त्त।

बैंक-नाभे का बैंक-जमा से अनुपात। चूंकि देश की मुद्रा-पूर्ति का अधिकांश भाग बैंक-जमा के रूप में होता है लिए इस अनुपात को सम्पूर्ण मु का काफी सही संकेतक समझा जा इसी प्रकार यह अनुपात व्यापार-च भी संकेतक ठहरता है, क्योंकि बैं की आवर्त्त-दर में उतार-चढ़ाव व्यापार-चक्र के उच्चावनयन साधार साथ-साथ पाये जाते हैं।

depreciation (डिप्रिशिएशन) : ह्रास।

दीर्घ उपयोगसाध्य उत्पादक व लम्बे अर्से तक काम आती रहती परन्तु उपयोग के कारण इन उत वस्तुओं का क्रमिक क्षय तथा ह्रास है। उनकी उत्पादन-क्षमता अपरिव नहीं बनी रहती। किसी भी भौ वस्तु का प्रयोग होने से उसकी भौ हालत अपरिवर्तित नहीं रह पाती धीरे-धीरे एक समय आता है, ज वह वस्तु सर्वथा अप्रयोज्य तथा बे हो जाती है। उत्पादक-वस्तुओं की की भी उनके ह्रास के साथ-साथ कम ह रहती है। वस्तु की कीमत में इस प्र की कमी को घिसावट या मूल्यह्र कहा जाता है।

किसी वस्तु के प्रयोग के अ उसके मूल्यह्रास के दो अन्य कारण होते हैं। समय बीतने से भी कि भौतिक वस्तु की कीमत कम होती क्योंकि उसकी सार-सँभाल तथा देख पर भी कुछ खर्च आता है। यदि उस उपयोग न भी किया जाये, तो भी उस उत्पादन-क्षमता घटती है। इस तरह घिसावट 'समय मूल्यह्रास' कहलाती है फिर तकनीकी प्रगति के कारण

उन्नत किस्म के औज़ारों तथा मशीनों का प्रचलन बढ़ने के फलस्वरूप वर्तमान औज़ारों व मशीनों की कीमत घट जाती है। ये मशीनें निम्न-स्तर की तथा अप्रचलनीय हो जाती हैं। इस घिसावट को 'अप्रचलन मूल्यह्रास' कहते हैं।

जब उत्पादक-वस्तुएँ पूरी तरह घिस जाती हैं, तब उनके स्थान पर नयी वस्तुओं को लगाना पड़ता है। उस समय किसी भी व्यवसाय को एकसाथ काफी व्यय करना पड़ता है। दूसरे, मूल्यह्रास एक निरन्तर जारी रहनेवाली क्रमिक प्रक्रिया है। अतः इसका हर साल की लागत में शामिल किया जाना आवश्यक है। पूँजीगत वस्तुओं का एक वर्ष-विशेष के उत्पादन में सहयोग उन वस्तुओं के वार्षिक मूल्यह्रास के बराबर माना जा सकता है। इसलिए व्यवसायी हर साल एक राशि मूल्यह्रास-निधि में डाल देते हैं। साधारणतः किसी भी वस्तु की प्रत्याशित आयु का अनुमान लगाकर मूल्यह्रास-लागत इस तरह लगायी जाती है कि इस आयु में उस वस्तु की सारी लागत मूल्यह्रास-निधि में एकत्रित हो जाये। उदाहरणार्थ, अगर कोई वस्तु १००० रुपये की कीमत की है और उसकी प्रत्याशित आयु १० वर्ष है, तो प्रतिवर्ष की मूल्यह्रास-लागत १०० रुपये होगी। कई बार यह लागत इस तरह निकाली जाती है कि यह शुरू में कम तथा आगे चलकर बढ़ती जाती है। वास्तव में घिसावट-व्यय की गणना करना बहुत कठिन काम है। व्यावसायिक आँकड़िये तथा राष्ट्रीय लेखाकार मूल्य-ह्रास की दर प्रायः परम्परागत आधार पर निकालते हैं। पूँजी को अक्षुण्ण बनाये रखने में मूल्यह्रास-निधि का महत्त्वपूर्ण कार्य होता है।

depreciation allowance (डिप्रिसिए-शन एलाउन्स) : मूल्यह्रास छूट।

एक अवधि के लिए नयी मशीन की खरीद पर भुगतान की गयी रकम पर किसी व्यवसाय को कर से दी गयी छूट। जितने समय तक मशीन के चलने की आशा होती है, उससे यह अवधि कम होती है।

depreciation of currency (डिप्रिसि-एशन ऑफ करेन्सी) : करेन्सी मूल्य-ह्रास।

निर्बाध बाज़ार में स्वर्ण या अन्य करेन्सियों में किसी करेन्सी के मूल्य अथवा विनिमय-दर का गिरना। ऐसा उस समय होता है, जबकि पूर्ति की तुलना में उस करेन्सी की माँग कम हो जाती है। स्थिर समता-प्रणाली के अन्तर्गत यह अवमूल्यन के समान है। करेन्सी मूल्यह्रास के प्रभाव से आयात महँगा तथा निर्यात सस्ता हो जाता है और इस प्रकार भुगतान-शेष में सन्तुलन की स्थिति लाने में मदद मिलती है।

depressed area (डिप्रेस्ड एरिया) : अवनत क्षेत्र।

किसी भी देश में सभी क्षेत्रों के विकास का स्तर समान होना अनिवार्य नहीं है। सामान्यतः कुछ क्षेत्र अधिक विकसित होते हैं और कुछ कम। वे अल्पविकसित क्षेत्र, जहाँ उत्पादन और प्रति व्यक्ति आय कम होती है, उत्पादन में पिछड़े तौर-तरीक़ों से काम लिया जाता है तथा बेकारी अधिक होती है, अवनत तथा पिछड़े क्षेत्र कहलाते हैं। कभी-कभी अल्पविकसित देशों को भी

'अवनत क्षेत्र' कहा जाता है।

depression (डिप्रेशन) : मन्दी।

व्यापार-चक्र का वह चरण, जिसमें वेरोजगारी वहुत बढ़ जाती है, निवेश कम हो जाता है, व्यावसायिक गतिविधियाँ मन्द हो जाती हैं तथा कीमतें गिरने लगती हैं। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में आर्थिक क्रियाओं का उतार-चढ़ाव चलता रहता है। यह अस्थिरता निजी मुनाफे के लिए, विकेन्द्रित रूप से निर्णय लिये जानेवाली अर्थ-प्रणाली में अनिवार्य रूप से विद्यमान रहती है। इसके कई आर्थिक, संरचनात्मक, मौद्रिक तथा मनोवैज्ञानिक कारण होते हैं।

यह मन्दी किसी खास क्षेत्र या उद्योग तक ही सीमित नहीं रहती, वरन् सारी अर्थव्यवस्था को प्रभावित करती है। माँग घटने, विक्री घटने तथा कीमतें कम होने से मुनाफे घट जाते हैं और हानि भी होने लगती है। फलस्वरूप निवेश बन्द हो जाता है। पूँजी का पुनर्स्थापन तक बन्द हो जाता है। वास्तविक राष्ट्रीय आय घट जाती है। आयात-निर्यात कम हो जाते हैं तथा एक देश की मन्दी दूसरे देशों में फैलने लगती है। वेरोजगारी वढ़ने से निम्न आय-वर्ग के लोगों की दशा काफी खराब हो जाती है। अधिकांश राज्य मन्दी-निवारक आर्थिक नीति अपनाकर इस स्थिति के निराकरण के प्रयास करने लगते हैं।

सन् १९३० की विश्वव्यापी मन्दी के वाद आर्थिक नीति में बड़े परिवर्तन आये। इन दिनों मन्दी के कई हालात तो उपस्थित हुए, परन्तु वे व्यापक नहीं हो पाये। वैसे उत्पादन-क्षमता का पूरा उपयोग तो शायद ही कभी किसी पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में, तेजी तथा मुद्रास्फीति के अपवादों को छोड़कर, हो पाता है। द्वितीय महायु पहले प्रायः हर सातवें से दसवें साल मन्दी का आवर्तन हुआ करता था। द्वि युद्ध के बाद मन्दी का प्रकोप तथा प्र तो हल्का हो गया, पर उसका आवे अपेक्षाकृत जल्दी-जल्दी होने लग गया है सारी अर्थ-व्यवस्था के वारे में आँकड़े प्र होने, उनके अध्ययन करने के सिद्धान्तों विकसित होने तथा राज्य के वढ़ते हु आर्थिक हस्तक्षेप के कारण मन्दी का रो अपेक्षाकृत जल्दी ही पकड़ में आ जाता है और उसका इलाज भी सम्भव हो गया है, परन्तु बार-बार इस रोग का प्रकोप हो रहना तो पूँजीवादी व्यवस्था का गुण-ध है।

derived demand (डिराइव्ड डिमाण्ड) : व्युत्पन्न माँग।

कुछ वस्तुओं की माँग प्रत्यक्ष रूप से किसी दूसरी वस्तु की माँग के कारण होती है। इस प्रकार की माँग को व्युत्पन्न माँ कहते हैं। उदाहरण के लिए, उत्पादन-साधनों (श्रम, भूमि, पूँजी आदि) की माँ उन वस्तुओं की माँग के कारण होती है, जिनके उत्पादन में इन साधनों की आवश्य-कता पड़ती है। जब उन वस्तुओं की माँ बढ़ती है, तब उनका उत्पादन बढ़ाने के लिए अतिरिक्त साधनों की आवश्यकता होती है। इस प्रकार उत्पादन-साधनों की माँग भी बढ़ जाती है। अतः उत्पादन-साधनों की माँग एक व्युत्पन्न माँग है। पूँजी-पदार्थों की माँग उपभोग-वस्तुओं की माँग की व्युत्पन्न माँग होती है।

derived value (डिराइव्ड वैल्यू) : व्युत्पन्न मूल्य।

अल्फ्रेड मार्शल द्वारा प्रयुक्त शब्द

जिसका आशय उस वस्तु के मूल्य से होता है जिसकी माँग अन्य किसी वस्तु की माँग से उत्पन्न होती है। उदाहरण के लिए पूंजी का मूल्य उन वस्तुओं के मूल्य के कारण है, जिनके उत्पादन में यह सहायक है।

devaluation (डिवैल्युएशन): अवमूल्यन।

जिस सरकारी विनिमय-दर पर एक देश की मुद्रा का किसी दूसरे देश की मुद्रा के साथ लेन-देन होता है, उसमें कमी करना अवमूल्यन कहलाता है। अर्थात् अवमूल्यन का आशय किसी देश की मुद्रा के बाहरी मूल्य या क्रयशक्ति में कमी लाने से है। मान लें, डालर में रुपये की विनिमय-दर पहले ५ रुपये=१ डालर थी, जिसे अब घटाकर ७ रुपये=१ डालर कर दिया गया है। यह रुपये का अवमूल्यन कहलायेगा। डालर के रूप में रुपये की क्रयशक्ति गिर गयी है। जहाँ पहले पाँच रुपये में एक डालर मिल जाता था, वहाँ अब उसी एक डालर के लिए सात रुपये देने पड़ते हैं। विनिमय-दर में इस प्रकार की कमी करने को अवमूल्यन कहते हैं। आज़ादी मिलने के समय से भारतीय रुपये का दो बार अवमूल्यन किया गया है—पहली बार १९४९ ई० में और दूसरी बार १९६६ ई० में।

वैसे तो अवमूल्यन करने के अनेक उद्देश्य हो सकते हैं, लेकिन मुख्य रूप से भुगतान-शेष में हो रहे घाटे को दूर या कम करने के लिए इसका सहारा लिया जाता है। अवमूल्यन से यह किस प्रकार सम्भव होता है, इसके स्पष्टीकरण के लिए हम भारत और अमरीका दो देश ले लेते हैं और यह मान लेते हैं कि रुपये का अवमूल्यन किया गया है। अवमूल्यन से भारत की निर्यात-वस्तुएँ अमरीकी मण्डियों में सस्ती हो जायेंगी, क्योंकि डालर की क्रयशक्ति बढ़ गयी है। अब एक डालर से पहले की अपेक्षा अधिक रुपये का भारतीय माल अमरीकी बाज़ार में खरीदा जा सकेगा। डालर में भारतीय माल सस्ता होने से अमरीका में इसकी माँग बढ़ेगी और फलस्वरूप भारत के निर्यात को प्रोत्साहन मिलेगा। दूसरी ओर अमरीका से आयात होनेवाली वस्तुएँ भारत में महँगी हो जायेंगी। रुपये की क्रयशक्ति गिरने से अब भारतीय आयातक को अमरीकी माल खरीदने के लिए पहले की अपेक्षा अधिक रुपये देने पड़ेंगे। इस कारण भारत में अमरीकी माल की माँग घटेगी और फलस्वरूप आयात में कमी होगी। इस प्रकार अवमूल्यन से एक ओर भारत के निर्यात को प्रोत्साहन मिलेगा और दूसरी ओर आयात घटेंगे। इसके फलस्वरूप भारत के भुगतान-शेष के घाटे को दूर करने एवं सन्तुलन स्थापित करने में मदद मिलेगी।

लेकिन अवमूल्यन कोई ऐसा उपाय नहीं है, जिसे जब भी विदेशी भुगतान के क्षेत्र में कठिनाई हो तो लाभ-सहित अपनाया जा सके। बार-बार अवमूल्यन करने से देश की मुद्रा पर से अन्य देशों का विश्वास जाता रहेगा। और फिर, एक देश द्वारा अवमूल्यन किये जाने पर यदि अन्य देश भी ऐसा ही करने लगें, तो फिर अवमूल्यन से कोई लाभ उठाना सम्भव न रह सकेगा। यही नहीं, बल्कि प्रतियोगी अवमूल्यन से विश्व-व्यापार को गहरा धक्का लगेगा। वर्तमान समय में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा-निधि इस बात की देखभाल करती

है। इसके अन्तर्गत यह व्यवस्था की गयी है कि सदस्य देश अपने भुगतान-शेष के सम्बन्ध में केवल मूलभूत असन्तुलन की स्थिति में ही अवमूल्यन का सहारा ले सकते हैं और वह भी सीमित मात्रा में ही, २० प्रतिशत से अधिक अवमूल्यन के लिए अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा-निधि की पूर्वस्वीकृति आवश्यक है।

अवमूल्यन की सफलता मूल रूप से व्यापार की जानेवाली वस्तुओं की पारस्परिक माँग-लोच पर निर्भर करती है। यदि लोच इकाई से अधिक है, तो लाभ उठाया जा सकेगा, अन्यथा नहीं। उदाहरण के लिए, यदि निर्यात-वस्तुओं की माँग विदेशी बाज़ार में लोचदार है, तो सस्ती होने के कारण इनकी माँग बढ़ेगी और निर्यात-आय में वृद्धि होगी। किन्तु यदि निर्यात-वस्तुओं के लिए माँग लोचदार नहीं है तो निर्यातसंवर्द्धन का कार्य जोर न पकड़ सकेगा। इसके अतिरिक्त, यदि विदेशी बाज़ार में माँग बढ़ती है, लेकिन देश में ऐसी वस्तुओं का उत्पादन आवश्यकतानुसार बढ़ाना अथवा घरेलू उपभोग को नियन्त्रित करना सम्भव न हो, तो भी उद्देश्य की प्राप्ति न हो सकेगी। दूसरी ओर आयात को कम करना तभी सम्भव हो सकेगा जबकि आयातित वस्तुओं के लिए माँग लोचदार हो, अर्थात् कीमत बढ़ने पर माँग में कमी की जा सके। लेकिन यदि आयात आवश्यक हों और उनमें कमी करना सम्भव न हो, तो आयात का कुल मूल्य घटने की बजाय बढ़ जायेगा। इससे यही नहीं कि भुगतान-शेष सम्बन्धी स्थिति सुधर न सकेगी, बल्कि देश के सामने तरह-तरह की मुसीबतें उठेंगी।

developing nations (डेवलपिंग नेशन्स) : विकासशील राष्ट्र।

अपेक्षाकृत कम या नीची प्रति व्यक्ति आयवाले राष्ट्र, जहाँ आर्थिक विकास की प्रक्रिया धीरे-धीरे चल पा रही है, विकासशील राष्ट्र माने जाते हैं। उत्तरी अमरीका, यूरोप तथा जापान के अलावा अन्य देशों की प्रति व्यक्ति आय काफी कम है। अन्तर्राष्ट्रीय विकास-प्रक्रिया में ये देश पिछड़ गये हैं। इनकी प्रति व्यक्ति आय १०० अमरीकी डालर से भी कम है। अफ्रीका, एशिया तथा दक्षिण अमरीका के दो राष्ट्र उपनिवेशवाद के चंगुल में फँसे रहे और औद्योगिक क्रान्ति तथा आर्थिक विकास की तीव्र प्रक्रियाओं से अछूते तो नहीं रहे, परन्तु उचित तथा पर्याप्त रूप से विकसित नहीं हो पाये। आजकल राजनीतिक आज़ादी प्राप्त करने के बाद ये देश अपने घनीभूत पिछड़ेपन को हटाने की कोशिशें कर रहे हैं। इनका विकास हो रहा है। अतः ये देश विकासशील राष्ट्र कहलाते हैं।

देखिए : underdeveloped countries

differential duty (डिफरेन्सियल ड्यूटी) : विभेद-शुल्क।

वह आयात-शुल्क, जिसकी दरें एक देश की तुलना में दूसरे देश के आयात के लिए भिन्न होती हैं।

देखिए : discriminating duty

differentiation (डिफरेन्सिएशन) : विभेदीकरण।

जब कोई उत्पादक अपनी वस्तु को अन्य उत्पादकों की उसी प्रकार की वस्तु से भिन्न या अलग जताने का प्रयास करता

है, तब उसका यह कार्य विभेदीकरण कहलाता है। मुख्य रूप से यह कार्य ट्रेड मार्क और नये नाम के सहारे किया जाता है। अपूर्ण प्रतियोगिता का यह एक प्रधान कारण है। विभेदीकरण की नीति अपनाने से वस्तुएँ एक-दूसरे के लिए पूर्ण स्थानापन्न वस्तुएँ नहीं रह जातीं और इस प्रकार प्रतियोगिता अपूर्ण हो जाती है।

diminishing marginal utility (डिमिनिशिंग मार्जिनल यूटिलिटि) : ह्रासमान सीमान्त उपयोगिता।

किसी वस्तु के उपभोग या खरीद की मात्रा में वृद्धि के साथ-साथ उस वस्तु की सीमान्त उपयोगिता में क्रमागत कमी होना। सीमान्त उपयोगिता का आशय उस अतिरिक्त उपयोगिता से है जो किसी वस्तु की एक और इकाई की खरीद या उपभोग से प्राप्त होती है।

साधारणत: अन्य बातों के पूर्ववत् रहने पर जैसे-जैसे किसी वस्तु के उपभोग या खरीद की मात्रा में वृद्धि होती रहती है, वैसे-वैसे उसकी सीमान्त उपयोगिता घटती जाती है। इसका कारण यह है कि किसी वस्तु की उपयोगिता उस वस्तु के लिए आवश्यकता की तीव्रता पर निर्भर करती है। जैसे-जैसे किसी व्यक्ति के पास किसी वस्तु के स्टाक में वृद्धि होती रहेगी, वैसे-वैसे उस वस्तु के लिए उसकी आवश्यकता की तीव्रता घटती जायेगी और फलस्वरूप उस वस्तु से प्राप्त होनेवाली अतिरिक्त उपयोगिता भी उत्तरोत्तर कम होती रहेगी। ध्यान रहे कि उपभोग में वृद्धि के साथ उपयोगिता में घटी होने की यह बात सीमान्त उपयोगिता से सम्बन्ध रखती है, न कि कुल उपयोगिता से। कुल उपयोगिता में उस समय तक वृद्धि होती रहेगी, जब तक कि सीमान्त उपयोगिता शून्य की स्थिति को पहुँच न लेगी। जब उपभोग में एक सीमा के बाद वृद्धि होने पर सीमान्त उपयोगिता ऋणात्मक रूप धारण कर लेती है, तब कुल उपयोगिता में भी घटी होने लगेगी।

अर्थशास्त्र में यही ह्रासमान सीमान्त उपयोगिता का नियम कहलाता है। यह नियम उपयोग की एक सीमा के बाद ही लागू होता है, क्योंकि एक न्यूनतम मात्रा की उपलब्धि किसी वस्तु के प्रभावपूर्ण उपयोग के लिए आवश्यक होती है। ह्रासमान सीमान्त उपयोगिता माँग-वक्र के लिए आधार प्रस्तुत करती है।

diminishing returns (डिमिनिशिंग रिटर्न्स) : ह्रासमान प्रतिफल।

प्रतिफल नियम का एक पहलू या रूप। यदि किसी उत्पादन-साधन की मात्रा में वृद्धि की जाती है और अन्य साधनों को स्थिर रखा जाता है, तो एक सीमा के बाद उत्पादन में ह्रासमान गति से वृद्धि होगी। उस सीमा के पहले उत्पादन वर्द्धमान अथवा स्थिर दर से बढ़ सकता है। यहाँ यह मानकर चला जाता है कि परिवर्त्ती साधन की इकाइयाँ एक-जैसी हैं और प्रौद्योगिकी जानकारी में कोई परिवर्तन नहीं होता।

पहले इस नियम की व्याख्या भूमि को एक स्थिर साधन के रूप में लेकर की गयी। लेकिन ह्रासमान प्रतिफल नियम सभी साधनों के साथ लागू होता है। श्रम या पूंजी की मात्रा स्थिर रखकर अन्य साधनों की मात्रा बढ़ाने से भी एक सीमा के बाद उत्पादन में होनेवाली वृद्धि

उत्तरोत्तर कम होती रहेगी। इस नियम अथवा परिकल्पना का महत्त्व इस बात में है कि यह अल्पकालिक लागत-वक्र-सिद्धान्त और इस प्रकार फर्म के सिद्धान्त के लिए आधार प्रस्तुत करता है।

diminishing substitution (डिमिनिशिंग सब्स्टीट्यूशन) : ह्रासमान स्थानापत्ति।

ह्रासमान स्थानापत्ति का नियम बहुत कुछ ह्रासमान सीमान्त उपयोगिता नियम के समान है। यदि सीमित साधनवाले व्यक्ति को केवल दो वस्तुओं के बीच चयन करना है तो वह एक वस्तु की थोड़ी मात्रा के लिए दूसरी वस्तु की थोड़ी मात्रा देने को तैयार हो सकता है। मान लीजिए, 'अ' और 'ब' दो वस्तुएँ हैं। यदि उस व्यक्ति के पास 'अ' वस्तु अधिक मात्रा में है और 'ब' वस्तु उसके पास नहीं है, तो वह 'ब' वस्तु की थोड़ी मात्रा पाने के लिए 'अ' वस्तु की अपेक्षाकृत अधिक मात्रा देने को तैयार होगा। जैसे-जैसे उसके पास 'ब' वस्तु की मात्रा विनिमय के फलस्वरूप बढ़ती रहेगी, वैसे-वैसे वह इस वस्तु की अतिरिक्त मात्रा प्राप्त करने के लिए 'अ' वस्तु की उत्तरोत्तर कम मात्रा देने को तैयार होगा। अर्थात् ह्रासमान दर से प्रतिस्थापन करने के लिए वह व्यक्ति तैयार हो सकेगा, जिससे वह अपनी सन्तुष्टि को अधिकतम कर सके। अनधिमान वक्र का जो विशेष रूप होता है, उसमें इस तत्त्व का हाथ होता है।

direction of labour (डाइरेक्शन ऑफ़ लेबर) : श्रम-निदेशन।

श्रम की गतिहीनता दूर करने का एक उपाय, जिसके अन्तर्गत राज्य अनिवार्यतः श्रमिकों को उन उद्योगों से हटा जहाँ उत्पादन घटाना होता है, ऐसे में लगाने का आदेश देता है जहाँ बढ़ाने की व्यवस्था की जाती है। पूर्ण से योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था में इस का सहारा लेकर विभिन्न उद्योगों के श्रम का पुनर्वितरण किया जा सकता राष्ट्रीय संकट के समय भी इस उपाय कम-अधिक सीमा तक अपनाया जा है। लेकिन सामान्यतः जनतान्त्रिक दे लोग इस तरीके का विरोध करेंगे, क्यों इससे उनके व्यवसाय-चयन की स्वतं को ठेस लगेगी।

direction of trade (डाइरेक्शन ऑफ़ ट्रेड): व्यापार की दिशा।

जिन देशों के साथ कोई देश व्या करता है, वह उस देश की व्यापार-दि कहलाती है। विभिन्न कारणों के प्र से व्यापार-दिशा में परिवर्तन हो रहते हैं।

direct production (डाइरेक्ट प्रोडक्शन) : उत्पादन, सरल उत्पादन।

यह वह उत्पादन-प्रणाली है, जि एक व्यक्ति पूर्णतया अपने ही प्रया अपनी आवश्यकताएँ पूरी करता है। उत्पादन-व्यवस्था में श्रम-विभाजन कोई स्थान नहीं होता।

direct tax (डाइरेक्ट टैक्स) : प्र कर।

व्यक्ति या कम्पनी की आय व सम्प पर लगाये गये कर, जैसे कि आय सम्पत्ति-कर आदि। ये ऐसे कर हो जिनका भुगतान उसी को करना हो जिस पर ये लगाये जाते हैं। साधार इनका भार दूसरों पर खिसकाया नहीं

सकता । ये कर अधिक न्यायसंगत ठहरते हैं । इन करों की व्यवस्था आसानी से करदान-क्षमता के अनुसार की जा सकती है । रुपया व धन की एक निर्धारित सीमा के नीचे ऐसे कर से छूट की व्यवस्था की जा सकती है और आय व व्यय की मात्रा में वृद्धि के साथ-साथ कर की दर आवश्यकतानुसार बढ़ायी जा सकती है । इस प्रकार प्रत्यक्ष करों से यही नहीं कि सरकार काफी साधन इकट्ठा कर सकती है, बल्कि असमानताएँ कम करने में इनसे महत्त्वपूर्ण सहायता ली जा सकती है । यही कारण है कि वर्तमान समय में लगभग सभी देशों में सरकारें प्रत्यक्ष करों का काफी बड़ी सीमा तक सहारा लेती हैं । लेकिन ऐसे करों की दर अधिक ऊँची होने पर अतिरिक्त कार्य करने व बचत करने और फलस्वरूप राष्ट्रीय उत्पादन-मात्रा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने का डर रहता है । साथ ही करों की चोरी की भी सम्भावना बढ़ जाती है ।

discount (डिस्काउण्ट) : बट्टा ।

साधारणतया इसका आशय अंकित मूल्य पर कटौती से होता है । इस प्रकार यह प्रीमियम या बढ़ौती का उल्टा है । अर्थशास्त्र और वाणिज्य में इसका अनेक विशिष्ट अर्थों में प्रयोग किया जाता है ।

१. वह उत्प्रेरण, जो ऋणदाता निर्धारित समय के भीतर भुगतान करने पर ऋणी को देता है । इसे नकद बट्टा कहते हैं ।

२. किसी वस्तु की सूची या छपी कीमत में वह छूट, जो थोक व्यापारी साधारण तौर से खुदरा व्यापारी को देता है । इसे व्यापार-बट्टा कहा जाता है ।

३. वह प्रभार, जो निर्धारित तिथि के पहले हुण्डी के भुनाने के लिए दिया जाता है । इसे हुण्डी का बट्टा करना कहते हैं । बट्टे की रकम हुण्डी की शेष अवधि और इसमें निहित जोखिम के अंश पर निर्भर करती है ।

४. जब हाल में निर्गमित स्टॉक का मूल्य जारी मूल्य से कम हो जाता है, तब कहा जाता है कि स्टॉक पर बट्टा है ।

discounted cash flow (डिस्काउण्टेड कैश फ्लो) : बट्टागत नकद प्रवाह ।

निवेश के मूल्यांकन का एक तरीका, जिसका मूल आधार यह है कि व्यक्ति या फर्म के लिए एक विशेष मुद्रा-राशि का मूल्य इस बात पर निर्भर करता है कि वह राशि उसे कब मिलती है ।

निवेश के लिए पूँजी की आवश्यकता होती है और भविष्य में इस पूँजी से प्रतिफल प्राप्त करने की आशा रहती है । अपेक्षित दर से निवेश-संवृद्धि के लिए समय-समय पर अतिरिक्त पूँजी लगाने की जरूरत होती है । इस प्रकार किसी निवेश के सारे जीवन-काल के दौरान एक ओर पूँजी लगती रहती है और दूसरी ओर प्रतिफल प्राप्त होता रहता है । निवेश के सम्बन्ध में मुद्रा के इस अन्तर्वाह और बहिर्वाह को 'नकद प्रवाह' कहा जाता है ।

बट्टागत नकद प्रवाह-विश्लेषण समान आधार पर तुलना करने के लिए इन नकद प्रवाहों के प्रभाव को साररूप में व्यक्त करने का एक तरीका है । इस विश्लेषण की मूल अवधारणा यह है कि आज के १०० रुपये का मूल्य एक वर्ष बाद प्राप्त होनेवाले १०० रुपये के मूल्य से अधिक है । कारण, यदि ब्याज-दर १० प्रतिशत

मान लें, तो आज के १०० रुपये एक वर्ष के बाद ११० रुपये के बराबर होंगे। इसके विपरीत एक वर्ष बाद के ११० रुपये आज के १०० रुपये के बराबर बैठेंगे, क्योंकि १० प्रतिशत दर से यदि आज इस राशि को निवेश-कार्य में लगाया जाये तो एक वर्ष की अवधि में यह राशि बढ़कर ११० रुपये हो जायेगी। एक निश्चित समय पर नकद प्रवाह के मूल्य को व्यक्त करने की इस प्रक्रिया को वट्टा अथवा पूर्वप्रापण करना कहते हैं।

वट्टागत नकद प्रवाह-विश्लेषण में एक निश्चित समय चुनकर चला जाता है और अलग-अलग नकद प्रवाहों का उस चुने हुए समय के आधार पर वट्टा किया जाता है तथा उस निर्धारित समय पर मुद्रा-मूल्य के रूप में कुल निवेश-मूल्य के जोड़ को प्रस्तुत किया जाता है। यदि, जैसा कि सामान्य तौर से किया जाता है, आधार-समय के रूप में आज को चुना जाता है, तो नकद प्रवाह के समेकित मूल्य को निवल वर्तमान मूल्य कहेंगे।

इस प्रकार इस तरीके के सहारे उस व्याज-दर का हिसाव लगाया जा सकता है, जिसके होने पर निवल वर्तमान मूल्य शून्य हो सकेगा और फिर उस आधार या प्रतिफल की उस न्यूनतम दर को निर्धारित किया जा सकता है जोकि निवेश को लाभकारी वनाने के लिए आवश्यक है।

संक्षेप में वट्टागत नकद प्रवाह के तरीके से किसी भावी राशि का वर्तमान मूल्य मालूम किया जा सकता है। और इस आधार पर निवेश की वास्तविक लाभकारिता का मूल्यांकन किया जा सकता है।

discount house (डिस्काउण्ट हाउस): वट्टाघर, प्रपत्र-क्रेतागृह।

एक वित्त-संस्था, जो विल या हुण्डियों के वट्टा सम्वन्धी कार्य में लगी होती है। यह अल्पकालिक सरकारी प्रतिभूतियों के सम्वन्ध में भी व्यापार-कार्य करती है। साधारणतः अपनी पूंजी, दूसरों से प्राप्त जमा एवं वैंकों से थोड़े समय के लिए लिये गये उधार के सहारे इस प्रकार की संस्थाएं वट्टा सम्वन्धी कार्य चलाती हैं।

discount market (डिस्काउण्ट मार्केट): हुण्डी-वाज़ार।

वह वाज़ार जहाँ ट्रेजरी विल और हुण्डियों का वट्टा-सम्वन्धी कार्य होता है। इस कार्य में वैंक, प्रपत्र-क्रेतागृह और स्वीकृतिगृह भाग लेते हैं। वैसे तो मुद्रा-वाज़ार और हुण्डी-वाज़ार की अलग-अलग परिभाषा की जा सकती है (जैसे कि मुद्रा-वाज़ार वह वाज़ार है, जिसका सम्वन्ध वहुत थोड़े समय के लिए दिये जानेवाले ऋणों से होता है, जवकि हुण्डी-वाज़ार वट्टा-कार्य से सम्वन्धित होता है), लेकिन ये दोनों वाज़ार इस प्रकार परस्पर जुड़े हुए हैं कि ये एक-दूसरे के पर्यायी समझे जाते हैं।

discount rate (डिस्काउण्ट रेट): वट्टा-दर, बैंक-दर।

व्याज की वह दर, जिस पर केन्द्रीय बैंक अन्य बैंकों को उधार देगा। व्यावहारिक दृष्टि से इसका आशय उस दर से है, जिस पर केन्द्रीय बैंक प्रपत्र-क्रेतागृहों के प्रपत्रों का पुनर्बट्टा करेगा अथवा उन्हें उधार देगा। मुद्रा-नीति का वट्टा-दर एक महत्त्वपूर्ण उपकरण वन गयी है। स्फीति को रोकने के लिए वट्टा-दर को

बढ़ा दिया जाता है और व्यवसाय-क्षेत्र में शिथिलता की स्थिति का सामना करने के लिए वट्टा-दर में कमी कर दी जाती है।

देखिए : bank rate

discount store (डिस्काउण्ट स्टोर): रियायती भण्डार।

रियायती भण्डार का आशय उन दुकानों या भण्डारों से है, जो विभिन्न प्रकार का माल बेचते हैं और अपने ग्राहकों को उनकी खरीद पर भारी छूट देते हैं। बिक्री बढ़ाने के उद्देश्य से ऐसा किया जाता है। ग्रेट ब्रिटेन, अमरीका आदि देशों में इस तरह के भण्डार बहुत लोकप्रिय हैं।

discriminating duty (डिस्क्रिमिनेटिंग ड्यूटी) : भेदमूलक शुल्क।

जब भिन्न-भिन्न देशों के आयात पर समान दर से नहीं बल्कि अलग-अलग दर के हिसाब से आयात-शुल्क लगाने की व्यवस्था की जाती है, तब ऐसे शुल्क 'भेदमूलक शुल्क' कहलाते हैं। उदाहरण के लिए, १९३२ ई० के ओटावा-करार के अन्तर्गत ग्रेट ब्रिटेन द्वारा राष्ट्रमण्डलीय देशों के पक्ष में भेदमूलक शुल्क लगाने की नीति का व्यवहार किया गया।

discriminating monopoly (डिसिक्रमिनेटिंग मॉनोपॅली) : भेदमूलक एकाधिकार।

एकाधिकार की वह स्थिति, जिसमें एकाधिकारी अपनी वस्तु या सेवा को भिन्न-भिन्न क्रेताओं को अथवा भिन्न-भिन्न स्थानों पर या भिन्न-भिन्न कार्यों के लिए अलग-अलग कीमतों पर बेचता है। एक कीमत के स्थान पर भिन्न-भिन्न कीमतें वसूल करना एकाधिकारी के लिए तभी सम्भव हो सकता है जबकि विभिन्न बाज़ार एक-दूसरे से अलग रखे जा सकें जिससे न तो कम कीमतवाले बाज़ार में बिकी वस्तु अधिक कीमतवाले बाज़ार में दुबारा बिक्री के लिए लायी जा सके और न ही महँगे बाज़ारवाले खरीदार सस्ते बाज़ार में जाकर उस वस्तु या सेवा को खरीद सकें। कीमत-विभेद की नीति अपनाकर एकाधिकारी अपने लाभ को बढ़ा सकता है, लेकिन इसके लिए आवश्यक शर्त्त यह है कि उस वस्तु या सेवा के लिए माँग की लोच विभिन्न बाज़ारों में एक-जैसी न होकर अलग-अलग हो।

देखिए : price discriminations

discriminatory taxation (डिस्क्रिमिनेटरी टैक्सेशन) : भेदमूलक कराधान।

प्रायः कुछ उद्योगों के माल पर इस उद्देश्य से कर लगाये जाते हैं कि किसी अन्य उद्योग के माल आसानी से उनके साथ प्रतियोगिता कर सकें। इस प्रकार के कराधान को, जो विभिन्न उद्योगों के बीच विभेदकारी होते हैं, 'भेदमूलक कराधान' कहते हैं। भारत में अनेक मिल-उद्योगों के माल पर भेदमूलक कराधान की व्यवस्था है, ताकि उस प्रकार के लघु तथा कुटीर-उद्योगों के माल प्रभावपूर्ण ढंग से मिल-उद्योगों के साथ प्रतियोगिता कर सकें।

dis-economy (डिस्-इकॉनॉमि) : अपार्थ।

एक सीमा के पश्चात् जब उत्पादन के पैमाने को बढ़ाया जाता है, तब प्रायः अनेक उत्पादन-क्षेत्रों में तरह-तरह के सुलाभों या बचतों के स्थान पर

विभिन्न प्रकार के अलाभों का उदय होने लगता है। इसके फलस्वरूप औसत उत्पादन-लागत बढ़ने लगती है। उदाहरण के लिए, उत्पादन के पैमाने में बराबर वृद्धि होते रहने पर एक सीमा के उपरान्त संगठन व देख-रेख का कार्य जटिलतर और अधिक खर्चीला बनता जाता है। अलाभ की बात केवल उत्पादन-क्षेत्र के लिए ही नहीं, बल्कि उपभोग-क्षेत्र पर भी लागू होती है।

disequilibrium (डिसइक्विलिब्रियम) : असन्तुलन।

सन्तुलन न प्राप्त होने की स्थिति। यह स्थिति उस समय पैदा होती है, जबकि विरोधी शक्तियों के बीच सन्तुलन नहीं रहता और उनमें परिवर्तन होता रहता है। सन्तुलन की स्थिति में चीज़ों में पूर्ववत् रहने की प्रवृत्ति पायी जाती है। यदि किन्हीं कारणों से सन्तुलन टूट जाता है, तो सम्बन्धित शक्तियाँ सन्तुलन की पुनः स्थापना के लिए काम करने लगती हैं। मान लीजिए कि बाज़ार में सन्तुलन-कीमत है—अर्थात् वह कीमत जिस पर माँग और पूर्ति की मात्राएँ बराबर होती हैं। यदि किसी कारण से माँग या पूर्ति की मात्रा बदल जाती है, तो सन्तुलन टूट जायेगा। असन्तुलन की यह स्थिति उस समय तक बनी रहेगी, जब तक कि माँग और पूर्ति की शक्तियाँ परस्पर क्रिया-प्रतिक्रिया से सन्तुलन की नयी स्थिति प्राप्त न कर लें।

भुगतान-शेष के सम्बन्ध में असन्तुलन का आशय उस स्थिति से होता है, जबकि प्राप्तियाँ और भुगतान-राशियाँ बराबर नहीं होतीं, अर्थात् जब भुगतान-शेष अनुकूल या प्रतिकूल है। साधारणतया असन्तुलन शब्द प्रयोग प्रतिकूल भुगतान-शेष के लिए किया जाता है।

disguised unemployment (डिस्गाइज़्ड अनएम्पलॉय्मेण्ट) : प्रच्छन्न बेरोज़गारी।

श्रमिक जब ऐसे कार्यों में लगे हों जहाँ उनकी शक्ति या क्षमता का पूरा उपयोग सम्भव नहीं होता जहाँ उनकी उत्पादिता अपेक्षाकृत होती है, तब उसे 'प्रच्छन्न बेरोज़गारी' की संज्ञा दी जाती है। अल्प-विकसित क्षेत्रों में इस प्रकार की बेरोज़गारी पायी जाती है, क्योंकि इन क्षेत्रों शिक्षित एवं कुशल श्रमिकों के लिए रोज़गार के अवसर बहुत सीमित मात्रा में उपलब्ध होते हैं। मन्दी-काल में काफी बड़े पैमाने पर प्रच्छन्न बेरोज़गारी देखने में आती है। ऐसे समय कुशल श्रमिकों को अर्धकुशल कार्य करने पड़ते हैं और अर्धकुशल श्रमिक साधारण कार्यों को चलाते हैं। इस प्रकार रोज़गार में लगे श्रमिकों का प्रभावपूर्ण प्रयोग नहीं हो पाता, जोकि प्रच्छन्न बेरोज़गारी का सूचक है। समृद्धि-काल में भी कई उद्योगों में प्रायः काफी प्रच्छन्न बेरोज़गारी दिखायी पड़ती है, जहाँ श्रमिकों की तुलनात्मक उत्पादिता तथा मज़दूरी नीची होती है।

dishoarding (डिस्होर्डिंग) : विसंचय।

निसंचित धन या वस्तु को भण्डार से बाहर निकालना। लोग विभिन्न कारणों से मुद्रा तथा अन्य वस्तुओं का संग्रह करते हैं। उदाहरण के लिए, स्व...

के भय से लोग स्वर्ण का संग्रह करने लगते हैं अथवा कमी के समय या कमी होने के भय से अनेक वस्तुओं का, उनके लिए लोगों की माँग से अधिक मात्रा में, संग्रह किया जाने लगता है। संग्रह के इन कारणों के दूर होने पर निसंचित वस्तुएँ बाहर आने लगती हैं। यही 'विसंग्रह' के नाम से जाना जाता है।

dishonour (डिस्ऑनर) : नकारना, अनादरण।

भुगतान की तिथि आने पर जब विनिमय-पत्र या हुण्डी चुकानेवाला पर्याप्त साधनों के अभाव के कारण उसका भुगतान नहीं कर पाता, तब उसे विनिमय-पत्र या हुण्डी का नकारना या अनादरण कहते हैं। इसी प्रकार जब काटे गये चेक के भुगतान के लिए चेक काटनेवाले के बैंक-खाते में पर्याप्त राशि नहीं होती और इस कारण चेक का भुगतान नहीं हो पाता, तब वह चेक का नकारना कहलाता है। ऐसे चेक को 'अनादृत चेक' भी कहा जाता है।

disinflation (डिस्इनफ्लेशन्) : विस्फीति।

अवस्फीति का हल्का या छोटा रूप। इसका आशय है स्फीति-प्रभाव के फलस्वरूप निर्मित लागत व कीमत के ढाँचे में आयोजित ढंग से अधोमुखी समंजन लाना। 'विस्फीति' का उद्देश्य बेरोज़गारी फैलाये बिना लागत और कीमतों के स्तर को एक न्यायोचित सीमा तक घटाना है। कीमतें अवस्फीति के अन्तर्गत भी घटती हैं, लेकिन अवस्फीति की धारणा अनिवार्य रूप से उत्पादन में घटी और बेरोज़गारी में वृद्धि के साथ जुड़ी होती है।

disinvestment (डिस्इन्वेस्टमेण्ट) : विनिवेश।

इस अवधारणा का प्रयोग लार्ड केन्स ने निवेश-विक्रय के अर्थ में किया है। कभी-कभी उन्होंने ऋणात्मक निवेश के रूप में भी इसका प्रयोग किया है। उत्पादन-वृद्धि के लिए विनिवेश की तुलना में नये निवेश का अधिक होना अनिवार्य है। दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान इंगलैण्ड को अपने अनेक विदेशी निवेश बेचने पड़े, ताकि विदेशी मुद्रा प्राप्त करके आयात का मूल्य चुकाया जा सके।

dismal science (डिस्मल साइन्स) : निकृष्ट विज्ञान।

ह्रासमान प्रतिफल नियम एवं बढ़ती हुई जनसंख्या को लेकर माल्थस और उनके समर्थकों ने भविष्य के लिए अत्यन्त निराशाजनक निष्कर्ष निकाले। इन निराशाजनक निष्कर्षों के आधार पर सुविख्यात विचारक थामस कारलाइल ने अर्थशास्त्र को 'निकृष्ट विज्ञान' का नाम दिया।

disposable income (डिस्पोज़ेबॅल इन्कॅम) : प्रयोज्य आय।

आय का वह भाग जो सब प्रत्यक्ष करों के भुगतान के बाद प्रयोग के लिए बचता है। निजी आय की सम्पूर्ण रकम हमें खर्च के लिए नहीं मिलती। कारण, उसका एक भाग प्रत्यक्ष कर के रूप में हमारे हाथ से निकल जाता है। आय का शेष भाग, जो प्रत्यक्ष कर के भुगतान के बाद खर्च के लिए बच रहता है, 'प्रयोज्य आय' अथवा 'व्यवहारयोग्य आय' कहलाता है।

प्रयोज्य आय उपभोग-व्यय का प्रधान

निर्धारक तत्त्व है। प्रायः राष्ट्रीय जीवन-स्तर में हो रहे परिवर्तनों की माप के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। इसके लिए प्रयोज्य आय के साथ-साथ कीमतों एवं जनसंख्या में हुए परिवर्तनों का ध्यान रखना पड़ता है। इस अवधारणा के सहारे हमें राज्य की कराधान-नीति और व्यक्तिगत उपभोग तथा बचत पर पड़नेवाले उसके प्रभावों की जानकारी प्राप्त हो जाती है।

dis-saving (डिस्-सेविंग) : निर्बचत।

इस अवधारणा का प्रयोग मुख्य रूप से लॉर्ड केन्स द्वारा किया गया है। इसका आशय उस स्थिति से है, जबकि कोई व्यक्ति अपनी पिछली बचत के इस्तेमाल द्वारा अथवा दूसरों से ऋण लेकर अपनी आय से अधिक व्यय करता है। स्फीति-काल में मुद्रा के मूल्य में घटी होने के कारण चालू आय से वर्तमान जीवन-स्तर को बनाये रखना अथवा उसे गिरने न देना सम्भव नहीं रहता। ऐसी स्थिति में कुछ लोग अपने जीवन-स्तर में घटी होने देने की बजाय अपनी पिछली बचत का सहारा लेने लगते हैं। इस प्रकार वे अपनी आय से अधिक खर्च करने की स्थिति में हो जाते हैं। यही 'निर्बचत' है। कुल बचत में से कुल निर्बचत की मात्रा घटाकर निवल बचत मालूम की जा सकती है।

निर्बचत प्रत्यक्ष रूप से आय की मात्रा से नहीं, अन्य तत्त्वों से प्रभावित होती है। साधारणतः निर्बचत पर बेरोज़गारी, भारी आकस्मिक व्यय, हाल में हुई आय में घटी, टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं की खरीद आदि अनेक बातों का प्रभाव पड़ता है।

distressed area (डिस्ट्रेस्ड एरि[...]) : विपद्ग्रस्त क्षेत्र।

वह क्षेत्र, जहाँ बहुत भारी सं[...] लोग बेरोज़गार पाये जाते हैं।

देखिए : depressed area

distress sale (डिस्ट्रेस सेल) : [...] बिक्री।

व्यापार-क्षेत्र में कभी-कभी [...] अवसर आ जाते हैं जबकि स्वेच्छा से [...] बल्कि परिस्थितियों के वश होकर [...] को अपना माल बेचना पड़ता है। [...] समय जो भी कीमत मिल पाती है, [...] वह लागत से बहुत कम ही क्यों [...] विक्रेता उसी पर माल बेचने के [...] तैयार हो जाता है। कारण, उसके [...] और कोई विकल्प ही नहीं होता। [...] लीजिए कि किसी विक्रेता ने ऋ[...] रखा है और ऋण चुकाने के समय [...] उसके पास ऋण-चुकता करने के [...] साधन हैं और न ही वह दूसरों से आ[...] साधन जुटा पा रहा है। साथ ही, [...] मान लीजिए कि ऋणदाता किसी भी [...] में और ठहरने के लिए तैयार नहीं [...] स्पष्टतः ऐसी स्थिति में बाज़ार में [...] कीमत मिल सकेगी, उसी पर विक्रे[...] विवश होकर अपना माल बेचना प[...] क्योंकि इसके अतिरिक्त ऋण लौटाने [...] उसके लिए और कोई उपाय ही नहीं [...] इस तरह की अन्य अनेक स्थिति[...] आसानी से कल्पना की जा सकती [...] ऐसी बिक्री को 'जबरी बिक्री' [...] 'आपात बिक्री' का नाम दिया जा[...]

distribution (डिस्ट्रीब्यूशन्) : वि[...]

उत्पादन का उसके सहयोगी [...] के बीच विभाजन। उत्पादन स[...]

विभिन्न साधनों के सहयोग का फल होता है। यह उत्पादन अथवा उसका मूल्य सहयोगी साधनों के बीच बाँट दिया जाता है। यही 'वितरण' कहलाता है।

'वितरण' अर्थशास्त्र का एक मुख्य अंग है, जिसका सम्बन्ध कुल उत्पादन अथवा राष्ट्रीय आय में उत्पादन-साधनों के योगदान-निर्धारक सिद्धान्तों से है। उत्पादन-साधनों को प्राप्त होनेवाले अंशों को अलग-अलग नाम दिये गये हैं। भूमि के स्वामी को जो अंश मिलता है, उसे 'लगान' कहते हैं। श्रम को मिलनेवाला अंश 'मजदूरी' कहलाता है। पूंजी के स्वामी को 'व्याज' मिलता है। इस प्रकार के सभी भुगतान करने के बाद जो बच रहता है, वह उद्यमी का अंश होता है जिसे 'लाभ' कहते हैं। साधनों को मिलनेवाले ये अंश कैसे निर्धारित होते हैं, इसी प्रश्न का विश्लेपण 'वितरण' नामक अंग करता है। वितरण के सीमान्त उत्पादिता-सिद्धान्त के अनुसार, कुल उत्पादन में साधनों का अंश उनकी सीमान्त उत्पादिता द्वारा निर्धारित होता है। एक अन्य विचारधारा के अनुसार साधनों का प्रतिफल वस्तुओं की कीमत के समान निर्धारित होता है। जिस प्रकार किसी वस्तु की कीमत उसकी माँग और पूर्ति द्वारा निर्धारित होती है, उसी प्रकार साधनों का प्रतिफल भी उनकी माँग और पूर्ति सम्बन्धी परिस्थितियों द्वारा निर्धारित होता है।

distributive costs (डिस्ट्रिब्यूटिव कॉस्ट्स) : वितरण-लागत।

वस्तुओं को उत्पादन के स्थल से खरीदारों के पास तक पहुँचाने की लागत। प्रादेशिक श्रम-विभाजन एवं विशिष्टीकरण के क्षेत्र में हुई प्रगति के फलस्वरूप 'वितरण-लागत' में भारी वृद्धि हुई है। बड़े पैमाने की उत्पादन-प्रणाली का एक प्रमुख अलाभ है—वितरण-लागत में वृद्धि। विक्रय-लागत, मुख्यत: विज्ञापन-व्यय, से भी वितरण की लागत काफी बढ़ी है।

disutility (डिस्यूटिलिटी) : अनुपयोगिता।

किसी वस्तु या सेवा के कारण होनेवाली सन्तुष्टि की हानि। यह 'उपयोगिता' का विपरीतार्थक शब्द है। 'उपयोगिता' का आशय किसी वस्तु से प्राप्त होनेवाली 'सन्तुष्टि की मात्रा' से है। अस्तु, 'उपयोगिता' के विपरीतार्थक शब्द 'अनुपयोगिता' का अर्थ हुआ किसी वस्तु के कारण होनेवाली सन्तुष्टि की हानि। एक सीमा के पश्चात् किसी वस्तु के संचय में वृद्धि होने से उस वस्तु की सीमान्त उपयोगिता घटने लगती है। सीमान्त उपयोगिता के उत्तरोत्तर ह्रास से वह सीमा भी आ पहुँचती है जब सीमान्त उपयोगिता शून्य हो जाती है; अर्थात् उस वस्तु की अतिरिक्त इकाई से कोई अतिरिक्त सन्तुष्टि प्राप्त नहीं होती। यदि इस सीमा के पश्चात् भी वस्तु की मात्रा में वृद्धि लायी जायेगी, तो सन्तुष्टि के स्थान पर असन्तुष्टि या अनुपयोगिता प्राप्त होगी। उदाहरणार्थ, भूखे व्यक्ति के लिए रोटी की अतिरिक्त इकाइयों से मिलनेवाली उपयोगिता क्रमश: घटती जायेगी, और एक सीमा के उपरान्त उसकी भूख बिलकुल मिट जायेगी और फिर अतिरिक्त रोटी से उसे कोई अतिरिक्त उपयोगिता प्राप्त न होगी। इसके बाद और रोटियाँ खाने से तो उसे कष्ट

ही होगा; अर्थात् 'अनुपयोगिता' प्राप्त होगी।

diversification (डाइवर्सिफिकेशन्) : विविधीकरण।

किसी क्षेत्र में, विशेष रूप से ऐसे क्षेत्र में जो किसी अत्यधिक स्थानीकृत उद्योग पर निर्भर करता है, विभिन्न उद्योगों की व्यवस्था। कोई क्षेत्र जब किसी बहुत ही स्थानीकृत उद्योग पर मुख्य रूप से निर्भर करता है, तब ऐसे उद्योग में घटी होने की दशा में वहाँ बेरोज़गारी की गम्भीर समस्या पैदा होने की आशंका हो जाती है, भले ही समग्र रूप में देश में पूर्ण रोज़गार की स्थिति ही विद्यमान क्यों न हो। क्षेत्रविशेष में विभिन्न प्रकार के उद्योगों की व्यवस्था अथवा उद्योगों के विविधीकरण से बेरोज़गारी की उस आशंका को दूर किया जा सकता है। कारण, ऐसी व्यवस्था होने पर रोज़गार के अवसरों में पर्याप्त विविधता आ जाती है। इसी कारण पूर्ण रोज़गार की स्थिति बनाये रखने में औद्योगिक विविधीकरण को महत्त्वपूर्ण ठहराया जाता है। इसके लिए काफी समय से स्थापित भारी उद्योगों को भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में फैलाना तो सम्भव नहीं है; फिर भी उन क्षेत्रों में, जहाँ ऐसे उद्योग स्थापित हैं, नये हल्की किस्म के उद्योग खोले जा सकते हैं।

विविधीकरण का प्रयोग एक अन्य अर्थ में भी किया जा सकता है। वह है किसी फर्म द्वारा विभिन्न प्रकार की वस्तुओं व सेवाओं का उत्पादन या विक्रय। जब कोई फर्म किसी एक वस्तु को ही बनाती या बेचती है तब उस वस्तु की माँग में तीव्र घटी होने की दशा में फर्म को विशेष कठिनाई का सामना क[रना] पड़ता है। विविधीकरण से यह कठि[नाई] दूर करने में बड़ी सहायता मिल स[कती] है। इस दशा में किसी एक वस्तु की [माँग] के उतार-चढ़ाव का प्रभाव उतना गम्[भीर] नहीं होगा।

dividend (डिविडेण्ड) : लाभांश।

किसी कम्पनी या निगम द्वारा [अपने] शेयरधारियों को लाभ के रूप में चुका[यी] गयी राशि। यह व्यवसाय से प्राप्त [लाभ] का वह भाग है जो संचालक-म[ण्डल] शेयरधारियों में बाँटने के लिए निर्धा[रित] करते हैं। लाभांश शेयर-पूँजी के [अंकित] मूल्य के प्रतिशत के रूप में व्यक्त कि[या] जाता है। इसकी मात्रा मुख्य रूप से [इन] दो बातों पर निर्भर करती है : १. व्यवसा[य] की आय तथा २. आय का वह भाग [जो] व्यवसाय के विस्तार, आधुनिकीकरण आ[दि] के लिए सुरक्षित रखा जाता है। साधारण[तः] लाभांश की घोषणा वार्षिक हिसाब से [की] जाती है। कभी-कभी स्फीति की स्थिति [में] लाभांश बढ़ाने पर रोक लगा दी जाती है।

dividend limitation (डिविडे[ण्ड] लिमिटेशन) : लाभांश परिसीमन।

मुद्रा-स्फीति के नियन्त्रण के लिए ज[ब] मज़दूरी-वृद्धि पर रोक लगाने की नी[ति] अपनायी जाती है, तब लाभांश-वितरण [पर] भी प्रतिबन्ध लगाना आवश्यक ए[वं] न्यायसंगत ठहराया जाता है। इस नी[ति] के अन्तर्गत सरकार कम्पनियों को [यह] आदेश देती है कि निर्धारित दर के अ[धिक] लाभांश का वितरण न किया जाये। [इसे] लाभांश परिसीमन कहलाता है।

dividend warrant (डिविडेण्ड वारे[ण्ट]) : लाभांश आधपत्र।

वह चेक, जिसके द्वारा कम्पनियाँ अपने शेयरधारियों को लाभांश बाँटती हैं।

division of labour (डिविजन ऑफ़-लेबर) : श्रम-विभाजन।

उत्पादन-प्रक्रिया के विभिन्न भागों को अलग-अलग लोगों में बाँटकर संचालित करने को श्रम-विभाजन कहते हैं। सम्पूर्ण सामाजिक उत्पादन-प्रक्रिया को छोटे-छोटे हिस्सों में बाँट लिया जाता है। अलग-अलग लोगों के समूह विभिन्न वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन में लग जाते हैं। जैसे, कुछ कृषि-कार्य करते हैं, कुछ पशु-पालन, कुछ कपड़ा बनाने का काम, कुछ यन्त्रादि बनाने का। इस प्रकार समाज या अर्थव्यवस्था की आवश्यकता की सब वस्तुएँ तथा सेवाएँ अलग-अलग लोगों के पृथक-पृथक प्रयासों द्वारा उत्पादित की जाती हैं। आपसी विनिमय द्वारा सब व्यक्ति, अन्य लोगों द्वारा उत्पादित वस्तुएँ तथा सेवाएँ अपने उत्पादन के बदले में प्राप्त करके, अपनी आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करते हैं। इसे सामाजिक श्रम-विभाजन कहा जाता है, जिसके फलस्वरूप समाज अनेक व्यवसायों में बँट जाता है। आधुनिक अर्थव्यवस्थाओं में सामाजिक श्रम-विभाजन इतना सूक्ष्म हो गया है कि व्यवसायों की संख्या हजारों-लाखों में पहुँच जाती है।

श्रम-विभाजन का एक दूसरा रूप वह होता है, जहाँ किसी एक वस्तु या सेवा के उत्पादन की तकनीक को कई हिस्सों में बाँटकर प्रत्येक छोटी प्रक्रिया किसी खास व्यक्ति के सुपुर्द कर दी जाती है। हर व्यक्ति पूरी वस्तु का उत्पादन न करके केवल उत्पादन-प्रक्रिया के एक छोटे अंग को संचालित करने में पूरी तौर पर संलग्न रहता है। इन छोटे अंगों को करने के लिए विशिष्ट प्रकार की मशीनें होती हैं। एक व्यक्ति एक ही काम करते रहने से न केवल उसमें विशेष दक्षता हासिल कर लेता है, वरन् उस मशीन का भी लगातार प्रयोग होता रहता है। एक मशीन से दूसरी पर जाने, नये काम तथा नयी मशीन पर लय प्राप्त करने में समय व्यर्थ नहीं जाता है। एडम स्मिथ ने श्रम-विभाजन के इन लाभों को बताते हुए यह भी बताया था कि एक ही काम पर लगे रहने से श्रम की आविष्कार-प्रवणता बढ़ जाती है तथा वे उत्पादन की तकनीकों में तीव्रतर गति से सुधार ला सकते हैं। आधुनिक विशाल-स्तरीय उत्पादन तो इस प्रकार के श्रम-विभाजन के बिना सम्भव ही नहीं होता है। इस श्रम-विभाजन को तकनीकी श्रम-विभाजन या विशिष्टीकरण भी कहा जाता है। श्रम की उत्पादिता बढ़ानेवाले क्रान्तिकारी कदमों में श्रम-विभाजन का स्थान बहुत ऊँचा है।

श्रम-विभाजन के कारण अर्थव्यवस्था में आपसी निर्भरता बढ़ जाती है तथा किसी खास वस्तु के उत्पादन में भी ताल-मेल तथा सामंजस्य की आवश्यकता बढ़ जाती है।

documentary credit (डाकुमेण्टरी क्रेडिट): दस्तावेजी जमा।

विदेश-व्यापार के क्षेत्र में भुगतान करने का एक तरीका। निर्यातक के देश में आयातक वहाँ के किसी बैंक में निर्यातक के पक्ष में जमा-खाता खोल देता है। आयातक तब निर्यातक के पक्ष में दस्तावेजी बिल लिखता है।

dollar area (डॉलर एरिया): डालर-क्षेत्र।

ऐसे देशों का समूह, जिनके स्टर्लिंग-लेखे दूसरे विश्वयुद्ध के वाद डालर-अभाव के काल में डालर में पूरी तरह बदले जा सकते थे। इन देशों में प्रमुख थे अमरीका और उसके अधीन क्षेत्र, कनाडा, कोलम्बिया, बोलविया, मैक्सिको, क्यूबा आदि। स्टर्लिंग की बढ़ती परिवर्तनीयता के साथ डालर-क्षेत्र का अर्थ घटता रहा और अन्ततः इसका प्रयोग हट-सा गया।

dollar gap (डालर गैप) : डालर अन्तराल।

किसी देश का डालर-क्षेत्र को भुगतान और उससे प्राप्ति के बीच का अन्तर। दूसरे विश्वयुद्ध के फलस्वरूप पश्चिमी यूरोप के देशों की उत्पादन-क्षमता को गहरी ठेस लगी थी। इस युद्ध के समाप्त होने पर इन देशों के सामने मुख्य समस्या अर्थ-व्यवस्था के पुनर्निर्माण की थी। इसके लिए पूंजीगत परिसम्पत्तियों और कच्चे माल की आवश्यकता थी। साथ ही उपभोक्ताओं की युद्ध-काल से रोकी हुई आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिए उपभोग-सामग्री की भी जरूरत थी। स्वदेशी साधनों से ये चीजें उपलब्ध नहीं हो सकती थीं। इस प्रकार आयात का सहारा लिया जाना आवश्यक बन गया। उस समय अमरीका ही ऐसा देश था जहाँ से ये आवश्यक वस्तुएँ मिल सकती थीं। भारी मात्रा में अमरीका से माल मँगाने के कारण इन देशों का भुगतान-शेष प्रतिकूल हो गया। इस घाटे को पूरा करने के लिए अमरीकी सहायता अधिकाधिक मात्रा में ली जाने लगी। डालर का यह अन्तराल १९५०-६० ई० वाले दशक के मध्य तक बना रहा।

domestic system (डोमेस्टिक सि पारिवारिक प्रणाली, गृह- प्रणाली।

आधुनिक फैक्टरी-प्रणाली के के पहले की औद्योगिक उत्पादन-प्र जिसमें कारीगर अपने घरों पर, के सदस्यों की सहायता से, व्या द्वारा दिये गये कच्चे माल द्वारा करते थे। व्यापारी घूम-घूमकर माल कारीगरों को दे आते थे और पर तैयार माल उनके घरों से एक लेते थे। माल बनाने और बेचने में जो नुकसान होता था, उसे व्यापारी उठा कारीगर नहीं। कारीगरों को तो उनके के बदले एक निश्चित मजदूरी मिल करती थी। सत्रहवीं और अठारहवीं ब्दियों में यूरोप में इस प्रणाली का चलन था।

dormant partner (डॉरमेण्ट पार्ट निष्क्रिय साझेदार।

वह साझेदार, जो व्यवसाय के में सक्रिय रूप से भाग नहीं लेता व्यवसाय के प्रवन्ध के वारे में पूरी से अपने अन्य साझेदार या साझेदारों निर्भर रहता है। कानून की दृष्टि निष्क्रिय साझेदार के सब दायित्व अधिकार सक्रिय साझेदार के समान हैं। परन्तु वास्तव में वह पूंजी ल तथा उस पर लाभ प्राप्त करने के रिक्त अन्य सब कार्य, दायित्व तथा कार बाकी साझेदारों को सौंप देता सक्रिय साझेदार अपने कार्य के पृथक् रूप से पारिश्रमिक भी ले सकते सैद्धान्तिक स्तर पर निष्क्रिय साझेदार साहूकार के कुछ लक्षण देखे जा सकते

double counting (डबॅल काउण्टिंग): दोहरी गणना।

राष्ट्रीय आय की गणना में उत्पन्न होनेवाला एक सामान्य दोष। प्रायः देखा जाता है कि अन्तिम उत्पाद के तैयार होने से पहले उत्पादन के मध्यवर्ती चरणों में एक ही वस्तु बार-बार स्थानान्तरित होती है। इन मध्यवर्ती निर्माणाधीन वस्तुओं की कीमतें अन्तिम उत्पाद में शामिल रहती हैं। न केवल अन्तिम उत्पाद में, वरन् मध्यवर्ती वस्तुओं में भी अन्य मध्यवर्ती वस्तुओं की कीमतें समाविष्ट रह सकती हैं। इस प्रकार इन मध्यवर्ती वस्तुओं की कीमतों को राष्ट्रीय आय में गिनने से एक ही वस्तु कई बार गिन ली जायेगी। जैसे किसी मशीन की कीमत के साथ ही उसमें लगे लोहे, कल-पुर्जों आदि की कीमतों को भी राष्ट्रीय आय में शामिल करने से दोहरी गणना का दोष आ उपस्थित होगा। वस्तुतः राष्ट्रीय आय किसी अवधि-विशेष में उत्पादित समस्त वस्तुओं तथा सेवाओं की कीमत का योगफल नहीं है; वह तो केवल अन्तिम उत्पादों की कीमत का ही योगफल है।

double entry (डबॅल इण्ट्री): दोहरा लेखा।

हर आर्थिक सौदे के दो पक्ष होते हैं। अतः खाता-प्रणाली में भी हर सौदे को दो बार दो जगह दिखाया जाता है। इस प्रकार प्रत्येक लेन-देन को दो जगह दिखाया जाता है। एक जगह तो यह नामे की तरफ और दूसरी ओर जमा की तरफ दिखाया जाता है। इस तरह कुल जमा तथा कुल नामे का जोड़ हमेशा बराबर होगा।

double standard (डबॅल स्टैण्डर्ड): दोहरा मान।

वह मुद्रा या करेन्सी-प्रणाली, जिसमें दो धातुएँ एकसाथ मुद्रा-मान का कार्य करती हैं, जैसे सोने तथा चाँदी दोनों पर आधारित करेन्सी-प्रणाली। इसका उद्देश्य मुद्रा-मूल्य को विशेष रूप से स्थायित्व प्रदान करना होता है।

देखिए : bi-metallism

double-taxation (डबॅल टैक्सेशन): दोहरा कराधान।

विदेशों से निवेश आदि द्वारा प्राप्त आय पर दो बार कर चुकाना पड़ सकता है—एक तो उस देश में जहाँ निवेश किया गया है, और दूसरे उस देश में जहाँ के नागरिकों ने निवेश किया है।

इस प्रकार दोहरा कराधान विदेशों में किये जानेवाले निवेश को हतोत्साहित करता है। विदेशी निवेश को प्रोत्साहन देने के लिए कई देश दोहरे कराधान से बचने के लिए आपसी समझौता कर लेते हैं।

double taxation relief (डबॅल टैक्सेशन रिलीफ) : दोहरा कराधान सहायता।

दो या अधिक देशों के बीच पारस्परिक समझौता, जिसके अनुसार एक-दूसरे देश के प्रतिभूति-धारकों को उसी निवेश पर दोनों देशों में कर देने की बजाय एक ही देश में कर का भुगतान करना पड़ता है।

downward phase (डॉउनवर्ड फेज): अधोमुखी अवस्था।

व्यापार-चक्र का वह चरण, जिसमें राष्ट्रीय उत्पादन, रोजगार, निवेश, कीमतें

उपभोग-व्यय, लाभ आदि घटना शुरू कर देते हैं। इसे हम मन्दी की आरम्भिक अवस्था भी कह सकते हैं। कई अर्थ-शास्त्रियों ने अनेक व्यापार-चक्रों का अध्ययन कर इस स्थिति की अवधि के बारे में सामान्यीकरण का प्रयास किया है। परन्तु इन सामान्यीकरणों का व्यावहारिक महत्त्व कम हो गया है, क्योंकि व्यापारचक्र-प्रतिकारी आर्थिक नीति एवं आर्थिक स्थिति का पूर्वानुमान करने की क्षमता बढ़ जाने के कारण अब व्यापार-चक्रों का परिरूप ही बदल गया है।

dow theory (डो थिअॅरी) : डो-सिद्धान्त।

अमरीका में प्रचलित सिद्धान्त, जिसके अनुसार सट्टा बाज़ार की कीमतों की प्रवृत्ति का पूर्वानुमान कुछ खास चुनी हुई प्रतिभूतियों की कीमतों की दैनिक तथा माध्यमिक अवधि की प्रवृत्ति के आधार पर किया जा सकता है।

draw back (ड्रा बॅक) : वापसी।

आयात-शुल्क की वह वापसी, जो आयातित वस्तुओं के निर्यात करने पर दी जाती है। आयातित वस्तुओं पर आयात-शुल्क देना पड़ता है। परन्तु जो आयात वास्तव में घरेलू उपभोग के लिए नहीं मँगाये जाकर पुनर्निर्यात के लिए मँगाये जाते हैं, उन पर निर्यात करने के बाद कर-राशि लौटा दी जाती है। कई बार किसी भी एक बार चुकायी गयी कर-राशि की वापसी भी इसी नाम से जानी जाती है।

drawing rights (ड्राइंग राइट्स) : आहरण-अधिकार।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा-कोष के सदस्य राष्ट्रों का वह अधिकार, जिसके अन्तर्गत तात्कालिक भुगतान-शेष सम्बन्धी कठिनाइयों का सामना करने के लिए वे अपनी राष्ट्रीय मुद्रा के बदले विदेशी मुद्रा प्राप्त कर सकते हैं। प्रत्येक सदस्य देश के लिए एक अधिकतम सीमा निर्धारित कर दी गयी है, जिसके भीतर वह आहरण-अधिकार का प्रयोग कर विदेशी मुद्रा प्राप्त कर सकता है। परन्तु यदि भुगतान-शेष में लगातार स्थायी-सा घाटा रहने लगे तो फिर आहरण-अधिकार के प्रयोग से काम नहीं चल सकता। तब तो विदेशी विनिमय सम्बन्धी संकट का सामना करने के लिए अवमूल्यन, आयात-नियन्त्रण जैसे तरीके अपनाने पड़ते हैं।

dualism (ड्यूएलिज्म) : द्वैतवाद।

किसी अर्थव्यवस्था में दो प्रकार की आर्थिक प्रणालियों का दीर्घकालिक सहअस्तित्व। वैसे तो प्रत्येक अर्थव्यवस्था मिश्रित होती है, परन्तु यह विभिन्न आर्थिक प्रणालियों का मिश्रण अस्थायी तथा परिवर्तनीय होता है। जब दो परस्पर विरोधी तथा असंगत आर्थिक प्रणालियाँ दीर्घस्थायी रूप से एकसाथ विद्यमान रहती हैं, (कुछ क्षेत्रों में एक आर्थिक प्रणाली प्रधान होती है तथा अन्य क्षेत्रों में कोई दूसरी आर्थिक प्रणाली और फलस्वरूप आर्थिक संगठन का स्वरूप इन क्षेत्रों में भिन्न हो जाता है) तो यह कहा जायेगा कि यह द्वैतवादी अर्थव्यवस्था है।

मुख्यतः १९वीं शताब्दी से विश्व में आधुनिक विकास की प्रक्रिया शुरू हुई। यह प्रक्रिया पूँजीवाद के उदय के साथ

साथ चली। कुछ यूरोपीय देश इस विकास-प्रक्रिया में आगे थे। उनके विकास के फलस्वरूप विशेष प्रकार के अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सम्बन्धों का जन्म हुआ। इन सम्बन्धों से प्रभावित होकर एशिया, अफ्रीका तथा दक्षिण अमरीका के देशों में भी आर्थिक परिवर्तन की लहर दौड़ी। परन्तु औपनिवेशिक आर्थिक नीति के कारण इन देशों में यह आर्थिक परिवर्तन अपूर्ण तथा कुछ क्षेत्रों तक ही सीमित रहा। आधुनिक पूंजीवादी प्रणाली, तत्सम्बन्धी आर्थिक संगठन तथा उत्पादन-प्रणालियाँ कुछ क्षेत्रों में प्रचलित हुई। परन्तु यह परिवर्तन सर्वव्यापी नहीं हो पाया और अनेक परम्परागत आर्थिक क्रियाएँ पुरानी आर्थिक प्रणाली के अन्तर्गत ही चलती रहीं। इस प्रकार उत्पन्न द्वैतवाद प्रायः अवरुद्ध विकास के साथ-साथ पाया जाता है। द्वैतवाद को एक तरह से अल्पविकसित देशों में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के फलीभूत तथा व्यापक होने की असफलता के रूप में समझा जा सकता है।

द्वैतवाद के सामाजिक तथा तकनीकी रूपों में भेद किया जा सकता है। जहाँ अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में लोगों की सामाजिक मान्यताएँ, मूल्य, सामाजिक-मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण, आर्थिक प्रेरणाओं के प्रति प्रत्युत्तरदायिता, काम, बचत, निवेश तथा परिवर्तन-सम्बन्धी दृष्टिकोण आदि भिन्न होते हैं, वहाँ सामाजिक द्वैतवाद विद्यमान होता है। जहाँ कुछ क्षेत्रों में आधुनिक, विज्ञानाधारित उत्पादन-तकनीकें काम में लायी जाती हैं और कुछ क्षेत्रों में परम्परागत, पुरानी तथा पिछड़ी उत्पादन-तकनीकें प्रयुक्त होती रहती हैं, वहाँ तकनीकी द्वैतवाद प्रचलित माना जाता है।

द्वैतवाद का मूलभूत आधार वे कारण होते हैं, जिनके फलस्वरूप आर्थिक परिवर्तन कुछ आर्थिक क्रियाओं तक ही सीमित रह जाता है। इस प्रकार आर्थिक क्रियाओं की आपसी निर्भरता के बावजूद, वे एक-दूसरे को प्रभावित और परिवर्तित करने में समर्थ नहीं होती हैं। कुछ आर्थिक क्रियाओं में इतनी जड़ता तथा रूढ़िवादिता जड़ जमा लेती है कि उनकी कार्य-पद्धति में परिवर्तन लाना बहुत दुष्कर हो जाता है। अधिकांश अल्पविकसित देशों में द्वैतवादी अर्थव्यवस्था ही पायी जाती है।

dumping (डम्पिंग) : पाटना।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर एक तरह का एकाधिकारी कीमत-विभेद। इसका आशय विदेशों को देश के बाज़ार की कीमत से या उत्पादन की लागत से कम कीमत पर माल बेचने से है, ताकि विदेशी मण्डी को काबू में करके वहाँ एकाधिकारी स्थिति स्थापित की जा सके। यह एक प्रकार की कीमत-प्रतियोगिता या कीमत कम करने की होड़ है जो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र में लागू की जाती है। इस तरह की कीमत घटाने की नीति स्थायी या अस्थायी दोनों रूपों में लागू की जाती है। अस्थायी रूप में यह नीति देशी या विदेशी प्रतियोगियों से बाज़ार छीनने के लिए आक्रामक नीति के रूप में अपनायी जाती है। आकस्मिक रूप से बढ़े उत्पादन को बेचने के लिए भी यह

तरीका अपनाया जा सकता है। अस्थायी तौर पर अपनायी गयी ऐसी नीति से आयातक देश को हानि होती है। कुछ, समय के लिए कम कीमत पर वस्तुएँ प्राप्त करने के बदले उस देश के अपने उद्योग या तो विकसित नहीं हो पाते हैं या वे हानि उठाकर अधोमुखी हो जाते हैं। इस तरह की नीति से बचने के लिए संरक्षण का सहारा लेना न्यायसंगत समझा जाता है।

दीर्घकालिक रूप में एकाधिकारी उत्पादक यह कीमत-विभेद-नीति मुनाफा अधिकतम करने के लिए अपना सकते हैं। अगर माँग की कीमत-लोच विदेशी बाज़ार में देशी बाज़ार से अधिक है, तो विदेशी बाज़ार में अपेक्षाकृत नीची कीमत रखना मुनाफा बढ़ायेगा। इससे आयातक देश को भी लाभ होगा, क्योंकि वहाँ के उपभोक्ताओं को कम कीमत देनी पड़ेगी। ऐसी स्थिति में संरक्षण की नीति आर्थिकेतर आधारों पर ही समर्थन पा सकती है।

देखिए : infant industry argument protection

duopoly (ड्यूओपॉली) : द्वयाधिकार।

बाज़ार की वह स्थिति, जहाँ किसी वस्तु या सेवा के दो ही उत्पादक या विक्रेता होते हैं। यह एक प्रकार की अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति है। कहा जा सकता है कि बहु-अधिकारी बाज़ार-स्थिति का यह एक विशेष या सरल रूप है।

द्वयाधिकार के सिद्धान्त का प्रचलन एण्टोनियो ऑगस्टिन कूर्नो नामक फ्रान्सीसी अर्थशास्त्री से जोड़ा जाता है। द्वयाधिकार के अन्तर्गत लागू कीमत तथा उत्पादन-स्तर के निर्धारण के सिद्धान्त बहु-अधिकार की स्थिति पर भी लागू किये जा सकते हैं।

जब दो ही उत्पादक फर्में हों, तब एक फर्म द्वारा निर्धारित कीमत तथा उत्पादन की मात्रा दूसरी फर्म को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करेंगी। इस प्रभाव की जो प्रतिक्रिया दूसरी फर्म द्वारा होगी, वह पहली फर्म को प्रभावित करेगी। इस प्रकार किसी एक फर्म के निर्णयों द्वारा क्रिया-प्रतिक्रिया की एक शृंखला शुरू हो जायेगी। निष्कर्ष यह है कि द्वयाधिकार में प्रतियोगी फर्म के कार्यों और निर्णयों की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। ऐसी स्थिति में कोई भी एक निश्चित सिद्धान्त द्वयाधिकारी कीमत या उत्पादन-मात्रा के बारे में नहीं बनाया जा सकता। एक ओर तो यह सम्भव है कि द्वयाधिकारी एक एकाधिकारी की-सी नीति अपना लें तथा बाज़ार को आपस में दो हिस्सों में बाँटकर अपने-अपने हिस्से में एकाधिकारी की तरह व्यवहार करें। दूसरी ओर यह सम्भावना भी है कि दोनों में कसकर प्रतियोगिता हो और फलस्वरूप दोनों प्रतियोगी कीमत पर अपना माल बेचें और केवल सामान्य मुनाफा प्राप्त कर पायें। इन दोनों सम्भावनाओं के मध्य अनेक अनिर्णीत स्थितियाँ हो सकती हैं जिन्हें द्वयाधिकारी वास्तव में अपनायें। अगर दोनों विक्रेताओं की हालत लागत, नैसर्गिक सुलाभ तथा उत्पाद की प्रकृति के सम्बन्ध में एक समान नहीं है, तो वह फर्म, जिसकी स्थिति बेहतर है, अपनी

स्थिति का लाभ उठायेगी।

देखिए : oligopoly

duopsony (ड्यूअप्सॅनी) : द्वयक्रेताधिकारी।

वह बाजार, जहाँ किसी वस्तु या सेवा के दो ही क्रेता होते हैं। ऐसा प्रायः बहुत ही कम वस्तुओं के सम्बन्ध में सम्भव है। विशिष्ट प्रकार के कौशल वाले श्रम, अणुशक्ति तथा प्रतिरक्षा-व्यवस्था से सम्बन्धित वस्तुओं के सम्बन्ध में ऐसी बाजार-स्थिति पायी जा सकती है।

durable goods (ड्यूरेबॅल गुड्स) : दीर्घप्रयोगसाध्य वस्तुएँ, टिकाऊ वस्तुएँ।

वे वस्तुएँ, जिनकी सेवाए बार-बार एक लम्बे अर्से तक उपलब्ध होती रहती हैं, दीर्घप्रयोगसाध्य वस्तुएँ कहलाती हैं। इनको एक वार खरीद लेने पर काफी अवधि तक ये आवश्यकताएँ पूरी करती रहती हैं। ऐसी वस्तुएँ उपभोक्ता वस्तुएँ भी हो सकती हैं; जैसे मकान, मोटर, रेडियो, फर्नीचर आदि और उत्पादक वस्तुएँ भी; जैसे कारखाने की इमारत, मशीन, औजार आदि।

दीर्घकालिक प्रयोगसाध्य वस्तुओं का महत्त्व आर्थिक विकास के साथ-साथ बढ़ता रहता है। जैसे-जैसे उपभोक्ताओं की आय बढ़ती है, उनके बजट में दीर्घकालिक प्रयोगसाध्य वस्तुओं का महत्त्व बढ़ता जाता है। विकसित देशों में यह प्रवृत्ति स्पष्ट नजर आ रही है।

इन वस्तुओं का उत्पादन व्यापार-चक्र के उतार-चढ़ाव से विशेष तीव्रता से प्रभावित होता है। जब उपभोक्ता-माँग बढ़ती है, तब अपेक्षाकृत अधिक तेजी से दीर्घस्थायी उत्पादक वस्तुओं की माँग बढ़ती है। जैसे ही उपभोक्ता-माँग की वृद्धि कम होती है, दीर्घस्थायी उत्पादक वस्तुओं की माँग कम हो जाती है। इस प्रवृत्ति का कारण त्वरण सिद्धान्त का लागू होना है।

देखिए : acceleration

dynamic economics (डाइनैमिक इकॉनॉमिक्स) : गत्यात्मक अर्थशास्त्र।

आर्थिक विश्लेषण की वह शाखा, जिसमें आर्थिक क्रियाओं, प्रक्रियाओं तथा आर्थिक चरों में होते रहनेवाले परिवर्तनों का तथा इन परिवर्तनों के आपसी सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है। आर्थिकजीवन गतिमय और परिवर्तनशील होता है। समय के प्रवाह के साथ विभिन्न आर्थिक चर तथा उनका आपसी सम्बन्ध बदलता रहता है। इन परिवर्तनों का अध्ययन सामाजिक विज्ञानों में भी काफी कठिन होता है, क्योंकि ये अनेक चर एक-दूसरे से प्रभावित होकर साथ-साथ बदलते रहते हैं। इसलिए स्थैतिक अर्थशास्त्र एक परिवर्तनहीन समयातीत काल्पनिक अर्थव्यवस्था तथा उसके नियमों का अध्ययन करता है। परन्तु विना इन परिवर्तनों की प्रकृति समझे, विना उनकी व्याख्या किये तथा विना उनके वारे में सामान्यीकरण करके नियम बनाये अर्थशास्त्र अपनी विषय-वस्तु के साथ सम्यक् न्याय नहीं कर पाता है। अतः अर्थशास्त्र के अध्ययन की यह शाखा विभिन्न आर्थिक तत्त्वों, चरों और कारकों का समय-प्रवाह के विभिन्न पड़ावों और उनके परिवर्तन-क्रम का अध्ययन करती है।

राष्ट्रीय आय कैसे घट या बढ़ रही है; उपभोग, निवेश, आयात-निर्यात, राजकीय व्यय तथा आगम, सार्वजनिक ऋण, कर, भुगतान-शेष आदि किस प्रकार

तथा किस गति से बदल रहे हैं; कीमतें, मुनाफे की दर, ब्याज, बैंक-दर आदि में हो रहे परिवर्तन, फर्मों का विकास, नये निगमों का प्रारम्भ, उनका आपसी विलयन, राष्ट्रीय आय के वितरण के बदलते अनुपात, रोज़गार की स्थिति आदि इस अर्थशास्त्र की विषय-वस्तु के प्रमुख तत्त्व हैं।

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों, जैसे स्मिथ, रिकार्डो, मिल, माल्थस आदि, ने इन गत्यात्मक प्रश्नों को ही अपने सिद्धान्तों का केन्द्र-विन्दु बनाया था। परन्तु बाद में काफी अर्से तक इस शाखा का महत्त्व अपेक्षाकृत कम हो गया था। पिछले ३०-३५ वर्षों से इसका महत्त्व फिर से समझा जाने लगा है।

dynamic functions of money (डाइनैमिक फन्क्शन्स ऑफ मॅनी) : मुद्रा के गत्यात्मक कार्य।

मुद्रा की मात्रा तथा प्राप्ति को घटा-बढ़ा कर अर्थव्यवस्था के महत्त्वपूर्ण कारकों, जैसे रोज़गार, राष्ट्रीय आय, उपभोग, निवेश, सामान्य कीमत-स्तर, भुगतान-शेष आदि, को प्रभावित किया जा सकता है। इन कार्यों के लिए मुद्रा के प्रयोग को मुद्रा के गत्यात्मक कार्य कहते हैं, जबकि विनिमय-माध्यम के रूप में मुद्रा का प्रयोग उसका स्थैतिक कार्य कहलाता है। इन कार्यों को गत्यात्मक कार्य इसलिए कहा जाता है कि इनमें मुद्रा के द्वारा महत्त्वपूर्ण परिवर्तन लाये जाते हैं। विनिमय-माध्यम, मूल्य-मान आदि कार्य निष्क्रिय हैं; क्योंकि वास्तविक लेन-देन तो वस्तुओं, सेवाओं और संसाधनों का होता है। मुद्रा तो इन कार्यों को सरल बनाने का केवल एक साधन है। मुद्रा विनिमय को प्रभावित नहीं करती और न ही यह उसका निर्धारण करती; यह तो केवल विनिमय का माध्यम है। इसके विपरीत मुद्रा की प्राप्ति या मात्रा घटा-बढ़ाकर मुद्रा-नीति अर्थव्यवस्था के विभिन्न पहलुओं को प्रभावित कर सकती है। अतः यह मुद्रा का सक्रिय कार्य है।

earmarking of taxes (इयरमार्किंग ऑफ़ टैक्सेज) : कर-विनियुक्ति।

कुछ कर किसी खास राजकीय उद्देश्य को पूरा करने के लिए लगाये जाते हैं। साधारणतः करों से प्राप्त आगम सब प्रकार के सार्वजनिक व्यय को पूरा करने के लिए प्रयुक्त किया जाता है। करों की परिभाषागत विशेषता होती है कि उनका भुगतान किसी खास वस्तु या सेवा के बदले में नहीं किया जाता है। परन्तु सार्वजनिक वित्त में यह भी एक सुस्थापित परम्परा है कि राज्य, कुछ खास परिस्थितियों में किसी खास खर्च को पूरा करने के लिए करारोपण करता है। उदाहरण के लिए शिक्षा की व्यवस्था तथा प्रसार के लिए एक अधिशुल्क (प्रतिशत या निश्चित राशि के रूप में) लगा दिया जाता है। १९७१ में भारत सरकार ने बांगला देश से आये विस्थापितों की व्यवस्था के लिए कई कर लगाये। ये कर एक खास उद्देश्य के लिए लगाये गये थे। करों से प्राप्त आगम के उपयोग की यह निर्दिष्टता सामान्य बात नहीं है और विशेष परिस्थितियों में ही लागू की जाती है। कई बार ऐसा होता है कि करों का बोझ इतना अधिक होता है कि राजनीतिक दृष्टि से नये कर लगाना कठिन हो जाता है। ऐसी स्थिति में यदि कोई ऐसा नया राजकीय व्यय हो जिसका जनता विरोध नहीं कर पाये

इस निर्दिष्ट व्यय को पूरा करने के लिए एक खास कर लगाया जा सकता है। वैसे किसी विद्यमान कर से प्राप्त आगम के प्रयोग का भी पूर्वनिर्धारण किया जा सकता है।

देखिए : taxation.

earned income (अर्न्ड इन्कॅम) : अर्जित आय।

वह आय, जो श्रम या श्रम द्वारा सेवाएँ करने के बदले प्राप्त होती है, अर्जित या उपार्जित आय कहलाती है। यह अवधारणा सम्पत्ति, पूँजी आदि द्वारा प्राप्त आय (जो अनर्जित या अनुपार्जित कहलाती है) से भिन्न है। मोटे तौर से आय को दो कोटियों में बाँटा जा सकता है : १. श्रम-आय या अर्जित आय तथा २. सम्पत्ति-आय या अनुपार्जित आय। इस शब्दावली में यह विचार अन्तर्निहित प्रतीत होता है कि श्रम वास्तविक अर्थ में उत्पादक संसाधन है। अतः श्रम द्वारा प्राप्त आय अर्जित मानी जाती है। सम्पत्ति श्रम द्वारा प्राप्त आय से भी खरीदी जा सकती है। फिर भी सम्पत्ति द्वारा प्राप्त आय अनुपार्जित ही कहलायेगी। सम्पत्ति द्वारा अन्य लोगों का श्रम खरीदने की क्षमता प्राप्त होती है। फलतः सम्पत्ति-वर्ग द्वारा गैर-सम्पत्ति-वर्ग का शोषण होता है और उनका सामाजिक स्तर घट जाता है। इन कारणों से इस शब्दावली के पीछे सम्पत्ति की आय को श्रम की आय से नैतिक दृष्टि से निम्न मानने का दृष्टिकोण विद्यमान प्रतीत होता है। आय-कर की दर अर्जित आय पर प्रायः कम तथा अनर्जित आय पर ऊँची होती है।

देखिए : unearned income.

earnest money (अर्नेस्ट मॅनी) : बयाना मुद्रा।

वह राशि, जो किसी मौखिक या लिखित सौदे, अनुबन्ध या समझौते को अनिवार्य रूप से लागू करवाने के लिए दी जाती है। जैसे यदि एक फर्म की माँग पर कोई उत्पादक किसी वस्तु का उत्पादन शुरू करे या बढ़ाये, तो प्रायः पूर्तिकर्त्ता माँग करनेवाले से कुछ राशि अग्रिम रूप से ले लेगा। यह इस बात की गारण्टी रहेगी कि माँग करनेवाली फर्म अपने अनुबन्ध से मुकरेगी नहीं। मुकरने पर उसे इस राशि से हाथ धोना पड़ेगा।

earning asset (अर्निंग असेट्) : अर्जक परिसम्पत्ति।

वह परिसम्पत्ति, जिससे उसके धारक को आय की प्राप्ति हो, जैसे : किराये पर चढ़ा मकान, स्थायी खाते में जमा राशि, शेयर ऋण-पत्र, सरकारी प्रतिभूतियाँ, किसी व्यवसाय में प्रयुक्त पूँजीगत सामान आदि। इन परिसम्पत्तियों में तरलता का गुण तो मुद्रा-जैसी अनुपार्जक परिसम्पत्ति की तुलना में कम होता है, परन्तु इसके स्थान पर इनमें आय प्राप्त करने की विशेषता होती है। वाणिज्य बैंक-जैसी संस्था को अपनी समस्त परिसम्पत्तियों को अर्जक तथा अनर्जक परिसम्पत्तियों में इस तरह बाँटना पड़ता है कि आवश्यक तरलता बनाये रखते हुए आय को अधिकतम किया जा सके।

earnings (अर्निंग्स्) : अर्जन, कमाई।

आमदनी या आय का ही दूसरा नाम, लेकिन साधारणतः अर्जित आय के अर्थ में। कई बार मजदूरों की मजदूरी-दर तथा उनके अर्जन में अन्तर किया जाता है।

अर्जन में अतिरिक्त या समयोपरान्त काम से प्राप्त आमदनी भी शामिल की जाती है।

अर्जन का प्रयोग किसी व्यवसाय के सन्दर्भ में हो, तो तात्पर्य उस व्यवसाय की सारी आय (वितरित तथा अवितरित, दोनों) से होता है।

देखिए : earned income
retained earnings.

easy money (इज़ी मॅनी) : सुगम मुद्रा।

सस्ती मुद्रा-नीति का ही दूसरा नाम।

देखिए : cheap money.

econometrics (इकॉनॉमेट्रिक्स) : अर्थमिति।

आर्थिक समस्याओं के विश्लेषण में गणितशास्त्र तथा सांख्यिकी की तकनीकों का प्रयोग। इस प्रकार अर्थमिति कोई स्वतन्त्र विषय नहीं है, बल्कि आर्थिक प्रश्नों के अध्ययन का ही एक विशेष तरीका है। उत्पादन, जनसंख्या, श्रम, कीमतें, मुद्रा, जीवन-स्तर, उपभोग आदि कई आर्थिक प्रश्नों का परिमाणात्मक विवेचन करके उनके बारे में नियम, धारणाएँ, सामान्यीकरण और पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित किये जा सकते हैं या अन्य विधियों से प्राप्त नियमों को परिमाणात्मक निश्चितता दी जा सकती है। अर्थमिति के अन्तर्गत आर्थिक सिद्धान्तों को इस रूप में प्रस्तुत किया जाता है कि उपलब्ध तथ्यों, आँकड़ों तथा सांख्यकी के सिद्धान्तों के आधार पर उनकी अनुभवाश्रित जाँच की जा सकती है। आर्थिक नीति के निर्धारण तथा उसके प्रभावों की जाँच में अर्थमिति बहुत सहायक होती है।

economic (इकॉनॉमिक) : आर्थिक।

अर्थशास्त्र या आर्थिक जीवन से सम्बन्धित अथवा उसके अन्तर्गत आने प्रश्न, समस्याएँ, तथ्य, सिद्धान्त, नी आदि।

देखिए : economics.

economic conflict (इकॉनॉ कन्फ्लिक्ट) : आर्थिक संघर्ष।

आर्थिक जीवन समाज का महत्त्वपूर्ण अंग है। इसमें समाज विभिन्न सदस्य एकसाथ मिल कर सह द्वारा अपने कार्य करते हैं। साधनों सीमित मात्रा, उद्देश्यों की विभिन्न सामाजिक-आर्थिक संगठन में भिन्न-भि स्थिति आदि कारणों से समाज के विभि वर्गों तथा व्यक्तियों के स्वार्थों में टक होता है। इस प्रकार के आर्थिक सं आर्थिक जीवन की केन्द्रीय घटना है। संघर्षों द्वारा न केवल आर्थिक व्यवस्था नियमों, प्रक्रियाओं और फलिताथों निर्धारण होता है, अपितु इन्हीं के आर्थिक विकास के क्रम, दिशा तथा का निर्धारण होता है। वस्तुतः आर्थि संघर्ष-विहीन अर्थव्यवस्था की कल्पना नहीं की जा सकती है।

economic controls (इकॉनॉ कॅण्ट्रोल्स) : आर्थिक नियन्त्रण।

नियन्त्रणों का, जिनके द्वारा आर्थि क्रिया-कलापों तथा प्रक्रियाओं का नि किया जाता है, पूरा नाम।

देखिए : controls

economic determinism (इकॉनॉ डिटरमिनिज्म) : आर्थिक निर्धारण

मार्क्सवादी अर्थशास्त्र का सैद्धान्तिक आधार जिसके अनुसार उत्पा प्रक्रिया, उत्पादन-शक्तियाँ तथा उत्पा सम्बन्ध एवं अन्य सामाजिक आर्थि

सम्बन्ध, संक्षेप में उत्पादन-प्रणाली, आर्थिक जीवन तथा सामाजिक जीवन के अन्य विविध पहलुओं को बहुत गहरे रूप से प्रभावित करते हैं। ये पहलू एक प्रकार से सामाजिक जीवन तथा इतिहास के भौतिक आधार हैं। इनकी आपसी क्रिया-प्रतिक्रिया द्वारा ही सामाजिक इतिहास का निर्माण होता है। इन आर्थिक तत्त्वों को जानकर इतिहास की धारा को जाना जा सकता है। इसी अर्थ में इसे ऐतिहासिक निर्धारणवाद भी कहा जाता है।

देखिए : economic interpretation of history.

economic development (इकॉनॉमिक डिवलपमेण्ट) : आर्थिक विकास।

आर्थिक परिवर्तन की वह प्रक्रिया जो गुणात्मक तथा मात्रात्मक दोनों होती है। इस प्रक्रिया से तात्पर्य न केवल कुल एवं प्रति-व्यक्ति उत्पादन-वृद्धि से है, बल्कि इनके साथ हो रहे आर्थिक ढाँचे तथा आर्थिक संस्थाओं के परिवर्तन एवं समाज के आर्थिक सम्बन्धों के विकास से भी है। आर्थिक विकास के साथ एक मूल्यगत मान्यता जुड़ी रहती है कि यह एक श्रेयस्कर, वांछनीय प्रक्रिया है। इसे समाज के विकास की प्रक्रिया का एक अग्रिम सोपान माना जाता है।

चिरप्रतिष्ठित या संस्थापित अर्थशास्त्र का सबसे मुख्य प्रयोजन आर्थिक विकास की प्रक्रिया को समझाना, उसके निर्धारक तत्त्वों को स्पष्ट करना और इसकी व्याख्या करना था। संस्थापित अर्थशास्त्र का विकास आधुनिक पूंजीवादी विकास के आरम्भिक काल में हुआ। अतः तात्कालिक सामयिक परिस्थितियों का प्रभाव इस तरह उद्भूत आर्थिक विकास के सिद्धान्तों पर स्पष्ट परिलक्षित होता है।

जब इन देशों ने आर्थिक विकास का काफी ऊँचा स्तर प्राप्त कर लिया तब आर्थिक सिद्धान्तों में भी विकास की समस्याओं का अध्ययन कम हो गया। परन्तु द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद 'तीसरे विश्व' की आर्थिक विकास की समस्याएँ अर्थशास्त्रियों के चिन्तन का फिर से मुख्य विषय बन गयीं। आर्थिक विकास के सिद्धान्तों का आज के विश्व में गहनतम व्यावहारिक महत्त्व है।

आर्थिक विकास की प्रक्रिया अब स्वतःस्फूर्त न रहकर योजनाबद्ध सामूहिक प्रयासों पर निर्भर नज़र आती है। सोवियत रूस तथा अन्य समाजवादी देशों में योजनाबद्ध सामूहिक विकासात्मक प्रयासों ने काफी सफलता प्राप्त की है। आर्थिक विकास के शुरू के चरणों में बड़े पैमाने पर आर्थिक त्याग, कठिन परिश्रम तथा सामूहिक प्रयासों की ज़रूरत होती है। बचत, निवेश, तकनीकी परिवर्तन, कौशल तथा अधिक उत्पादन आर्थिक विकास के लिए अपरिहार्य हैं। इन आर्थिक कार्यों के अनुकूल सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा अन्य आर्थिकेतर संस्थाओं, प्रेरणाओं और व्यवस्थाओं का महत्त्व विकास के लिए स्पष्ट ही है। विकसित तथा विकासशील देशों के बीच की खाई को पाटने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय विकासोन्मुख प्रयासों को बढ़ाना बहुत आवश्यक है।

economic dynamics (इकॉनॉमिक डाइनैमिक्स) : आर्थिक गतिविज्ञान।

अर्थशास्त्र की वह शाखा, जिसमें समय-प्रवाह के साथ हो रहे आर्थिक

परिवर्तनों का अध्ययन किया जाता है। इसमें स्थैतिक अर्थशास्त्र की तरह के 'सन्तुलन' पर ध्यान केन्द्रित नहीं किया जाता। इस अध्ययन का केन्द्रविन्दु होता है वास्तविक ऐतिहासिक समय-क्रम में अर्थव्यवस्थाओं तथा आर्थिक प्रणालियों का विकास तथा परिवर्तन। आर्थिक संवृद्धि, आर्थिक विकास, व्यापार-चक्र, आर्थिक प्रणालियाँ आदि इस विषय के मुख्य सवाल हैं।

देखिए : dynamic economics.

economic efficiency (इकॉनॉमिक एफिसियेन्सी) : आर्थिक कुशलता।

आर्थिक प्रक्रियाओं तथा आर्थिक प्रणालियों के 'उत्तम' या श्रेष्ठ संचालन की स्थिति। इसे १. उत्पादन-कुशलता तथा २. आवण्टन-कुशलता की दो कोटियों में बाँटकर देखा जाता है। परन्तु यह विभाजन स्थैतिक अर्थशास्त्र के अन्तर्गत ही उचित है। गत्यात्मक अर्थशास्त्र में संवृद्धि तथा विकास की कुशलता का भी निर्धारण करना पड़ता है। आर्थिक संगठन की कुशलता का अध्ययन भी आवश्यक है।

देखिए : efficiency.

economic freedom (इकॉनॉमिक फ्रीडम) : आर्थिक स्वाधीनता।

यह अवधारणा बहुत ही व्यक्तिपरक तथा आत्मनिष्ठ वन गयी है। आर्थिक साहित्य में आर्थिक स्वाधीनता के अनेक अर्थ खोजे जा सकते हैं। अर्थव्यवस्था एक सामाजिक अवधारणा है, अतः आर्थिक स्वाधीनता का अभिप्राय आर्थिक मामलों में इच्छानुसार काम करने तथा निर्णय लेने की आजादी नहीं हो सकता। यह
अर्थ तो आर्थिक अराजकता का हो...

आर्थिक स्वतन्त्रता से आशय...
की स्वतन्त्रता से है। लोगों को...
प्रश्नों पर चयन की कितनी आजा...
अर्थात् वे चयन अपने निजी उद्देश्यों...
कारणों से कर पाते हैं या नहीं, और...
सीमा तक वे यह कर पाते हैं। सा...
यह भी देखना पड़ता है कि च...
क्षेत्र कितना व्यापक, सार्थक तथा...
है। अर्थात् किस तरह के तथा...
विकल्प उपलब्ध हैं और किन अंशों...
इन विकल्पों की संख्या तथा...
सारतत्त्व कुछ लोगों के हितों में है,...
लोगों के हितानुकूल हैं और विभिन्न...
के हितों के अनुकूल या प्रतिकू...
चयन का व्यापक क्षेत्र तथा अनेक वि...
उपलब्ध होते हुए भी चयन के अ...
उपलब्ध न होने पर यह स्वतन्त्रता...
तथा वास्तविक न होकर अमूर्त...
सैद्धान्तिक होगी। फिर विभिन्न व...
इकाइयों की स्वतन्त्रता के क्षेत्र में...
भी हो सकता है। एक व्यक्ति की...
आजादी अन्य अनेक लोगों से च...
क्षेत्र, विकल्पों की संख्या तथा सा...
और चयन कर पाने के अवसरों को...
कर सकती है। ऐसी स्थिति में, सामा...
दृष्टिकोण से, आर्थिक स्वतन्त्रता...
सीमित ही माना जायेगा।

आर्थिक स्वतन्त्रता को कई...
उपभोग की स्वतन्त्रता, व्यवसाय...
स्वतन्त्रता, वचत तथा निवेश की स्व...
आदि हिस्सों में बाँटकर देखते हैं।...
समझाने में तो यह विभाजन शायद...
काम का हो, परन्तु नीति-निर्धारण...
विश्लेषण के स्तर पर यह विशेष उ...

नहीं है। कारण, ये सब स्वतन्त्रताएँ इतने गहरे रूप में परस्पर जुड़ी हैं कि इनका विभाजन कृत्रिम और सारहीन ही ठहरेगा। जैसा कि कहा जाता है, स्वतन्त्रता अविभाज्य हैं।

economic friction (इकॉनॉमिक फ्रिक्शन) : आर्थिक घर्षण।

कई कारणों से, जो प्रायः आर्थिकेतर होते हैं, आर्थिक प्रक्रियाएँ 'शुद्ध' आर्थिक कारणों द्वारा अपना निर्धारित स्वरूप ग्रहण नहीं कर पाती हैं। या इस तरह कहिए कि कई बार गैर-आर्थिक प्रभाव इतने प्रभावशाली होते हैं कि वे आर्थिक चरों द्वारा उत्पन्न प्रभाव को ढक लेते हैं। फलस्वरूप आर्थिक क्रियाएँ अपना 'सामान्य' रूप नहीं ले पाती हैं। जैसे एक उद्योग का स्थान दूसरे उद्योग द्वारा लिये जाने पर बढ़ते उद्योग में श्रम का अभाव तथा घटते उद्योग में बेरोजगारी आर्थिक घर्षण का नतीजा है, क्योंकि श्रम की गतिशीलता अपर्याप्त है। माँग, पूर्ति, कीमतों आदि की जानकारी के अभाव में उत्पन्न आर्थिक असन्तुलन आर्थिक घर्षण के उदाहरण हैं।

economic goods (इकॉनॉमिक गुड्स) : आर्थिक वस्तुएँ।

वे वस्तुएँ जो सीमित हों, आवश्यकताओं की पूर्ति करें और विनिमय द्वारा अर्थात् सामाजिक प्रयासों द्वारा उपभोक्ताओं को प्राप्त हों, 'आर्थिक वस्तुएँ' कहलाती हैं। अनेक वस्तुएँ लोग अपने उपभोग के लिए स्वयं उत्पादित करते हैं। वे आवश्यकताओं की सन्तुष्टि करती हैं और सीमित भी होती हैं, परन्तु विनिमय-व्यवस्था का भाग न बनने के कारण उनका सामाजिक रूप उभर नहीं पाता। अतः उन्हें आर्थिक वस्तुओं में शामिल नहीं करेंगे। स्पष्टतः एक कृषक पारिवारिक अर्थव्यवस्था में यह परिभाषा लागू नहीं होगी, क्योंकि इस अर्थव्यवस्था की तो यह प्रकृति ही है कि वहाँ परिवार अपने निजी उपभोग के लिए वस्तुओं का उत्पादन करते हैं। अतः हम यह कह सकते हैं कि आर्थिक वस्तुओं की उपर्युक्त अवधारणा विनिमय की बाजार-मूलक आर्थिक प्रणाली में ही लागू होती है। पारिवारिक अर्थव्यवस्था में लागू करने के लिए इस परिभाषा का यह अंग हटाना पड़ेगा।

economic growth (इकॉनॉमिक ग्रोथ) : आर्थिक संवृद्धि।

प्रायः आर्थिक विकास के समानार्थक समझी जानेवाली अवधारणा। वस्तुतः यह आर्थिक विकास से पृथक्, एक अपेक्षाकृत सीमित अवधारणा है। समस्त राष्ट्रीय आय या उत्पादन, प्रति-व्यक्ति आय, समस्त औद्योगिक उत्पादन, रोजगार, प्रति-व्यक्ति उपभोग आदि किसी एक या कई सूचकों की मात्रात्मक वृद्धि की प्रक्रिया को आर्थिक संवृद्धि कहते हैं। इसमें आर्थिक विकास की तरह गुणात्मक तत्त्व, संस्थागत तथा संरचनात्मक परिवर्तन समाविष्ट नहीं होते। किसी देश में किसी अवधि-विशेष में आर्थिक संवृद्धि हो रही हो तो यह ज़रूरी नहीं है कि साथ-साथ आर्थिक विकास भी हो रहा हो। परन्तु दीर्घकालिक आर्थिक संवृद्धि आर्थिक विकास के विना नहीं हो सकती।

आर्थिक विकास की धारणा कुछ अंशों तक व्यक्तिपरक तथा आत्मनिष्ठ है, परन्तु आर्थिक संवृद्धि एक वस्तुपरक अव-

धारणा है। आर्थिक संवृद्धि के आँकड़ों की तुलना करके विभिन्न देशों की आर्थिक स्थिति की तुलना की जाती है। आर्थिक संवृद्धि की अवधारणा में उत्पादन का एक विशिष्ट अर्थ और उसकी महत्ता की एक विशेष परिस्थिति का सन्दर्भ जुड़ा रहता है। यह मुख्यतः पूंजीवादी अर्थ-प्रणाली से जुड़ा रहता है। जहाँ आदमी वस्तुओं की दासता से मुक्त हो जाता है और एक बदले हुए नये जनमानस का जन्म हो जाता है, वहाँ आर्थिक संवृद्धि की महत्ता भी घट जाती है।

economic history (इकॉनॉमिक हिस्ट्री) : आर्थिक इतिहास।

किसी भी देश, प्रदेश या भू-भाग के आर्थिक विकास, आर्थिक क्रिया-कलापों के उतार-चढ़ाव तथा आर्थिक दशाओं के अतीत की विभिन्न अवधियों का लेखा-जोखा तथा उनका आर्थिक सिद्धान्तों के आधार पर विवेचन-विश्लेषण आर्थिक इतिहास कहलाता है। आर्थिक इतिहास न केवल आर्थिक सिद्धान्तों की पुष्टि या खण्डन करने में ही उपयोगी होता है, वरन् दीर्घकालीन आर्थिक नीति-निर्धारण में भी सहायक होता है। आर्थिक इतिहास के परिप्रेक्ष्य से परे आर्थिक सिद्धान्तों का निर्माण और विवेचन अपूर्ण और अनावश्यक रूप से अमूर्त होता है।

economic imperialism (इकॉनॉमिक इम्पीरियलिज़्म): आर्थिक साम्राज्यवाद।

आर्थिक सुलाभ पर आधारित एक देश का दूसरे देश पर प्रभाव जमाना। साधारणतया एक विकासशील देश को विकसित देशों से सहायता लेना ज़रूरी हो जाता है, क्योंकि अपनी बचत द्वारा निवेश-क्रियाओं को पूरा कर[illegible] कठिन होता है। प्राथमिक उत्पाद[illegible] के कारण ऐसे देशों को अपने नि[illegible] लिए भी बहुत बड़ी सीमा तक वि[illegible] देशों पर निर्भर करना पड़ता है[illegible] प्रकार विकसित देश इन देशों पर [illegible] कार जताने की स्थिति में हो जाते हैं।

economic indicator (इकॉ[illegible] इण्डिकेटर) : आर्थिक संकेतक।

किसी अर्थव्यवस्था की परिस्[illegible] द्योतक आर्थिक चर (जैसे: राष्ट्रीय [illegible] कीमत-स्तर, लाभ की औसत-दर, [illegible] गिक उत्पादन सूचकांक, विदेशी वि[illegible] निधि की स्थिति, भुगतान-अधिशेष [illegible] 'आर्थिक संकेतक या सूचक' कहला[illegible] इनके आधार पर न केवल [illegible] आर्थिक स्थिति का पता चलता है, [illegible] भावी आर्थिक स्थिति का आभा[illegible] मिलता है। दूरगामी प्रभाववाले [illegible] निर्णय लेने के लिए ये संकेतक महत्[illegible] सूचनाएँ प्रदान करते हैं। निवेश की [illegible] उनकी प्रकृति तथा सम्बन्धित [illegible] काफी अंशों तक इन सूचकों से प्र[illegible] होते हैं। कई बार आर्थिक समस्या[illegible] विश्लेषण की रिपोर्ट आदि भी [illegible] का कार्य करती हैं। सरकारी बजट[illegible] बैंक-दर भी बहुत महत्त्वपूर्ण सूचक हैं।

economic institutions (इकॉ[illegible] इन्स्टीट्यूशन्स) : आर्थिक संस्थाएँ।

अर्थव्यवस्था के कार्यों में भाग[illegible] वाली इकाइयाँ। उत्पादन, वितरण, [illegible] मय, उपभोग, नियमन, संगठन आदि [illegible] में निर्णय लेने, कार्यान्वयन करने [illegible] कार्यों में लगे व्यक्ति, समूह, प्रति[illegible]

इकाइयाँ या व्यावसायिक संगठन आर्थिक संस्थाएँ होते हैं। परिवार, व्यावसायिक इकाइयाँ (फर्म, निगम, सहकारी समिति, सामूहिक खेत आदि), राज्य, उसके विभाग या उसके अन्तर्गत स्वायत्त इकाइयाँ, कम्यून आदि आर्थिक संस्थाएँ होते हैं। आर्थिक प्रक्रियाओं के संचालन में बैंक, बीमा कम्पनियाँ, निवेश-निधियाँ, यातायात, शिक्षा; प्रशिक्षण आदि कार्यों में लगी इकाइयाँ आदि भी सहायक होती हैं। इन्हें भी आर्थिक संस्थाओं में शामिल किया जाता है। किसी भी अर्थव्यवस्था में किस तरह की कितनी संस्थाएँ होती हैं, उनके क्या कार्य, अधिकार तथा कर्तव्य होते हैं, उनके अन्य संस्थाओं से क्या सम्बन्ध होते हैं, ये बातें आर्थिक प्रणाली तथा आर्थिक विकास के स्तर पर निर्भर होती हैं। आर्थिक प्रणाली को इस तरह मूलभूत आर्थिक संस्था कहा जा सकता है।

आर्थिक संस्थाओं का एक दूसरा अर्थ भी होता है। आर्थिक प्रक्रियाओं के संचालन के संगठन, नियमों, उपनियमों, विधियों, परम्पराओं तथा सिद्धान्तों को भी आर्थिक संस्थाओं के रूप में जाना जाता है। इन नियमों या सिद्धान्तों का असर आर्थिक इकाइयों के आकार, प्रकार, स्वरूप, कार्यों तथा अधिकारों पर भी पड़ता है। अतः दोनों अर्थ परस्पर-सम्बन्धित हैं। इन विषयों में हुए परिवर्तन संस्थागत परिवर्तनों के रूप में समझे जाते हैं। परम्परागत अर्थशास्त्र में संस्थागत पहलुओं की उपेक्षा की गयी है। अर्थशास्त्र के संस्थागत स्कूल में इन पहलुओं के अध्ययन पर बहुत ज़ोर दिया गया है। मार्क्सवादी दृष्टिकोण के आधार पर संस्थागत तथा आर्थिक क्रियाओं के संचालन-सम्बन्धी नियमों का सम्यक् तथा समन्वित अध्ययन कर सकना सम्भव है। वस्तुतः आर्थिक प्रणाली को आर्थिक विश्लेषण में बाह्य चर नहीं माना जाये, तो आर्थिक संस्थाओं और संस्थागत परिवर्तनों का अध्ययन न केवल सम्भव अपितु आवश्यक भी हो जाता है।

देखिए : institutional economics
institutional change.

economic integration (इकॉनॉमिक इण्टिग्रेशन) : आर्थिक एकीकरण।

कुछ देशों द्वारा मिलकर अपनी अर्थव्यवस्थाओं का एक संयुक्त बाज़ार बनाना। किसी समझौते के आधार पर आपसी सीमा-शुल्क समाप्त कर लिये जाते हैं और धीरे-धीरे ये देश आर्थिक मामलों में एक-दूसरे के बीच विभेद करना बन्द कर देते हैं। इस प्रकार इन देशों का आर्थिक एकीकरण हो जाता है।

आर्थिक एकीकरण शब्द का कुछ अन्य सन्दर्भों में, अन्य अर्थों में भी प्रयोग किया जाता है। किसी देश के विभिन्न हिस्सों में या प्रदेशों में गहरी विषमता होने पर उन्हें दूर कर इन प्रदेशों का आर्थिक एकीकरण करना आवश्यक समझा जाता है। इसी तरह विभिन्न वर्गों तथा समूहों के बीच आर्थिक एकीकरण की समस्या भी उठ खड़ी होती है।

देखिए : customs union

economic interpretation of history (इकॉनॉमिक इण्टरप्रिटेशन ऑफ हिस्ट्री) : इतिहास की आर्थिक व्याख्या।

मार्क्सवाद की एक आधार-शिला। इसके अनुसार समाज-विकास के कुछ

निश्चित नियम होते हैं। इतिहास-विकास का क्रम कोई मनमाना रूप ग्रहण नहीं कर सकता है। इतिहास के क्रम के कई निश्चित निर्धारित तत्त्व होते हैं। ये तत्त्व वस्तुगत, मनुष्य की इच्छा तथा ज्ञान से स्वतन्त्र होते हैं। सारे मानव-समाज के विकास को कुछ नियमों के जरिये समझा जा सकता है। समाज का विकास कुछ द्वन्द्वात्मक प्रक्रियाओं से होता है। इन प्रक्रियाओं में विकास की निरन्तर जारी रहनेवाली प्रेरणा मनुष्य तथा सामाजिक उत्पादन-प्रक्रिया से सम्बन्धित भौतिक वातावरण के बीच की अन्तर्क्रिया है।

इतिहास के विकास के इस स्वरूप की मार्क्स ने खोज तथा स्थापना की। इस सिद्धान्त ने मानव-समाज के विकास के वैज्ञानिक अध्ययन की नींव डाली। इस अर्थ में इस सिद्धान्त को 'मानव-समाज के विकास का नियम' कहा जा सकता है।

इस नियम का अधिक उपयुक्त नाम 'इतिहास की भौतिकतावादी व्याख्या' है। इतिहास के विकास की मुख्यतया निर्णायक प्रेरणा न तो आर्थिक सम्बन्ध है, न आर्थिक सम्बन्धों का वह भाग है जो उत्पादन-सम्बन्ध कहलाता है। यह प्रमुख एवं निर्णायक प्रेरणा तो मनुष्य तथा उसके भौतिक वातावरण के बीच अन्तर्क्रिया की द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया है; अर्थात सामाजिक उत्पादन-शक्तियों का विकास है।

संक्षेप में इस द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया को, मोटे रूप में, इस तरह समझा जा सकता है: श्रम की प्रक्रिया में सामाजिक उत्पादन-शक्तियों का विकास होता है। उत्पादन-शक्तियों के उत्तरोत्तर विकास की यह प्रक्रिया कुछ समय बाद विद्यमान सामाजिक उत्पादन-संम्बन्धों तथा उत्पादन-शक्तियों के बीच असंगति या अन्तर्विरोध उत्पन्न कर देती है। इन सामाजिक उत्पादन-सम्बन्धों के अन्तर्गत उत्पादन-शक्तियों का और विकास रुक जाता है। फिर कालान्तर में उत्पादन-शक्तियों के विकास-स्तर के अनुरूप उत्पादन-सम्बन्ध तथा सम्पत्ति-स्वामित्व की व्यवस्था पनपती है। तब इन नये सम्बन्धों का पुराने सामाजिक अधिरचना से मेल खाना बन्द हो जाता है। सामाजिक विचारधारा तथा सामाजिक दृष्टिकोण तो सामाजिक उत्पादन-सम्बन्धों से भी अधिक अपरिवर्तनीय प्रकृति के होते हैं। अतः उस अन्तर्द्वन्द्व का निराकरण भावी सामाजिक विकास के लिए आवश्यक हो जाता है। इसी बीच श्रम की प्रक्रिया में नयी उत्पादन-शक्तियों का उदय होता है और अन्तर्विरोधों, उनके निराकरण तथा पुनरोदय के द्वन्द्वात्मक विकास की यह प्रक्रिया चलती रहती है।

इतिहास की इस आर्थिक व्याख्या (जिसे इतिहास की भौतिक व्याख्या कहना ज्यादा उपयुक्त होगा) का यह अर्थ कतई नहीं है कि हर ऐतिहासिक परिवर्तन के कारण केवल आर्थिक होते हैं। द्वन्द्वात्मक विकास की इस प्रक्रिया में सामाजिक अधिरचना का अपना पृथक् स्थान होता होता है। इस सिद्धान्त का मुख्य अभिप्राय तो यह है कि इतिहास में मनमानी, अकारण, अतिप्राकृतिक या आत्मनिष्ठ प्रवृत्तियाँ नहीं पायी जाती हैं। व्यक्ति या समाज की सचेतन प्रक्रियाओं में से भी केवल वही सफल तथा कारगर होती हैं जो वस्तुगत स्थिति के अनुकूल और

भौतिक-सामाजिक नियमों के अनुरूप होती हैं। समाज ऐतिहासिक विकास की धारा को तभी मोड़ पाता है, जबकि वह इस विकास के वस्तुगत नियमों के अनुरूप अन्तर्विरोधों का निराकरण कर सके।

economic law (इकॉनॉमिक लॉ) : आर्थिक नियम।

आर्थिक प्रक्रिया मनुष्य के कुछ निरन्तर दोहराये जानेवाले कार्यों का समूह है। किसी समाज के ऐतिहासिक विकास के फलस्वरूप उत्पन्न दशाओं के अनुसार आर्थिक क्रियाएँ एक खास रीति से होती रहती हैं और उनकी नियमितता का अपना विशिष्ट रूप होता है। आर्थिक क्रियाओं की इस नियमितता की कुछ तत्त्वों के रूप में व्याख्या की जा सकती है। इन क्रियाओं के विभिन्न तत्त्वों के बीच निरन्तर तथा नियमित रूप से दोहराये जानेवाले सम्बन्धों को आर्थिक नियम कहते हैं। ये एक तरह के वैज्ञानिक नियम हैं और राजकीय, धार्मिक, नैतिक तथा सामाजिक नियमों से भिन्न हैं। उदाहरणार्थ, अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समाज को अपनी श्रम-शक्ति का प्रयोग करना पड़ता है। जिस मात्रा में तथा रूप में समाज श्रम का उपयोग करता है, उसी के अनुसार वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकता है। इस प्रकार किसी समाज का जीवन-स्तर उसकी श्रम-प्रक्रिया के स्वरूप पर निर्भर है। यह एक आर्थिक नियम है। इसी तरह पारिवारिक बजट का नियम, माँग का नियम, उपभोग-गुणक का नियम आदि आर्थिक नियमों के प्रसिद्ध उदाहरण हैं।

ये नियम कार्यकारण-सम्बन्धी, सहवर्त्तन-सम्बन्धी या कार्यमूलक हो सकते हैं। आर्थिक नियम वस्तु-परक होते हैं। आर्थिक नियमों के निर्माण में वैज्ञानिक रीति का प्रयोग होता है, जिसके द्वारा आवश्यक तत्त्वों को आकस्मिक तथा अनावश्यक तत्त्वों से पृथक् करके सम्बन्धित किया जाता है। सामाजिक घटनाओं से सम्बन्धित होने के कारण आर्थिक नियम प्राकृतिक घटनाओं से सम्बन्धित नियमों जितने व्यापक नहीं होते।

economic man (इकॉनॉमिक मैन) : आर्थिक मानव।

आर्थिक समस्याओं के अध्ययन में मनुष्य की मनोदशा से सम्बन्धित एक पुरानी परिकल्पना। इसके अनुसार आर्थिक क्रियाओं का मूल प्रयोजन आर्थिक संसाधनों की अधिकतम मात्रा को न्यूनतम प्रयत्नों द्वारा शीघ्रातिशीघ्र प्राप्त करना है। शायद ही किसी अर्थशास्त्री ने ऐसी परिकल्पना को वस्तुजगत का यथार्थ चित्रण माना हो। इस परिकल्पना का खास मकसद तो इस अमूर्त आधार पर आर्थिक समस्याओं के अध्ययन को सुगम बनाना था।

इस परिकल्पना के फलस्वरूप मनुष्य का एक ऐसा चित्र उभरता है, जिसमें वह अपने निजी लाभ के लिए, भौतिक वस्तुओं तथा सुख-सुविधाओं के लिए हर काम के बारे में कोरी गणनाएँ करता प्रतीत होता है। इसीलिए इस परिकल्पना पर आधारित आर्थिक सिद्धान्तों को 'निकृष्ट विज्ञान' के नाम से जाना गया था। आर्थिक प्रश्नों के अध्ययन के लिए ऐसी कोई सार्वभौम मनोवैज्ञानिक

परिकल्पना अपरिहार्य नहीं है। और फिर, आर्थिक संसाधनों पर स्वामित्व प्राप्त कर उनका प्रयोग अनेक विविधतापूर्ण उद्देश्यों के लिए किया जा सकता है। आर्थिक संसाधनों की प्राप्ति कंजूसों-जैसे कुछ अपवादों को छोड़कर अपने-आपमें साध्य नहीं है बल्कि जीवन की जरूरतों को पूरा करने का साधन मात्र है। आर्थिक मानव की परिकल्पना के स्थान पर अब विवेकसंगत व्यवहार की परिकल्पना स्थापित की गयी है। अर्थशास्त्री विवेकपूर्ण आर्थिक इकाइयों की परिकल्पना के आधार पर अपनी सैद्धान्तिक खोज-बीन को आगे बढ़ाते हैं।

economic model (इकॉनॉमिक मॉडेल): आर्थिक प्रतिरूप, आर्थिक माडल।

सैद्धान्तिक विश्लेषण के लिए परिकल्पनाओं द्वारा निर्मित वस्तु-जगत की अमूर्त रूपरेखा। आर्थिक जगत बहुत जटिल होता है, जहाँ अनेक प्रभाव एकसाथ अपनी क्रिया-प्रतिक्रिया जारी रखते हैं। इन सब जटिलताओं का ध्यान रखते हुए विभिन्न तत्त्वों तथा चलों का पारस्परिक सम्बन्ध उद्घाटित करना कठिन ही नहीं बल्कि असम्भव-सा है। और फिर, इन सब तत्त्वों में से महत्त्वपूर्ण, आवश्यक और नियमित तत्त्वों को चुनने और उनके अन्य प्रभावों से मुक्त सम्बन्धों का अध्ययन करने के लिए यह जरूरी है कि अनावश्यक, अपेक्षाकृत कम महत्त्वपूर्ण और निरर्थक तत्त्वों को गवेषणा-क्षेत्र से हटा ही दिया जाये। कुछ जटिलतापूर्ण तत्त्वों को क्रमशः एक-एक करके भी अध्ययन करने के क्षेत्र में लाना पड़ता है। इस प्रकार परिकल्पनाओं द्वारा तैयार किया गया ढाँचा आर्थिक प्रतिरूप कहलाता है। सैद्धान्तिक अध्ययन के लिए प्रति- निर्माण की प्रक्रिया असन्दिग्ध रू- महत्त्वपूर्ण है।

economic motive (इकॉनॉमिक मोटि-): आर्थिक मन्तव्य।

आर्थिक इकाइयों का वह व्यवहार आवश्यकताओं की सन्तुष्टि और संसाधनों पर अधिकारप्राप्ति के उद्देश्य किया जाता है।

देखिए : economic man rationality.

economic nationalism (इकॉनॉमि- नेशनेलिज्म): आर्थिक राष्ट्रवाद।

राष्ट्रीय आर्थिक समृद्धि, आत्मनिर्- पूर्णता तथा अलगाव की नीति। न के- आर्थिक, परन्तु आर्थिकेतर कारणों से(- राष्ट्रीय अभियान, आक्रामक समर-नी- राष्ट्रीय पुनरुत्थान आदि) से भी रा- की आवश्यकताएँ राष्ट्र के आन्तरिक उत्- दन से पूरी करने की नीति अपनायी - सकती है। इस नीति का सकारात्मक प- तो देश की सीमाओं में विभिन्न प्र- की वस्तुओं के उत्पादन को प्रोत्साहन दे- है और नकारात्मक पहलू विभिन्न तरी- (जैसे : तटकर कोटा, विदेशी विनि- नियन्त्रण, आयात की निषेधता आदि) आयात को घटाना या बन्द कर- है।

प्रथम विश्व-युद्ध के बाद यूरोप में - नीति ने काफी ज़ोर पकड़ा था। - अर्थशास्त्री फ्रेडरिक लिस्ट इस नीति - बड़े समर्थक थे। परन्तु दूसरे विश्व- के बाद इस तरह की नीति की जगह अ- प्रकार के अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सह- संगठनों का प्रादुर्भाव हुआ। इस नीति

अल्प-विकसित उद्योगों को संरक्षण देकर उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता के लिए सक्षम बनाने का पहलू विकासशील देशों के लिए बहुत अर्थपूर्ण है।

आर्थिक राष्ट्रवाद के अलगाव तथा राष्ट्रीय गौरव के पहलू को हटाकर इसे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-विभाजन के सिद्धान्त से संगत बनाया जा सकता है। इस सीमित अर्थ में आर्थिक राष्ट्रवाद का अर्थ आत्म-निर्भरता (अपने राष्ट्रीय साधनों से निर्यात करने के लिए भुगतान करने की क्षमता) तथा राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का तीव्र विकास है। इस अर्थ में यह रचनात्मक, सार्थक तथा पारस्परिक लाभ के अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग और अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-विभाजन का समर्थक सिद्धान्त हो सकता है।

economic organisation (इकॉनॉमिक ऑर्गेनाइजेशन) : आर्थिक संगठन।

आर्थिक जीवन और आर्थिक क्रियाओं का स्वरूप अनिवार्यतः सामाजिक होता है। परन्तु विभिन्न व्यक्तियों तथा आर्थिक इकाइयों की न केवल अलग-अलग आर्थिक क्रियाएँ ही होती हैं, अपितु उनके पृथक् निजी आर्थिक जीवन के इस दुहरेपन के कारण आर्थिक संगठन की समस्या उत्पन्न होती है। आर्थिक संगठन द्वारा समाज या देश के विभिन्न आर्थिक कार्यों, विभिन्न इकाइयों के कार्यों में ताल-मेल एवं सामंजस्य विठाने की कोशिश की जाती है, ताकि अर्थव्यवस्था के उद्देश्यों की पूर्ति हो सके। अर्थात् अर्थव्यवस्था की मूलभूत समस्याओं के समाधान की कार्यप्रणाली का निर्धारण आर्थिक संगठन कहलाता है। अर्थशास्त्र को सामाजिक विज्ञान मानने पर इस विषय की केन्द्रीय समस्या आर्थिक संगठन मानी जायेगी।

मॉर्शल ने उत्पादन के चार कारण बताये थे : भूमि, पूँजी, श्रम तथा संगठन। इस अर्थ में संगठन या आर्थिक संगठन से तात्पर्य उत्पादन-प्रक्रिया के लिए आवश्यक अन्य तीन साधनों को जुटाना, उनके प्रयोग के बारे में निर्णय करना तथा विभिन्न कार्यों में तालमेल बैठाना है। इस अर्थ में अब संगठन के बदले 'उद्यम' शब्द का प्रयोग किया जाने लगा है।

देखिए : enterprise.

economic planning (इकॉनॉमिक प्लानिंग) : आर्थिक आयोजन।

आर्थिक आयोजन आर्थिक संगठन का एक विशेष तरीका है, जिसमें आर्थिक समस्याओं का समाधान सचेतन रूप से चयन करके तथा विद्यमान परिस्थितियों और स्वीकृत उद्देश्यों को दृष्टि में रखकर सर्वश्रेष्ठ विधि से किया जाता है। एक विस्तृत अर्थ में आर्थिक आयोजन विवेकसम्मत कार्य-प्रणाली का दूसरा नाम है। एक विशिष्ट अर्थ में इसे किसी खास आर्थिक समस्या या समस्याओं के समाधान के सर्वश्रेष्ठ तरीके के रूप में समझा जा सकता है। दूसरी ओर, सामूहिक विवेक द्वारा सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था की समस्याओं का एक घटक के रूप में सचेतन रूप से समाधान भी आर्थिक आयोजन कहा जा सकता है।

अर्थ की इस विविधता के कारण आयोजन का प्रचलन अनेक प्रकार की आर्थिक प्रणालियों में (जैसे : समाजवादी, पूँजीवादी, मिश्रित) तथा अनेक प्रकार की समस्याओं (जैसे : अल्प विकास, बेरोजगारी, मन्दी आदि) के समाधान के लिए होता है। एक समाजवादी अर्थव्यवस्था अनि-

वार्यतः आयोजन द्वारा अपनी आर्थिक समस्याओं का समाधान करती है। इसी प्रकार अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं द्वारा विकास की तीव्र गति प्राप्त करने के लिए आर्थिक आयोजन का प्रचलन सामान्य बनता जा रहा है।

economic policy (इकॉनॉमिक पॉलिसी) : आर्थिक नीति।

आर्थिक उद्देश्य तथा तरीके दोनों अर्थों में प्रयुक्त शब्द।

राज्य अपने आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए जिन तरीकों तथा साधनों का प्रयोग करता है, वे राज्य की आर्थिक नीति कहलाते हैं। परन्तु राज्य द्वारा जिन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रयास किये जाते हैं, उन्हें भी राज्य की आर्थिक नीति के रूप में जाना जाता है। ये दोनों अर्थ साथ-साथ तथा अलग-अलग भी प्रयुक्त किये जाते हैं।

आर्थिक उद्देश्यों के रूप में नीति का निर्धारण विविध उद्देश्यों के बीच चयन, उद्देश्यों के बीच प्राथमिकता-क्रम का निर्धारण, तथा इन उद्देश्यों को विरोधरहित बनाने का प्रश्न है। यह प्रक्रिया आर्थिक विश्लेषण की अपेक्षा मूल्य-निर्धारण की अधिक है।

परन्तु स्वीकृत उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए तरीकों तथा साधनों का चयन मूलतः आर्थिक समस्या है, जिसके समाधान के लिए आर्थिक सिद्धान्तों का प्रयोग करना पड़ता है। आर्थिक नीति के विकास के साथ ही आर्थिक सिद्धान्तों का भी विकास होता है। अर्थशास्त्र की व्यावहारिक उपयोगिता आर्थिक नीति के महत्त्व के कारण काफी बढ़ गयी है।

देखिए : applied economics.

economic progress (इकॉनॉमिक प्रोग्रेस) : आर्थिक प्रगति।

अर्थव्यवस्था की सामाजिक आवश्यकताओं को गुणात्मक तथा मात्रात्मक दोनों रूपों में सन्तुष्ट करने की क्षमता में वृद्धि को आर्थिक प्रगति कहते हैं। यह एक सापेक्ष तथा निरन्तर जारी रहनेवाली प्रक्रिया है। आर्थिक प्रगति के विभिन्न स्तर तथा चरण हो सकते हैं। परन्तु गुणात्मक पहलुओं के समावेश के कारण आर्थिक प्रगति के विभिन्न स्तरों की तुलना के वस्तुगत प्रतिमानों का निर्धारण नहीं किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, अर्थव्यवस्था की सामाजिक न्याय प्रदान करने की क्षमता का भी आर्थिक प्रगति के विचार में समावेश किया जा सकता है। सामाजिक न्याय के कई अर्थ लगाये जा सकते हैं। अतः इस आधार पर आर्थिक प्रगति के सापेक्षिक स्तर का निर्धारण मुश्किल हो जाता है।

आर्थिक प्रगति का मुख्य आधार आर्थिक क्रियाओं, विशेषतः उत्पादन का विकास है। मनुष्य के प्रकृति पर बढ़ते नियन्त्रण, आर्थिक संसाधनों की मात्रा में वृद्धि तथा तकनीकी प्रगति द्वारा उत्पादक शक्तियाँ विकसित होकर आर्थिक प्रगति का मार्ग प्रशस्त करती हैं। समाज-व्यवस्था समुचित प्रेरणाएं देकर आर्थिक प्रगति के रूप तथा उसकी गति को प्रभावित करती है।

देखिए : economic development, economic growth.

economic rent (इकॉनॉमिक रेण्ट) : आर्थिक लगान, अधिशेष।

अर्थशास्त्र में 'लगान' शब्द का एक विशेष अर्थ में प्रयोग किया जाता है जो

आम बोलचाल के इसके अर्थ से वहुत भिन्न है। इस अन्तर को ध्यान में रखकर अर्थशास्त्र में लगान के स्थान पर प्राय: आर्थिक लगान शब्द का प्रयोग किया जाता है।

अर्थशास्त्र में लगान अर्थात् आर्थिक लगान का आशय उस अतिरिक्त राशि से होता है, जो किसी उत्पादन-साधन (भूमि, पूँजी या श्रम) को उसकी अन्तरण आय के ऊपर प्राप्त होती है। मान लीजिए कि कोई व्यक्ति इंजीनियर के तौर पर कार्य करता है और उसे २००० रुपये मासिक मिलते हैं। यदि मान लीजिए कि इंजीनियर के वजाय वह किसी फर्म में प्रवन्धक का काम करता, तो उसे कुल १५०० रुपये मिलते। यही विकल्प होने पर उसकी अन्तरण आय १५०० रुपये मासिक ठहरेगी। इसके ऊपर मिलनेवाली रकम लगान कहलायेगी। इस उदाहरण में लगान २०००—१५००=५०० रुपये होगा। इस प्रकार आर्थिक लगान का स्वरूप अधिशेष-जैसा होता है।

देखिए : rent.

economics (इकॉनॉमिक्स) : अर्थशास्त्र।

प्रमुख तथा अग्रणी सामाजिक विज्ञान। समाज तथा इसके सदस्यों द्वारा आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए की जानेवाली क्रियाओं-प्रक्रियाओं के उद्देश्यों, उनके सामंजस्य तथा तालमेल, उनके संगठन तथा विकास की प्रक्रियाओं (जिसमें स्वयं आवश्यकताओं का विकास सम्मिलित है), कारकों तथा प्रेरणाओं का अध्ययन अर्थशास्त्र कहलाता है। एक सामाजिक विज्ञान होने के नाते यह विषय अनिवार्यत: ऐतिहासिक भी है।

अर्थशास्त्र के स्वरूप, क्षेत्र तथा प्रकृति, तरीकों, प्रभाव और उपयोगिता आदि के बारे में अनेक मत-मतान्तर रहे थे और अब भी विद्यमान हैं। नव-संस्थापक अर्थशास्त्रियों, विशेषत: लियोनेल रोविन्स, द्वारा दी गयी सीमित तथा पूँजीवादी सन्दर्भीय परिभाषा काफी प्रचलित रही है। इस परिभाषा के अनुसार वैकल्पिक उपयोगवाले सीमित साधनों का अपरिमित आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रयोग चयन की समस्याएँ उत्पन्न करता है। इन चयन की समस्याओं का अध्ययन अर्थशास्त्र की विषय-वस्तु है।

यह परिभाषा अर्थशास्त्र के समाज-विज्ञानवाले रूप को गौण तथा व्यक्तिगत रूप को प्रधान वनाती है। आर्थिक विकास तथा आर्थिक प्रणालियों के विकास और आर्थिक संगठन से सम्वन्धित प्रश्न भी इस परिभाषा द्वारा गौण या पूर्णत: निष्कासित-से कर दिये गये हैं।

economic sanctions (इकॉनॉमिक सैन्क्शन्स) : आर्थिक पावन्दियाँ, आर्थिक शास्तियाँ।

एक तरह का आर्थिक वहिष्कार। यह अन्तर्राष्ट्रीय कानून या संयुक्त राष्ट्र-संघ के घोषणा-पत्र का उल्लंघन करनेवाले राष्ट्रों को सही राह पर लाने का दण्डात्मक तरीका है। इस तरीके में अपराधी या असहयोगी राष्ट्र से आर्थिक सम्वन्ध तोड़े जा सकते हैं, उस देश की आर्थिक घेरावन्दी की जा सकती है या कुछ सामरिक या अन्य महत्त्ववाली वस्तुओं की पूर्ति रोकी जा सकती है या उस देश के निर्यातों का वहिष्कार किया जा

सकता है। अगर विश्व के सब देश ईमानदारी से इन तरीकों का पालन करें, तो अपराधी देश की अर्थ-व्यवस्था क्षत-विक्षत होने लगेगी और उसे विवश होकर अन्तर्राष्ट्रीय जनमत का सम्मान करना पड़ेगा।

कुछ राजनीतिक, सामरिक या कूटनीतिक कारणों से एक राष्ट्र या कुछ राष्ट्र मिलकर भी किसी एक देश या कुछ देशों के विरुद्ध आर्थिक बहिष्कार या आर्थिक शास्तियों का प्रयोग कर सकते हैं। उदाहरणार्थ, सन् १९४९ की जनवादी क्रान्ति के बाद से चीन के विरुद्ध संयुक्त राज्य अमरीका ने आर्थिक पाबन्दियाँ लागू कर दी थीं। इस अर्थ में आर्थिक शास्तियाँ वे सब आर्थिक कदम हैं जो एक देश दूसरे देश की अर्थ-व्यवस्था को हानि पहुँचाने के लिए उठाता है। ब्रिटेन द्वारा रोडेशिया के गोरे शासन के विरुद्ध उठाये गये कदम इन्हीं पाबन्दियों के उदाहरण हैं।

economic system (इकॉनॉमिक सिस्टम) : अर्थप्रणाली, आर्थिक व्यवस्था।

समाज-व्यवस्था का वह पहलू जो आर्थिक क्रियाओं, उनके संगठन, सिद्धान्तों और संचालन-पद्धति से सम्बन्धित हो। अर्थव्यवस्था की कार्यविधि का सम्पूर्ण चित्र, जो उसके संगठन, संचालन, शक्ति-वितरण तथा विकास के नियमों से सम्बन्धित होता है, अर्थप्रणाली कहलाता है।

अर्थशास्त्र की मुख्य धारा में अर्थ-व्यवस्था के अध्ययन पर तो बल दिया गया है, परन्तु अर्थप्रणाली पर बहुत कम ज़ोर दिया गया है। अधिकांश आर्थिक सिद्धान्त अर्थप्रणाली या आर्थिक व्यवस्था-सम्बन्धी प्रश्नों और फलितार्थों से असम्बद्ध रहे हैं। कार्ल मार्क्स की 'उत्पादन-प्रणाली' की धारणा अर्थप्रणाली के समान अर्थवाली है। मार्क्स ने आर्थिक सिद्धान्तों को हमेशा 'उत्पादन-प्रणालियों' के परिप्रेक्ष्य में देखा।

उत्पादन-शक्तियों के विकास के फलस्वरूप आर्थिक तथा उत्पादन-सम्बन्धों एवं फलस्वरूप सामाजिक अधिरचना का पुनर्गठन करना पड़ता है। नतीजा यह होता है कि इतिहास-विकास के क्रम में अनेक आर्थिक प्रणालियाँ जन्म लेती हैं। इतिहास में आदिम साम्यवाद, दास-प्रणाली, सामन्त-प्रणाली, पूंजीवाद, समाजवाद आदि अर्थप्रणालियों के उदाहरण मिलते हैं। इन अर्थप्रणालियों के उत्पादन तथा आर्थिक सम्बन्धों के निर्धारण में सम्पत्ति-स्वामित्व की व्यवस्था का गहरा प्रभाव होता है।

economic theory (इकॉनॉमिक थिअॅरी) : आर्थिक सिद्धान्त।

आर्थिक नियमों का समूह। ये सिद्धान्त विभिन्न वैज्ञानिक और तार्किक विधियों द्वारा विकसित किये जाते हैं। ये सिद्धान्त आर्थिक विश्लेषण के उपकरण भी होते हैं। इनकी सहायता से सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक प्रश्नों की व्याख्या की जाती है। इसका विकास आर्थिक प्ररूपों के माध्यम से किया जाता है। इनकी सहायता से विभिन्न आर्थिक इकाइयों के आर्थिक व्यवहार के बारे में भविष्यवाणी की जा सकती है। आर्थिक सिद्धान्तों का विकास परिकल्पनाओं द्वारा होता है। अतः वास्तविक जगह में इनको लागू करने में बहुत सावधानी की आव-

श्यकता होती है।

आर्थिक सिद्धान्तों के निर्माण में वस्तु-जगत की सम्पूर्णता पर नहीं, अपितु उसके कुछ चुने हुए तत्त्वों पर जोर दिया जाता है। अमूर्तण या अमूर्तिकरण सिद्धान्त रचना-प्रक्रिया का आवश्यक चरण है। सिद्धान्तों का महत्त्व तथा उनकी सार्थकता अध्ययन हेतु चुने गये तत्त्वों, चलों तथा कारकों के महत्त्व पर निर्भर रहता है। आर्थिक सिद्धान्तों का काफी अंशों तक व्यावहारिक प्रयोग किया जा रहा है।

देखिए : economics
economic law
economic model.

economic thought (इकॉनॉमिक थॉट) : आर्थिक विचारधारा।

अर्थशास्त्र के विभिन्न सिद्धान्तों, मतवादों तथा विचारधाराओं का ऐतिहासिक लेखा-जोखा। अर्थशास्त्र के अध्ययन की इस शाखा में विभिन्न अर्थशास्त्रियों, विभिन्न आर्थिक मतवादों या स्कूलों के आर्थिक सिद्धान्तों और उनकी विचारधाराओं का तुलनात्मक तथा आलोचनात्मक अध्ययन किया जाता है। इसके अध्ययन से अर्थशास्त्र के विकास की प्रक्रिया तथा उसके विकास के विभिन्न चरण स्पष्ट होते हैं। आर्थिक विचारधारा के अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि अर्थशास्त्रियों ने अपने जमाने की वास्तविक समस्याओं से जूझने का प्रयास किया। अधिकांश आर्थिक विचारधाराएँ सम-सामयिक परिस्थितियों की उपज रही हैं।

आधुनिक आर्थिक विचारधारा मुख्यतः पश्चिम की ही देन है। एडम स्मिथ के समय से तो आर्थिक विचारों के विकास की धारा निरन्तर विकसित होती रही है। भूअर्थशास्त्र तथा वाणिज्यवादी अर्थशास्त्र की चिन्तनधाराओं के साथ एडम स्मिथ के साथ सुसंस्थापित या प्रतिष्ठित अर्थशास्त्र की स्थापना हुई। फिर तो आर्थिक विचारों की अनेक धाराएँ विकसित हुईं। मार्क्सवाद, सीमान्तवाद, संस्थागत अर्थशास्त्र, कैम्ब्रिज स्कूल, वियेना स्कूल, जर्मन ऐतिहासिक स्कूल, नव-संस्थापित अर्थशास्त्र, केन्सीय अर्थशास्त्र, गणितीय अर्थशास्त्र, नव-नवप्रतिष्ठित अर्थशास्त्र आदि आर्थिक विचारों की महत्त्वपूर्ण शाखाएँ हैं।

economic trend (इकॉनॉमिक ट्रेण्ड): आर्थिक प्रवृत्ति।

आर्थिक जीवन में अनेक घटनाओं के होने की सम्भावनाओं का पूर्वानुमान लगाया जा सकता है। कुछ पूर्वानुमान तो निगमन के आधार पर लगाये जाते हैं और कुछ आगमन के आधार पर। इस तरह यह कहा जा सकता है कि पूर्ति से माँग के अधिक होने पर कीमत बढ़ने की प्रवृत्ति होती है। दूसरी ओर, किसी देश की जनसंख्या-वृद्धि की दर के लम्बे समय तक के अध्ययन के आधार पर उसकी आगे की वृद्धि की दर की प्रवृत्ति का पूर्वानुमान लगाया जा सकता है। आर्थिक प्रवृत्तियों का अध्ययन आर्थिक नीति तथा आर्थिक आयोजन में बहुत उपयोगी होता है। आर्थिक प्रवृत्तियों के कुछ पूर्वानुमान संख्यात्मक होते हैं और कुछ गुणात्मक।

economies of mas production

(इकॉनॉमीज़ ऑफ मास प्रोडक्शन) : बड़े पैमाने के उत्पादन की किफायतें।

उत्पादन की प्रति इकाई लागत को प्रभावित करने वाले तत्त्वों में उत्पादन के पैमाने या परिमाण का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। एक ही प्रतिष्ठान में जब उत्पादन की मात्रा बढ़ा दी जाती है, तब कई आर्थिक तथा तकनीकी कारणों से प्रति इकाई उत्पादन की लागत घट जाती है। प्रायः सभी आधुनिक उद्योगों में यह प्रवृत्ति पायी जाती है। श्रमिक बड़े स्तर पर उत्पादन के कारण विशिष्टता प्राप्त कर लेते हैं। बड़ी तथा महँगी मशीनों का प्रयोग सम्भव हो जाता है। मशीनों में तथा उत्पादन के तरीकों में निरन्तर सुधार सम्भव हो जाता है। कच्चे माल की खरीद में किफायतें मिलती हैं। इसी प्रकार बिक्री की व्यवस्था में आधुनिक तरीकों तथा विज्ञापन आदि का प्रयोग सम्भव हो जाता है। इस प्रकार के सब खर्चों की प्रति इकाई मात्रा कम होती है। वस्तुतः बिना वृहत्-स्तरीय उत्पादन के आधुनिक वैज्ञानिक उत्पादन तथा प्रबन्ध के तरीकों का उपयोग सम्भव ही नहीं है।

यही नहीं, साथ में नगरीकरण, भीड़ तथा व्यस्तता, मजदूरों का छोटे-से काम में पूरा समय बिताना तथा तद्जनित एकरसता, विभिन्न उत्पादकों की बढ़ती पारस्परिक निर्भरता और फलस्वरूप एक स्थान के विघ्न का सारी व्यवस्था में प्रसार आदि हानियाँ भी बड़े पैमाने के उत्पादन के साथ जुड़ी हैं। परन्तु अर्थ-प्रणाली के नियमों को बदलकर इन बुराइयों को बिना बड़े स्तर के उत्पादन का त्याग किये हटाया जा सकता है।

देखिए : economies of sc

economies of scale (इकॉनॉमीज़ ऑ स्केल) : परिमाणमूलक सुलाभ, पैमाने की किफायतें।

ज्यादातर यह देखा जाता है किसी उत्पादन-इकाई के उत्पादन-स्तर बढ़ाने पर उत्पादन की सम्पूर्ण ला उत्पादन की अपेक्षा, कम अनुपात में ब है। जैसे, किसी कारखाने में उत्पा दुगुना करने पर लागत का ड्योढ़ा हो ऐसा साधारण तौर पर उत्पादन के को बढ़ने के लिए पर्याप्त समय दिये ज पर होता है। इस तरह दीर्घकालि औसत या प्रति इकाई उत्पादन-ला उत्पादन-स्तर बढ़ाने पर घटती है। प्रवृत्ति का कारण 'परिमाणमू सुलाभ' अथवा 'बड़े पैमाने की किफा हैं।

बड़े पैमाने की किफायतें दो कोटि में बाँटी जाती हैं :

(क) आन्तरिक किफायतें—कि एक उत्पादन-इकाई के विस्तार के फ स्वरूप प्रति-इकाई लागत में हुई घटे उत्पादन के साधनों की अविभाज्य श्रम-विभाजन की ज्यादा सम्भावना स्थायी लागतों का ज्यादा इकाइयों वितरण, बड़े स्तर पर कार्य के का ज्यादा तेज परिचलन, भण्डारों की जरूरत, बड़ी मात्रा में खरीद-बिक्री लाभ आदि इन मितव्ययिताओं के हैं।

(ख) बाह्य मितव्ययिताएँ—जो बा सारे उद्योग या फर्मों के समूह के सामूहि उत्पादन में वृद्धि के कारण हर इकाई

औसत लागत को कम करती हैं, वाह्य सुलाभ या किफायतें कहलाती हैं।

देखिए : economies of mass production.

economic welfare (इकॉनॉमिक वेलफेयर) : आर्थिक कल्याण।

आर्थिक कल्याण को आर्थिक क्रियाओं के संचालन के फलस्वरूप प्राप्त प्रतिफल कहा जा सकता है। व्यष्टिगत तथा समष्टिगत, दोनों दृष्टियों से आर्थिक कल्याण आर्थिक क्रियाओं का चरम ध्येय माना जा सकता है। परन्तु इस बात पर बहुत मतभेद है कि आर्थिक कल्याण किन बातों में निहित है। वस्तुतः यह समाज तथा व्यक्ति के मूल्यों पर आधारित है। अतः आर्थिक कल्याण के सार या उसकी अन्तर्वस्तु के बारे में कोई सर्वमान्य निष्कर्ष या धारणा बनाना कठिन है। अर्थ-प्रणाली, विचार-धारा, धार्मिक, नैतिक तथा सांस्कृतिक विकास एवं आर्थिक विकास के चरण के अनुरूप आर्थिक कल्याण का सार तत्त्व बदल जाता है। आजकल कई लोग जीवन-स्तर या प्रति-व्यक्ति राष्ट्रीय आय को आर्थिक कल्याण का द्योतक मानते हैं।

व्यक्ति के निजी आर्थिक कल्याण और समाज के सामूहिक आर्थिक कल्याण का सम्बन्ध भी अनेक विवादों का विषय रहा है। परेटो नामक अर्थशास्त्री के अनुसार समाज का आर्थिक कल्याण उस स्थिति में अधिकतम होता है, जब बिना किसी व्यक्ति का कल्याण कम किये किसी दूसरे व्यक्ति का कल्याण बढ़ाया नहीं जा सकता है। अर्थशास्त्र की एक विशेष शाखा आर्थिक कल्याण की विभिन्न समस्याओं का अध्ययन करती है। उसे कल्याण-मूलक अर्थशास्त्र के नाम से जाना जाता है।

economism (इकॉनॉमिज्म) : अर्थवाद।

श्रमिक-संघ-आन्दोलन तथा अन्य जन-आन्दोलनों द्वारा अपने वास्तविक, मूलभूत तथा दीर्घकालिक उद्देश्यों को भुलाकर क्षणिक आर्थिक-मौद्रिक लाभों के लिए कार्यरत हो जाने को अर्थवाद कहा जाता है। अर्थवाद के प्रचलन के कारण मजदूरों के संगठन मजदूरी की दर तथा कार्य की दशाओं के बारे में ही माँगें प्रस्तुत करते हैं। वे श्रमिकों की दुरवस्था के मूल कारणों का विवेचन कर उस दिशा में कुछ करने को तैयार नहीं होते हैं। इस प्रवृत्ति के फलस्वरूप श्रमिक-संघ-आन्दोलन विशेष सफल नहीं हो पाते हैं। इसकी वजह यह है कि विद्यमान उत्पादन-शक्तियों तथा उत्पादन-सम्बन्धों के ढाँचे में परिवर्तन लाये बिना श्रम के शोषण को रोका नहीं जा सकता है।

economy (इकॉनॉमि) : अर्थव्यवस्था, किफायत।

अर्थशास्त्र में अर्थव्यवस्था से अभिप्राय किसी क्षेत्र या देश के समस्त उत्पादन तथा वित्तीय ढाँचे से है। यह वह व्यवस्था या प्रणाली है, जिसके द्वारा किसी स्थान के लोग अपनी आजीविका प्राप्त करते हैं। मनुष्य अपनी आजीविका प्राप्त करने के सिलसिले में तरह-तरह के उत्पादन एवं विनिमय-सम्बन्धी कार्य करते हैं, एक-दूसरे का हाथ बंटाते हैं तथा अनेक प्रकार की संस्थाओं से मदद लेते हैं। अर्थव्यवस्था इन्हीं सब क्रियाओं और संस्थाओं के संगठन का सामूहिक

नाम है, जिसके सहारे लोग अपना जीवन निर्वाह करते हैं। इस प्रकार किसी स्थान की अर्थव्यवस्था से अभिप्राय वहाँ के खेत, खानें, कल-कारखाने, दुकानें, परिवहन के साधन, स्कूल, कालेज, सरकारी व गैर-सरकारी दफ्तर आदि चल रही संस्थाओं से है जिनके सहारे वहाँ के लोग इच्छित वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन, विनिमय और उपभोग करके अपनी विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा करते हैं।

अर्थव्यवस्था के अनेक रूप या भेद होते हैं। कई आधार पर इसका वर्गीकरण किया जा सकता है, जैसे कि सरल और जटिल अर्थव्यवस्था, विकसित और अल्पविकसित अर्थव्यवस्था, पूँजीवादी और समाजवादी अर्थव्यवस्था आदि।

अंग्रेज़ी शब्द 'इकॉनॉमि' का प्रयोग सामान्यत: किफायत के अर्थ में किया जाता है; अर्थात् उपलब्ध संसाधनों का इस ढंग से प्रयोग कि इनसे अधिकतम सम्भव लाभ उठाया जा सके। आम बोलचाल में इस शब्द का इसी अर्थ में प्रयोग किया जाता है।

economy of high wages (इकॉनॉमि ऑफ हाइ वेजेज्) : ऊँची मजदूरी की किफायतें।

साधारणत: यह माना जाता है कि यदि मजदूरी की दर कम होगी, तो उत्पादन की लागत कम आयेगी; फलस्वरूप कम मजदूरी देनेवाले प्रतिष्ठान की प्रतियोगिता-क्षमता अच्छी होगी, जो मुनाफे की अपेक्षाकृत ऊँची दर में परिलक्षित होगी। इस विचार के पीछे यह निहित अवधारणा है कि श्रम की कार्य-कुशलता एक खास स्तर पर है और मजदूरी की दर का श्रम की कार्य-कुशल[ता] पर कोई द्रष्टव्य प्रभाव नहीं प[ड़ता] है।

इसके विपरीत ऊँची मजदूरी [की] मितव्ययिता की धारणा के अनुसार श्र[म] की कार्य-कुशलता उनके जीवन-स्तर [पर] निर्भर रहती है। ऊँची मजदूरी-दर [से] श्रम का जीवन-स्तर ऊँचा उठेगा। इ[स] प्रकार ऊँची मजदूरी देनेवाले प्रतिष्ठा[नों] में श्रम की उत्पादिता प्रति श्रमि[क] अपेक्षाकृत अधिक होगी। फलस्वरू[प] इन प्रतिष्ठानों की प्रतियोगिता क्षम[ता] सुधरेगी। इस प्रकार देखने में तो मज[-] दूरी की दर ऊँची होगी, परन्तु वास्त[व] में प्रति इकाई उत्पादन-लागत अपेक्षाकृ[त] तुलनात्मक या लाभ-प्रद होगी। इ[स] प्रकार कम मजदूरी देने की नीति [की] तुलना में इस नीति का दीर्घकालि[क] नतीजा वेहतर होता है। साथ ही साम[ा-] जिक दृष्टि से भी यह नीति श्रेष्ठतर है।

effective demand (इफेक्टिव डिमॉण्ड) : प्रभावी माँग।

माँग का अर्थ उपभोक्ताओं की इच्छाएँ हैं, जिनकी सन्तुष्टि के लिए [वे] अपनी आय का एक भाग खर्च करने [को] तैयार हों। इस प्रकार वे इच्छाएँ [या] आवश्यकताएँ, जिनके पीछे उपभोक्ता [की] मुद्रा खर्च करने की तत्परता तथा क्षम[ता] हो, प्रभावी या प्रभावकारी माँग कहला[ती] हैं।

समष्टिगत दृष्टिकोण से किसी [भी] अवधि-विशेष के समस्त उपभोग त[था] निवेश-व्यय को उस अवधि की प्रभा[व-] कारी माँग माना जायेगा। एक पूँजी[-] वादी अर्थव्यवस्था में यह लोगों की आ[य]

उपभोग तथा निवेश की प्रवृत्ति पर निर्भर रहती है । अगर मुद्रा के रूप में बचत रखने की प्रवृत्ति बढ़े, तो सम्पूर्ण प्रभावकारी माँग में कमी आयेगी। सम्पूर्ण प्रभावी माँग को अप्रत्यक्ष रूप से अर्थव्यवस्था के सारे उत्पादन के साधनों की माँग का स्रोत समझा जा सकता है । अतः इस प्रभावी माँग के कम होने पर उत्पादन-साधनों की माँग घटेगी और उनका रोजगार कम होगा। अर्थशास्त्र में हमेशा माँग से तात्पर्य प्रभावी माँग से होता है।

देखिए : demand
aggregate effective demand.

effective interest rate (इफेक्टिव इण्टरेस्ट रेट) : प्रभावी व्याज-दर।

व्याज की तय की गयी दर से भिन्न वह दर, जो वास्तव में कर्जदार को वहन करनी पड़े, प्रभावी व्याज-दर कहलाती है। व्याज की दर के अलावा ऋणदाता अन्य शर्त्तें भी थोप देते हैं या समय-समय पर पुनर्भुगतान देने पर व्याज में कुछ रियायत भी दे देते हैं। अतः वास्तविक व्याज-दर निर्धारित दर से भिन्न हो जाती है। देशी साहूकार किसानों को ऋण देकर व्याज के साथ ही प्रायः फसल खरीदने का पूर्वाधिकार प्राप्त कर लेते हैं। फलस्वरूप किसानों द्वारा दी जानेवाली प्रभावी व्याज-दर काफी बढ़ जाती है, क्योंकि ये महाजन किसानों को फसलों की उचित कीमत से नीची कीमत देते हैं।

effects of taxation (इफेक्ट्स ऑफ टैक्सेशन) : कराधान के प्रभाव।

कराधान के कारण मौद्रिक साधनों का निजी हाथों से राज्यकोष में हस्तान्तरण होता है। कराधान प्रत्यक्ष हो तो वह आय, सम्पत्ति, पूँजी आदि के आधार पर लगाया जाता है। यदि कराधान अप्रत्यक्ष हो, तो वह वस्तुओं के आधार पर होता है । सब प्रकार के करों से आर्थिक क्रियाओं पर प्रभाव पड़ता है। इन सब प्रभावों का अध्ययन करारोपण के निर्धारण के लिए आवश्यक है।

करारोपण के प्रभाव साधारणतः आय, उपभोग, बचत, निवेश, साधनों के आवण्टन, सापेक्षिक कीमतों, राजस्व, भुगतान-अधिशेष, आय तथा सम्पत्ति के वितरण, आर्थिक विकास तथा सामाजिक न्याय के दृष्टिकोण से आँके जाते हैं।

efficiency (एफिसियेन्सी) : दक्षता, कुशलता।

कुशलता के कई अर्थ हो सकते हैं। आर्थिक कुशलता से हमारा तात्पर्य एक आर्थिक प्रणाली या उसके विभिन्न अंगों की सर्वसाधारण के आर्थिक कल्याण बढ़ाने की क्षमता से है । इसमें कुशलता का सम्बन्ध समाज तथा उसके घटकों को अपने उद्देश्यों को पाने में सहायक बनाने की क्षमता से है। इसे आर्थिक व्यवस्था की कुशलता कह सकते हैं।

कुशलता का दूसरा अर्थ उत्पादन या तकनीकी कुशलता के रूप में साधनों की एक खास मात्रा द्वारा अधिकतम उत्पादन प्राप्त करने की क्षमता से है। इस अर्थ में कुशलता उत्पादन-लागत को न्यूनतम करने या उत्पादन को अधिकतम बनाने में है । उत्पादन के संसाधनों को लोगों की जरूरत के अनुसार बाँटना ताकि अधिकतम आवश्यकताओं की पूर्ति हो

सके, आवण्टन की कुशलता कहलायेगी।

कुशलता का अर्थ उत्पादन के साधनों की पृथक्-पृथक् उत्पादिता या उत्पादन-क्षमता के रूप में भी लिया जाता है। अन्तिम दोनों अर्थों में कुशलता मापनीय होती है तथा कुशलता के स्तर की विभिन्न देशों या अवधियों के बीच तुलना की जा सकती है। परन्तु पहले अर्थ में कुशलता एक मूल्य-सापेक्ष धारणा है, जो विभिन्न समाजों, वर्गों तथा व्यक्तियों के लिए अलग-अलग हो सकती है।

देखिए : welfare economics.

efficiency audit (एफिसियेन्सी ऑडिट्) : कुशलता-लेखा-परीक्षा।

लेखा-परीक्षा का एक विशेष रूप। इसमें केवल लेखे की सत्यता की जाँच तथा उसका सत्यापन ही नहीं किया जाता है, परन्तु विभिन्न कार्यों के बारे में निर्धारित दक्षता-मान से किसी प्रतिष्ठान के काम की तुलना भी की जाती है। इस प्रकार की लेखा-परीक्षा का ध्येय व्यय का सत्यापन तथा उसकी बजट-अनुरूपता की जाँच ही नहीं है, वरन् प्रतिष्ठान की कार्य-कुशलता का पता लगाना भी है। सार्वजनिक क्षेत्र के प्रतिष्ठानों में इस लेखा-परीक्षा का विशेष प्रचलन व महत्त्व है।

egalitarianism (इगैलिटैरियेनिज्म) : समतावाद।

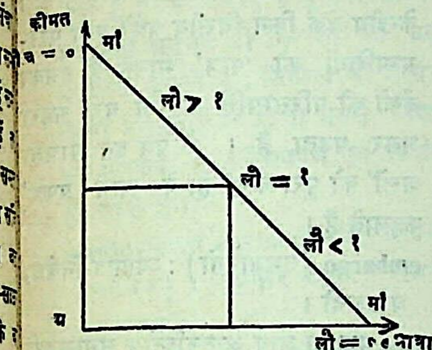
आर्थिक जीवन तथा आर्थिक प्रणालियों के बारे में मत-निर्धारण, आर्थिक प्रणालियों के तुलनात्मक अध्ययन तथा आर्थिक नीतियों के निर्धारण में प्रयुक्त एक मूल्य। इस धारणा का मूल आधार मनुष्य की मूलभूत समरूपता, उत्पादन तथा आर्थिक जीवन का सामाजिक और आर्थिक विषमताओं के अप तथा अनार्थिक प्रभाव हैं। समता अनुसार समाज के आर्थिक जीवन उसके विविध पहलुओं का संगठन-सं इस प्रकार होना चाहिए कि सारा समान रूप से लाभान्वित हों, उन्हें रूप से प्रयास तथा त्याग करने पड़ें उन्हें समान अधिकार हों। ऐसी स पूर्ण व्यवस्था अवसरों की समानता करेगी और सामाजिक उत्पादिता येगी। इस व्यवस्था में उत्पादन-सा का स्वामित्व तथा उनके प्रयोग के में नीति-निर्धारण सामूहिक साम प्रक्रियाओं द्वारा होगा तथा बाजार-नी प्रक्रिया का स्थान कम तथा बदला होगा। ऐसी समतापूर्ण समाज-व्यव कालान्तर में समाज के सब सदस्यों अपना सर्वांगीण विकास करने का प्रदान कर उनके बीच की विषमता खाई को समाप्त कर देगी। समाज इस ध्येय की प्राप्ति का वैज्ञानिक त है।

elasticity of demand (इलास्टि ऑफ डिमॉण्ड) : माँग-लोच।

माँग-नियम के अनुसार किसी की कीमत तथा उसकी माँग में वि परिवर्तन का सम्बन्ध होता है। फल रूप कीमत में वृद्धि से माँग में कमी कीमत में कमी से माँग में वृद्धि आने अपेक्षा की जाती है। माँग-लोच परिवर्तन की मात्रा की माप है। की लोच द्वारा यह पता चलता है कीमत में परिवर्तन का माँग पर वि प्रभाव पड़ता है। इसे मापने का

यह है :

$$\text{माँग-लोच} = \frac{\text{माँग की मात्रा में प्रतिशत परिवर्तन}}{\text{कीमत का प्रतिशत परिवर्तन}}$$



विभिन्न प्रकार की माँग-लोच को हम एक रेखाचित्र द्वारा दिखा सकते हैं। लोच शून्य होने पर माँग पूर्णतया वेलोच-दार तथा लोच अनन्त होने पर माँग पूर्ण-तया लोचदार कही जाती है। लोच एक से ज्यादा, एक से कम तथा एक होने पर माँग क्रमशः लोचदार, वेलोचदार तथा एकक लोचदार कहलाती है। माँग की लोच उपभोक्ता की आय, रुचि, आदतों, वस्तुओं के महत्त्व, प्रतिस्थानापन्न वस्तुओं की कीमत तथा उपलब्धि आदि पर निर्भर रहती है। कीमत के परिवर्तन के वाद अल्पकाल में माँग अपेक्षाकृत बेलोचदार तथा दीर्घकाल में अपेक्षाकृत लोचदार होती है। कीमतों के प्रशासनिक निर्धारण, करारोपण, कीमत-विभेद आदि मसलों में माँग की लोच का ज्ञान आवश्यक होता है।

elasticity of substitution (इलास्टि-सिटी ऑफ सबस्टीट्यूशन) : स्थानापति लोच।

स्थानापति लोच द्वारा एक वस्तु या उत्पादन के साधन का अन्य किसी वस्तु या साधन का स्थान ग्रहण करने की क्षमता का माप जाना जाता है। अगर कोई दो वस्तुएँ या साधन एक-दूसरे की जगह पूरी तरह से काम में लाये जा सकें, तो यह पूर्ण स्थानापति लोच का उदा-हरण होगा। इसके विपरीत यदि दो वस्तुएँ या साधन ऐसे हों कि वे एक-दूसरे की जगह पर कतई प्रतिस्थापित नहीं किये जा सकें, तो स्थानापति शून्य होगी।

वस्तुओं की स्थानापति लोच दो वस्तुओं की माँग की मात्रा में हुए आनु-पातिक परिवर्तन को उन दोनों वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिता में हुए आनु-पातिक परिवर्तन से विभाजित करके जाना जाता है। उत्पादन के साधनों की स्थानापति लोच दो साधनों की माँग की मात्रा में हुए आनुपातिक परिवर्तन को उन दोनों साधनों की सीमान्त उत्पादिता में हुए आनुपातिक परिवर्तन से विभाजित करके आँकी जाती है।

elasticity of supply (इलास्टिसिटी ऑफ सप्लाइ) : पूर्ति-लोच।

पूर्ति तथा कीमत के सम्बन्ध को मात्रात्मक रूप में देखने पर हमें पूर्ति-लोच का पता चलता है। पूर्ति-नियम के आधार पर यह ज्ञात होता है कि कीमत के परि-वर्तन के फलस्वरूप पूर्ति किस दिशा में परिवर्तित होती है। पूर्ति-लोच यह बताती है कि कीमत के घटने-बढ़ने से पूर्ति में कितना परिवर्तन आता है। यह अवधा-रणा माँग-लोच की अवधारणा से तुलनीय है। इसकी माप का सूत्र है :

पूर्ति-लोच = पूर्ति की मात्रा में प्रतिशत परिवर्तन / कीमत में प्रतिशत परिवर्तन

पूर्ति-लोच उत्पादन के साधनों की उपलब्धि, उनकी स्थानापत्ति, उनके पारस्परिक अनुपात, उत्पादक इकाइयों की कुशलता, कीमत के प्रभाव को दिखाने के लिए दी गयी अवधि आदि तत्त्वों से प्रभावित होती है।

elastic money supply (इलास्टिक मॅनी सप्लाइ) : लोचदार मुद्रा-पूर्ति।

अर्थव्यवस्था की मौद्रिक आवश्यकताओं के अनुसार परिवर्तित हो जानेवाली मुद्रा की पूर्ति लोचदार कहलाती है। सोने-चाँदी आदि धातुओं पर आधारित मुद्रा-प्रणाली में यह लोच मौद्रिक आवश्यकताओं से सम्बन्धित नहीं हो पाती है।

eligible paper (एलिजीबॅल पेपर) : पात्र प्रपत्र।

केन्द्रीय बैंक अन्तिम ऋणदाता की हैसियत से ऋण देते समय जिन वित्तीय प्रपत्रों (जैसे : हुण्डी, सरकारी हुण्डी आदि) को पार्श्विक के रूप में स्वीकार कर ले, वे पात्र प्रपत्र कहलाते हैं।

देखिए : eligibility condition.

eligibility conditions (एलिजीबिलिटी कण्डीशन्स) : पात्रता की शर्तें।

किसी देश का केन्द्रीय बैंक वहाँ के वाणिज्य बैंकों तथा मुद्रा-बाजार का अन्तिम ऋणदाता होता है। इस अन्तिम ऋणदाता-सम्बन्धी कार्य निभाने में केन्द्रीय बैंक वाणिज्य बैंकों को कुछ विशेष प्रकार की पार्श्विक प्रतिभूतियों के आधार पर ऋण देता है। इस पार्श्विक की भूमिका में केवल उच्च कोटि के वित्तीय पत्र (जैसे : सरकारी प्रतिभूति, सरकारी हुण्डियाँ, सुविनिमेय हुण्डियाँ आदि) स्वीकार किये जाते हैं। इस प्रकार के बैंक द्वारा स्वीकार किये जानेवाले प्रपत्र पात्रता की शर्तें पूरी करते। केन्द्रीय बैंक किन वित्तीय पत्रों तथा सम्पत्तियों को 'पात्र' मानते हैं, वैंकों की परिसम्पत्ति-संरचना पर असर पड़ता है। जो पत्र इन शर्तों को पूरा करते हैं, वे 'पात्र' कहलाते हैं।

embargo (एम्बारगो) : व्यापार-निषेध, घाटबन्दी।

युद्ध या अन्य अन्तर्राष्ट्रीय सम के कारण जब किसी देश के व्यापार के प्रवाह को कानून, आपसी मति, सैन्य शक्ति आदि द्वारा रोक जाता है, तो इसे व्यापार-निषेध घाटबन्दी कहते हैं। यह आंशिक या हो सकती है। यह द्विपक्षीय, बहुपक्षीय सर्वपक्षीय हो सकती है। अन्तर कानून तथा समझौतों द्वारा घाटब नियम, सीमा तथा अवधि तय किये हैं। एक गैर-स्वावलम्बी अर्थव्य घाटबन्दी के कारण अस्त-व्यस्त हो है। परन्तु कभी-कभी वास्तविक वन्दी या सम्भाव्य घाटवन्दी के एक अर्थव्यवस्था आत्म-निर्भरता की में अग्रसर हो सकती है।

empiricism (एम्पिरिसिज़्म) : भववाद।

अर्थशास्त्र की सैद्धान्तिक पद्ध सन्दर्भ में प्रचलित मत, जिसके समस्त ज्ञान का आधार अनुभव ही है। कट्टर अनुभववादी तो ज्ञात सिद्धान्तों के और किसी आधार

स्वीकार ही नहीं करते । अनेक संस्थावादी अर्थशास्त्री तथा जर्मनी के ऐतिहासिक मतवादियों के अनुसार यह अवधारणा आर्थिक सिद्धान्तों पर भी लागू होती है । इस विचार के पृष्टपोषक निगमन तथा अनुभव की भिन्नता को वढ़ा-चढ़ाकर वताते हैं। निगमन की आधारशिला अनुभवाश्रित हो तो उससे निकाले गये निष्कर्ष भी औचित्यपूर्ण एवं तर्कसंगत हो सकते हैं।

employment exchange (एम्प्लोयमेण्ट एक्सचेंज) : रोजगार दफ्तर, रोजगार कार्यालय ।

वह सरकारी या सार्वजनिक कार्यालय, जहाँ पर काम पाने के इच्छुक वेरोजगार लोग अपना नाम अंकित कराते हैं और जहाँ देश के रोजगार-अवसरों की सूचना रहती है । यह दफ्तर वेरोजगारों को उनकी योग्यता के अनुरूप कामों पर लगाने की कोशिश करता है। इस तरह घर्षण या सूचनाभावजन्य वेरोजगारी मिटाने एवं वेरोजगारी की मात्रा तथा स्वरूप को जानने में सहायता मिलती है। कई देशों में नये काम की प्राप्ति के लिए रोजगार दफ्तर की पंजीयन-संख्या देना अनिवार्य कर दिया गया है। एक मिश्रित अर्थव्यवस्था में इस तरीके को ज्यादा कारगर बनाने के लिए निजी क्षेत्र में रोजगार पाने के लिए भी रोजगार दफ्तर का पंजीयन नम्बर देना जरूरी कर देना चाहिए ।

स्पष्ट है कि नियोजकों के लिए भी यह अनिवार्य करना पड़ेगा कि वे नियुक्तियाँ रोजगार कार्यालय के जरिये ही करें। रोजगार दफ्तर के चालू रजिस्टर में पंजीकृत नामों की संख्या वेकारी का सर्वथा सही माप नहीं है, क्योंकि सम्भव है कि कुछ वेकार लोग नाम न भी लिखायें और कुछ काम में लगे लोग वेहतर नौकरी पाने के लिए अपना नाम इस दफ्तर में दर्ज करा लें ।

employment function (एम्प्लोयमेण्ट फन्कशन) : रोजगार फलन ।

रोजगार फलन उन तत्त्वों को वताता है, जो किसी अर्थव्यवस्था में रोजगार के स्तर का निर्धारण करते हैं। अर्थशास्त्र में केन्स के पहले इस फलन के वारे में विवेचन नहीं होता था, क्योंकि तब ऐसा माना जाता था कि प्रत्येक अर्थव्यवस्था में प्रायः पूर्ण रोजगार की स्थिति पायी जाती है। परन्तु केन्स ने अल्प-रोजगार और वेरोजगारी की सम्भावना भी साबित की । केन्स के मतानुसार रोजगार का स्तर सम्पूर्ण प्रभावी माँग द्वारा निर्धारित होता है। सम्पूर्ण प्रभावी माँग का एक तत्त्व (उपभोग व्यय) अल्पकाल में स्थिर रहता हैं । अतः रोजगार के स्तर के परिवर्तन निवेश-व्यय के परिवर्तनों पर निर्भर रहते हैं।

एक अल्प-विकसित अर्थव्यवस्था में रोजगार केवल प्रभावी माँग पर निर्भर नहीं रहता है । वहाँ पूंजी-निर्माण की मात्रा तथा दर, जनसंख्या-वृद्धि की दर, औद्योगिक विकास तथा कृषि के आधुनिकीकरण की दर आदि भी रोजगार के स्तर के निर्धारण में महत्त्वपूर्ण हाथ रखते हैं।

देखिए : keynesion economics
full employment
say's law of markets
unemployment.

employment multiplier (एम्प्लोयमेण्ट मल्टीप्लायर) : रोजगार गुणक।

निवेश के फलस्वरूप आय में कई गुना वृद्धि होती है। साथ-साथ रोजगार भी बढ़ता है। यह रोजगार-वृद्धि निवेश गुणक, उत्पादन के तरीकों की श्रम-प्रधानता आदि पर निर्भर करता है। श्रम की पूर्ति की स्थिति का भी सीधा प्रभाव रोजगार गुणक पर पड़ता है।

देखिए : multiplier.

enclosure movement (एन्क्लोजर मूवमेण्ट) बाड़बन्दी आन्दोलन।

सोलहवीं शताब्दी से लेकर अठारहवीं शताब्दी तक इंगलैण्ड में खेतों, चरागाहों तथा ऊसर जमीनों की बाड़बन्दी का आन्दोलन चला। इस काम के लिए राजनीतिक अनुमति दी गयी थी। अठारहवीं शताब्दी में इस अभियान ने विशेष बल पकड़ा। इस अभियान से ग्रामीण इलाकों के गरीबों को पशुपालन करने से वंचित होना पड़ा। छोटे तथा गरीब किसानों को बड़े भूमिपतियों के यहाँ मजदूरी करने को बाध्य होना पड़ा। परन्तु खेतों का आकार बढ़ाकर तथा खेती की तकनीकों में सुधार सम्भव कर बाड़बन्दी-आन्दोलन ब्रिटेन की कृषि-क्रान्ति का कारण बना।

endogenous variable (एण्डोजिनस वैरियेबॅल) : अन्तर्जात चल।

वह चल, जिसके मूल्य का निर्धारण प्ररूप के अन्तर्गत कार्यरत शक्तियों द्वारा होता है। जैसे कपड़े के बाज़ार के प्ररूप में कपड़े की कीमतों का निर्धारण या मुद्रा-बाज़ार के प्ररूप में ब्याज की दर का निर्धारण प्ररूप की आन्तरिक शक्तियों द्वारा होता है। माँग तथा पूर्ति, तरलता अधिमान आदि इन प्ररूपों के अन्तर्गत चल हैं।

देखिए : exogenous variables.

endorsement (एण्डोर्समेण्ट) : अनुमोदन।

किसी प्रपत्र पर (साधारणतः उसकी पीठ पर) किये गये हस्ताक्षर, जिनके कारण उसका स्वामित्व स्थानान्तरित होता है, अनुमोदन कहलाते हैं। हुण्डी, बिल ऑफ एक्सचेंज, चेक आदि प्रपत्रों का स्वामित्व अनुमोदन द्वारा हस्तान्तरित किया जाता है।

endowment assurance (एण्डोवमेण्ट ऐस्योरेन्स) : बन्दोबस्ती बीमा।

यह जीवन बीमा तथा निवेश का सम्मिश्रण है, जिसे लोग भविष्य की किसी वित्तीय जरूरत को पूरा करने के लिए (जैसे : वृद्धावस्था, बच्चों की शिक्षा और शादी) खरीदते हैं।

end product (एण्ड प्रॉडक्ट): अन्तिम उत्पाद।

उत्पादन का उद्देश्य आवश्यकताओं की पूर्ति करना है। जो वस्तुएँ या सेवाएं प्रत्यक्ष रूप से उपभोक्ताओं की आवश्यकताएँ पूरी करती हैं और उपभोक्ता के हाथों में पहुँचने के बाद और किसी आर्थिक लेन-देन का विषय नहीं बनती हैं, 'अन्तिम उत्पाद' समझी जाती हैं। उत्पादन-प्रक्रिया के अनेक चरण होते हैं। उत्पादन के साधन इन विभिन्न चरणों से होते हुए जब उस स्थिति में पहुँच जाते हैं, जहाँ वे उपभोक्ता की आवश्यकता पूरी करते हैं और किसी उत्पादन के अगले चरण में नहीं जाते हैं, तब वे अन्तिम उत्पाद कहलाते हैं। यह वह चरण है, जहाँ साधनों की

आर्थिक यात्रा की आखिरी मंजिल (उपभोक्ता को प्राप्ति) तय हो जाती है। वैसे तो सारी उत्पादन-प्रक्रिया का आर्थिक कल्याण से सम्बन्ध है, परन्तु सबसे अधिक प्रत्यक्ष प्रभाव आर्थिक कल्याण पर अन्तिम उत्पाद की मात्रा का पड़ता है।

engel's law (एंजल्'स लॉ) : एंजल का नियम।

एंजल नामक अर्थशास्त्री ने विभिन्न परिवारों के बजटों का अध्ययन करके कुछ महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले। उनके अनुसार ज्यों-ज्यों किसी परिवार की आय बढ़ती है, खाद्य-पदार्थों पर किये गये व्यय का अनुपात कम होता जाता है। आगमन विधि के आधार पर प्राप्त यह एक महत्त्वपूर्ण परिकल्पना है, जिसके विपरीत कोई महत्त्वपूर्ण दृष्टान्त नहीं मिल पाया है। कम आयवाले परिवार प्राय: अपनी आय का अपेक्षाकृत बड़ा और अधिक आयवाले परिवार अपेक्षाकृत कम हिस्सा खाद्य-पदार्थों पर खर्च करते पाये जाते हैं। आर्थिक नीति के निर्धारण में इस नियम से बहुत सहायता मिलती है।

engrossment (एन्ग्रॉसमेण्ट) : खरीदखोरी।

व्यापारियों द्वारा किसी वस्तु की कुल पूर्ति का एक बड़ा भाग खरीदकर उस वस्तु की कीमत पर मुनाफा बढ़ाने के लिए अधिकार प्राप्त करना खरीदखोरी कहलाता है। यह एक प्रकार की अनुचित व्यापारिक क्रिया है, जिसका उद्देश्य कृत्रिम रूप से कीमत बढ़ाकर क्रेताओं का शोषण करना है।

enterprise (इण्टरप्राइज) : उद्यम।

उत्पादन का एक साधन। उत्पादन के साधनों के सर्वाधिक प्रचलित वर्गीकरण के अनुसार यह वह साधन है जो अन्य साधनों को एकसाथ जुटाता है और इस प्रयास के उद्देश्यों को निर्धारित कर तद्जनित जोखिम तथा अनिश्चितता का सामना करता है। यदि वास्तविकता इन निर्णयों के अनुकूल बैठती है, तो उद्यमी को मुनाफा होता है और प्रतिकूल बैठने पर हानि।

पूँजीवादी अर्थ-प्रणाली में निजी व्यक्तियों द्वारा इस साधन का कार्य निभाना अर्थव्यवस्था के संचालन के लिए आवश्यक है। इन्हीं के आधार पर पूंजीवादी आर्थिक विकास की प्रक्रिया चलती है। समाजवादी अर्थप्रणाली में यह कार्य सामाजिक स्तर पर किया जाता है।

entertainment duty (एण्टरटेन्मेण्ट ड्यूटी) : मनोरंजन-कर।

विभिन्न प्रकार के मनोरंजन के साधनों (जैसे : सिनेमा, नाटक, सर्कस, खेल, प्रदर्शनी आदि) के प्रवेश-शुल्क पर लगाया गया कर 'मनोरंजन-कर' कहलाता है। साधारणत: यह एक यथाकीमत कर होता है। ऊँची प्रवेश-दरों पर अनुपात से ज्यादा और नीची दरों पर अनुपात से कम दर पर लगाकर इस कर को प्रगतिशील बनाया जा सकता है।

entrepot trade (एण्ट्रिपॉट ट्रेड) : पुनर्निर्यात व्यापार।

कुछ स्थान या बन्दरगाह अपनी भौगोलिक तथा व्यापारिक स्थिति के कारण बहुत-से देशों से आयात करके आयातित वस्तुओं का निर्यात करते हैं। वे एक तरह के अन्तर्राष्ट्रीय वितरण-केन्द्र का रूप ले लेते हैं।

लन्दन, सिंगापुर, रोटरडम आदि इस तरह के केन्द्र हैं। यदि पुनर्निर्मिति के लिए मँगाये गये सामान पर आयात-शुल्क चुकाना पड़ता है, तो यह शुल्क निर्यात करते समय सरकार से वापिस वसूला जा सकता है। इस तरह की वसूली 'शुल्क वापिसी' कहलाती है।

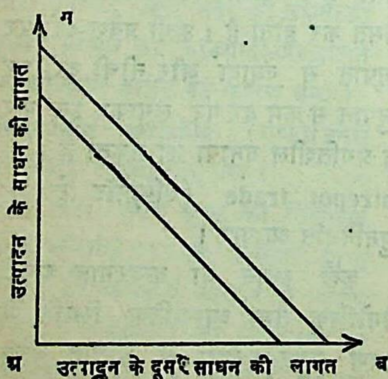
entrepreneur (ऑन्तर्प्रेनॅर) : उद्यम-कर्त्ता।

उत्पादन के साधन उद्यम को सम्भरण करनेवाला व्यक्ति उद्यमी या उद्यम-कर्त्ता कहलाता है है।

देखिए : enterprise.

equal cost lines (इक्वल कॉस्ट लाइन्स) : समान लागत-रेखाएँ।

आर्थिक विश्लेषण में प्रयुक्त एक रेखाचित्र, जिसमें दोनों अक्षों पर एक-एक उत्पादन-साधन की लागत दिखायी जाती है और प्रत्येक लेखा उत्पादन की मात्रा के एक परिसर के लिए लगाये गये उत्पादन-साधनों की समान कुल लागत को दर्शाती है।



equality of opportunity (इक्वलिटी ऑफ ऑपोर्चुनिटी) : अवसर की समानता।

समतावाद का एक रूप, जिसके अ सार समानता का अर्थ प्रत्येक व्यक्ति प्रयत्न करने, प्रगति करने और आर्थि जीवन में भाग लेने के अवसर समान से प्रदान करनेवाली व्यवस्था की स्था है। इस विचार के अनुसार शिक्षा, प्र क्षण, साधनों पर अधिकार, व्यवसाय चयन आदि मामलों में हर व्यक्ति समकक्ष स्तर की सुविधाएँ प्रदान क की व्यवस्था होनी चाहिए। आधुनि आर्थिक जीवन में उत्पादन - साधनों केन्द्रीकरण तथा आर्थिक जीवन की प स्परिक निर्भरता के कारण अवसरों समानता साधनों का विभिन्न व्यक्तियों समान रूप से पुनर्वितरण करके न वरन् सामाजिक स्वामित्व स्थापित कर प्रदान की जा सकती है। आर्थिक अ सरों की समानता के साथ राजनीति तथा सामाजिक क्षेत्र में भी समान अ सरों का निर्माण सरल तथा तर्कसंगत हो जाता है, परन्तु यह कोई स्वतः प्र चालित प्रक्रिया नहीं है। बिना आर्थि अवसरों की समानता के अन्य किस्म समानताएँ कोरी कागजी बात ही जाती है। अवसरों की समानता से तत्क पूर्ण समानता (आय, जीवन-स्तर, क्ष आदि की) स्थापित नहीं हो जाती परन्तु इस दिशा में दीर्घकालिक उ लब्धियों की प्रक्रिया शुरू होने की अपे की जा सकती है।

यह समानता की नीति का व्या हारिक, तर्क-सम्मत तथा प्रेरणा-पो रूप है। आर्थिक क्षेत्र में आय, सम्प क्षमता तथा दक्षता प्राप्त करने के अव (जैसे : शिक्षा, उपभोग-स्तर, सुविधा

आराम, आर्थिक-सामाजिक तथा राजनीतिक अधिकार) सब लोगों को समान रूप से उपलब्ध कराने की व्यवस्था 'अवसर की समानता'-पूर्ण व्यवस्था है। उत्पादन-शक्तियों के चरम या विपुलता-प्रदायक स्तर के प्राप्त होने से पहले ऐसी समानतापूर्ण नीति न केवल लोगों को उत्पादन-शक्तियों के विकास की प्रेरणा देती है, अपितु इस कार्य के लिए जरूरी क्षमताएँ भी प्रदान करती हैं। न्यायपूर्ण समाज-रचना का अर्थ काफी अंशों तक अवसर की समानता प्रदान करना है।

इस नीति का आधार मनुष्य की जन्मजात क्षमताओं की मूलभूत समानता तथा जन्मोपरान्त परिस्थितियों द्वारा उत्पन्न विषमताओं की समाप्ति है। अस्थायी तदर्थ नीतियाँ इस उद्देश्य की आंशिक पूर्ति ही कर पायेंगी। इस बीच कई निहित स्वार्थ इन समतावादी नीतियों के विरोध में उठ खड़े हो सकते हैं। वैज्ञानिक समाजवाद के आधार पर समाज का पुनर्संगठन तथा इस व्यवस्था के अन्तर्विरोध का सामाजिक, सचेतन उद्देश्यों और प्रक्रियाओं के आधार पर सतत निराकरण अवसर-समानता के ठोस, सारवान तथा स्थायी आधार होते हैं।

equality of taxation (इक्वलिटी ऑफ टेक्सेशन) : कराधान समता।

इस पद का प्रयोग एडम स्मिथ ने किया। इससे तात्पर्य यह है कि समाज के विभिन्न सदस्यों पर करारोपण समान रूप से, अर्थात् उनकी आय के अनुपात में किया जाना चाहिए।

देखिए : canons of taxation.

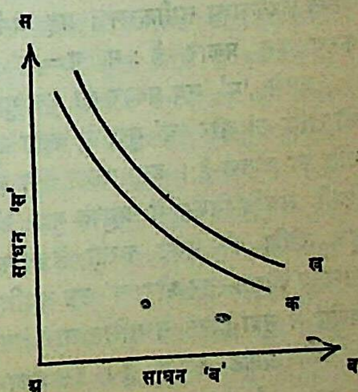
equal pay for equal work (इक्वल पे फॉर इक्वल वर्क) : समान कार्य-समान वेतन।

न्यायपूर्ण मजदूरी-नीति का एक रूप। इस नीति के अनुसार श्रमिकों की कार्य-क्षमता ही मजदूरी-दर के निर्धारण का का आधार होना चाहिए। समान कार्य करनेवाले सब लोगों को जाति, रंग, वर्ण, राष्ट्रीयता, लिंग, भाषा आदि विभेदों के बावजूद समान मजदूरी मिलनी चाहिए। यदि यह नीति केवल मजदूरी-दर पर ही लागू की जाये और रोजगार देने की नीति पर नहीं, तो इस नीति का विपरीत प्रभाव ही होगा।

equal product curve (इक्वल प्रॉडक्ट कॅर्व) : समोत्पाद वक्र।

वह वक्र जो एक द्वि-अक्षीय रेखाचित्र में उत्पादन के दो साधनों की विभिन्न मात्राओं के प्रयोग से प्राप्त किसी वस्तु के उत्पादन की एक-सी मात्रा को दर्शाता है।

निम्न रेखाचित्र में इसका उदाहरण दिया गया है।



इस वक्र से इन दो साधनों की एक

विशेष वस्तु के उत्पादन में प्रतिस्थापन की दर मालूम की जा सकती है।

देखिए : isoquants.

equal sacrifice theory (इक्वल सैक्रीफाइस थिअॅरी) : समान त्याग-सिद्धान्त।

कराधान का एक सिद्धान्त, जिसके अनुसार कर इस तरह के लगाने चाहिए कि सब नागरिकों को समान रूप से त्याग करना पड़े। कर की मात्रा को त्याग का माप माना जा सकता है। परन्तु इससे करारोपण के सारे प्रभाव स्पष्ट नहीं होते हैं। अतः त्याग का कोई समुचित माप खोज पाना एक कठिन काम नजर आता है। फिर, विभिन्न व्यक्तियों द्वारा किये गये त्याग की तुलना तो और भी कठिन है, क्योंकि यह कर वहन करने की क्षमता पर निर्भर रहता है, जिसका माप कर पाना बहुत कठिन है। अतः करारोपण के इस सिद्धान्त को व्यवहार्य मानना बहुत कठिन है।

equation of exchange (इक्वेशन ऑफ एक्सचेंज) : विनिमय समीकरण।

मुद्रा के मात्रिक सिद्धान्त को अभिव्यक्त करनेवाला समीकरण। यह समीकरण इस प्रकार है : म च=क ल

इसमें 'म' सब प्रकार की कुल मुद्रा की राशि का और 'च' मुद्रा के चलन की गति का द्योतक है। इस प्रकार 'म च' किसी अवधि-विशेष में प्रयुक्त मुद्रा की कुल राशि को प्रकट करता है। 'क' सामान्य कीमत-स्तर और 'ल' उस अवधि-विशेष में मुद्रा द्वारा संचालित सारे लेन-देन को प्रकट करता है। इस प्रकार 'क ल' अर्थ-व्यवस्था के किसी खास अवधि में हुए लेन-देन की कुल मौद्रिक मात्रा को प्रकट करता है। इस तरह विनिमय का समीकरण सारी अर्थ-व्यवस्था के मौद्रिक लेन-देन के दोनों पक्षों (खरीद तथा बिक्री) की अनिवार्य समानता को सामने लाता है।

'च' तथा 'ल' को अल्प-काल में साधारणतः अपरिवर्तित मानने पर इस समीकरण द्वारा हम साधारण कीमत-स्तर 'क' तथा मुद्रा की कुल राशि 'म' में प्रत्यक्ष परिवर्तन का सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं। यही मुद्रा की मात्रा का सिद्धान्त है, जिसे इरविंग फिशर-जैसे अर्थशास्त्रियों ने प्रतिपादित किया। 'म', 'च', 'क' तथा 'ल' की गणना में अनेक अवधारणात्मक तथा सांख्यिकीय कठिनाइयाँ हैं। 'म' तथा 'क' का सम्बन्ध भी इतना सीधा और सरल नहीं है। केन्स के सिद्धान्तों ने इस सम्बन्ध को एक विशेष स्थिति में लागू माना तथा मुद्रा की मात्रा तथा साधारण कीमत-स्तर के सामान्य सम्बन्धों को स्पष्ट किया।

equilibrium (इक्विलिब्रियम) : सन्तुलन।

आर्थिक ताकतों के पारस्परिक सामंजस्य की वह स्थिति, जिस पर पहुँचने के बाद आर्थिक शक्तियाँ यथावत् बनी रहती हैं और उनके परिवर्तित होने की प्रेरणाएँ और प्रवृत्तियाँ समाप्त हो जाती हैं। उदाहरण के लिए, किसी वस्तु या उत्पादन के साधन की माँग तथा पूर्ति की शक्तियाँ एक कीमत पर समतुल्य हो जाती हैं। ऐसा होने पर पूर्तिकर्ता दी हुई परिस्थितियों में अधिकतम लाभ तथा उपभोक्ता अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त

करते हैं। फलस्वरूप माँग तथा पूर्ति यथावत् रहेंगी और कीमत भी स्थिर रहेगी। इसी प्रकार एक फर्म, उद्योग, अर्थव्यवस्था की राष्ट्रीय आय, रोजगार के स्तर आदि का सन्तुलन भी उनकी परिवर्तनकारी शक्तियों के बदलाव की प्रेरणा तथा प्रवृत्ति को खत्म कर देता है।

कई बार यह सन्तुलन केवल अल्पकाल में बना रहता है और दीर्घकालीन परिवर्तनकारी ताकतें काम करती रहती हैं। इस प्रकार सन्तुलन के आवधिक रूप अल्पकालिक तथा दीर्घकालिक सन्तुलन के रूप में प्रकट होते हैं। जब यह सन्तुलन केवल कुछ तत्त्वों तक ही सीमित रहता है, तब इसे 'आंशिक सन्तुलन' और समस्त तत्त्वों से सम्बन्धित रहने पर 'सामान्य सन्तुलन' कहते हैं। सन्तुलन स्थापित करनेवाली ताकतों के किन्हीं कारणों से बदलने पर अगर ऐसी प्रवृत्ति प्रकाश में आये जो फिर वही पुराना सन्तुलन स्थापित कर दे, तो ऐसा सन्तुलन स्थायित्वपूर्ण कहलायेगा। इसके विपरीत एक बार गतिमय होने पर सन्तुलन के पीछे छिपी ताकतें यदि किसी नये सन्तुलन पर ही पहुँचें, तो उसे हम स्थायित्वहीन सन्तुलन कहेंगे।

equilibrium price (इक्विलिब्रियम प्राइस): सन्तुलन-कीमत।

वह कीमत, जिस पर किसी वस्तु की माँग की मात्रा पूर्ति की मात्रा के बिल्कुल बराबर होती है। यह वह कीमत है, जिस पर बाजार सन्तुलन की स्थिति में होता है।

देखिए: market price
price system.

equi-marginal returns (इक्वी-मार्जिनल रिटर्न्स): सम-सीमान्त प्रतिफल।

अर्थशास्त्र में एक बहुत महत्त्वपूर्ण समस्या है संसाधनों के सर्वोत्तम आवण्टन की। लाभ की प्रेरणा से परिचालित पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में इन संसाधनों के आवण्टन सम्बन्धी निर्णय निजी उद्यमकर्त्ताओं द्वारा लिये जाते हैं। संसाधनों के बहुत-से वैकल्पिक प्रयोग होते हैं। इन संसाधनों का सन्तुलित या सर्वोत्तम वितरण तब प्राप्त होता है, जबकि संसाधन के प्रत्येक प्रयोग में उसका सीमान्त प्रतिफल समान हो। इस स्थिति को सम-सीमान्त प्रतिफल की स्थिति कहते हैं।

जब प्रतिफल को निजी लाभ के स्थान पर समाजिक प्रतिफल के रूप में लिया जाये, तब यही सम-सीमान्त प्रतिफल का सिद्धान्त समाजिक दृष्टिकोण से और समाजवादी अर्थव्यवस्था में भी लागू किया जा सकता है। कल्याणमूलक अर्थशास्त्र का यह एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त या प्रमेय है।

equi-marginal utility (इक्वी-मार्जिनल युटिलिटी): सम-सीमान्त उपयोगिता।

उपभोक्ता की सन्तुष्टि अधिकतम करने के उद्देश्य को पूरा करने के सम्बन्ध में प्रतिपादित प्रमेय। उपभोक्ता को अपने सम्पूर्ण व्यय से अधिकतम उपयोगिता तब प्राप्त होगी, जब वह हर वस्तु पर किये अपने व्यय को इस प्रकार निर्धारित करे कि प्रत्येक वस्तु की सीमान्त उपयोगिता और उस वस्तु की कीमत बराबर हो। इस अवस्था में यदि उपभोक्ता एक वस्तु पर व्यय कम करता है, तो उसकी सीमान्त उपयोगिता में वृद्धि उसकी सीमान्त उप-

योगिता में हुई कमी से कम होगी तथा वह अधिकतम उपयोगिता की स्थिति से च्युत हो जायेगा। इस प्रमेय को इस प्रकार भी प्रकट किया जा सकता है कि उपभोक्ता अपने बजट को इस प्रकार तय करता है कि प्रत्येक वस्तु पर खर्च की गयी मुद्रा की आखिरी इकाई से समान सीमान्त उपयोगिता प्राप्त हो।

equity (इक्विटी): साम्यकता, समानता।

आर्थिक नीति, विशेषत: करारोपण, की एक कसौटी जो सामाजिक न्याय या समता से सम्बन्धित है। सामान्य तौर पर आर्थिक नीति के इस निकष के आधार पर नीति-निर्धारण में विभिन्न व्यक्तियों तथा वर्गों के बीच आय, सम्पत्ति तथा अवसर की समानता को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। प्राय: 'साम्यकता' के निकष का कुशलता के निकष के साथ विरोध बताया जाता है। तर्क यह दिया जाता है कि एक पूंजीवादी अर्थ-प्रणाली में साम्यकता की कसौटी पर खरी उतरी आर्थिक नीतियाँ कुशलता के दृष्टिकोण से हल्की पड़ जाती हैं। यह विरोध वस्तुत: इस बात पर निर्भर करता है कि इन कसौटियों के लागू करने में अल्पकालिक दृष्टिकोण अपनाया जाता है या दीर्घकालिक। मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि दीर्घकाल में यह विरोध कायम नहीं रहता।

व्यवहार में यह समता किस रूप में परिलक्षित हो, यह एक टेढ़ा प्रश्न है। करारोपण में समता साधारणत: प्रगतिशील कर-नीति के रूप में प्रकट होती है। समता का अर्थ ही नहीं, बल्कि उसका व्यवहार में माप भी आदर्श-निरूपण पर निर्भर रहता है।

equity capital (इक्विटी कैंपिटल): इक्विटी पूँजी।

संयुक्त पूँजी प्रणाली की कम्पनियाँ शेयर बेचकर जो पूँजी प्राप्त करती हैं, उसे इक्विटी पूँजी कहते हैं। इस पूँजी पर निर्धारित दर से व्याज नहीं चुकाया जाता, बल्कि पूँजी के मालिक लाभ-हानि में हिस्सा बँटाते हैं।

देखिए : joint stock company
share capital
shares.

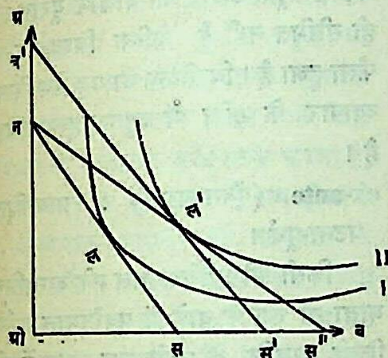
equivalent variatian (इक्विवेलेण्ट वैरियेशन): समतुल्य परिवर्तन।

उपभोक्ता की माँग के अनधिमान-वक्र-विवेचन में माँग की मात्रा पर कीमत-परिवर्तन के प्रभाव का अध्ययन आय-प्रभाव तथा प्रतिस्थापन-प्रभाव के रूप में किया जाता है। कीमत-परिवर्तन के इन दोनों प्रभावों को अनधिमान-चित्र पर अलग-अलग दिखाने के लिए समतुल्य परिवर्तन की विधि का प्रयोग किया जाता है।

किसी वस्तु की कीमत घटने से उपभोक्ता की वास्तविक आय बढ़ती है। यद्यपि उपभोक्ता की मुद्रा-आय अपरिवर्तित रहती है, तथापि वह वास्तविक आय बढ़ने के कारण अपने उपभोग-स्तर में सामान्य रूप से वृद्धि कर सकता है। इस बात को इस तरह से और अधिक स्पष्ट किया जा सकता है कि मान लीजिए, कीमतें तो स्थिर हैं, परन्तु कीमत घटने से वास्तविक आय में जितनी वृद्धि हुई है उसके बराबर वृद्धि उपभोक्ता को मुद्रा-आय में हुई है। तब अपरिवर्तित कीमतों पर वह अपनी बढ़ी आय खर्च करके अपना उपभोग-स्तर बढ़ायेगा। अर्थात् आय में वृद्धि चाहे मौद्रिक

रूप में हो या कीमत घटने के कारण वास्तविक रूप में, उपभोक्ता एक ऊँचे अनधिमान वक्र पर पहुँच जाता है (कीमतों के स्थिर रहते हुए भी)। कीमत में कमी के एवज में जो मुद्रा-आय में वृद्धि की कल्पना की जाती है, आय के इस परिवर्तन को समतुल्य परिवर्तन कहते हैं।

एक रेखाचित्र द्वारा यह अवधारणा स्पष्ट की जा सकती है।



ऊपर के चित्र में उपभोक्ता 'ब' वस्तु की कीमत कम होने पर ल से ल' विन्दु, अर्थात् पहले से दूसरे अनधिमान-वक्र पर पहुंचता है। उसकी स्थिति में आयें इस सुधार को इस तरह भी व्यक्त किया जा सकता है कि यदि कीमतें अपरिवर्तित रहतीं और उसकी आय 'ब' के रूप में ओ-न से बढ़कर ओ-न' हो जाती (अर्थात् 'अ' के रूप में ओ-स से ओ-स' हो जाती), तो भी उपभोक्ता ल से ल' की स्थिति में पहुँचता। अर्थात् न-न' उपभोक्ता की आय में हुआ समतुल्य परिवर्तन है, जिससे वह कीमत घटने से बढ़ी वास्तविक आय के बराबर सन्तुष्टि प्राप्त करता है।

ergonomics (एर्गोनॉमिक्स) : श्रमिक दक्षताशास्त्र।

श्रमिकों की कुशलता का अध्ययन। बहुधा यह अध्ययन प्रवन्ध विज्ञान के साथ किया जाता है।

escalator clause (एस्केलेटर क्लॉज़): स्वत: समायोजन धारा।

किसी दीर्घावधि समझौते में की गयी वह व्यवस्था, जिसके अनुसार किसी वस्तु या सम्पत्ति की कीमत या किराया निश्चित अवधि के वाद एक निश्चित अनुपात में या एक निश्चित सूत्र के अनुसार वढ़ या घट जाता है, स्वत: समायोजन धारा कहलाती है।

escheat (इस्चीट): राजगामी सम्पत्ति।

जव कोई व्यक्ति विना कोई उत्तराधिकारी के या दूर का सम्बन्धी छोड़े बिना मर जाता है, तब उस व्यक्ति की सम्पत्ति सरकार द्वारा ग्रहण कर ली जाती है। ऐसी सम्पत्ति राजगामी सम्पत्ति कहलाती है।

establishment charges (इस्टेब्लिशमेंट चार्जेज़) : प्रतिष्ठान-व्यय।

एक प्रकार की स्थायी लागत जो व्यवसाय के उत्पादन-स्तर से, कम-से-कम अल्पकाल में, अप्रभावित रहती है। किराया, भवन की लागत, स्थायी कर्मचारियों का वेतन, मशीन, फर्नीचर आदि की लागत प्रतिष्ठान-व्यय के उदाहरण हैं।

estate agent (इस्टेट एजेण्ट): सम्पत्ति-अभिकर्त्ता।

मकान, जमीन, दूकानें आदि सम्पत्ति की खरीद, विक्री, किराये पर उठाने आदि के कार्यों में लगा व्यक्ति। यह एक तरह का दलाल होता है। अपने इस कार्य के लिए सम्पत्ति-अभिकर्ता को कमीशन प्राप्त होता है।

estate duty (इस्टेट ड्यूटी): सम्पदा-शुल्क।

उत्तराधिकार-कर का दूसरा नाम।

देखिए : inheritence tax.

euler's theorem (ऑयलर्स थिऑरम) ऑयलर प्रमेय।

सीमान्त उत्पादिता-सिद्धान्त पर आधारित निष्कर्ष। सीमान्त उत्पादिता-सिद्धान्त स्थिर लागत की परिकल्पना पर आधारित है। उत्पादन के प्रत्येक साधन की इकाई का प्रतिफल उसके सीमान्त उत्पादन के बराबर हो तथा उत्पादन की प्रति इकाई लागत स्थिर रहे, तो एक फर्म के सारे उत्पादन का मूल्य उसके उत्पादन-साधनों के सम्पूर्ण प्रतिफल के बराबर होगा। अर्थात् इस अवस्था में सीमान्त उत्पादन के बराबर प्रतिफल प्रत्येक साधन की इकाई को देने पर फर्म का सारा उत्पादन पूरा-पूरा समाप्त हो जायेगा। इसी प्रकार घटती हुई लागत तथा बढ़ती हुई लागत की स्थिति में सीमान्त उत्पादिता के आधार पर वितरण करने से फर्म के सारे उत्पादन की तुलना में वितरित उत्पादन क्रमशः अधिक तथा कम पड़ जायेगा।

ऑयलर एक स्विस गणितज्ञ थे। उनके गणित के सिद्धान्तों के आधार पर वितरण के सीमान्त उत्पादिता-सिद्धान्त के समर्थकों ने 'योग की समस्या' का समाधान किया और दिखलाया कि किन पूर्व-कल्पनाओं के विद्यमान होने पर सीमान्त उत्पादिता के आधार पर निर्धारित साधनों की आय का योग फर्म के सारे उत्पादन के समतुल्य होगा।

euro-dollars (यूरो डालर्स) : यूरो-डालर।

विदेश के लोगों और संस्थाओं द्वारा अमरीकी बैंकों से प्राप्त डालर, जो अमरीका के बाहर, मुख्यतः यूरोप के बैंकों में पुनः जमा कराये जाते हैं। इन डालरों का व्यापार-केन्द्र लन्दन है, जहाँ व्यापारी-बैंकर स्थानीय या विदेशी बैंकों अथवा विश्व के किसी भाग के व्यापारिक उधार लेनेवालों को डालर उधार देते हैं। इस प्रकार यूरो-डालर का बाजार यूरोप तक ही सीमित नहीं है, बल्कि विश्व-भर में फैला हुआ है। वित्तीयन का यह रूप विश्व-व्यापार के क्षेत्र में बहुत महत्त्व रखता है।

ex-ante (ऍक्स-आन्ते) : प्रत्याशित, घटना-पूर्व।

किसी भी आर्थिक चल की वास्तविक मात्रा या रूप के बारे में पूर्वानुमान। जैसे किसी अवधि के पहले उस समय में की जानेवाली बचत तथा निवेश के बारे में अनुमान या निर्णय घटना-पूर्व या प्रत्याशित बचत तथा निवेश कहे जायेंगे। किसी आगामी योजना-काल में अपेक्षित विभिन्न उद्योगों के उत्पादन का पूर्वानुमान करके उनमें घटना-पूर्व या प्रत्याशित सामंजस्य स्थापित करना योजनाकारों का महत्त्वपूर्ण कार्य होता है।

excess capacity (एक्सेस कॅपेसिटी): अधि-क्षमता।

किसी भी फर्म या व्यवसाय में विद्यमान, स्थायी उत्पादन के साधनों के आधार पर, जितना उत्पादन सामान्य रूप से किया जा सकता है; यदि वास्तव में उत्पादन की मात्रा उस स्तर से कम हो, तो वह फर्म या उद्योग अधि या अतिरिक्त

क्षमतावाला कहा जायेगा। इस प्रकार अधि-क्षमता से अप्रयुक्त या अल्पप्रयुक्त उत्पादन-क्षमता का आभास होता है। किसी भी फर्म या उद्योग में कई कारणों (जैसे : माँग में कमी, मन्दी, उत्पादन के तरीकों के प्रचलन, प्रतिपूरक साधनों के अभाव आदि) से अधि-क्षमता का उदय हो सकता है। कभी भविष्य में प्रत्याशित माँग के स्तर के आधार पर निवेश करने पर कुछ समय के लिए अधि-क्षमता की स्थिति पैदा हो जाती है। अपूर्ण या एकाधिकारी प्रतियोगितावाली वाज़ार-स्थिति में फर्म अपने लाभ को जिस उत्पादन के स्तर पर अधिकतम करता है, वह उत्पादन के उस स्तर से कम होता है जो विद्यमान साधनों की सहायता से न्यूनतम औसत लागत प्राप्त कर किया जा सकता है। इस आधार पर यह मत स्थापित किया जाता है कि अपूर्ण प्रतियोगिता या एकाधिकारी प्रतियोगिता की स्थिति में फर्म के पास अधि-क्षमता विद्यमान रहती है

excess demand (एक्सेस डिमाण्ड) : अधिमाँग, अतिमाँग।

वाज़ार की उस स्थिति को अतिमाँग वाली स्थिति कहेंगे, जबकि किसी दी हुई कीमत पर क्रेताओं द्वारा माँगी गयी मात्रा उस कीमत पर उत्पादकों द्वारा सम्भरित मात्रा से अधिक हो। अतिमाँग की स्थिति में वाज़ार में सन्तुलन स्थापित नहीं होगा तथा वाजार में कीमत बढ़ेगी, जिसके फलस्वरूप माँगी गयी मात्रा कम होगी तथा सम्भरित मात्रा बढ़ेगी। अन्य बातों के यथावत रहने पर यह प्रक्रिया तब तक चलेगी, जब तक कि अतिमाँग की मात्रा घटकर शून्य न रह जाये। अर्थात अधि-माँग के शून्य हो जाने पर वाज़ार की कीमत सन्तुलन-विन्दु पर आ जायेगी।

excess liquidity (एक्सेस लिक्विडिटी) : अधितरलता।

वैंक अपनी परिसम्पत्ति के एक निश्चित भाग को कानून अथवा परम्परा के आधार पर नकद तथा नकद-सदृश्य रूप में रखते हैं। बैंकों की नकद या नकद-सदृश्य परिसम्पत्तियों तथा उनकी सम्पूर्ण परिसम्पत्तियों का अनुपात जब कानूनी या पारम्परिक अनुपात से बढ़ जाता है, तब यह स्थिति अधितरलता की स्थिति कहलाती है। इस स्थिति में वैंकों की उधार देने की क्षमता बढ़ जाती है। किसी देश के केन्द्रीय बैंक द्वारा बैंकों की उधार देने की नीति पर नियन्त्रण व्यावसायिक बैंकों की अधितरलता की स्थिति में कम सफल हो पाता है।

देखिए : excess reserves.

excess profits tax (एक्सेस प्रॉफिट्स टैक्स) : अधिलाभ कर।

मुद्रा-स्फीति, तेजी या तीव्र आर्थिक विकास की अवधि में व्यावसायिक फर्मों का मुनाफा बहुत ज्यादा होता है और उसमें बढ़ने की प्रवृत्ति पायी जाती है। आय-वितरण-व्यवस्था को न्यायोचित रखने तथा बढ़ते हुए सरकारी खर्च को पूरा करने के लिए ऐसी अवधि में सामान्य व्यावसायिक या निगम करों के अलावा राज्य 'अधिलाभ कर' लगा देता है। इस कर की सबसे बड़ी कमी यह है कि मुनाफे की कौन-सी दर 'सामान्य' तथा कौन-सी 'अधिक' है, यह निर्धारित करने का कोई वस्तुगत आधार उपलब्ध

नहीं है। व्यावसायिक वर्ग की आर्थिक प्रेरणाओं पर इस कर का प्रभाव प्रतिकूल होता है।

excess reserves (एक्सेस रिजर्व्स) : अधि-आरक्षित निधि, अधिरिजर्व।

अमरीकी बैंक-व्यवस्था में प्रचलित शब्द। जब बैंकों के पास मुद्रा का अनुपात अन्य परिसम्पत्तियों से कानूनी या परम्परागत स्तर से ज्यादा हो जाता है, तब यह अधि-आरक्षित निधि या अधिरिजर्व की स्थिति कहलाती है।

excess supply (एक्सेस सप्लाइ) : अधिपूर्ति।

अधिमाँग की तरह अधिपूर्ति भी बाज़ार में असन्तुलन का सूचक है। इस स्थिति में एक कीमत-विशेष पर वस्तु या सेवा की माँगी गयी मात्रा उसकी पूर्ति की मात्रा से कम होती है अर्थात् इस कीमत पर पूर्ति की अधिकता होती है।

समष्टिगत अर्थ में अधिपूर्ति की स्थिति तब उत्पन्न होती है, जबकि सम्पूर्ण प्रभावी माँग अर्थ-व्यवस्था में कम हो और अविक्रीत वस्तुओं का भण्डार बढ़ने लगे। 'से' के बाज़ार-नियम के अनुसार समष्टिगत रूप से ऐसी स्थिति का उत्पन्न होना असम्भव है। परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने इस सम्भावना के सैद्धान्तिक औचित्य को स्वीकार कर लिया है।

exchange (एक्सचेंज) : विनिमय।

वस्तुओं, सेवाओं तथा उत्पादन के साधनों का लेन-देन। विनिमय साधारणतः मुद्रा के माध्यम से होता है। जब वस्तुओं, सेवाओं आदि का प्रत्यक्ष रूप से एक-दूसरे के बदले में (बिना मुद्रा के माध्यम के) लेन-देन होता है तब इसे वस्तु-लेन-देन अथवा वस्तु-विनिमय कहते हैं।

सामाजिक अर्थव्यवस्था में जहाँ सापेक्ष सीमितता, सामाजिक श्रम-विभाजन तथा अनेक आश्यकताएँ हों, विनिमय-व्यवस्था उत्पन्न होती है। विनिमय द्वारा 'उपयोगिता' की वृद्धि होती है। विनिमय द्वारा एक प्रकार की वस्तुओं के बदले (जो वेचनेवालों के लिए कम तथा खरीदनेवालों के लिए अधिक आवश्यक या उपयोगी हैं) दूसरी प्रकार की वस्तुएँ प्राप्त होती हैं। इस तरह विनिमय द्वारा वस्तुओं का 'रूप-परिवर्तन' होता है। व्यापार के अतिरिक्त यह 'रूप-परिवर्तन' उत्पादन द्वारा भी होता है। उत्पादन में संसाधनों को वस्तुओं के रूप में बदला जाता है अथवा यों कहिए कि संसाधन का वस्तुओं से विनिमय होता है।

exchange control (एक्सचेंज कंट्रोल) : विनिमय-नियन्त्रण।

भुगतान-शेष के घाटे का सामना करने का एक तरीका। इससे देश के भुगतान-शेष को प्रत्यक्ष रूप से नियन्त्रित किया जा सकता है। इसमें वस्तुओं तथा सेवाओं के आयात तथा अन्तर्राष्ट्रीय पूँजी-प्रवाह का नियमन तथा नियन्त्रण किया जाता है। कुछ खास स्थितियों में विनिमय-नियन्त्रण को केवल पूँजी-प्रवाह तक सीमित रखा जा सकता है। आयात पर इस तरह नियन्त्रण लगाया जा सकता है कि भुगतान-शेष की स्थिति तथा सामान्य आर्थिक नीति के अनुसार आयात पर तथा विदेशों के लिए पूँजी के निष्क्रमण पर गुणात्मक तथा मात्रात्मक प्रतिबन्ध

लगा दिया जाता है। इस तरह विदेशी मुद्रा का राशन करके उसकी 'परिवर्तनीयता' सीमित कर दी जाती है । देश के आर्थिक प्राधिकारी विभिन्न दिशाओं तथा देशों से आये आयातों के बीच भी विभेद कर सकते हैं।

संक्षेप में विनिमय-नियन्त्रण को विदेशी मुद्रा के राशन के रूप में समझा जा सकता है। भुगतान-शेष के घाटे को दूर करने के अवमूल्यन-जैसे तरीकों से यह इस अर्थ में श्रेष्ठ है कि सब देशों तथा सब तरह के आयात पर समान रूप से लागू नहीं होता है, वरन् परिस्थितियों के अनुसार कुछ आयात रोके जा सकते हैं या कम किये जा सकते हैं और जरूरी आयात बनाये रखे जा सकते हैं।

exchange economy (एक्सचेंज इकॉनॉमि) : विनिमयी अर्थव्यवस्था।

वह अर्थव्यवस्था, जहाँ पर सामाजिक श्रम-विभाजन तथा विशिष्टीकरण के कारण उत्पन्न पारस्परिक निर्भरता की स्थिति में लोग अपनी जरूरतें मुद्रा के माध्यम से लेन-देन या खरीद-बिक्री करके पूरी करते हैं। लोग अपनी उत्पादक सेवाओं या साधनों को बेचकर मुद्रा-आय प्राप्त करते हैं। इस मुद्रा-आय को वस्तुओं तथा सेवाओं पर खर्च करके वे अपनी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि करते हैं। हर आधुनिक, विशिष्टीकृत अर्थ-व्यवस्था विनिमयी अर्थव्यवस्था होती है।

exchange equalisation fund (एक्सचेंज इक्वलाइजेशन फॅण्ड) : विनिमय समकारी निधि।

स्वर्ण-मान के त्याग के बाद सन् १९३२ में विनिमय-दर की स्थिरता बनाये रखने के लिए स्थापित ब्रिटिश निधि या फण्ड, जिसके द्वारा विदेशी मुद्रा-बाजार में पाऊण्ड स्टर्लिंग की कीमत बनाये रखने के लिए विदेशी मुद्रा खरीदी-बेची जाती थी। जब स्टर्लिंग की कीमत गिरने लगी, तब इस निधि द्वारा स्टर्लिंग खरीदा जाता था। इसके विपरीत स्टर्लिंग की कीमत बढ़ने पर इस निधि से स्टर्लिंग बेचने की व्यवस्था थी। इस तरह बाजार की सामान्य प्रवृत्ति के विपरीत कार्य करके इस निधि या खाते द्वारा विनिमय-दर को स्थिर रखा जाता था। संयुक्त राज्य अमरीका तथा फ्रान्स ने भी इस तरह के कोष के तरीके का सहारा लिया था।

exchange rate (एक्सचेंज रेट) : विनिमय-दर।

एक देश की मुद्रा के दूसरे देश की मुद्रा से विनिमय की दर। विनिमय-नियन्त्रण के अन्तर्गत एक राजकीय स्तर पर निर्धारित विनिमय की दर होती है। कई बार एक के स्थान पर विभिन्न उद्देश्यों के लिए बहुत-सी विनिमय-दरें निर्धारित की जा सकती हैं। स्वतन्त्र रूप से विदेशी विनिमय-बाजार में निर्धारित होनेवाली विनिमय-दरें बाजार की माँग तथा पूर्ति की स्थिति के अनुसार घटती-बढ़ती रहती हैं। स्वर्ण-मान के अन्तर्गत विनिमय-दर में बहुत सीमित परिवर्तन होते हैं।

देखिए : purchasing power parity

exchange value (एक्सचेंज वैल्यू) : विनिमय-मूल्य।

सामान्य रूप से विनिमय मुद्रा के

माध्यम से होता है। किसी वस्तु को वेचने से मुद्रा की जितनी राशि प्राप्त होती है, वह उस वस्तु का विनिमय-मूल्य कहलाता है। वस्तुतः विनिमय-मूल्य कीमत का ही दूसरा नाम है।

देखिए : price
value-in-exchange.

excise duty (एक्साइज ड्यूटी) : उत्पादन-शुल्क।

देश के आन्तरिक उत्पादन पर लगाया गया अप्रत्यक्ष कर। राजस्व की प्राप्ति के अतिरिक्त इन करों का उद्देश्य इन करारोपित वस्तुओं के उपभोग को हतोत्साहित करना होता है। उत्पादन-शुल्क या तो यथामूल्य लगाये जा सकते हैं या किसी निश्चित दर से। भारत में उत्पादन-शुल्क अप्रत्यक्ष करों में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं और ये केन्द्रीय सरकार द्वारा लगाये जाते हैं।

exogenous business cycle theory : (एक्सोजिनस बिजनेस साइकल थिअॅरी) : बहिर्जात व्यवसाय-चक्र-सिद्धान्त।

व्यापार-चक्र के वे सिद्धान्त, जिनमें व्यापार-चक्रों की व्याख्या आर्थिकेतर तत्त्वों के आधार पर की जाती है; जैसे मौसम, सूर्य-चिन्हों, राजनीतिक कारकों, सोने की खानों की खोज आदि बातों के आधार पर व्यापारिक उतार-चढ़ाव समझाने के प्रयास।

exogenous variable : (एक्सोजिनस वॅरियेबॅल) : बहिर्जात चर।

आर्थिक विश्लेषण के प्ररूप के तत्त्वों को प्रभावित करनेवाला वह तत्त्व, जो इस प्ररूप के बाहर रखा जाता है, बहिर्जात चर कहलाता है। ये बहिर्जात तत्त्व महत्त्व की दृष्टि से अन्तर्जात तत्त्वों से नीचे हों, यह जरूरी नहीं है। कई बार तो बहिर्जात तत्त्व बहुत महत्त्वपूर्ण होते हैं; जैसे जनसंख्या के आर्थिक प्ररूपों से बाहर धार्मिक, समाजशास्त्रीय चर। विषय की सीमा, विश्लेषण की सुविधा, विविध चरों की आपसी संगतता आदि के कारण कुछ चर बहिर्जात समझे जाते हैं। मौसम, प्राकृतिक परिवर्तन, रुचि तथा चलन के परिवर्तन, राजनीतिक प्रभाव आदि प्रायः आर्थिक प्ररूपों में बहिर्जात चरों के रूप में लिये जाते हैं। इन चरों का प्रभाव तो इन प्ररूपों में देखा जा सकता है, परन्तु इनमें इनके निर्धारक तत्त्वों का विवेचन नहीं किया जाता है।

expansionist policy (एक्सपैन्सनिस्ट पॉलिसी) : विस्तारवादी नीति।

आधुनिक उन्नत पूंजीवादी देशों में मन्दी के निराकरण हेतु राज्य द्वारा अपनायी जानेवाली आर्थिक नीतियां। इन नीतियों का उद्देश्य माँग (उपभोग तथा निवेश), रोजगार तथा राष्ट्रीय आय को बढ़ाना होता है। आर्थिक गतिविधियाँ बढ़ानेवाली इन नीतियों में ब्याज-दर में कमी, बैंक-मुद्रा-प्रचलन पर नियन्त्रणों में ढील, करों में उपभोग तथा निवेश प्रेरक कमी, राजकीय व्यय में वृद्धि, निर्यात-प्रोत्साहन आदि प्रमुख हैं।

राजनीतिक सन्दर्भ में विस्तारवादी नीति से तात्पर्य साम्राज्यवादी, अन्य राष्ट्रों पर अधिकार तथा नियन्त्रण लागू करनेवाली और 'प्रभाव-क्षेत्र' विस्तारक नीतियों से होता है।

expectation of life (एक्सपेक्टेशन

ऑफ लाइफ): प्रत्याशित आयु।

किसी समूह या देश के लोगों की औसत आयु के आधार पर उनके जीवित रहने की अवधि के विषय में जीवनांककीय गणना के आधार पर अनुमानित प्रत्याशा। जन्म के समय प्रत्याशित आयु की सारे देश के बारे में गणना करके उस देश के जीवन-स्तर, स्वास्थ्य-स्तर तथा चिकित्सा-सुविधा आदि के सम्बन्ध में अनुमान लगाया जाता है। स्त्रियों, पुरुषों तथा विभिन्न व्यवसायों में लगे लोगों के सम्बन्ध में इस तरह की जीवनांककीय गणना समय-समय पर की जाती है। इसके आधार पर बीमा-दरें तय की जाती हैं।

आधुनिक आर्थिक विकास के साथ प्रत्याशित आयु में भारी वृद्धि हुई है। इसका मुख्य कारण चिकित्सा-विज्ञान तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य-सेवाओं की प्रगति है।

expectations (एक्सपेक्टेशन्स) : प्रत्याशाएँ।

आनेवाली घटनाओं तथा समय के बारे में लोगों के दृष्टिकोण, विश्वास तथा मनोस्थितियाँ। आर्थिक निर्णयों तथा आर्थिक व्यवहार पर इन प्रत्याशाओं का गहरा तथा व्यापक असर पड़ता है। उपभोक्ता तथा उत्पादक, बचतकर्त्ता तथा निवेशकर्त्ता, कीमत-निर्धारक तथा कर-निर्धारक सभी अपने निर्णय और कार्य उस समय विद्यमान प्रत्याशाओं के आधार पर करते हैं। इन प्रत्याशाओं में लोगों का अन्य लोगों के व्यवहार के बारे में लगाया गया अनुमान भी शामिल किया जाता है। प्रत्याशाएँ अनेक बातों से प्रभावित होती हैं और वर्तमान स्थिति का वर्तमान प्रत्याशाओं पर गहरा असर होता है। अधिकांश लोगों की जैसी प्रत्याशा होती है, वैसा ही रूप भावी घटनाएँ ग्रहण करने लगती हैं। यदि बहुत लोगों का यह ख्याल हो कि गेहूँ की कीमत और ज्यादा बढ़नेवाली है तो लोग आगे के लिए गेहूँ खरीदकर रखना चाहेंगे। फलस्वरूप गेहूँ की माँग सामान्य से अधिक हो जायेगी। फलतः गेहूँ की कीमत वास्तव में बढ़ जायेगी। इस प्रकार की प्रत्याशाओं के प्रभाव के कारण यह कहा जा सकता है कि कुछ बातें तो इसलिए ही हो जाती हैं, क्योंकि ऐसा सोचा गया था कि ऐसा होगा।

अर्थशास्त्र में गत्यात्मक प्रश्नों का अध्ययन प्रारम्भ होने पर अब प्रत्याशाओं का भी अध्ययन होने लगा है। प्रत्याशाओं का अध्ययन काफी कठिन होता है, क्योंकि वर्तमान निर्णयों और कार्यों को प्रभावित करने के बावजूद प्रत्याशाओं का प्रत्यक्ष रूप से पर्यावलोकन नहीं किया जा सकता है। इस तरह की मनोवैज्ञानिक बातों का अध्ययन काफी आत्मनिष्ठ भी हो सकता है। लॉर्ड केन्स ने अपने रोजगार, मुद्रा तथा ब्याज के सिद्धान्तों के अध्ययन में प्रत्याशाओं का स्पष्ट रूप से समावेश किया। निवेश के निर्धारण में उन्होंने जिन 'पाशविक भावनाओं' के प्रभाव की बात की, उनमें भविष्य की प्रत्याशाएँ प्रमुख हैं। तरलता अधिमान ब्याज सिद्धान्त में भी प्रत्याशाओं का प्रमुख स्थान है। मुद्रा की सट्टे से सम्बन्धित माँग वर्तमान ब्याज से ज्यादा भविष्य की अपेक्षित ब्याज की दर द्वारा निर्धारित होती है।

प्रत्याशाओं के निर्धारक तत्त्वों का अध्ययन बहुत कठिन है। किसी चर के

भूतकालिक तथा वर्तमान मूल्यों के आधार पर उसके भावी मूल्य का निर्धारण करने का प्रयास किया जा सकता है। लोगों के उद्देश्यों के बारे में पूर्वकल्पना करके, उनके व्यवहार का अवलोकन करके तथा सम्वन्धित चरों के परिवर्तनों को पारस्परिक रूप से सम्वन्धित करके प्रत्याशाओं का अध्ययन किया जा सकता है। प्रत्याशाओं का अध्ययन अर्थशास्त्र के अल्पविकसित पहलुओं में से एक है।

expenditure tax (एक्सपेण्डीचर टैक्स): व्यय-कर।

व्यक्तिगत व्यय पर लगाया गया कर। जैसे व्यक्तिगत आय पर कर लगाये जा सकते हैं, उसी तरह व्यय पर भी कर लगाये जा सकते हैं। इस कर के समर्थकों का विचार है कि चूँकि यह कर बचत पर नहीं लगेगा, अत: इससे वचत को प्रोत्साहन मिलेगा। यह आय-कर की तरह का एक प्रत्यक्ष कर होगा और व्यय की मात्रा के अनुसार करारोपण की दर निर्धारित की जा सकती है। इस कर का प्रशासन बहुत कठिन होता है और लोग इससे काफी सरलता से वच सकते हैं। प्रो० निकोलॅस काल्डोर ने भारत सरकार को व्यय-कर लगाने की राय दी थी और कुछ अर्से के लिए यह कर लगाया भी गया था।

expense account (एक्सपेन्स अकॉउण्ट): व्यय-लेखा।

व्यावसायिक संगठनों के प्रवन्धकों की सुविधाओं आदि पर किये जानेवाले खर्चों का हिसाब। कई प्रकार के करों (आय-कर, लाभ-कर आदि) के निर्धारण में इन खर्चों पर छूट मिलती है।

आय-कर के निर्धारण में व्यक्ति के व्यवसाय के संचालन से सम्वन्धित कुछ खर्चों पर छूट दी जाती है। इन खर्चों का हिसाव व्यय-लेखा में रखा जाता है।

expenses of production (एक्सपेन्सेज ऑफ प्रॉडक्शन): उत्पादन-व्यय।

उत्पादन-लागत का ही दूसरा नाम।

देखिए: cost of production.

exploitation (एक्सप्लॉयटेशन): शोषण, सन्दोहन।

एक दृष्टिकोण के अनुसार जब पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली के नियमों का उल्लंघन किया जाता है जिससे कि कुछ आर्थिक घटकों को लाभ हो और अन्य लोगों को हानि हो, तो यह कार्य शोषण कहा जायेगा। जैसे एक कृत्रिम एकाधिकारिक स्थिति का निर्माण करके फर्म उपभोक्ताओं और समाज का शोषण करती है।

एक दूसरे दृष्टिकोण के अनुसार उत्पादन-प्रक्रिया में जिस अधिशेष या बेशी उत्पाद का निर्माण होता है, पूंजीपति उस पर अधिकार करके अधिशेष-उत्पाद के सर्जक मजदूरों का शोषण करते हैं। श्रम के कुल उत्पादन तथा सामाजिक रूप से आवश्यक उत्पादन के अन्तर को 'अधिशेष उत्पाद' कहते हैं। इस प्रकार पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली श्रम के शोषण पर आधारित है, क्योंकि उत्पादन के भौतिक साधनों पर स्वामित्व के कारण पूंजीपति को अधिशेष-उत्पाद प्राप्त हो जाता है। शोषण का जो पहला अर्थ हमने देखा, उसके अनुसार पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार की स्थिति से परे हटकर विभिन्न प्रकार की एकाधिकारिक पूंजीवादी स्थितियों में ही शोषण होता है।

export multiplier (एक्सपोर्ट मल्टी-प्लायर) : निर्यात गुणक ।

निर्यातप्राप्ति में वृद्धि से देश की कुल राष्ट्रीय आय में होनेवाली वृद्धि का अनुपात, जिससे उस वृद्धि का सृजन होता है। इस गुणक का आकार निर्यात-प्राप्ति में वृद्धि के फलस्वरूप बढ़नेवाली आय के प्राप्तकर्त्ताओं की बचत-प्रवृत्ति तथा देश की आयात-प्रवृत्ति पर निर्भर करता है । इस प्रकार सामान्य गुणक का निर्यात गुणक एक विशेष रूप या प्रकार है।

exports (एक्सपोर्ट्स) : निर्यात ।

किसी देश में उत्पादित वस्तुओं तथा सेवाओं की अन्य देशों में बिक्री को निर्यात कहते हैं। वस्तुओं की विदेशों में बिक्री 'दृश्य' निर्यात तथा सेवाओं की विदेशों में बिक्री 'अदृश्य' निर्यात कहलाती है । पुराने जमाने में विदेशों में वस्तुओं की बिक्री अदला-बदली के रूप में भी हुआ करती थी। इस निर्यात में मुद्रा या विदेशी विनिमय का प्रयोग नहीं होता था। निर्यात को कुछ अर्थशास्त्रियों ने इतना महत्त्व दिया कि वे निर्यात-अधिशेष को सम्पन्नता का मूल-मन्त्र मान बैठे थे। परन्तु स्पष्ट है कि सारे विश्व के दृष्टिकोण से निर्यात-अधिशेष प्राप्त करना असम्भव है।

निर्यात द्वारा एक देश के सापेक्ष आर्थिक लाभ का हिस्सा अन्य देशों को भी प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार निर्यात अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-विभाजन में सहयोग देते हैं। निर्यात-प्रोत्साहन की नीति का सबसे मुख्य औचित्य इस श्रम-विभाजन को साकार करने में है। अल्पविकसित देश निर्यात द्वारा विदेशी विनिमय अर्जित कर अपने विकास के लिए आवश्यक मशीनों तथा तकनीकों को प्राप्त करने में समर्थ होते हैं। अतः इन देशों के निर्यात के मार्ग में रुकावट डालना इनके आर्थिक विकास के हित के विरुद्ध पड़ता है।

export surplus (एक्सपोर्ट सरप्लस) : निर्यात अधिशेष ।

किसी देश के व्यापार-शेष में निर्यात द्वारा अर्जित राशि की आयात पर व्यय-राशि से अधिकता 'निर्यात अधिशेष या बेशी, की स्थिति कहलाती है। लगातार तथा भारी निर्यात अधिशेष से किसी देश के पास विदेशी मुद्रा का भण्डार बढ़ता है। काफी अर्से तक लगातार निर्यात अधिशेष बना रहना अर्थव्यवस्था की प्रतियोगी स्थिति की सुदृढ़ता का चिन्ह है। इस स्थिति के फलस्वरूप ऐसे देशों की मुद्रा के पुनर्मूल्यनिर्धारण की माँग उठती है।

ex-post (एक्स-पोस्ट): यथार्थ, घटनोत्तर ।

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, किसी आर्थिक चर (जैसे: बचत, विवेश, आय, माँग, पूर्ति आदि) का वास्तविक मूल्य जो किसी अवधि-विशेष में रहा है, उस चर का घटनोत्तर मूल्य कहलायेगा। किसी वस्तु की प्रत्याशित उत्पादन-मात्रा दस हजार इकाई रही हो सकती है, परन्तु किसी विशेष संसाधन की कमी के कारण वास्तविक उत्पादन हजार इकाई हुआ हो सकता है। अर्थात् प्रत्याशित तथा वास्तविक का समान होना जरूरी नहीं है।

expropriation (एक्सप्रोप्रियेशन) : सम्पत्तिहरण, स्वामित्वहरण ।

निजी सम्पत्ति का बिना मुआवजा दिये समाजीकरण या राष्ट्रीयकरण ।

समाजवाद स्थापित करने के लिए जब निजी सम्पत्ति की संस्था की समाप्ति की जाती है और निजी व्यक्तियों का अन्य लोगों का श्रम खरीदने के लिए किया गया निवेश करना रोक दिया जाता है, तब विद्यमान निजी उद्योगपतियों का स्वामित्व-हरण किया जाता है। जैसा कि कॉर्ल मार्क्स ने कहा था, "स्वामित्वहरणकर्त्ताओं का ही स्वामित्वहरण किया जायेगा।"

extensive cultivation (एक्सटेन्सिव कल्टीवेशन) : भू-प्रधान खेती, विस्तृत खेती।

कृषि-उत्पादन बढ़ाने का एक तरीका। इस तरीके में उत्पादन बढ़ाने के लिए नयी भूमि को जोतना शुरू किया जाता है। किसान के व्यक्तिगत दृष्टिकोण से इस रीति से उत्पादन बढ़ाने के लिए खेत का आकार बढ़ाया जाता है। यह कृषि-उत्पादन का एक भूमि-प्रधान तरीका है, जिसमें श्रम तथा पूँजी का भूमि की अपेक्षा कम प्रयोग होता है। नये तथा कम जनसंख्या वाले देशों में भू-प्रधान खेती का काफी प्रचलन होता है।

मॉल्थस ने अपने जनसंख्या-सम्बन्धी सिद्धान्तों का विवेचन करने में खेती के विस्तृत सीमान्त के विचार का उपयोग किया था। जब जनसंख्या बढ़ती है और कृषियोग्य भूमि उपलब्ध होती है, तब नये क्षेत्रों पर कृषि का विस्तार किया जाता है। इस तरह जो नयी भूमि जोती जाती है, उसे खेती का विस्तृत सीमान्त कहते हैं।

external debt (एक्स्टर्नल डेट्) : विदेशी ऋण।

देश के बाहरी स्रोतों (जैसे : सरकारों, व्यापारिक प्रतिष्ठानों, वित्तीय संस्थाओं, बहुदेशीय संस्थाओं आदि) द्वारा प्राप्त कर्ज। आजकल न केवल अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार या अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति अपितु आर्थिक विकास की जरूरतों के कारण भी अधिकांश देशों का विदेशी ऋण बढ़ता जा रहा है। विश्व बैंक, एशियन विकास बैंक आदि अनेक संस्थाएँ इस प्रकार के ऋण देती हैं। आर्थिक स्वावलम्बन का अर्थ विदेशी कर्जों से सर्वथा मुक्ति नहीं है। आर्थिक आधार पर, गैर-रियायती दरों पर आवश्यकतानुसार विदेशी कर्ज स्वावलम्बी देश भी ले सकते हैं। कर्ज का लेना-देना भी आयात-निर्यात की तरह का सामान्य आर्थिक लेन-देन हो सकता है।

external deficit (एक्स्टर्नल डेफिसिट) : विदेशी घाटा, घाटे का भुगतान-शेष।

किसी देश के भुगतान-शेष के घाटे का दूसरा नाम।

देखिए : balance of payment.

external economies (एक्स्टर्नल इकॉनॉमिज्) : वाह्य किफायतें, वाह्य सुलाभ।

उत्पादन की औसत लागत में कमी का एक कारण सारे उद्योग का विकास या विस्तार भी हो सकता है। एक उद्योग के विस्तार तथा विकास के कारण इस उद्योग के बड़े पैमाने से फर्मों के लागत व्यय में प्राप्त मितव्ययिताएँ वाह्य सुलाभ कहलाती हैं। ये किसी एक फर्म या कारखाने के लिए विशेष रूप से लागू नहीं होतीं, वरन् एक उद्योग की प्रत्येक इकाई को सामान्य रूप से प्राप्त होती हैं। उद्योगों के स्थानीयकरण से प्राप्त लाभ भी इसी

कोटि में आते हैं। एक उद्योग का आकार बढ़ने से उसकी विभिन्न इकाइयाँ अधिक विशिष्टीकृत हो सकती हैं, जिससे अविभाजनीय वड़े उत्पादन के साधनों का मितव्ययितापूर्ण प्रयोग सम्भव हो जाता है। इसी प्रकार यातायात, संचार, वैंकिंग आदि की सुविधाएँ उद्योग के विस्तार के कारण सस्ती तथा सुलभ हो जाती हैं, जिससे फर्मों की उत्पादन-लागत कम हो जाती है।

ये वाह्य किफायतें दो प्रकार की होती हैं। पहली, मुद्रा के व्यय में आयी कमी। जैसे, किसी मशीन या कच्चे माल की माँग बढ़ने के फलस्वरूप उसकी कीमत के कम होने से एक उद्योग की सब इकाइयों की लागत कम होंगी। दूसरी, तकनीकी अर्थात उद्योग के विस्तार से आयी किसी कच्चे माल या अन्य संसाधन की उत्पादन-क्षमता या उसके गुणों में वृद्धि।

external surplus (एक्स्टर्नल सर्प्लस): विदेशी अधिशेष, वेशी भुगतान-शेष।

किसी देश के भुगतान-शेष का अनुकूल होना; अर्थात् आयात की तुलना में निर्यात की अधिकता।

extra cost (एक्स्ट्रा कॉस्ट): अतिरिक्त लागत।

किसी वस्तु की एक और इकाई उत्पादन करने की अतिरिक्त लागत; अर्थात् उसकी सीमान्त लागत।

extractive industry (एक्स्ट्रैक्टिव इण्डस्ट्री): निस्सारक उद्योग।

इन्हें प्राथमिक उद्योगों के नाम से भी जाना जाता है। इसमें सभी प्रकार के खेती तथा उससे सम्बन्धित कार्य, खनिज-उत्खनन कार्य, मछली पकड़ने का उद्योग आदि शामिल होते हैं। इन उद्योगों में प्राकृतिक साधन वहुत महत्त्वपूर्ण होते हैं तथा ये मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं की सन्तुष्टि करनेवाले उसके प्राचीनतम व्यवसाय हैं।

देखिए : primary production.

face value (फेस वैल्यू): अंकित मूल्य।

स्टॉक व शेयर का निकासी अथवा खाता-मूल्य। जिस मूल्य पर शेयर जारी किये जाते हैं, वह शेयर का 'अंकित मूल्य' या 'खाता मूल्य' कहलाता है। शेयर के अंकित मूल्य और वाज़ार-मूल्य में अन्तर हो सकता है। किसी शेयर का अंकित मूल्य यदि १०० रुपये है, तो सम्भव है कि किसी समय शेयर-वाज़ार में उसका मूल्य १०० रुपये हो अथवा इससे कम या अधिक। यह उसकी माँग और पूर्ति के सम्वन्ध और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा।

'अंकित मूल्य' शव्द का प्रयोग सिक्कों के साथ भी किया जाता है। मानक अथवा प्रामाणिक सिक्कों का अंकित मूल्य उनके धातु-मूल्य अर्थात् यथार्थ मूल्य के वरावर होता है, जवकि प्रतीक अथवा सांकेतिक सिक्कों का अंकित मूल्य उनके धातु-मूल्य से अधिक होता है।

factor cost (फैक्टर कॉस्ट): साधन-लागत, उत्पादन-लागत।

किसी वस्तु की जो कीमत उपभोक्ता देते हैं उसमें से यदि कर या शुल्क की राशि निकाल दी जाये और उत्पादन की राशि को उसमें जोड़ दिया जाये, तो वह उस वस्तु की 'साधन लागत' अथवा 'उपादान लागत' कहलायेगी। मान लीजिए कि किसी वस्तु की कीमत ५० रुपये है, जिसमें ५ रुपये के वरावर बिक्री-कर की

राशि जुड़ी है और उसके उत्पादन को ३ रुपये का सरकारी उपदान मिलता है। उस स्थिति में ४८ रुपये उस वस्तु की साधन-लागत ठहरेगी। यह वह राशि है जो उक्त वस्तु के उत्पादन व वितरण में लगे साधनों या कारकों को चुकायी जाती है।

राष्ट्रीय आय की गणना साधन-लागत के आधार पर भी की जाती है। राष्ट्रीय आय एक वर्ष के वास्तविक उत्पादन की मौद्रिक अभिव्यक्ति है, उसकी गणना में कर या उपदान की राशि में हुए परिवर्तन से फर्क नहीं पड़ता। अप्रत्यक्ष करों या उपदान की राशियों में घट-बढ़ होने से राष्ट्रीय आय में आया अन्तर स्पष्टतः वास्तविक न होगा और इस कारण एक वर्ष की राष्ट्रीय आय की सही-सही तुलना दूसरे वर्ष की राष्ट्रीय आय के साथ न की जा सकेगी। संक्षेप में, साधन-लागत के आधार पर राष्ट्रीय आय = बाज़ार-कीमतों के आधार पर राष्ट्रीय आय — अप्रत्यक्ष करों की राशि + उपदान की राशि।

factor market (फैक्टर मार्केट): साधन-बाज़ार, उपादान-बाज़ार।

वे बाज़ार, जिनमें उत्पादन के साधन (जैसे : भूमि, श्रम, पूंजी आदि) खरीदे-बेचे जाते हैं, साधन-बाज़ार अथवा उपादान बाज़ार कहलाते हैं। जैसे वस्तुओं का विनिमय होता है, उसी तरह पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली में उत्पादन-साधनों का भी विनिमय होता है। उत्पादन-साधनों पर भी पूर्ति, माँग, कीमत, माँग तथा पूर्ति की लोच आदि अवधारणाएँ लागू होती हैं। साधन-बाज़ार में कीमत-निर्धारण की वही प्रक्रिया लागू होने की परिकल्पना करके, जो वस्तुओं के बाज़ार में लागू होती है, वितरण के नियम बनाये गये हैं।

देखिए : capital market
labour market.

factor payments (फैक्टर पेमेण्ट्स): उपादान-भुगतान, साधन-भुगतान।

उत्पादन के साधनों या कारकों को दिया जानेवाला पारिश्रमिक या उत्पादन का हिस्सा। मजदूरी, लगान, ब्याज तथा लाभ उपादान-भुगतान के मुख्य रूप हैं। वितरण के सिद्धान्तों का ध्येय उपादान-भुगतान के नियमों, उन्हें निर्धारित करनेवाली ताकतों तथा उनकी वास्तविक प्रवृत्तियों का विवेचन करना है।

factor price equalisation theorem (फैक्टर प्राइस इक्वलाइजेशन थिऑरम्): उपादान कीमत समकारी प्रमेय।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का सिद्धान्त, जिसके अनुसार स्वतन्त्र या निर्बाध व्यापार विभिन्न देशों के बीच व्यापार की गयी वस्तुओं की कीमत में अन्तर कम करता है और फलस्वरूप उत्पादन-साधनों की कीमतें (उपादानों की आय) भी समान होने की दिशा में प्रवृत्त होती हैं। इस प्रकार निर्बाध व्यापार से विभिन्न देशों में उत्पादन-कारकों की आय में समानता की प्रवृत्ति पनपती है। इस प्रमेय से यह भी निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वस्तुओं में निर्बाध व्यापार उत्पादन-कारकों की अन्तर्राष्ट्रीय गतिशीलता का प्रतिस्थापन करता है। इस प्रमेय के विकास का श्रेय अमरीकी अर्थशास्त्री पॉल ए० सेम्युलसन को है।

factors of production (फैक्टर्स ऑफ

प्रॉडक्शन) : उत्पादन-कारक, उत्पादन-साधन।

उत्पादन-प्रक्रिया में भाग लेनेवाली समस्त भौतिक, मानवीय चीजें। स्पष्ट शब्दों में किसी वस्तु के उत्पादन में काम आनेवाला चीजें उत्पादन के कारक, उपादान या साधन कहलायेंगी। मॉर्क्स की उत्पादन-शक्तियों की अवधारणा उत्पादन-कारकों का ही दूसरा नाम है। अर्थ-शास्त्र में इन साधनों को भूमि, श्रम, पूंजी तथा उद्यम इन चार श्रेणियों में बाँटने की परिपाटी बहुत व्यापक है। आर्थिक विवेचन में यह श्रेणी-विभाजन काफी उपयोगी सिद्ध हुआ है। परन्तु तार्किक आधार पर हर वस्तु या क्षमता, जो किसी भी वस्तु के उत्पादन में हिस्सा बँटाती है, अन्य वस्तुओं तथा क्षमताओं से कुछ अंशों में अवश्य भिन्न होती है। इस श्रेणी-विभाजन में काफी पारस्परिक-व्याप्ति भी पायी जाती है।

देखिए : inputs
modes of production
resources.

factory system (फैक्टरी सिस्टम): कारखाना-पद्धति, फैक्टरी प्रणाली।

: उत्पादन, खास कर निर्मित माल के उत्पादन की वह व्यवस्था, जहाँ किसी एक स्थान पर उत्पादन के विभिन्न साधन संयुक्त रूप से एकत्रित करके एक ही प्रबन्ध के अन्तर्गत किसी वस्तु या वस्तुओं के उत्पादन के लिए काम में लाये जाते हैं। ऐतिहासिक तौर पर कारखाना-पद्धति का प्रचलन ब्रिटेन में पूंजीवाद के उदय के साथ-साथ हुआ। उत्पादन का परिमाण बढ़ाने, मशीनों का प्रयोग करने, विशिष्टीकरण तथा श्रम-विभाजन को लागू करने तथा किसी वस्तु की पूरी उत्पादन-व्यवस्था सीधे तौर पर एक ही प्रबन्धक के अन्तर्गत लाने के लिए कारखाना-प्रणाली बहुत उपयोगी साबित हुई है। एक नयी औद्योगिक सभ्यता तथा व्यवस्था को लागू करने एवं उत्पादिता बढ़ाने में कारखाना-व्यवस्था का योगदान अपूर्व रहा है। परन्तु कारखाना-व्यवस्था तथा पूंजीवाद में अनिवार्य रूप से चोली-दामन का सम्बन्ध नहीं है। समाजवादी, सहकारी, श्रमिक-संघीय आदि प्रणालियों में भी कारखाना-व्यवस्था फल-फूल सकती है। इस प्रकार कारखाना-प्रणाली तथा वहशी नगरीकरण, जो धूल-गन्दगी और घुटन से भरा हुआ हो तथा जो प्राकृतिक वातावरण को दूषित करे या जो श्रम का शोषण करे, अनिवार्य रूप से एक-दूसरे से जुड़े हुए नहीं हैं। ये तो समाज-व्यवस्था तथा उत्पादन के सम्बन्धों से निकलनेवाले फलितार्थ हैं जो कारखाना-प्रणाली के प्रचलन के पहले से ही विद्यमान हैं। एक समाजवादी आयोजित अर्थ-व्यवस्था कारखाना-प्रणाली को इन दोषों तथा सामाजिक दृष्टि से हानिकारक प्रभावों से उबार सकती है।

बड़े-बड़े कारखाने दूर-दूर स्थापित किये जा सकते हैं। मजदूरों के आवास तथा कारखाने के प्रबन्धन में उनके सह-भाग की व्यवस्था की जा सकती है। वातावरण को दूषित करनेवाले प्रभावों की कारगर रोकथाम की जा सकती है। इस प्रकार कारखाना-प्रणाली उत्पादन-शक्तियों के विकास को बढ़ावा देकर सामाजिक क्षमताओं को भी बढ़ा सकती है।

fair price (फेयर प्राइस) : उचित कीमत।

वस्तुओं, सेवाओं तथा उत्पादन के कारकों की कीमतों के स्तर तथा कभी-कभी उनके सापेक्ष सम्बन्धों के बारे में औचित्य तथा न्याय की विभिन्न धारणाओं के आधार पर निर्धारित कीमत उचित कीमत कही जाती है। साधारणतः उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं को, उनकी आय तथा कीमत-स्तर को नज़र में रखते हुए, पर्याप्त रूप से पूरी करने के लिए वस्तुओं तथा सेवाओं की उचित कीमत तय की जाती है। इस कीमत द्वारा उपभोक्ता के साथ न्याय करने के अलावा वस्तु के उत्पादकों को पर्याप्त प्रेरणा देने की व्यवस्था भी की जाती है।

उचित कीमत का उत्पादन की लागत (मुनाफे को शामिल करते हुए) से कोई अनिवार्य सम्बन्ध नहीं होता है। यह लागत से कम या ज्यादा हो सकती है। यदि उचित कीमत लागत से कम है, तो राज्य को यह कमी पूरी करनी पड़ती है। अर्थात् राजकीय आगम का एक हिस्सा इस उचित कीमतवाली वस्तु के उपभोक्ताओं को अनुदान के रूप में दिया जाता है। परन्तु बहुत अर्से तक और बहुत-सी वस्तुओं के साथ ऐसी कीमत-निर्धारण-नीति लागू नहीं की जा सकती है। ऐसा करने से उचित कीमतवाली वस्तुओं के उपभोग को प्रोत्साहन मिलता है। परन्तु जब उचित कीमत लागत से कम नहीं भी रखी जाती है तो उसमें मुनाफे के भाग पर नियन्त्रण रखा जाता है तथा अनावश्यक लागतों तथा अकुशल उत्पादकों की लागतों पर अंकुश लगाने की कोशिश की जाती है। उचित कीमत के निर्धारण की नीति की सफलता के लिए इसे उचित वितरण-व्यवस्था का समर्थन देना आवश्यक होता है।

fallow field (फ़ैलो फ़ील्ड) : परती भूमि।

वह कृषि-भूमि जिस पर कुछ समय के लिए खेती नहीं की जाती, ताकि आराम मिलने से उसकी उर्वरता पुनः प्राप्त की जा सके। लगातार फ़सलें उगाते रहने से प्राकृतिक उर्वरता घटती जाती है। मध्ययुग में इस क्षति को यथा-सम्भव पूरा करने के लिए भूमि-विशेष पर कुछ समय के लिए खेती न करके उसे परती छोड़ा जाने लगा। आगे चलकर कृषि-क्षेत्र में हुई वैज्ञानिक प्रगति ने परती-प्रणाली को अनावश्यक बना दिया। पर्याप्त मात्रा में उचित प्रकार की खाद डालने तथा फ़सलें उगाने के वैज्ञानिक क्रम से भूमि को परती छोड़े बिना भी उसकी उर्वरता को बनाये रखा जा सकता है और साथ ही उस पर खेती का कार्य चालू रखा जा सकता है। विकसित देशों में परती-प्रणाली लगभग पूर्ण रूप से त्यागी जा चुकी है।

farm subsidies (फ़ार्म सब्सिडीज) : कृषि-उपदान।

खेती की उपज बढ़ाने, विभिन्न फ़सलों के सापेक्ष अनुपात को प्रभावित करने, खेती के उत्पादन तथा क्षेत्र को सीमित रखने अथवा संक्षेप में, खेती को सामाजिक आवश्यकताओं के अनुसार नियन्त्रित करने के लिए कृषकों को कई प्रकार के मौद्रिक व गैर-मौद्रिक उपदान दिये जाते हैं। यदि समाज ज्यादा गेहूँ परन्तु कम कपास का उत्पादन चाहता है

या कृषि की उत्पादिता बढ़ाने को बहुत अहम समझता है अथवा चावल बोये जाने-वाले क्षेत्र को कम करना चाहता है, तो उपदान या अर्थ-सहायता के रूप में कृषकों को आर्थिक प्रेरणाएँ देनी पड़ेंगी। अपनी विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुसार कई देश कृषि-उपदान की नीति अपनाते हैं।

fertilty rate (फ़र्टिलिटी रेट) : प्रसव-दर।

शिशु-धारक आयु-वर्गवाली (सामान्यतः १५ से ४५ वर्ष तक) प्रति एक हज़ार स्त्रियों के पीछे शिशु-जन्म अथवा प्रसव का अनुपात। भावी जनसंख्या के अनुमान लगाने के सम्बन्ध में अशोधित जन्म-दर की तुलना में प्रसव-दर अधिक विश्वसनीय तथा लाभकारी ठहरती है। कारण यह है कि अशोधित जन्म-दर का हिसाव लगाते समय सारी जनसंख्या को ले लिया जाता है। वास्तव में जन्म-दर पर सारी जनसंख्या का नहीं, उसके एक विशेष आयु-वर्गवाले भाग का ही प्रभाव पड़ता है। प्रसव-दर निर्धारित करने में केवल इसी विशिष्ट आयु-वर्ग को लिया जाता है।

fetishism of commodities (फ़ेटिशिज्म ऑफ कॉमॉडिटीज्): मालों की जड़-पूजा।

मालों या पण्य वस्तुओं की प्रकृति का अध्ययन करते हुए कॉर्ल मार्क्स ने वस्तुओं की वास्तविक प्रकृति और लोगों द्वारा समझे गये उसके स्वरूप में एक विरोध एवं भ्रान्ति देखी। विभिन्न मालों, उनके मूल्यों और विनिमय का सम्बन्ध सामाजिक उत्पादन-प्रक्रिया में लगे लोगों के सामाजिक सम्वन्धों के कारण होता है। परन्तु मालों की मौद्रिक रूप से अभिव्यक्ति के कारण विभिन्न मालों के तथा निजी श्रम के सामाजिक स्वरूप और अलग-अलग उत्पादकों के सामाजिक सम्वन्धों पर पर्दा पड़ जाता है। प्रत्यक्ष रूप से तो विभिन्न मालों का मुद्रा के रूप में निर्धारित सम्वन्ध ही नजर आता है। अतः लोगों के वीच सम्बन्ध, जो सामाजिक होते हैं, भौतिक नजर आने लगते हैं और वस्तुओं के आपसी भौतिक सम्बन्ध सामाजिक नजर आने लगते हैं। मुद्रा द्वारा मूल्यों की माप के कारण मालों का वास्तविक रूप छिप जाता है एवं एक भ्रान्तिपूर्ण रूप यथार्थ माना जाने लगता है। मुद्रा एवं विनियम-व्यवस्था के कारण मनुष्यों के श्रम का सामाजिक स्वरूप उनको अपने श्रम की पैदावार का वस्तुगत लक्षण प्रतीत सोने लगता है। इसलिए माल एक रहस्यमयी वस्तु वन जाते हैं और फलस्वरूप, मॉर्क्स के शब्दों में, "वहाँ मनुष्यों के बीच एक खास प्रकार का सामाजिक सम्बन्ध कायम है, जो उनकी नजरों में वस्तुओं के सम्बन्ध का अजीबोगरीब रूप धारण कर लेता है।" वस्तुओं की इस बढ़ी महत्ता के कारण मॉर्क्स ने इस प्रवृत्ति को 'वस्तुओं की जड़-पूजा' का नाम दिया।

fiat money (फाइअॅट् मॅनी): प्रादिष्ट मुद्रा, आज्ञप्त मुद्रा।

कोई वस्तु जो सरकारी आदेश से लेन-देन में विधिग्राह्य होती है अर्थात् जो विनिमय-क्षेत्र में वैध मुद्रा के रूप में प्रयुक्त होती है, उसे 'प्रादिष्ट मुद्रा' अथवा 'आज्ञप्त मुद्रा' कहते हैं। सरकारी आदेश ही ऐसी मुद्रा के मूल्य का आधार होता है, फिर भी मुद्रा का कार्य कर सकने के लिए इसमें

सर्वमान्यता का गुण होना आवश्यक है, अर्थात् लेन-देन के कार्य में लोग इसे स्वीकार करने को तैयार हों। पत्र-मुद्रा इस प्रकार की मुद्रा का एक अच्छा उदाहरण है।

fiduciary issue (फिडुसिअँरी इश्यु) : प्रत्ययी मुद्रा।

वह कागजी मुद्रा जो सोना, चाँदी आदि मूल्यवान धातुओं के सुरक्षित भण्डार के समर्थन विना ही, मौद्रिक अधिसत्ता के विश्वास के आधार पर जारी की जाती है, प्रत्ययी मुद्रा कहलाती है। आजकल विभिन्न देशों के केन्द्रीय बैंकों द्वारा प्रचलित मुद्रा सर्वथा प्रत्ययी ही होती है। मूल्यवान धातुओं के भण्डार से मुद्रा की राशि को बाँध देना न केवल यान्त्रिक है अपितु आधुनिक अर्थव्यवस्थाओं की मौद्रिक जरूरतें पूरा करने में अक्षम भी है।

देखिए : fiat money
money.

final goods (फाइनल गुड्स) : अन्तिम वस्तुएँ।

ऐसी वस्तुएँ जो पुनः बिक्री के लिए अथवा आगे चलकर उत्पादन-प्रक्रिया में इस्तेमाल के लिए नहीं, बल्कि अन्तिम प्रयोग या उपभोग के लिए खरीदी जाती हैं, अन्तिम या अन्त वस्तुएँ कहलाती हैं। दोहरी गणना के दोष से बचने के लिए राष्ट्रीय आय का अनुमान लगाते समय केवल अन्तिम वस्तुओं की कीमतों का ही जोड़ लगाया जाता है। इस आगणन में मध्यवर्त्ती वस्तुओं की कीमतों को छोड़ दिया जाता है, क्योंकि ये अन्तिम वस्तुओं की कीमतों में शामिल रहती हैं।

देखिए : end product.

final product (फाइनल प्रॉडक्ट): अन्तिम उत्पाद।

अन्तिम वस्तु का दूसरा नाम।

देखिए : end product
final goods.

final utility (फाइनल युटिलिटी): अन्तिम उपयोगिता।

अल्फ्रेड मार्शल और स्टेन्ली जेवंस ने सीमान्त उपयोगिता के स्थान पर विकल्प के तौर पर 'अन्तिम उपयोगिता' शब्द का प्रयोग किया। किन्तु यह प्रयोग लोकप्रिय न हो सका।

देखिए : marginal utility.

finance (फाइनेन्स) : वित्त।

आर्थिक उद्देश्यों (जैसे:उत्पादन, खरीद, उपभोग आदि) की पूर्ति के लिए एकत्रित मुद्रा-राशि वित्त कहलाती है। वित्त अपने निजी साधनों से भी प्रदान किया जा सकता है और यह बैंकों, वीमा-कम्पनियों आदि संस्थाओं से भी प्राप्त किया जा सकता है। वित्त को अल्पकालिक, मध्यमकालिक तथा दीर्घकालिक कोटियों में बाँटा जा सकता है। जब व्यावसायिक उद्देश्यों के लिए मुद्रा का प्रयोग किया जाता है, तब इसे वित्तीय पूँजी कहते हैं। उपभोग के काम में आनेवाला वित्त उपभोग-वित्त कहलाता है। यदि यह राशि कर्ज द्वारा प्राप्त की जाये, तो इसे उपभोक्ता उधार कहेंगे।

देखिए : financial capital
consumers' credit.

financial capital (फाइनेन्स्यल कैपिटल) : वित्तीय पूँजी।

वह मुद्रा-राशि, जो उत्पादन बढ़ाने के कामों में लगायी जाती है या बैंक-जमा, नगदी, शेयर, ऋणपत्र, प्रतिभूति आदि के

रूप में रखी जाती है, वित्तीय पूंजी कहलाती है।

देखिए : capital.

financial institutions (फाइनेन्स्यल इन्स्टीट्यूशन्स) : वित्तीय संस्थाएँ।

वित्त के लेन-देन से सम्बन्धित संस्थाएँ, जैसे कि बैंक, बीमा कम्पनी आदि। ये वित्तीय विचौलियों के रूप में कार्य करती हैं।

देखिए : financial intermediaries.

financial intermediaries (फाइनेन्स्यल इण्टरमीडियेरीज़) : वित्तीय विचौलिये।

मुद्रा के लेन-देन में, अर्थात् लोगों से मुद्रा जमा के रूप में लेने तथा लोगों को मुद्रा उधार देने के काम में लगी संस्थाएँ। बैंक, बीमा कम्पनियाँ, निवेश निधियाँ, युनिट ट्रस्ट आदि वित्तीय विचौलिया संस्थाएँ हैं। इन संस्थाओं को बैंक तथा गैर-बैंक कोटियों में बाँटा जा सकता है। बैंकों की लेनदारियाँ मुद्रा-पूर्ति का भाग होती हैं, जबकि अन्य संस्थाओं की देनदारियों में यह गुण नहीं होता है। उनकी देनदारियाँ ज्यादा-से-ज्यादा मुद्रासदृश्य मानी जा सकती है। अर्थव्यवस्था की सम्पूर्ण मुद्रा की मात्रा तथा तरलता पर इन वित्तीय संस्थाओं का गहरा प्रभाव होता है। आजकल केन्द्रीय बैंक वाणिज्य बैंकों के साथ-साथ अन्य वित्तीय संस्थाओं को भी नियन्त्रित करने लगे हैं।

firm (फ़र्म) : फ़र्म।

वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन, क्रय-विक्रय आदि के लिए स्थापित कोई व्यावसायिक इकाई। दूसरे शब्दों में, फ़र्म एक व्यावसायिक इकाई है जो किसी आर्थिक क्रिया के संचालन के लिए खोली जाती है। परिवार, सरकार आदि सामाजिक संस्थाओं से फ़र्म इस बात में भिन्न होती है कि इसमें लाभ कमाने पर अपेक्षाकृत अधिक बल दिया जाता है। फ़र्म का आकार छोटा भी हो सकता है और बड़ा भी। स्वामित्व और नियन्त्रण-व्यवस्था की दृष्टि से फ़र्म के अनेक रूप होते हैं; जैसे एकल स्वामित्व, साझेदारी, संयुक्त पूंजी कम्पनी, निगम आदि।

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था को एक विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था समझा जाता है। इस व्यवस्था में फ़र्म उत्पादन की मूलभूत इकाई होती है। फ़र्म के व्यवहार और कार्यकलाप की व्याख्या पूंजीवादी अर्थप्रणाली को समझने के लिए बहुत आवश्यक होती है। इसलिए पूंजीवादी आर्थिक सिद्धान्तों में फ़र्म-सम्बन्धी सिद्धान्त बहुत महत्त्व रखते हैं।

fiscal policy (फिस्कल पॉलिसी) : राजकोषीय नीति।

सरकार की कराधान तथा अन्य रीतियों से राजस्व प्राप्त करने तथा राजकीय व्यय के परिमाण एवं स्वरूप के निर्धारण से सम्बन्धित नीति। राज्य के बजट-सम्बन्धी निर्णय इस नीति में शामिल होते हैं। बजट का घाटा, अधिशेष या सन्तुलन राज्य की आर्थिक नीति द्वारा निर्धारित होता है। अर्थव्यवस्था की गतिविधियों की मात्रा तथा स्वरूप पर राजकोषीय नीति का गहरा असर होता है। राजस्व के विभिन्न स्रोतों का चयन, उनका सापेक्ष महत्त्व-निर्धारण, कराधान द्वारा प्राप्त राजस्व का निर्धारण, विभिन्न प्रकार

के करों का चयन, उनकी दर तथा सम्बन्धित नियमों व उपनियमों का निर्धारण, व्यय की विभिन्न मदों में राजस्व का आवण्टन आदि कार्य आजकल की सभी अर्थव्यवस्थाओं के लिए निर्णायक बन गये हैं। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि राजकीय आर्थिक कार्यों का संचालन राजकोषीय नीति द्वारा ही होता है।

राज्य के दिनोंदिन बढ़ते आर्थिक उत्तरदायित्वों के सन्दर्भ में राजकोषीय नीति का महत्त्व भी बढ़ गया है। आर्थिक गतिविधियों के लिए आवश्यक पृष्ठभूमि के निर्माण के अतिरिक्त आर्थिक विकास, आर्थिक स्थायित्व, विषमताओं के निराकरण, आर्थिक कुशलता में वृद्धि आदि सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति में राजकोषीय नीति का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। मुद्रा-नीति तथा प्रत्यक्ष हस्तक्षेप के साथ-साथ राजकोषीय नीति राजकीय आर्थिक कार्यों के संचालन में महत्त्वपूर्ण भाग अदा करती है। राजकीय व्यय का राष्ट्रीय आय का बढ़ता हुआ अनुपात बनना राजकोषीय नीति की बढ़ती भूमिका का सूचक है।

fiscal year (फिस्कल यीअर) : राजकोषीय वर्ष।

सरकारी लेखापालन अथवा बजट के लिए निर्धारित वार्षिक अवधि। राजकोषीय वर्ष कैलेण्डर-वर्ष की किसी तिथि से प्रारम्भ हो सकता है। भारत में राजकोषीय वर्ष १ अप्रैल से आरम्भ होता है और ३१ मार्च को पूरा होता है।

fisher equation (फिशर इक्वेशन) : फिशर-समीकरण।

अमरीकी अर्थशास्त्री इरविंग फिशर (१८६७-१९४७) ने मुद्रा के मात्रात्मक सिद्धान्त के विकास में अग्रणी भाग लिया था। उन्होंने मुद्रा की मात्रा तथा सामान्य कीमत-स्तर को साथ-साथ घटने-बढ़नेवाले चर साबित करना चाहा। इस सिद्धान्त को उन्होंने एक समीकरण के रूप में व्यक्त किया। इसे 'विनिमय समीकरण' भी कहते हैं।

देखिए : equation of exchange.

fixed assets (फिक्स्ड ऍसेट्स): स्थायी परिसम्पत्तियाँ।

किसी व्यवसाय की अपेक्षाकृत टिकाऊ परिसम्पत्तियाँ; जैसे भूमि, मशीनें, कारखाना व अन्य इमारतें आदि। ये व्यवसाय के नियमित परिचालन में हाथ बँटाती हैं और व्यवसाय का काम रोके बिना इन्हें बेचा नहीं जा सकता। वास्तव में ये पुनर्विक्रय के लिए नहीं होतीं। भूमि को छोड़कर अधिकांश स्थायी परिसम्पत्तियों की जीवन-अवधि सीमित होती है। प्रयोग के साथ उनमें घिसावट होती रहती है। स्थायी परिसम्पत्तियों के इस मूल्य-ह्रास को व्यवसाय के खाते में दिखाया जाता है और इस सम्बन्ध में आवश्यक व्यवस्था कर दी जाती है ताकि समय आनेपर स्थायी परिसम्पत्तियों का प्रतिस्थापन हो सके।

fixed capital (फिक्स्ड कैपिटल): अचल पूँजी।

ऐसी पूँजी-वस्तुएँ या परिसम्पत्तियाँ, जो टिकाऊ किस्म की होती हैं और फलस्वरूप जिनका प्रयोग उत्पादन के लिए अनेक बार किया जा सकता है; जैसे कि कारखाने की इमारतें, मशीनें, औजार, रेल, जहाज आदि। अचल पूँजी का यह अर्थ नहीं है कि इसका स्थान स्थिर है अथवा इसके स्थान को बदला नहीं जा

सकता। बल्कि इसका आशय स्थायी पूँजी-वस्तुओं से है जिनका प्रयोग अनेक उत्पादन-अवधियों में होता है। ये एक वार के ही प्रयोग में नष्ट नहीं हो जातीं, वल्कि एक लम्बे समय तक उत्पादन-क्षेत्र में इनका प्रयोग चलता रहता है। अर्थात् ये दीर्घ-कालिक प्रयोगवाली पूँजी-वस्तुएँ होती हैं।

स्थायी स्वरूप के वावजूद प्रयोग के साथ अचल पूँजी घिसती रहती है और एक समय के बाद काम के लायक नहीं रह जाती। इस वात को ध्यान में रखते हुए हर वर्ष कुछ रकम अलग कर दी जाती है, ताकि समय आने पर आवश्यकतानुसार अचल पूँजी का प्रतिस्थापन किया जा सके।

fixed cost (फिक्स्ड कॉस्ट) : स्थिर लागत।

लागत के कुछ अंश ऐसे होते हैं जो अल्प-अवधि में उत्पादन-मात्रा में परिवर्तन के साथ घटते-बढ़ते नहीं। उत्पादन-मात्रा की एक निश्चित सीमा तक वे स्थिर या वँधे होते हैं, जैसे कि किराया, व्याज, उच्च-स्तरीय प्रवन्धकों के वेतन, संयन्त्र तथा सम्पत्ति-कर आदि। इन्हें 'स्थिर लागत', मशीनरी का मूल्य-ह्रास या 'वँधी लागत' कहते हैं। किसी कारखाने में किसी समय उत्पादन-कार्य चाहे पूर्ण क्षमता पर हो रहा हो या उससे कम अथवा चाहे किसी समय उत्पादन-कार्य बन्द ही क्यों न हो, किराये तथा व्याज आदि का भुगतान तो करना ही पड़ेगा। ऐसे खर्चे तो हर दशा में होंगे ही; इनसे वचा नहीं जा सकता। यही कारण है कि इस प्रकार के खर्चों को 'स्थिर लागत' का नाम दिया जाता है।

कुछ प्रकार के उत्पादन के सम्वन्ध में, जैसे कि रेल-परिवहन या लोहा-इस्पात उद्योग में, कुल लागत में स्थिर लागत का अनुपात अपेक्षाकृत अधिक होता है। ऐसे उत्पादन-क्षेत्रों में उत्पादन-मात्रा में वृद्धि होने पर सीमान्त लागत में वड़ी तेजी से घटी होती है। इसके विपरीत, जहाँ कुल लागत में स्थिर लागत का अनुपात अपेक्षा-कृत थोड़ा होता है, वहाँ उत्पादन-वृद्धि के साथ सीमान्त लागत में यदि घटी होती भी है, तो बहुत धीमी गति से।

स्थिर लागत के सम्वन्ध में समय-अवधि का ध्यान रखा जाना वहुत महत्त्व-पूर्ण है। स्थिर-लागत केवल अल्प-काल में ही स्थिर होती है। दीर्घकाल में कोई भी लागत स्थिर या वँधी नहीं होती। दीर्घ-काल में उत्पादन-विधि और ढाँचे में आव-श्यक परिवर्तन लाया जा सकता है। इस कारण दीर्घकाल में लागत के सब अंश परिवर्तनीय होते हैं।

floating assets (फ्लोटिंग ऍसेट्स) : चल परिसम्पत्ति।

इसका आशय उस परिसम्पत्ति से है जो थोड़े ही समय के लिए रखी जाती है और जिसे आसानी से नकदी में वदला जा सकता है। ऐसी परिसम्पत्ति को प्रायः 'चालू परिसम्पत्ति' कहा जाता है।

देखिए : assets
current assets.

floating debt (फ्लोटिंग डेट्) : अनिधिक ऋण।

कोई भी अल्पकालिक ऋण। यह निधिक ऋण का विलोम होता है। अनिधिक ऋण में सार्वजनिक या राष्ट्रीय ऋण की अल्पकालिक उधारें (जैसे सरकारी हुण्डियाँ,

राजकोष जमा रसीदें आदि तरल परिसम्पत्तियाँ) विशेष रूप से शामिल की जाती हैं।

floating of shares (फ्लोटिंग ऑफ शेयर्स) : शेयर प्रवर्त्तन, शेयर जारी करना।

जनता में शेयर बेचकर पूँजी एकत्रित करना। संयुक्त पूँजी कम्पनी प्रारम्भ करने या विद्यमान कम्पनी की पूँजी बढ़ाने के लिए शेयर जारी करने पड़ते हैं। ये शेयर पूँजी-बाज़ार या स्टॉक एक्सचेंज में दलालों, बैंकों आदि के माध्यम से बेचे जाते हैं।

floating rate (फ्लोटिंग रेट) : अबन्ध दर।

स्वतन्त्र रूप से घटती-बढ़ती विनिमय-दर के लिए वैकल्पिक नाम।

देखिए : free exchange rate.

fluctuations (फ्लक्चुएशन्स) : उतार-चढ़ाव, उच्चावचन।

व्यवसाय, रोज़गार तथा कीमतों में होनेवाले उतार-चढ़ाव।

देखिए : full employment
trade cycle.

forced labour (फोर्स्ड लेबर) : बेगार।

बिना मजदूरी चुकाये श्रमिकों को काम करने को बाध्य करना। यह एक सामन्ती प्रथा है, जिसके अनुसार खेतिहरों को सामन्तों से जमीन प्राप्त करने के बदले में लगान चुकाने के साथ-साथ उनके खेतों पर मुफ्त काम भी करना पड़ता था। ऐसे बेगार को श्रम-लगान भी कहा जा सकता है। शोषण की यह व्यवस्था अधिकांश देशों में कानून के सहारे समाप्त कर दी गयी है।

forced loan (फोर्स्ड लोन): अनिवार्य ऋण, जबरी कर्ज़।

इसका आशय उस ऋण से है, जो किसी देश की सरकार लोगों से अथवा वर्ग-विशेष से अनिवार्यतः लेती है। इस पर प्रायः ब्याज नहीं दिया जाता। इंग्लैंड में ट्यूडर तथा स्टुअर्ट राजाओं ने समय-समय पर अनिवार्य ऋण-नीति का सहारा लिया। जनता द्वारा इसका घोर विरोध किया गया, विशेष रूप से चार्ल्स प्रथम के शासनकाल में। कभी-कभी युद्धकालीन स्थित में बढ़े हुए खर्चे पूरे करने के लिए सरकार लोगों से अनिवार्य ऋण लेने की व्यवस्था करती है। ऐसे ऋण प्रायः लौटाये नहीं जाते और यदि लौटाये जाते भी हैं, तो बड़ी कठिनाई के साथ।

forced saving (फोर्स्ड सेविंग): अनिवार्य बचत, जबरी बचत।

इसका आशय उस बचत से है, जो लोगों को अनिवार्यतः करनी पड़ती है। अनिवार्य बचत की परिकल्पना विभिन्न प्रकार की स्थितियों में की जा सकती है। उदाहरण के लिए, अनिवार्य बचत की स्थित पूर्ण रोजगारवाली अर्थव्यवस्था में स्फीतिकाल के दौरान पैदा हो सकती है। मान लीजिए कि ऐसी अर्थव्यवस्था में कोई नयी निवेश-क्रिया हाथ में ली जाती है। इसके फलस्वरूप अपेक्षाकृत कम उपभोक्ता-वस्तुएँ उपलब्ध हो सकेंगी। उपभोक्ताओं के बीच प्रतियोगिता के कारण इन वस्तुओं की कीमतें बढ़ने लगेंगी। यह वृद्धि उस समय तक चलती रहेगी, जब तक कि उपभोक्तताओं की ओर से उतनी धन-राशि बाज़ार से वापिस नहीं ले ली जाती जितनी कि निवेश-क्रिया में लगायी गयी

है। अब यदि बढ़ती हुई कीमतों के हिसाब से लोगों की आय में वृद्धि नहीं होती तो वास्तविक उपभोग में अनिवार्य रूप से कटौती करनी पड़ेगी। उपभोग में इस कटौती के फलस्वरूप बचत में वृद्धि होगी। यह बचत अनिवार्य बचत का उदाहरण है और स्पष्टत: ऐसी बचत लोग स्फीति-काल में करने को विवश होते हैं, जबकि कीमतें बढ़ रही होती हैं लेकिन लोगों की आय में कीमतों के अनुरूप वृद्धि नहीं होती।

इस प्रकार जब कोई निगम या कम्पनी अपनी नीति अथवा सरकारी नियन्त्रण के फलस्वरूप, आय का अधिकांश अपने पास रखती है और शेयरधारियों के बीच उसका वितरण नहीं किया जाता, तब शेयरधारियों को विवश होकर बचत करनी पड़ती है। ऐसी स्थित में कोई भी शेयरधारी उस निगम की आय में अपने भाग का अपने लिए इस्तेमाल नहीं कर सकता और इस प्रकार वह राशि अनिवार्य रूप से बचत का रूप ले लेती है।

अनिवार्य बचत उस समय भी होती है, जबकि सरकार विभिन्न करों के सहारे लोगों से साधन जुटाकर उन्हें क्रियाओं में लगाती है। कर लोगों द्वारा सरकार को दिया जानेवाला एक अनिवार्य भुगतान है। अत: जब सरकार कर लगाती है, तब करदाता अपनी आय के एक भाग को खर्च नहीं कर पाते। कर के भुगतान में आय का यह भाग लोगों से सरकार के पास अनिवार्य रूप में पहुँच जाता है। इस प्रकार कराधान के सहारे लोग अनिवार्य रूप से बचत के लिए विवश किये जा सकते हैं। कई देशों, विशेषकर अल्प-विकसित देशों में, बचत का काफ़ी बड़ा भाग इस प्रकार प्राप्त होता है।

foreign exchange (फ़ॉरेन एक्स्चेंज) : विदेशी विनिमय।

किसी अन्य देश पर वहाँ की मुद्रा या ब्याज-अर्जक बॉण्ड के रूप में रखे हुए दावे। यह एक देश की अन्य देश में काम आनेवाली क्रय-शक्ति है। निर्यात द्वारा यह विनिमय अर्जित की जाती है।

foreign exchange market (फ़ॉरेन् एक्स्चेंज मार्केट) : विदेशी विनिमय-बाज़ार।

इसका आशय उस बाज़ार से है, जहाँ विदेशी मुद्राओं का एक-दूसरे के साथ विनिमय होता है। मुक्त अथवा निर्बाध बाज़ार के अन्तर्गत ऐसे विनिमय पर कोई प्रतिबन्ध नहीं रहता। किन्तु आजकल प्राय: विदेशी विनिमय-बाज़ार पर विभिन्न रीतियों से नियन्त्रण लगाया जाता है।

foreign investment (फ़ॉरेन इन्वेस्ट-मेण्ट): विदेशीय निवेश।

किसी देश में विदेशी लोगों, संस्थाओं या सरकारों द्वारा उत्पादन-क्षमता बढ़ाने के लिए विद्यमान पूँजीगत सामान की खरीद या नये पूँजीगत सामान का निर्माण विदेशीय निवेश कहलाता है। विदेशीय निवेश के कारण भुगतान-शेष के पूँजी-भाग में वृद्धि होती है। परन्तु जब विदेशी मुनाफे आदि के रूप में विदेशी मुद्रा बाहर भेजते हैं तो भुगतान-अधिशेष पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। विदेशीय निवेश के प्रभावों के बारे में काफी विवाद चले हैं। जहाँ कुछ लोग इसके बचत, उत्पादन तथा रोज़गार-वृद्धि एवं तकनीकी विकास-सम्बन्धी प्रभावों पर ज़ोर देते हैं, वहाँ

अन्य लोग इसके स्वावलम्बन-विरोधी, विदेशी प्रभाव में वृद्धि, राजनीतिक कमज़ोरी, मुनाफ़े की अत्यधिक ऊँची दर, रॉयल्टी तथा तकनीकी शुल्कों द्वारा शोषण एवं विदेशीय निवेश के साम्राज्यवाद-प्रसारक प्रभावों पर ज़ोर देते हैं।

देखिए : colonialism.

foreign trade (फ़ॉरेन् ट्रेड) : विदेशी व्यापार।

यह वह व्यापार है जो कोई देश किसी अन्य देश या देशों के साथ करता है। विभिन्न देशों के बीच इस प्रकार जो वस्तुओं तथा सेवाओं का विनिमय या क्रय-विक्रय होता है, वह 'विदेशी व्यापार' कहलाता है। आजकल परिवहन तथा संचार-साधनों के क्षेत्र में हुई क्रान्ति से विदेशी व्यापार को बहुत बढ़ावा मिला है और इसकी मात्रा तथा मूल्य में भारी वृद्धि हुई है। इस क्रान्ति के फलस्वरूप विभिन्न देश एक-दूसरे के काफ़ी निकट आ गये हैं, जिससे व्यापार अधिक सुविधाजनक हो गया है। उनके माल और बाज़ार से सम्बन्धित जानकारी में तेजी से वृद्धि भी हुई है। इससे विदेशी व्यापार के बढ़ने और फैलने में बड़ी सहायता मिली है। लेकिन, इस व्यापार की एक बड़ी जटिलता इस बात से पैदा होती है कि विभिन्न देशों की अपनी अलग-अलग मुद्राएँ हैं। इससे विभिन्न मुद्राओं के बीच विनिमय-दर के निर्धारण एवं भुगतान-सम्बन्धी समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

देखिए : international trade.

forestalling (फोअस्टॉलिंग) : पेशबन्दी।

भावी कर या शुल्क से बचाव के लिए किसी व्यापारिक अथवा वि[illegible] क्रिया की गति में वृद्धि करना। मुख्य [illegible] से इस अवधारणा का प्रयोग आयात-[illegible] के सिलसिले में किया जाता है। [illegible] किसी वस्तु के आयात पर शुल्क [illegible] अथवा शुल्क-दर बढ़ाये जाने का [illegible] आयातकर्त्ताओं को लगता है, तब प्राय: [illegible] उस शुल्क-व्यवस्था से पहले उस वस्तु [illegible] अधिकाधिक मात्रा में आयात करने [illegible] प्रयास करते हैं, ताकि उस शुल्क से [illegible] अपना बचाव कर सकें। इस प्रकार [illegible] उनका यह कार्य 'पेशबन्दी' कहलाता है।

इस अवधारणा का एक अन्य रूप [illegible] प्रयोग किया जाता है। भविष्य में अपेक्षाकृत अधिक ऊँची कीमत पर बेचने [illegible] उद्देश्य से जब बाज़ार में किसी वस्तु [illegible] सारे माल को अपने अधिकार में लाने [illegible] प्रयास किया जाता है, तब इस प्रकार [illegible] कार्यवाही को 'पेशबन्दी' कहते हैं।

forward exchange (फॉर्वर्ड एक्सचेंज) : वायदा-विनिमय।

किसी भावी तिथि पर भुगतान कर[illegible] अथवा बिक्री के लिए विदेशी मुद्राओं [illegible] क्रय-विक्रय। जब विदेशी मुद्राओं की विनिमय-दरों में तेजी से उतार-चढ़ाव होता है तब व्यापार-क्षेत्र में वायदा-विनिमय [illegible] कार्य विशेष महत्त्वपूर्ण बन जाती है। विनिमय-दर में तीव्र परिवर्तन के का[illegible] अनिश्चितता व जोखिम बढ़ जाता है जिससे विदेशी व्यापार के कार्य में रु[illegible] वट पैदा होती है। इस जोखिम से बच[illegible] के लिए व्यापारी लोग वायदा-विनिमय[illegible] सम्बन्धी सौदा करते हैं। अन्य वस्तु[illegible] की भाँति विदेशी-मुद्रा के सम्बन्ध में [illegible] वर्तमान सौदे के लिए एक उपस्थित विनि[illegible]

मय-दर के अतिरिक्त भावी सौदे के लिए विनिमय-दरें होती हैं। व्यापारीगण वायदा-विनिमय-सम्बन्धी सौदा इस प्रकार करने का प्रयास करते हैं कि विनिमय-दर में उतार-चढाव के कारण होनेवाली जोखिमों से बचाव सम्भव हो सके। जहाँ इस तरह के सौदे किये जाते हैं, उसे वायदा-विनिमय-बाज़ार कहते हैं। इस प्रकार वायदा-विनिमय-बाज़ार व्यापारियों को विनिमय-दर-सम्बन्धी उच्चावचन से बचाव के लिए पेशबन्दी करने में सहायक होता है।

forward exchange market (फॉर्‌वर्ड एक्स्‌चेंज मार्केट) : वायदा-विनिमय-बाज़ार।

विनिमय-बाज़ार का वह भाग, जहाँ वायदा-विनिमय-सम्बन्धी सौदे होते हैं। विनिमय-दर में उतार-चढ़ाव के कारण होनेवाली जोखिमों से बचाव के लिए पेश-बन्दी के तौर पर व्यापारीगण इस बाज़ार का सहारा लेते हैं।

देखिए : forward exchange.

free capital (फ्री कैपिटल): मुक्त पूंजी, तरल पूंजी।

सामान्यतः इसका प्रयोग मुद्रा-रूपी पूंजी अर्थात् 'नकदी पूंजी' के लिए किया जाता है। इस प्रकार की पूंजी को इच्छानुसार चाहे जिस रूप में आसानी से बदला जा सकता है। इसी कारण इसे तरल या मुक्त पूंजी कहा जाता है।

free coinage (फ्री कॉएनेज) : खुली सिक्का-ढलाई।

खुली सिक्का-ढलाई का आशय सिक्का-ढलाई की उस व्यवस्था से है जिसके अन्तर्गत लोगों को मनचाही मात्रा में सरकारी टकसाल में धातु ले जाकर सिक्के ढलवाने का पूरा अधिकार मिला होता है। इसका अर्थ यह नहीं कि सिक्का-ढलाई का कार्य निश्शुल्क किया जाता है। सिक्का-ढलाई का कार्य चाहे निश्शुल्क किया जाये या सशुल्क, अथवा शुल्क चाहे लागत के बराबर लिया जाये या उससे अधिक, मगर सिक्का-ढलाई के लिए सरकारी टकसाल लोगों के लिए खुले हों, तो उसे खुली सिक्का-ढलाई कहेंगे।

free competition (फ्री कॉम्पिटिशन): निर्बाध प्रतियोगिता, खुली प्रतियोगिता।

इसका आशय उस स्थिति से है जिसमें उत्पादन, वितरण आदि आर्थिक क्रियाओं का संचालन बिना किसी सरकारी हस्तक्षेप के स्वतन्त्र रूप से होता है। यहाँ माँग और पूर्ति की शक्तियाँ बिना किसी बाहरी रोक-टोक के क्रियाशील होती हैं और कीमत-प्रक्रिया के स्वतन्त्र संचालन से विभिन्न आर्थिक क्रियाओं का निर्धारण तथा नियमन होता है।

देखिए : ferfect competition
perfect market.

free economy (फ्री इकॉनॉमि): निर्बाध अर्थव्यवस्था, मुक्त अर्थव्यवस्था।

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का प्रचारात्मक एवं मूल्यभारित नाम, जहाँ निजी सम्पत्ति तथा निजी उद्यम की व्यवस्था के अन्तर्गत व्यक्ति को उपभोग, व्यवसाय, खरीदने-बेचने, बचत तथा निवेश करने के अधिकार होते हैं और इसमें यथासम्भव न्यूनतम राजकीय हस्तक्षेप करने का प्रयास किया जाता है। शायद इसे आर्थिक प्रणाली को 'निर्बाध' या 'मुक्त' नाम देकर अन्य प्रणालियों को ऐसी आजादी या मुक्तता से विहीन चित्रित करने का अचेतन प्रयास

किया जाता है। या फिर स्वतन्त्रता की एक बहुत संकुचित अवधारणा इस शब्द के पीछे छिपी है, जिसके अनुसार पूंजीवाद परिभाषागत रूप में मुक्त या 'निर्बाध' आर्थिक प्रणाली है। सामन्तवादी आर्थिक प्रणाली में खेतिहरों को सामन्तों द्वारा खेती के लिए सौंपी गयी ज़मीन को छोड़ने का अधिकार नहीं था। उस व्यवस्था के विपरीत पूंजीवाद में रोज़गार तथा श्रम बेचने की आजादी है। शायद शुरू में 'निर्बाध' अर्थव्यवस्था से अभिप्राय इसी सामन्ती प्रणाली के विलोमार्थ में था।

देखिए : capitalism.

free enterprise system (फ्री एण्टरप्राइस सिस्टम) : मुक्त उद्यम-प्रणाली।

पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली का ही दूसरा नाम।

देखिए : capitalism
free economy
price system.

free entry (फ्री एण्ट्री) : निर्बाध प्रवेश।

किसी आर्थिक प्रणाली या उद्योग में विद्यमान स्थिति, जिसमें नये निवेशकों तथा उद्यमियों को किसी वस्तु-विशेष का उत्पादन शुरू करने में किसी व्यवस्थागत, कानूनी या परम्परागत निषेध या बाधा का सामना नहीं करना पड़े। अर्थात् अपने संसाधनों तथा अपनी क्षमता के बल पर नये उद्यमियों को चालू उद्योगों में अपना स्थान ग्रहण करने से रोका नहीं जाता है। पूर्ण प्रतियोगी पूंजीवादी बाजारों में ऐसी स्थिति विद्यमान होने की पूर्वकल्पना की जाती है। इस शर्त के विद्यमान होने पर कोई भी उद्यमी दीर्घकाल में असामान्य मुनाफा-दर अर्जित नहीं कर पाता है, क्योंकि नव-प्रवेशक इस मुनाफे की दर से आकर्षित होकर इस उद्योग का उत्पादन बढ़ा देंगे। फलस्वरूप मुनाफे की दर में सामान्य स्तर पर आने की प्रवृत्ति होगी।

free exchange rate (फ्री एक्सचेंज रेट) : मुक्त विनिमय-दर।

विनिमय-दर-निर्धारण की वह व्यवस्था, जिसमें एक देश की मुद्रा की अन्य मुद्राओं के रूप में कीमत बाजार की मांग, पूर्ति तथा प्रत्याशाओं के आधार पर बिना किसी रोक-टोक या नियन्त्रण के निर्धारित हो सके। विदेशी मुद्रा-बाजार के सन्तुलन द्वारा ऐसी दरों का निर्धारण होता है।

देखिए : exchange rates.

free goods (फ्री गुड्स): नैसर्गिक वस्तुएं, निश्शुल्क वस्तुएं।

ऐसी वस्तुएँ, जो प्रकृति की देन होती हैं अथवा जो इतनी अधिक मात्रा में होती हैं कि कोई भी व्यक्ति बिना किसी लागत या परिश्रम के मनचाही मात्रा में उन्हें प्राप्त कर सकता है, 'नैसर्गिक' या 'निश्शुल्क' वस्तुएँ कहलाती हैं। इन्हें स्वतन्त्र या मुक्त वस्तुएँ भी कहते हैं। साधारणतः जल, वायु, सूर्य की रोशनी आदि इस प्रकार की वस्तुओं के अच्छे उदाहरण माने जाते हैं, लेकिन अधिकांश आधुनिक अर्थ-व्यवस्थाओं में निश्शुल्क वस्तुओं की विशेषताएँ पूर्ण रूप से इन वस्तुओं में भी नहीं पायी जातीं। उदाहरण के लिए, अधिकांश आधुनिक समाजों में जल को साफ़ करने एवं उसे पीने योग्य बनाने में लागत लगती है। इस प्रकार सही अर्थों में जल निश्शुल्क वस्तु नहीं रह जाता। इसी प्रकार अनेक बड़े-बड़े नगरों में शुद्ध हवा की

लब्धि के लिए धुआँ आदि की सफ़ाई व नियमन की व्यवस्था में लागत लगानी पड़ती है। फलस्वरूप निश्शुल्क अथवा बिना आर्थिक लागत के इनकी प्राप्ति सम्भव नहीं हो पाती।

इस अवधारणा का प्रयोग विदेशी व्यापार के क्षेत्र में भी किया जाता है। वहाँ मुक्त वस्तुओं का आशय ऐसी वस्तुओं से होता है जिन पर सीमा-शुल्क नहीं लगाया जाता।

free list (फ्री लिस्ट) : मुक्त सूची।

'मुक्त सूची' का आशय ऐसी वस्तुओं की सूची से है जिनके आयात पर शुल्क का भुगतान नहीं करना पड़ता। दूसरे शब्दों में यह सूची आयात-शुल्क-मुक्त सूची होती है। भिन्न-भिन्न देशों में, उनकी विशेष परिस्थिति के अनुसार, शुल्क-मुक्त माल-सूची भिन्न-भिन्न होती है और समय-समय पर इसमें परिवर्तन किये जाते रहते हैं।

free market (फ्री मार्केट): मुक्त बाज़ार, निर्बाध बाज़ार।

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के बाज़ारों में संसाधन, वस्तुएँ तथा सेवाएँ अपने इच्छानुसार, आपसी रजामन्दी से खरीदने-बेचने का अधिकार होता है। स्वाभाविक है कि यह अधिकार देश के कानून की सीमा में होता है। किसी कीमत-विशेष पर खरीदने या नहीं खरीदने, बेचने या नहीं बेचने का अधिकार भी इस अवधारणा में शामिल है। ऐसे बाज़ार में कीमतें क्रेताओं और विक्रेताओं की पारस्परिक शक्तियों द्वारा निर्धारित होती हैं।

जहाँ तक उपभोग-वस्तुओं के निर्बाध बाज़ार का सवाल है, आय मौद्रिक रूप में बाँटने और वस्तुएँ कीमतों के आधार पर बेचने से यह बाज़ार निर्बाध बन जाता है। लोगों को श्रम के बदले प्रतिफल देने तथा अपनी पसन्द का रोज़गार चयन करने देने से श्रम का मुक्त बाज़ार स्थापित होता है। कौशल तथा प्रशिक्षण-प्राप्ति के अवसरों की समानता से यह मुक्तता सारगर्भित हो जाती है। समाजवादी अर्थ-प्रणाली में भी उपभोग-वस्तुओं तथा श्रम का ऐसा निर्बाध बाज़ार पाया जाता है। पूँजीगत वस्तुओं के निर्बाध बाज़ार का अर्थ उन वस्तुओं पर निजी स्वामित्व का अधिकार तथा कुछ लोगों द्वारा अन्य लोगों का श्रम खरीदने का अधिकार होता है। इससे मनुष्यों द्वारा मनुष्यों का शोषण और उनमें गैर-बराबरी का विकास होता है। समाजवाद का मूलभूत सिद्धान्त इस व्यवस्था की समाप्ति है।

free market economy (फ्री मार्केट इकॉनॉमि) : निर्बाध बाज़ार-अर्थ-व्यवस्था।

पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली का ही एक अन्य नाम। इस व्यवस्था के अन्तर्गत हर वस्तु, सेवा तथा संसाधन (श्रम-सहित) का बाज़ार होता है जहाँ पर हर कोई अपना सामान बेच सकता है और साधारणत: किसी भी सामान को खरीद सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि इस व्यवस्था में व्यक्तियों, फर्मों तथा परिवारों को एक समान कानून के चौखटे में आर्थिक लेन-देन की आजादी होती है। अगर आर्थिक शक्ति के वितरण में असमानता के कारण किन्हीं लोगों के लिए यह आजादी अव्यावहारिक हो जाये, तो भी वह इस व्यवस्था के नियमों से संगत होगा।

देखिए : capitalism
free economy.

free trade (फ्री ट्रेड) : निर्बाध व्यापार, मुक्त व्यापार।

वस्तुओं और सेवाओं को राष्ट्रीय सीमाओं के बाहर खरीदने और बेचने के रास्ते में राज्य द्वारा न कोई बाधा खड़ी करना, न कोई प्रोत्साहन देना निर्बाध व्यापार कहलाता है। यह विदेशी व्यापार के मामले में अहस्तक्षेप की नीति है। इस नीति के अनुसार निर्यात-प्रोत्साहन, आयात-प्रतिस्थापन, तट-कर आदि सब प्रकार की नीतियाँ त्याज्य हैं। राज्य का कार्य तो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के संचालन के लिए आवश्यक कानून और व्यवस्था को लागू करना है। शेष सब बातें आर्थिक प्रभावों द्वारा स्वतः निर्धारित होने के लिए छोड़ दी जाती हैं।

अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरणों में वाणिज्यवादी आर्थिक नीति का ध्येय विदेशी व्यापार को इस तरह नियन्त्रित करना हो गया था, ताकि देशों को बढ़ते हुए निर्यात-अधिशेष और फलस्वरूप वर्धमान विदेशी-मुद्रा तथा स्वर्ण-कोष की प्राप्ति हो सके। यूरोप में उभरते पूंजीवादी आर्थिक विकास के मार्ग में इस हस्तक्षेपवादी नीति ने रुकावटें डालीं। इस स्थिति के विरुद्ध संस्थापक अर्थशास्त्रियों ने विद्रोह किया और बताया कि तुलनात्मक लागत-लाभ-सिद्धान्त के अनुसार निर्बाध अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से सभी को लाभ है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-विभाजन तथा विशिष्टीकरण के कारण हर देश के उत्पादन और 'व्यापार द्वारा रूप-परिवर्तन' के कारण आर्थिक कल्याण बढ़ेगा। एडम स्मिथ, रिकॉर्डो आदि अर्थशास्त्रियों ने निर्बाध व्यापार-नीति का पृष्टपोषण किया।

ब्रिटेन के औद्योगीकरण तथा उपनिवेशवाद को निर्बाध व्यापार-नीति से बहुत बल मिला। वहाँ इस नीति की तूती करीबन एक शताब्दी तक बोलती रही। अनेक देशों के आर्थिक पिछड़ेपन, शोषण तथा वहाँ आर्थिक राष्ट्रवाद के पनपने के कारण धीरे-धीरे इस नीति का परित्याग किया जाने लगा। विकसित पूँजीवादी देशों की साम्राज्यवादी स्पर्धा ने भी निर्बाध व्यापार-नीति की जड़ें खोदने में अपना योगदान दिया।

आज विश्व-व्यापार बहुत-से नियन्त्रणों, रुकावटों और निषेधों से घिरा हुआ है। तट-कर, कोटा, विनिमय-नियन्त्रण, विदेशी-विनिमय-दर की बार-बार घट-बढ़, सीमा-शुल्क संघ आदि अनेक तरीकों से हर राष्ट्र अपनी विदेशी आर्थिक नीति द्वारा अपने राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय, आर्थिक और आर्थिकेतर हितों की साधना में लगा हुआ है। जहाँ अल्पविकसित देश 'शिशु-उद्योग तर्क' के आधार पर इस नीति से मुँह मोड़ते हैं, वहाँ विकसित राष्ट्र भी इस नीति से हटने में ही अपने निजी आर्थिक हित देखते हैं। कहा जा सकता है कि आज का विदेशी व्यापार निर्बाध व्यापार-नीति को बहुत पीछे छोड़ चुका है।

free trade area (फ्री ट्रेड एरिया) : मुक्त व्यापार क्षेत्र।

कुछ राष्ट्रों का ऐसा समूह, जो अपने पारस्परिक व्यापार को सब तरह से नियन्त्रणों और हस्तक्षेपों से मुक्त करने का समझौता करें। परन्तु क्षेत्र के बाहर के

राष्ट्रों से इस समूह का हर राष्ट्र अपने निजी स्तर पर व्यवहार करने के लिए स्वतन्त्र होता है।

देखिए : customs union.

frictional unemployment (फ्रिक्शनल अनएम्प्लॉयमेण्ट) : घर्षणी वेरोजगारी, अस्थायी वेरोज़गारी।

आर्थिक परिवर्तन तथा आर्थिक स्थिति के वारे में सूचनाओं के अभाव के कारण कुछ आर्थिक संसाधन कुछ समय के लिए रोज़गार प्राप्त नहीं कर पाते हैं या उनका रोज़गार छूट जाता है। वे धीरे-धीरे अपने को नयी आर्थिक स्थिति के अनुकूल बनाते हैं या आर्थिक स्थिति के बारे में पूरी सूचना प्राप्त करते हैं। ऐसा होने पर उन्हें फिर रोज़गार मिल जाता है। इस प्रकार की अल्पकालिक बेकारी अस्थायी असन्तुलन के कारण होती है। विभिन्न ताकतों तथा प्रभावों के बीच असन्तुलन तत्क्षण प्राप्त नहीं हो पाता है। सन्तुलनप्राप्ति में जो समय लगता है, उसके दौरान यह असन्तुलन बना रहता है। जब किसी पुराने उद्योग का क्षय होता है और वहाँ श्रम की छँटनी की जाती है, तब इन श्रमिकों को नये एवं बढ़ते हुए उद्योगों के आवश्यकतानुसार नये काम तथा कौशल सीखने होते हैं। उन्हें नये स्थानों पर जाना पड़ता है। नये व वर्धमान श्रम की माँगवाले उद्योगों की स्थिति, ज़रूरतों आदि के बारे में सूचनाएँ प्राप्त करनी होती हैं। इसमें कुछ समय लगता है। इस प्रकार कुछ समय के लिए विद्यमान बेकारी असन्तुलनात्मक बेकारी कहलाती है।

यह बेकारी कोई विशेष गम्भीर समस्या नहीं मानी जाती है। कुछ अंशों तक यह किसी भी परिवर्तनशील अर्थ-व्यवस्था में अपरिहार्य होती है। रोज़गार-सम्बन्धी सूचनाओं की शीघ्र तथा व्यापक उपलब्धि, रोज़गार दफ्तरों की स्थापना, श्रमिकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था तथा आर्थिक परिवर्तन को सुनियोजित करने आदि तरीकों द्वारा इस वेरोज़गारी के प्रभाव को न्यूनतम किया जा सकता है। असन्तुलनात्मक वेरोगज़ारी यदि लम्बे समय तक बनी रहे, तो इसे संरचनात्मक वेरोज़गारी कहना पड़ेगा। ऐसा आर्थिक परिवर्तन को अनुकूल बनाने की असफलता के कारण होता है।

fringe benefits (फ्रिंज वेनीफिट्स) : अनुषंगी हितलाभ।

नौकरी के बदले मजदूरी या वेतन के अतिरिक्त लाभ तथा सुविधाओं को, चाहे वे मौद्रिक हों या सेवा या वस्तु-रूपी, अनुषंगी हितलाभ कहते हैं। पारिश्रमिक की वास्तविक दर को आँकने में इन अनुषंगी सुख-सुविधाओं का लेखा भी लगाना पड़ता है। पेंशन, सामाजिक सुरक्षा प्रतिदान, सवेतनिक अवकाश, चिकित्सा-सुविधाएँ, बोनस, मकान, सस्ता खाना या खाद्य-पदार्थ, यातायात के साधन आदि इस तरह के हितलाभों के उदाहरण हैं। आय-कर के आकलन में इस तरह की कुछ सुविधाओं को कर-योग्य आय में शामिल किया जा सकता है।

full employment (फुल एम्प्लॉयमेण्ट) : पूर्ण रोज़गार।

श्रम-शक्ति का पूरा उपयोग। नकारात्मक अर्थ में वेरोज़गारी की समाप्ति पूर्ण रोज़गार की स्थिति को उत्पन्न

करेगी। पूर्ण रोज़गार का अर्थ देश की कार्यशील जनसंख्या का शत-प्रतिशत रूप से रोज़गार में लगा होना नहीं है। किसी भी वास्तविक, परिवर्तनशील अर्थव्यवस्था में घर्षणी या अस्थायी बेरोज़गारी का पाया जाना अनिवार्य है। कुछ लोग स्वेच्छा से बेरोज़गार रह सकते हैं। अतः जब कोई भी काम करने को इच्छुक व्यक्ति किसी लम्बी अवधि तक बेरोज़गार न हो और बेरोज़गार होने पर शीघ्र ही ही दूसरा काम प्राप्त करने में समर्थ हो, तब हम कहेंगे कि पूर्ण रोज़गार की स्थिति विद्यमान है। अर्थात्, पूर्ण रोज़गार श्रम-बाज़ार की वह स्थिति है जहाँ पर काम के खाली स्थानों की संख्या काम करने में समर्थ तथा तत्पर लोगों की संख्या से ज्यादा हो। पूर्ण रोज़गार की स्थिति में श्रम की माँग श्रम की पूर्ति से ज्यादा होती है। इसलिए यह श्रम के बेचनेवालों का बाज़ार कहलाती है।

पूर्ण रोज़गार न केवल उत्पादन-वृद्धि और आर्थिक विकास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है, वरन् मनुष्य के समाज के सार्थक और उपयोगी सदस्य होने की भावना के विकास के लिए भी ज़रूरी है। पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाएँ पूर्ण रोज़गार की स्थिति उत्पन्न करने तथा बनाये रखने में असमर्थ सिद्ध हुई हैं। लॉर्ड केन्स के आर्थिक सिद्धान्त तथा उन पर आधारित आर्थिक नीति रोज़गार की स्थिति को बहुत अधिक बिगड़ने से बचाने-भर में ही सफल हुए हैं। अल्पविकसित देशों में संसाधनों के मूलभूत असन्तुलन के कारण व्यापक बेकारी पायी जाती है। पूर्ण रोज़गार का अभाव अल्प तथा अवरुद्ध विकास का ही दूसरा पहलू है। सामाजिक न्याययुक्त आर्थिक विकास के लिए अल्पविकसित देशों में पूर्ण रोज़गार स्थापित करने के लिए निवेश-वृद्धि, उचित तकनीकों का चयन तथा संस्थागत परिवर्तन तीव्र गति से योजनाबद्ध रूप से करना ज़रूरी है।

full equilibrium (फुल इक्विलिब्रियम) : पूर्ण सन्तुलन।

जब आर्थिक शक्तियों का सन्तुलन सब दिशाओं से पूरा हो जाये और उसके विचलन के कोई आन्तरिक कारण विद्यमान न रहें, तब हम इसे पूर्ण सन्तुलन की स्थिति कहेंगे। जैसे, जब एक फर्म ही नहीं वरन् उद्योग भी सन्तुलन में हो, तो यह पूर्ण सन्तुलन की स्थिति होगी। दीर्घकालिक सन्तुलन पूर्ण सन्तुलन का ही दूसरा नाम है।

देखिए : equilibrium.

functional finance (फंक्शनल फाइनैन्स) : प्रयोजी राजस्व।

सार्वजनिक वित्त के उद्देश्यों को व्यापक करके आर्थिक स्थयित्व, पूर्ण रोज़गार, आर्थिक असमानताओं का निराकरण आदि को उनमें शामिल करने तथा इन उद्देश्यों के अनुरूप कराधान, सार्वजनिक व्यय, सार्वजनिक आगम, घाटा वित्तीयन तथा सार्वजनिक ऋण आदि नीतियों को परिवर्तित करने की व्यवस्था 'प्रयोजी राजस्व'-व्यवस्था कहलाती है। केन्स के आर्थिक विचारों तथा भीषण विश्वव्यापी मन्दी के पहले वार्षिक सार्वजनिक आय तथा व्यय का सन्तुलन प्राप्त करना ही सार्वजनिक वित्त-नीति का मुख्य ध्येय हुआ करता था। परन्तु अब सन्तुलित बजट-सिद्धान्त की परम्परागत सार्वजनिक

वित्त-नीति के स्थान पर आर्थिक स्थिति के अनुसार घाटे या अधिशेष बजट को आवश्यक समझा जाने लगा है। इस प्रकार 'प्रयोजी राजस्व' के अन्तर्गत सार्वजनिक वित्त-नीति का क्षेत्र, उसकी सम्भावनाएँ तथा उनके नीति-विषयक विकल्प व्यापक हो गये हैं।

functions of money (फंक्शन्स ऑफ मॅनी) : मुद्रा के कार्य।

आर्थिक जीवन में मुद्रा द्वारा सम्पन्न कार्य। मुद्रा का सबसे प्रमुख तथा प्राथमिक कार्य विनिमय-माध्यम का है। प्रत्यक्ष अदला-बदली की कठिनाइयों को दूर करने के लिए मुद्रा का विनिमय के माध्यम के रूप में प्रचलन हुआ। मुद्रा के बदले वस्तुएँ, सेवाएँ तथा संसाधन खरीदे और बेचे जाते हैं। यह मुद्रा की सर्वजनीय तथा विधिसम्मत ग्राह्यता के कारण सम्भव होता है। इसी कार्य के चलते कुछ अन्य कार्य मुद्रा द्वारा सम्पन्न होते हैं। यह हिसाब की इकाई, अर्थात् गणना या आकलन का माध्यम है। मूल्य मुद्रा के रूप में व्यक्त किया जाता है। मुद्रा इन कार्यों की बदौलत सामान्य क्रय-शक्ति का रूप ले लेती है।

स्थगित भुगतान के माध्यम का कार्य भी मुद्रा करती है। आज खरीदी गयी वस्तु के बदले मुद्रा द्वारा भुगतान कुछ समय बाद भी किया जा सकता है। इसी प्रकार मुद्रा के रूप में मूल्य का भण्डार भी बनाया जा सकता है। इन दोनों कार्यों में मुद्रा की कुशलता मुद्रा के अपेक्षाकृत स्थायी रहने पर निर्भर करती है। यदि मुद्रा की तेजी से मूल्य-परिवर्तन हो रहा है, तो वह इन कार्यों में विशेष सफल नहीं हो पायेगी।

मुद्रा के कुछ सक्रिय कार्य भी होते हैं। कीमत-प्रक्रिया का संचालन काफी अंशों तक मुद्रा द्वारा सम्भव होता है। मुद्रा की मात्रा तथा इसमें हुए परिवर्तनों के व्यापक आर्थिक प्रभाव होते है।

देखिए : dynamic functions of money.

fundamental disequilibrium (फण्डामेंटल डिसइक्विलिब्रियम) : मूलभूत असन्तुलन।

किसी मुद्रा के विदेशी मूल्य का दीर्घकालिक रूप से वास्तविक आर्थिक स्थिति से असम्बद्ध होना। किसी देश के भुगतान-अधिशेष में निरन्तर काफ़ी अर्से तक असन्तुलन बना रहना, जिससे कि उस देश का विदेशी विनिमय-रिजर्व रीता होने लगे या बहुत अधिक बढ़ जाये तो उसे मूलभूत असन्तुलत माना जाता है। ऐसी स्थिति में उस देश की मुद्रा की राज्य द्वारा तय की गयी विनिमय-दर आर्थिक दृष्टि से वास्तविक नहीं मानी जायेगी। या तो वह विनिमय-दर जरूरत से ज्यादा ऊँची या जरूरत से ज्यादा नीची मानी जायेगी। भुगतान-अधिशेष के असन्तुलन को मिटाने के लिए विनिमय-दर को परिवर्तित नहीं किया जाता है। ऐसी स्थिति में विदेशी विनिमय-अधिकोष घटा या बढ़ाकर, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष से कामचलाऊ कर्ज लेकर अथवा सोना खरीद या बेचकर सन्तुलन बनाये रखा जाता है। परन्तु यदि फिर भी असन्तुलन बना रहे, तो विनिमय-दर में परिवर्तन आवश्यक हो जाता है। स्थिर विनिमय-दर-व्यवस्था में मूलभूत असन्तुलन की हालत में ही

विनिमय-दर बदलने का प्रावधान होता है। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा-कोष के अन्तर्राष्ट्रीय समझौते में, जो 'ब्रेटनवूड्स समझौते' के नाम से विख्यात है, मूलभूत असन्तुलन की अवधारणा का उल्लेख तो है, परन्तु इसकी कोई सुनिश्चित परिभाषा नहीं दी गयी है। अतः कई देश अवमूल्यन के आवश्यक हो जाने पर भी इससे कतराते रहते हैं। फलतः वे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में बाधाएँ उपस्थित करनेवाले नियन्त्रण लागू करके अपने आयात घटाने और निर्यात बढ़ाने के प्रत्यक्ष प्रयास करने लगते हैं। सन् १९७१ के डालर-संकट का एक महत्त्वपूर्ण कारण अमरीकी अर्थ-व्यवस्था का मूल-भूत असन्तुलन माना जाता है। परन्तु अमरीका द्वारा डालर का अवमूल्यन नहीं करना तथा जर्मनी और जापान द्वारा क्रमशः डचमार्क तथा येन का अधिमूल्यन नहीं करना इस मूल-भूत असन्तुलन को दुरुस्त करने के प्रयासों से मुँह चुराना है।

मूलभूत असन्तुलन उस स्थिति को भी कह सकते हैं, जब किसी देश में संरचनात्मक बेरोज़गारी विद्यमान हो। जैसे असन्तुलनात्मक बेरोज़गारी अस्थायी असन्तुलन के परिणाम-स्वरूप होती है, वैसे ही विभिन्न आर्थिक संसाधनों की मात्रा तथा विभिन्न क्षेत्रों के विकास में समानुपात नहीं होने पर दीर्घकालिक बेरोज़गारी तथा अवरुद्ध आर्थिक विकास की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार मूलभूत असन्तुलन को अल्प-विकसित देशों की आर्थिक स्थिति की द्योतक व्याख्यात्मक अवधारणा के रूप में भी देखा जा सकता है।

funded debt (फण्डेड डेट्) : निधिक ऋण।

सरकार द्वारा जनता से लिये गये चिरस्थायी ऋण। इन ऋणों के भुगतान की कोई तिथि निश्चित नहीं की जाती। जिन प्रतिभूतियों को बेचकर ऐसे ऋण लिये जाते हैं, वे प्रतिभूतियाँ स्टॉक-बाज़ार में ख़रीदी-बेची जा सकती हैं। अतः जो लोग सरकार को दिये गये ऋण की वापसी चाहते हैं, वे स्टॉक-बाज़ार में उन प्रतिभूतियों को बेचकर दी गयी अपनी ऋण-राशि पुनः प्राप्त कर सकते हैं। इन प्रतिभूतियों की प्रचलित बाज़ार-कीमत दीर्घकालिक बाज़ार-दर पर आधारित होती है। ब्रिटेन में सार्वजनिक ऋण का बड़ा भाग इसी कोटि का है।

futures market (फ्यूचर्स मार्केट): वायदा-बाज़ार।

वह बाज़ार जहाँ वस्तुएँ, प्रतिभूतियाँ, शेयर, बॉण्ड तथा संसाधन किसी आगामी तिथि पर हस्तान्तरित करने के लिए ख़रीदे-बेचे जाते हैं। बाज़ार की अनिश्चितताओं की जोखिम से सम्भावित हानि से बचने का वायदा-बाज़ार एक उत्तम तरीका है। इसमें कीमतों की भावी घट-बढ़ से हो सकनेवाली सम्भावित हानि से बचने के लिए भावी तिथि पर ख़रीद-बिक्री के सौदे किये जाते हैं। जिन वस्तुओं के गुणों का सुनिश्चित रूप से निर्धारण किया जा सकता है, उन्हीं का वायदा-बाज़ार पनप सकता है; क्योंकि उसमें वस्तुओं को वास्तव में बिना देखे ही उनके बारे में सौदे तय किये जाते हैं।

वायदा-बाज़ार में वास्तविक सम्भा-

रकों तथा माँगकर्त्ताओं के अतिरिक्त सट्टेबाज भी खरीद-विक्री करने लगते हैं। इस तरह वायदा-बाज़ार सट्टेबाजी का साधन भी बन जाता है। इस प्रवृत्ति के पनपने से वस्तुओं की वास्तविक माँग के अलावा सट्टाजन्य माँग भी उत्पन्न हो जाती है। वस्तुओं की कृत्रिम कमी या वहुतायत सट्टेवाजी से उत्पन्न होकर वास्तविक क्रेताओं तथा विक्रेताओं को हानि पहुँचाती है। सटोरिये चालू कीमत पर माल खरीदकर आगे वेचने के लिए उन्हें संग्रहित कर लेते हैं। जव चालू कीमत वढ़ जाती है तव संग्रहित माल वेचकर सटोरिये मुनाफ़ा कमाते हैं। जव व्यापारी चालू कीमत पर माल खरीदते हैं, तव उसी समय उतना ही माल वायदा-वाज़ार में वेच देते हैं। जव यह माल चालू वाज़ार में वेचते हैं, तव वे वायदा-वाज़ार में माल खरीद लेते हैं। इस प्रकार वे कीमत वदलने से हुई हानि या लाभ को वरावर करके जोखिम से अपनी रक्षा कर सकते हैं। देखा जाये तो इस तरह व्यापारी ऐसा करके अपनी जोखिम सटोरियों पर डाल देते हैं।

देखिए : hedging.

galloping inflation (गेलॅपिंग इन्फ्लेशन) : द्रुत स्फीति।

'अतिस्फीति' का दूसरा नाम। इसका आशय उस स्फीतिकारी स्थिति से है, जहाँ कीमतें निरन्तर बड़ी तेजी से वढ़ रही होती हैं और मुद्रा के मूल्य में तीव्र गति से भारी घटी होती रहती है। इसके फलस्वरूप सामान्य आर्थिक सम्वन्ध टूट जाता है और अन्ततः सारी मुद्रा-व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो जाती है।

देखिए : hyper inflation.

gandhian economics (गान्धियन इकॉनॉमिक्स) : गाँधीवादी अर्थशास्त्र।

महात्मा गाँधी (मोहनदास कर्मचन्द गाँधी) के आर्थिक विचारों, आग्रहों और अनधिमानों के आधार पर विकसित आर्थिक नीति का नाम। गाँधीवादी अर्थशास्त्र अन्य सामान्य आर्थिक विचारों से एक महत्त्वपूर्ण अर्थ में भिन्न है। वह यह कि इसमें आर्थिक विश्लेषण का कोई पृथक् तथा विकसित व सुस्पष्ट आधार नहीं है। मानव-स्वभाव, उद्देश्यों और मूल्यों के सम्वन्ध में गाँधीजी के कुछ अपने विचार थे। भारत तथा पूर्व की संस्कृति और दर्शन का उन पर स्पष्ट प्रभाव था। वे मूलतः एक राष्ट्रवादी देशभक्त राजनीतिक नेता थे। उनमें एक आदर्शवादी तत्त्ववेत्ता के भी गुण थे। पश्चिमी सभ्यता और अर्थतन्त्र, विशेषतः ब्रिटिश उपनिवेशवाद के प्रति उनमें स्वाभाविक विरोधभाव था। भारत-जैसे देशों का आर्थिक शोषण यूरोप के नये आर्थिक तन्त्र से घनिष्ठ रूप से सम्वन्धित था। उस आर्थिक व्यवस्था ने इन पूर्वी देशों का राजनीतिक पतन एवं उनके आर्थिक जीवन का विनाश किया था।

अतः गाँधीजी ने आवश्यकताएँ सीमित रखने, समाज के प्रतिनिधि के रूप में व्यक्ति द्वारा सवके हित के लिए आर्थिक क्रियाएँ किये जाने तथा ग्राम-स्वावलम्वन के आधार पर मशीनी औद्योगीकरण से दूर अर्थनीति को क्षेयस्कर ठहराया। उन्हें इन्हीं नीतियों में भारत की आजादी की प्राप्ति तथा भारतवासियों की गरीवी का

निराकरण नजर आया। इन नयी मान्यताओं के आधार पर किसी आर्थिक विवेचन की प्रणाली को स्पष्ट न तो गाँधीजी ने स्वयं किया और न ही उनके किसी अनुयायी द्वारा किया गया। इसे हम कुछ मूल्यों-सम्बन्धी मान्यताओं पर आधारित आर्थिक नीतियों का समूह तो मान सकते हैं, परन्तु वैज्ञानिक तार्किक आधार खोज पाना काफ़ी कठिन है। वास्तव में गाँधी जी आर्थिक प्रश्नों से परे तो नहीं रह पाये, पर लगता है कि ये प्रश्न उनकी विचारधारा के अपेक्षाकृत गौण अंग हैं। उन्होंने सम्पूर्ण समाज-व्यवस्था के सम्बन्ध में कोई सिद्धान्त, सिद्धान्तों की प्रणाली या विचारधारा विकसित नहीं की। भारतीय स्वतन्त्रता उनका मूल ध्येय था। इसी सिलसिले में उन्होंने कुछ आर्थिक प्रश्नों पर अपने विचार बनाये, जिन्हें गाँधीवादी अर्थशास्त्र के नाम से जाना जाने लगा। वस्तुतः इन्हें 'गाँधीजी के आर्थिक विचार' कहना अधिक उपयुक्त होगा, न कि गाँधीवादी अर्थशास्त्र।

general equilibrium (जेनरल इक्विलिब्रियम) : व्यापक सन्तुलन।

किसी अर्थव्यवस्था के सब चरों तथा अंगों का अपने अन्योन्याश्रित सम्बन्धों में प्राप्त सन्तुलन व्यापक सन्तुलन कहलाता है।

अर्थव्यवस्था के विभिन्न अंग और घटक तथा उनके क्रिया-कलाप परस्पर सम्बन्धित होते हैं। किसी एक का व्यवहार, कार्य या परिवर्तन अन्य इकाइयों को अनेक रूप से प्रभावित करता है। उनके अध्ययन के लिए इन सब सम्बन्धों का विवेचन आवश्यक होता है। व्यापक सन्तुलन-विश्लेषण के अन्तर्गत आर्थिक इकाइयों के पारस्परिक सम्बन्धों का उनकी सम्पूर्णता में अध्ययन किया जाता है। अल्फ्रेड मार्शल ने व्यापक सन्तुलन-स्थिति की उपमा एक ऐसे थाल से दी जिसमें अनेक गेंदें आपस में इस प्रकार सटी हुई रखी हैं कि एक गेंद को हटाने या उसकी स्थिति को बदलने से अन्य सब गेंदों की स्थिति आवश्यक रूप से प्रभावित होती है।

वालरा आदि फ्रान्सीसी अर्थशास्त्रियों ने इस विश्लेषण-परम्परा को समृद्ध किया और आगे बढ़ाया। इस विश्लेषण में विभिन्न आर्थिक सम्बन्धों को समीकरण के रूप में व्यक्त किया जाता है और गणित के प्रयोग से आर्थिक निष्कर्ष निकाले जाते हैं।

gestation period (जेस्टेशन पीरियड): पक्वनावधि।

निवेश-प्रक्रिया के शुरू करने और उसके पूर्ण होकर उत्पादन आरम्भ होने के बीच की अवधि। निवेश को कार्यान्वित करने के लिए उत्पादन-वस्तुएं खरीदनी पड़ती हैं, जमीन प्राप्त करनी होती है, निर्माण-कार्य करने होते हैं और मशीन आदि को लगाना पड़ता है। इन सब बातों में काफी समय लगता है। सारी निवेश-राशि एक ही बार में नहीं लग जाती, वरन् इसमें कुछ समय लगता है। निवेश का स्तर जितना बड़ा होगा और उसमें प्रयुक्त उत्पादन-विधि जितनी जटिल होगी, निवेश-प्रक्रिया के पूरा होने में उतना ही अधिक समय लगेगा। इस अवधि के बाद ही निवेश का प्रतिफल बढ़े उत्पादन के रूप में मिल सकेगा। अतः जितनी ही लम्बी यह अवधि होगी, उतनी

ही अधिक प्रतीक्षा निवेशकर्त्ता को करनी पड़ेगी। विभिन्न निवेश-परियोजनाओं की तुलना में उनकी पक्वनावधि का अन्तर काफ़ी महत्त्वपूर्ण होता है।

gibson paradox (गिब्सन पैराडॉक्स): गिब्सन विरोधाभास।

इसका संकेत इस बात से है कि बहुधा लम्बी अवधियों में कीमत-स्तर और ब्याज-दरों के स्तर एक ही दिशा में घटते-बढ़ते हैं। १७९१-१९३९ की अवधि का उदाहरण लेकर केन्स ने इस बात की पुष्टि की। लेकिन १९३९-४६ के बीच कीमतों और ब्याज-दरों में विपरीत दिशा में परिवर्तन हुए।

giffen goods (गिफेन गुड्स): गिफेन वस्तुएँ, निम्नस्तरीय वस्तुएँ।

वे वस्तुएँ, जिनका उपभोग कम आय वाले अधिक मात्रा में करते हैं और आय बढ़ने के साथ-साथ जिनका उपभोग घटता जाता है। साधारणतः यह देखा जाता है कि आय बढ़ने पर मनुष्य अपना उपभोग बढ़ाता है। इसे आय का घनात्मक उपभोग-प्रभाव कहते हैं। परन्तु घटिया किस्म की वस्तुओं (जैसे मोटा अनाज, मोटा कपड़ा आदि) का उपभोग निम्न आय-स्तर पर अधिक और ऊँचे आय-स्तर पर कम होता है। गिफेन नामक ब्रिटिश अर्थशास्त्री ने अनेक निम्नस्तरीय वस्तुओं की माँग के साथ ऐसा ही व्यवहार देखा। इन वस्तुओं के उपभोग पर आय-प्रभाव ऋणात्मक होता है। वस्तुतः होता यह है कि आय बढ़ने पर उपभोग बढ़ता है, परन्तु यह वृद्धि मात्रात्मक ही नहीं वरन् गुणात्मक भी होती है। गुणात्मक वृद्धि के कारण घटिया किस्म की वस्तुओं (जिन्हें गिफेन वस्तुएँ कहते हैं) का उपभोग घट जाता है।

gift tax (गिफ्ट टैक्स): उपहार-कर।

उपहार के रूप में दी गयी धन-राशि या जायदाद पर लगाया गया कर, जिसका भुगतान उपहार देनेवाले को करना पड़ता है। प्रायः सम्पदा-शुल्क से बचने के लिए व्यक्ति अपने जीवन-काल में दान-उपहार का सहारा लेते हैं। इसे रोकने के लिए एवं सरकार के लिए साधन जुटाने तथा कुछ अन्य सम्बन्धित उद्देश्यों से देश में उपहार-कर की व्यवस्था की जाती है। भारत में उपहार-कर की व्यवस्था है। लेकिन अभी इस कर से सरकार को कोई विशेष आय नहीं होती। साधारण तौर से निर्धारित राशि से कम उपहार पर यह कर नहीं लगाया जाता और उपहार-राशि के बढ़ने पर कर की दर भी बढ़ती जाती है।

gilt-edged securities (गिल्ट-एजेड सिक्योरिटीज़): उत्कृष्ट प्रतिभूतियाँ।

पूर्णतया सुरक्षित तथा जोखिमहीन समझी जानेवाली प्रतिभूतियाँ, जैसे कि सरकारी बॉण्ड और स्टॉक आदि। इन प्रतिभूतियों पर नियमित रूप से ब्याज प्राप्त होते रहने तथा सावधिक प्रतिभूतियों के परिपक्व होने पर उनके पूरे भुगतान की जोखिमहीन सुरक्षा होती है। इस प्रकार ये न्यूनतम जोखिमवाली प्रतिभूतियाँ होती हैं। परन्तु इन प्रतिभूतियों की चालू बाज़ार-दरों का अन्य प्रतिभूतियों की अपेक्षा अधिक स्थिर होना आवश्यक नहीं है। अर्थात् परिपक्व होने से पहले इन प्रतिभूतियों की कीमत बाज़ार की ब्याज-दर एवं परिपक्वता की तिथि की दूरी के

अनुसार घटती-बढ़ती रह सकती है।

gold bullion standard (गोल्ड बुलियन स्टैण्डर्ड) : स्वर्ण बुलियन मान।

स्वर्ण-मान का वह रूप, जिसमें स्वर्ण-मुद्रा का प्रयोग नहीं होता, लेकिन जिसमें केन्द्रीय बैंक देश की मुद्रा को स्वर्ण धातु में बदलने के लिए तैयार रहता है, बशर्ते विनिमय के लिए प्रस्तुत मुद्राराशि निर्धारित मात्रा से कम न हो। १९२५ और १९३१ की अवधि में इंगलैण्ड ने स्वर्ण बुलियन मान का सहारा लिया था। इस बात को छोड़कर कि इसके अन्तर्गत स्वर्ण-मुद्रा का प्रयोग नहीं होता, स्वर्ण-मान की सब विशेषताएँ और उसके सब गुण-अवगुण इसमें पाये जाते हैं। इसका एक अतिरिक्त लाभ यह है कि इसमें स्वर्ण के प्रयोग में किफायत होती है, क्योंकि करेन्सी के लिए स्वर्ण की आवश्यकता नहीं रहती।

gold currency standard : स्वर्ण करेन्सी मान।

जब स्वर्ण-मान के अन्तर्गत देश में स्वर्ण-मुद्रा का भी प्रयोग होता है, तब उस करेन्सी-प्रणाली को स्वर्ण करेन्सी मान कहते हैं। इसकी अन्य सब विशेषताएँ स्वर्ण-मान की भाँति होती हैं।

देखिए : gold standard.

gold exchange standard (गोल्ड एक्सचेंज स्टैण्डर्ड) : स्वर्ण-विनिमय-मान।

एक प्रकार का अप्रत्यक्ष स्वर्ण-मान, जिसके अन्तर्गत देश का विदेशी विनिमय-रिजर्व ऐसे देशों की मुद्रा के रूप में रखा जाता है जो स्वर्ण-मान अपनाये हुए होते हैं। इस तरह बिना स्वर्ण-मुद्रा के प्रयत्न किये तथा बिना स्वर्ण रिजर्व रखे, अर्थात् सोने के प्रयोग में किफायत बरतते हुए स्वर्ण-विनिमय मान द्वारा देश की मुद्रा को स्वर्ण-मान के लाभ प्राप्त हो जाते हैं। स्वर्ण-मान के काल में छोटे तथा अपेक्षाकृत कम धनी देश साधारणतः स्वर्ण-विनिमय मान अपनाते थे। परन्तु जिस देश की मुद्रा के रूप में विदेशी विनिमय-रिजर्व रखे जाते हैं, उस देश द्वारा अवमूल्यन करने या स्वर्ण-मान छोड़ने पर स्वर्ण-विनिमय-मान वाले देश को अप्रत्याशित रूप से भारी हानि उठानी पड़ेगी।

gold points (गोल्ड प्वाइण्ट्स) : स्वर्ण-बिन्दु।

स्वर्ण-मान पर आधारित करेन्सी की विनिमय-दर सम विनिमय-दर से जिन सीमाओं तक घट या बढ़ सकती है, उनको बतानेवाले बिन्दु। इस विनिमय-दर के बढ़ने की ऊपरी सीमा और गिरने की निचली सीमा बीमा की लागत और स्वर्ण की परिवहन-लागत का हिसाब लगाकर निर्धारित होती है। यदि विनिमय-दर इन सीमाओं या स्वर्ण-बिन्दुओं के बाहर जाती है, तो स्वर्ण के निर्यात और आयात का सहारा लेना अधिक लाभप्रद ठहरेगा। स्वर्ण-बिन्दु को धातु-बिन्दु भी कहते हैं।

gold standard (गोल्ड स्टैण्डर्ड) : स्वर्ण-मान।

वह मुद्रा-मान, जिसके अन्तर्गत देश की आधारिक मुद्रा-इकाई स्वर्ण की एक निर्धारित मात्रा व कोटि की होती है अर्थात उसका मूल्य स्वर्ण के रूप में कानून द्वारा निर्धारित होता है; देश में स्वर्ण के क्रय-विक्रय तथा आयात-निर्यात की पूरी आज़ादी होती है और मुद्रा-प्राधिकारी जनता को माँगने पर मुद्रा के बदले में

की निर्धारित मात्रा देने को और सोने की मात्रा के बदले मुद्रा देने को वचनबद्ध होते हैं। इस प्रकार स्वर्ण-मान के अन्तर्गत देश की करेन्सी-इकाई सोने की निश्चित मात्रा के साथ जुड़ी होती है और देश-विदेश में वह करेन्सी निर्धारित दर से स्वर्ण में पूर्ण रूप से परिवर्तनीय होती है। अठारहवीं शताब्दी के शुरू से लेकर १९१४ तक और १९२५ से १९३१ तक ब्रिटेन स्वर्ण-मान अपनाये हुए था।

स्वर्णमान के अधीन दो देशों की मुद्राओं की आपसी विनिमय-दर उनमें मौजूद सोने की मात्रा द्वारा निर्धारित होती है, जिसे मुद्रा-विनिमय की टकसाल-दर कहते हैं। यह विनियम-दर अधिक-से-अधिक स्वर्ण या धातु-बिन्दुओं तक ही घट-बढ़ सकती है। टकसाल-दर में बीमे की लागत और स्वर्ण भेजने-मँगाने के खर्च का हिसाब करके स्वर्ण-बिन्दु मालूम किये जा सकते हैं। विनिमय-दर इन स्वर्ण-बिन्दुओं को पार नहीं कर सकती, क्योंकि तब तो स्वर्ण के निर्यात और आयात के सहारे भुगतान करना व लेना अधिक लाभप्रद ठहरेगा। इस प्रकार स्वर्णमान के अन्तर्गत विदेशी विनिमय-दरें बाजार में बहुत कम घटती-बढ़ती हैं। वे स्वर्ण-बिन्दुओं की सीमा में स्थिर बनी रहती हैं। इससे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के संचालन और वृद्धि में सहायता मिलती है।

मुख्य रूप से स्वर्ण-मान के दो कार्य होते हैं। एक तो देश की करेन्सी के लिए आधार प्रस्तुत करना और दूसरे, स्वर्ण-मान अपनानेवाले देशों की विनिमय-दरों का नियमन करना। ये दोनों कार्य एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। इस प्रणाली के अन्तर्गत मुद्रा की मात्रा के समतुल्य स्वर्ण रखना आवश्यक होता है। फलस्वरूप अर्थव्यवस्था में प्रचलित मुद्रा की मात्रा सोने की उपलब्धि द्वारा सीमित हो जाती है। राष्ट्रीय मुद्रा के रूप में सोने की कीमत कानून द्वारा तय की जाती है, जो सोने की माँग और पूर्ति में परिवर्तनों से अप्रभावित रहती है। नयी खानों की खोज के कारण यदि स्वर्ण की मात्रा में वृद्धि होती है, तो मुद्रा की मात्रा में वृद्धि होगी। इसके फलस्वरूप कीमतों का सामान्य स्तर बढ़ेगा। इस तरह केवल अप्रत्यक्ष रूप से अन्य वस्तुओं की कीमत बढ़ने के कारण सोने की कीमत बदलेगी।

भुगतान-शेष के घाटे को पूरा करने के लिए स्वर्णकोष या रिजर्व रखना ज़रूरी होता है। बेशी भुगतान-शेष की स्थिति में स्वर्णकोष बढ़ेगा और घाटे की स्थिति में इसमें कमी होगी। भुगतान-शेष में घाटा होने पर देश में सोने की मात्रा घटेगी। इसके फलस्वरूप देश के भीतर मुद्रा की मात्रा भी घटेगी और बैंक-व्यवस्था को उधार-संकुचन की नीति अपनानी होगी। इसके विपरीत बेशी भुगतान-शेष की स्थिति में स्वर्ण और मुद्रा की मात्रा बढ़ेगी और बैंक जमा में वृद्धि लाने के उद्देश्य से उधार-विस्तार की नीति अपनाना आवश्यक होगा।

यदि भुगतान-शेष में घाटे की स्थिति काफी अर्से तक बनी रहे, तो मुद्रा की मात्रा में आयी कमी का प्रभाव देश के कीमत-स्तर पर पड़ने लगेगा। कीमतों में कमी आयेगी, जिससे देश की निर्यात-वस्तुओं के लिए माँग बढ़ेगी। इस प्रकार

भुगतान-शेष के घाटे को पूरा करनेवाली शक्तियाँ सक्रिय हो जायेंगी। इसके विपरीत वेशी भुगतान-शेष कीमतें बढ़ाकर निर्यात को कम करेगा जिससे सन्तुलन की स्थिति लाने में मदद मिलेगी। इस तरह स्वर्ण-मान के अन्तर्गत स्वतः सन्तुलनकारी शक्तियाँ काम करती हैं। इससे (१) विनिमय-दर स्थिर रहती है, (२) मुद्रा की पूर्ति स्वर्ण की मात्रा के साथ जुड़ी होने के कारण द्रुत स्फीति की सम्भावना नहीं रहती, और (३) भुगतान-शेष का असन्तुलन अपने-आप दूर हो जाता है। लेकिन स्वर्ण-मान के ये लाभ उसी दशा में उपलब्ध हो सकेंगे जबकि हर देश स्वर्ण-मान के नियमों का कड़ाई के साथ पालन करें। स्वर्ण के वहिर्वाह के समय अवस्फीति नीति और स्वर्ण के अन्तर्वाह की स्थिति में नियन्त्रित स्फीति-नीति का अपनाया जाना विशेष रूप से आवश्यक है। इसके लिए तैयार रहना वहुत कठिन है। और फिर, स्वर्ण-मान के अपने कुछ गम्भीर दोष भी हैं। इसके अन्तर्गत विकासशील अर्थव्यवस्था के आवश्यकतानुसार नहीं, बल्कि केवल स्वर्ण की उपलब्धि के अनुसार ही आन्तरिक क्रय-शक्ति में वृद्धि लायी जा सकती है। इसके अतिरिक्त, स्वर्ण के आन्तरिक और बाहरी कार्यों के जुड़े होने से देश की मुद्रानीति का निर्धारण इस बात पर निर्भर करेगा कि सोना देश के भीतर आ रहा है या नहीं। देश की स्थिति के अनुरूप मुद्रा-नीति को ढालना सम्भव नहीं होगा। यही नहीं, मुद्रा के लिए बड़ी मात्रा में स्वर्ण-कोष रखना भारी अपव्यय के समान है। इन्ही सब कारणों से स्वर्ण-मान का प्रचलन समाप्त हो गया।

goods (गुड्स) : वस्तुएँ।

वे सब पदार्थ जिनमें आवश्यकता-पूरक शक्ति होती है, चाहे वे किसी भी प्रकार के हों। अर्थशास्त्र में वस्तुओं का आशय आर्थिक वस्तुओं से होता है—ऐसी वस्तुएँ जिनकी प्राप्ति के लिए सामाजिक संसाधनों का प्रयोग करना पड़ता है, अर्थात् जो अपेक्षाकृत सीमित मात्रा में उपलब्ध होते हैं। आर्थिक समस्याओं का सम्बन्ध इन्हीं वस्तुओं के उत्पादन, वितरण आदि से होता है। अर्थशास्त्र में वस्तुओं को अनेक प्रकार की कोटियों में विभाजित किया जाता है, जैसे : उपभोग और उत्पादक वस्तुएँ, मध्यवर्ती और अन्तिम वस्तुएँ, टिकाऊ और शीघ्र नष्ट होनेवाली वस्तुएँ आदि।

goodwill (गुडविल) : सुनाम।

किसी व्यवसाय की भौतिक परिसम्पत्तियों के अतिरिक्त एक अभौतिक परिसम्पत्ति, जो उसकी अर्जन-क्षमता तथा एक कार्यशील जमे व्यवसाय के नाते उसे प्राप्त लाभों के मूल्य को दर्शाती है। यह एक काफी अमूर्त अवधारणा है। क्या वास्तव में हो किसी व्यवसाय का सुनाम उतना ही है जितना कि उसके मालिक सोचते हैं, इसका सबसे मुख्य तथा कारगर उत्तर वास्तव में उस व्यवसाय को वेचते समय सुनाम के लिए प्राप्त राशि द्वारा ही जाना जा सकता है। जब कोई फर्म किसी अन्य फर्म को खरीदती है और उसे सुनाम की कीमत चुकानी पड़ती है, तब वह फर्म अपने हिसाब में सुनाम को एक परिसम्पत्ति के रूप में दिखायेगी। कई बार सुनाम की भारी कीमत चुका-

कर कोई फर्म प्रतियोगिता समाप्त करने के लिए भी खरीद ली जाती है।

लाभ की दर, फर्म के उत्पाद या उसके ब्रॉण्ड नाम की लोकप्रियता, लाभ की वृद्धि-दर, प्रतियोगियों की संख्या एवं उनकी शक्ति, फर्म को प्राप्त विशेष सुविधाएँ आदि अनेक कारक सुनाम को प्रभावित करते हैं। इसकी गणना काफी कठिन होती है। कई लोग कुछ वर्षों के लाभ की औसत दर की किसी मात्रा से गुणा करके सुनाम की कीमत लगाते हैं। परन्तु मुनाफे में इस फर्म की विशेष स्थिति तथा लाभ के हिसाब से कुछ अतिरिक्त राशि भी इसमें शामिल की जाती है। सुनाम फर्म की भावी अर्जन-क्षमता का अच्छा अनुमान प्रस्तुत करता है।

government securities (गवर्नमेण्ट सिक्युरिटीज) : सरकारी प्रतिभूतियाँ।

इनका आशय निधिक ऋण और ट्रेजरी बिलों अथवा सरकारी हुण्डियों से होता है। ये नियत ब्याजवाले पत्र होते हैं।

government stocks (गवर्नमेण्ट स्टॉक्स) : सरकारी स्टॉक।

नियत ब्याजवाली प्रतिभूतियाँ, जो सरकार द्वारा निर्गमित की जाती हैं। साधारणतः इन्हें उत्कृष्ट प्रतिभूतियाँ कहते हैं।

grant-in-aid (ग्राण्ट-इन-एड) : सहायता अनुदान।

केन्द्रीय सरकार द्वारा राज्य सरकारों, स्वायत्तशासी संस्थाओं या अन्य सरकारी, अर्द्ध-सरकारी या गैर-सरकारी संस्थाओं को किसी विशेष उद्देश्य या सामान्य उद्देश्य के लिए दी गयी राशि। यह राशि एकमुश्त या किश्तों में दी जा सकती है। भारत के संघीय संगठन में केन्द्रीय सरकार द्वारा राज्य सरकारों को दिये जानेवाले सहायता-अनुदान हमारी राजकीय वित्त-व्यवस्था की मुख्य विशेषता हैं।

graduated pension scheme (ग्रेजुएटेड पेंशन स्कीम) : क्रमिक पेंशन-योजना।

वह पेंशन-योजना, जिसके अन्तर्गत अंशदान और पेंशन के भुगतान को निर्धारित सीमाओं के भीतर कमाई के अनुसार क्रमांकित किया जाता है। इस योजना में एक समान पेंशन के अनुपूरक के रूप में अर्जन-आधारित पेंशन की व्यवस्था की जाती है। ग्रेट ब्रिटेन में राष्ट्रीय बीमा अधिनियम के अन्तर्गत इस प्रकार की पेंशन-स्कीम की व्यवस्था है।

gratuitous coinage (ग्रेच्यूटॅस कॉएनेज) : निःशुल्क सिक्का-ढलाई।

धातु-मुद्रा की वह व्यवस्था जिसमें सिक्का-ढलाई के लिए जनता से सरकार कुछ भी शुल्क नहीं लेती। इस व्यवस्था के अन्तर्गत सिक्का-ढलाई के लिए सरकारी टकसालें जनता के लिए खुली रहती हैं। लोग टकसालों में धातु देकर उसके समान मूल्य के सिक्के प्राप्त कर सकते हैं। सिक्के ढलवाने का यह कार्य निश्शुल्क किया जाता है। एक साल का खर्च सरकार स्वयं उठाती है।

gratuity (ग्रेच्युटी) : उपदान।

सेवा-निवृत्ति के अवसर पर नियोक्ताओं द्वारा कर्मचारियों को एकमुश्त दिया जानेवाला एक विशेष भुगतान। साधारणतः जितने वर्ष कोई कर्मचारी नौकरी करता है, उतने ही महीनों का

वेतन एकमुश्त उपदान के रूप में उसे दिया जाता है । प्रायः इसके लिए एक अधिकतम राशि निर्धारित कर दी जाती है। भारत में सरकारी सेवाओं के अतिरिक्त कुछ अन्य सेवाओं के सम्बन्ध में भी उपदान की व्यवस्था है।

great depression (ग्रेट डिप्रेशन) : वड़ी मन्दी, विश्वव्यापी मन्दी ।

पहले और दूसरे विश्वयुद्ध के बीच विशेष रूप से सन् १९२९ और १९३५ के बीच विश्व के अधिकांश भागों में भयंकर बेरोज़गारी और आर्थिक क्रियाओं के ह्रास का समय आया था । पूंजीवादी विश्व-व्यवस्था का यह एक सर्वव्यापी संकट था, जिसने सारी व्यवस्था की जड़ें हिला दीं । जर्मनी में नाजीवाद का उदय इस वड़ी मन्दी का ही प्रभाव बताया जाता है ।

इस मन्दी-काल में शेयरों की कीमतें तेजी से गिरीं, कारखाने वन्द हुए और भारी संख्या में मजदूरों की छँटनी की गयी । कृषि-प्रधान देशों के प्राथमिक उत्पादों की कीमतों में भी विशेष कमी हुई, जिसके कारण इन देशों को भारी क्षति पहुँची । भिन्न-भिन्न देशों में इस मन्दी की अपनी अलग-अलग विशेषताएँ थीं । केन्स के आर्थिक विश्लेषण तथा आर्थिक नीति-सम्वन्धी सिद्धान्तों की पृष्ठभूमि यह मन्दी ही थी । अमरीका में इसका निराकरण राष्ट्रपति रूज़वेल्ट की नयी नीति द्वारा किया गया ।

gresham's law (ग्रेशम्स लॉ) : ग्रेशम का नियम ।

इस नियम की व्याख्या इन शव्दों में की जाती है : "वुरी मुद्रा अच्छी मुद्रा को संचलन से बाहर हटा देती है । यह नि इंगलैण्ड की महारानी एलिजावेथ प्रथम अर्थ-सलाहकार सर थॉमस ग्रेशम के न से सम्बन्धित है । उन्होंने विभिन्न प्रक के सिक्कों के चलन की समस्या अध्ययन करके यह निष्कर्ष निकाला खराव सिक्कों के कारण अच्छे सिक का संचलन समाप्त हो जाता है। खराव या बुरे सिक्कों का अर्थ जाली खोटे सिक्कों से नहीं है; अपितु इस आशय ऐसे सिक्कों से है जिनका धातु-मू अपेक्षाकृत कम व सस्ता होता है। नियम के अनुसार यदि समान अंकि मूल्य के खराव और अच्छे, दोनों प्रक के सिक्के संचलन में हैं और दोनों रूप से विधिग्राह्य हैं, तो लोग जोड़ पिघलाने एवं विदेशी भुगतान के लि अच्छे सिक्कों को चुनेंगे, क्योंकि उन धातु-मूल्य अपेक्षाकृत अधिक है, और लेन देन के लिए खराव सिक्के इस्तेमा करेंगे । इस प्रकार अच्छे सिक्के संचल से हटते जायेंगे और अन्ततः संचलन खराव सिक्के ही रह जायेंगे । इस आधा पर कहा जाता है कि बुरी मुद्रा अच्छ मुद्रा को संचलन से भगा देती है।

gross domestic product (ग्रॉस डो स्टिक प्रॉडक्ट) : सकल घरेलू उत्पाद

किसी देश को सब प्रकार की वस्तु और सेवाओं के कुल वार्षिक उत्पादन प्रवाह । उत्पादित वस्तुओं और सेवा की वाज़ार-कीमतों को जोड़कर इस हिसाव लगाया जाता है। स्पष्टतः इ आगणन में केवल अन्तिम वस्तुओं की वाज़ार-कीमतों को ही लिया जाता है मध्यवर्ती वस्तुओं की वाज़ार-कीमतों को

नहीं। कारण, मध्यवर्ती वस्तुओं की कीमतें तो अन्तिम वस्तुओं की कीमतों में वैसे ही शामिल रहती हैं। यदि इन्हें शामिल किया जाये, तो वही चीज एक से अधिक बार गिन ली जायेगी। सकल घरेलू उत्पाद में पूँजी-वस्तुओं के प्रतिस्थापन और सँभाल के सिलसिले में किया गया व्यय (अर्थात् मूल्यह्रास) शामिल रहता है। इसके लिए कुल राशि में से कटौती नहीं की जाती। इसीलिए सकल शब्द का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार सकल घरेलू उत्पाद में केवल देश में उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं के मूल्य का अनुमान लगाया जाता है। विदेश से प्राप्त आय इसमें शामिल नहीं की जाती। इसमें और सकल राष्ट्रीय उत्पाद में यही अन्तर होता है। चूँकि सकल राष्ट्रीय उत्पाद में अप्रत्यक्ष करों और उपदान का हिसाब-किताव नहीं किया जाता, इसलिए इसे प्राय: वाज़ार-कीमतों पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद कहा जाता है।

gross domestic product at factor cost (ग्रॉस डोमेस्टिक प्रॉडक्ट ऐट फैक्टर कॉस्ट): साधन लागत पर सकल घरेलू उत्पाद।

यदि सकल घरेलू उत्पाद में से अप्रत्यक्ष कर घटा लिये जायें और उपदान की राशि उसमें जोड़ दी जाये, तो साधन-लागत पर सकल घरेलू उत्पाद निकल आयेगा, जो उत्पादन-साधनों को दी गयी आय के मूल्य के अनुरूप होगा। सकल घरेलू उत्पाद के आगणन में उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं की वाज़ार-कीमतों का जोड़ लगाया जाता है। चूँकि वाज़ार-कीमतों में अप्रत्यक्ष कर और उपदान की शक्तियाँ शामिल रहती हैं, इसलिए उत्पादन का कुल मूल्य उत्पादन-साधनों को दी गयी आय-राशि के वरावर न होगा। कारण यह है कि अप्रत्यक्ष कर निकालकर जो रकम फर्म को प्राप्त होती है, वह साधन-आय के रूप में वितरित की जाती है।

देखिए : gross domestic product.

gross income (ग्रॉस इन्कॅम) : सकल आय।

किसी व्यक्ति के सन्दर्भ में इसका आशय कर की कटौती किये विना उस कुल आय-राशि से है जो व्यक्ति को सव स्रोतों से मिलाकर प्राप्त होती है।

gross interest (ग्रॉस इण्टरेस्ट) : सकल व्याज।

व्याज के रूप में पूँजीपति या ऋणदाता को मिलनेवाली कुल राशि। इसमें निवल व्याज (जो पूँजी या ऋण के प्रयोग के लिए दिया जाता है) के अतिरिक्त अन्य प्रकार की भुगतान-राशियाँ शामिल रहती हैं, जैसे कि ज़ोखिम के लिए मुआवजे की रकम, उधार देने के सिलसिले में प्रवन्ध और असुविधाओं के लिए भुगतान आदि। भिन्न-भिन्न ऋणों के सम्वन्ध में प्रवन्ध और जोखिम के अंश कम-अधिक मात्रा में मौजूद होते हैं। इस कारण सकल व्याज की दरों में काफी अन्तर रहता है।

gross investment (ग्रॉस इन्वेस्टमेंट) : सकल निवेश।

मूल्यह्रास-सहित कुल निवेश-व्यय। निवल निवेश मालूम करने के लिए हमें सकल निवेश में से मूल्यह्रास की रकम

घटानी होगी।

gross national product (ग्रॉस नेशनल प्रॉडक्ट) : सकल राष्ट्रीय उत्पाद।

सकल घरेलू उत्पाद एक वर्ष के दौरान देश में उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं की बाजार-कीमतों का कुल जोड़ होता है, जिसमें मूल्यह्रास की रकम शामिल रहती है। जब इस कुल जोड़ में विदेश से प्राप्त निवल आय का हिसाब किया जाता है, तब इस प्रकार प्राप्त राशि को सकल राष्ट्रीय उत्पाद कहते हैं। विदेश से प्राप्त आय धनात्मक भी बैठ सकती है और ऋणात्मक भी।

देखिए : gross domestic product.

gross national product at factor cost (ग्रॉस नेशनल प्रॉडक्ट ऐट् फैक्टर कॉस्ट) : साधन-लागत पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद।

बाज़ार-कीमतों पर अनुमानित सकल राष्ट्रीय उत्पाद में से अप्रत्यक्ष करों और उपदान की रकमें घटाने पर जो राशि निकलती है, उसे साधन-लागत पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद कहा जाता है।

gross profit (ग्रॉस प्रॉफिट) : सकल लाभ।

कुल बिक्री-आय में से लागत चुकाने के बाद उद्यमकर्त्ता के पास बची कुल राशि। निवल लाभ के अतिरिक्त इसमें अनेक प्रकार की भुगतान-राशियाँ शामिल रहती हैं, जैसे कि उद्यमकर्त्ता की आपसी पूँजी और भूमि का प्रतिफल, उसके द्वारा प्रबन्धन का पारिश्रमिक, मशीनों की घिसावट व टूट-फूट का खर्च, एकाधिकार लाभ व अनायास प्राप्तियाँ आदि। स्पष्टतः इनमें से कुछ को आर्थिक दृष्टि से लाभ नहीं माना जा सकता।

gross yield (ग्रॉस ईल्ड) : सकल प्रतिफल, सकल उपज।

१. कर के भुगतान के पहले किसी प्रतिभूति पर प्राप्ति या प्रतिफल की दर।

२. किसी प्रकार की कटौती के बिना किसी किसान या क्षेत्र की कुल पैदावार।

ground rent (ग्राउण्ड रेण्ट) : तहज़मीनी, किराया-ज़मीन।

किसी मकान के पट्टे में मकान द्वारा घिरी जमीन के लिए निर्धारित किराया। यह किराया पट्टेदार द्वारा जमीन के मालिक को दिया जाता है। साधारणतः यह पट्टा ९९ वर्ष के लिए लिखा जाता है और निर्धारित किराया-ज़मीन वार्षिक रूप से दिया जाता है। यह किराया सिद्धान्त के तौर पर ज़मीन की कीमत से सम्बन्धित होता है। परन्तु तहज़मीनी से यह भी बोध होता है कि ज़मीन के मालिक तथा पट्टेदार, दोनों ज़मीन को बेचने-खरीदने की अपेक्षा वार्षिक किराया चुकाया जाना अधिक पसन्द करते हैं।

growth theory (ग्रोथ थिअॅरी) : संवृद्धि सिद्धान्त।

अर्थशास्त्र की वह शाखा, जिसका सम्बन्ध उन कारकों के अध्ययन से है जो किसी समय-अवधि में अर्थव्यवस्था की संवृद्धि-दर निर्धारित करते हैं। अर्थव्यवस्था की संवृद्धि से आशय यहाँ इसके मुख्य आर्थिक संकेतकों में वृद्धि से है, जैसे कि राष्ट्रीय आय, उपभोग, रोज़गार, पूंजी आदि। यद्यपि संवृद्धि-सिद्धान्त के सहारे आर्थिक व्यवस्था के कार्य-संचालन के सम्बन्ध में कुछ जानकारी बढ़ी है,

तथापि यह अर्थशास्त्र का एक बहुत ही अमूर्त अंश है। आर्थिक विषय की अपेक्षा इसका गणितीय तत्त्व अधिक प्रधान है।

guaranteed wage (गारण्टीड वेज) : गारण्टीकृत मज़दूरी।

वह प्रणाली, जिसमें कर्मचारियों को प्रति सप्ताह या माह एक न्यूनतम मज़दूरी की गारण्टी दी जाती है। इसका उद्देश्य श्रमिकों के अनियत रोज़गार की बुराइयों को दूर करना है।

guild (गिल्ड) : श्रेणी, गिल्ड।

मध्ययुग में प्रचलित किसी व्यवसाय-विशेष में लगे लोगों का अपने समूह-हित के रक्षार्थ बनाया गया उत्पादकों का संगठन। इन संगठनों को राजकीय अनुमति तथा संरक्षण भी प्राप्त होता था। उत्पादकों के ये संघ मुख्यतः नये लोगों का व्यवसाय में प्रवेश रोककर तथा अपने उत्पादों की गुणात्मक किस्म कायम रखकर अपने हितों की रक्षा करते थे।

व्यवसाय में प्रवेश पाने के इच्छुक लोगों को निर्धारित प्रशिक्षण की अवधि विताकर कौशल का उचित स्तर प्राप्त करना पड़ता था। उस अवधि में उन्हें बहुत कम पारिश्रमिक मिलता था। उस चरण को पूरा करने पर ही उन्हें स्वतन्त्र रूप से वह व्यवसाय-विशेष चलाने का अधिकार मिलता था। उत्पादन-संघ-प्रणाली कृषि तथा कृषि-सम्बन्धी व्यवसायों में प्रचलित सामन्तवाद की पासंग थी। ये संगठन अथवा गिल्ड अपने सदस्यों के वीच समानता तथा कार्य-कौशल के ऊँचे प्रतिमान भी स्थापित करते थे। छोटे नगरों में वहाँ के सब व्यवसायों का एक सामूहिक संघ हुआ करता था। मध्ययुगीन नगरों की शासन-व्यवस्था में भी इन संगठनों का महत्त्वपूर्ण स्थान होता था।

guild socialism (गिल्ड सोशलिज्म) : श्रेणी समाजवाद, गिल्ड समाजवाद।

एक विशेष प्रकार का समाजवाद। इसका मुख्य सिद्धान्त यह है कि विभिन्न वस्तुओं का उत्पादन अलग-अलग स्वतन्त्र संघों के रूप में किया जाना चाहिए और उनको अपने प्रवन्ध तथा नियमन की आजादी होनी चाहिए। अर्थात् इस तरह के समाजवाद में सामाजिक स्वामित्व तथा निणयन्त्रण के स्थान पर विभिन्न उत्पादक-समूह अपना स्वामित्व और स्वायत्त प्रवन्ध-व्यवस्था स्थापित करते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि यहाँ सामाजिक हित के आधार पर नहीं बल्कि विभिन्न समूहों के हितों के आधार पर आर्थिक क्रियाओं का संचालन होगा। इस व्यवस्था की संगठन-इकाई मध्ययुगीन गिल्ड अथवा उत्पादन-संघों से मिलती-जुलती है। गिल्ड या श्रेणी समाजवाद में राष्ट्रीय स्तर पर स्थानीय संघों का वृहत्-स्तरीय संघीकरण करने की व्यवस्था है। इस व्यवस्था को किस सीमा तक समाजवाद माना जाये, यह काफी विवादास्पद विषय है।

half time system (हाफ टाइम सिस्टम) : अर्द्धसमय-प्रणाली।

वह प्रणाली, जिसके अन्तर्गत वच्चे दिन में कुछ समय कारखानों या अन्य स्थानों पर कार्य करते हैं, और शेष समय स्कूल में पढ़ाई करने में बिताते हैं। यह प्रणाली इंगलैण्ड में सर्वप्रथम १८३३ ई० के 'कारखाना अधिनियम' द्वारा अमल में

आयी। इस अधिनियम ने कारखानों में में काम करनेवाले ९ से १३ वर्ष तक के आयु-वर्ग के बच्चों के लिए दिन में दो घण्टे स्कूल जाना अनिवार्य बना दिया। इंगलैण्ड के कुछ भागों में अर्द्धसमय-प्रणाली बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक चलती रही। 'शिक्षा अधिनियम' (१९१८) द्वारा इस प्रणाली को समाप्त कर दिया गया।

hard currency (हार्ड करेन्सी) : दुर्लभ मुद्रा।

वह राष्ट्रीय मुद्रा, जिसके लिए बाजार में माँग उसकी पूर्ति की अपेक्षा अधिक होती है। काफ़ी लम्बी अवधि तक डॉलर इस स्थिति में था। लेकिन १९८१ से डॉलर का यह रूप समाप्त-सा हो गया है और अब यह काफ़ी क्षीण दिखायी पड़ता है। जिस देश के भुगतान-सन्तुलन में लगातार काफ़ी लम्बे समय तक अधिशेष की स्थिति बनी रहती है, उसकी मुद्रा इस स्थिति में आ जाती है, अर्थात् वह दुर्लभ मुद्रा का रूप धारण कर लेती है। आजकल येन और डचमार्क को यह स्थान प्राप्त है।

hard loan (हार्ड लोन) : दुर्वह कर्ज।

वह विदेशी कर्ज, जिसे अमरीकी डॉलर या दुर्लभ करेन्सी में चुकाना होता है। इस पर आधी दर से व्याज लगता है। ऐसे कर्जों का भुगतान कठनाई से हो पाता है, क्योंकि जिन देशों को ये कर्ज मिलते हैं वे साधारणतः सुलभ करेन्सी-वाले देश होते हैं और उनकी करेन्सी स्वतन्त्र रूप से दुर्लभ करेन्सी या डॉलर में परिवर्तनीय नहीं होती, और इस कारण ऐसे देशों को ऋण चुकाने के लिए विदेशी व्यापार के सहारे आवश्यक करेन्सी जुटानी पड़ती है। दुर्वह कर्ज के रूप में विदेशी सहायता दिये जाने के लिए तर्क यह दिया जाता है कि शोधन की कठिनाई को देखते हुए ऋणी देश ऐसे कर्जों को अपेक्षाकृत अधिक विवेकपूर्ण ढंग से इस्तेमाल करने की कोशिश करेंगे। लेकिन इसमें कोई सन्देह नहीं कि विदेशी सहायता चाहनेवाले देशों को ऐसे कर्जों के माध्यम से अधिक धन-राशि प्राप्त नहीं हो सकती।

heavy industries (हेवी इण्डस्ट्रीज) : भारी उद्योग।

वे उद्योग, जिनमें आधुनिक बड़ी मशीनों, पूँजीगत सामान, शक्ति के साधनों आदि का उत्पादन होता है। लोहा-इस्पात, बिजली, मशीन, पेट्रोल आदि उद्योग इस श्रेणी में आते हैं। इन उद्योगों में उत्पादन का स्तर वृहत् होता है, निवेश की मात्रा विशाल होती है, उत्पादन-तकनीक पूंजी-प्रधान होती है, इनमें बड़ी संख्या में श्रमिकों को रोजगार मिलता है तथा इसके फलस्वरूप अन्य अनेक सम्बन्धित उद्योगों का विकास होता है। इन उद्योगों को औद्योगीकरण का मूलाधार माना जाता है। इस प्रकार के उद्योगों के बिना आत्मनिर्भर एवं स्वपरिचालित औद्योगिक विकास की नींव नहीं रखी जा सकती। इसी कारण से सोवियत रूस तथा अन्य समाजवादी देशों ने इन उद्योगों के विकास को ऊँची प्राथमिकता दी। भारत की पंचवर्षीय योजनाओं में भी भारी उद्योगों के महत्त्व को स्वीकार किया गया है।

hedging (हेजिंग) : पेशबन्दी।

कीमतों में उतार-चढ़ाव के कारण

हानि के जोखिम को न्यूनतम करने की क्रय-विक्रय की तकनीक। उदाहरण द्वारा इस तकनीक को आसानी से समझा जा सकता है। मान लें, कोई व्यापारी कुछ महीनों के बाद विक्री के लिए हाज़िर भाव अर्थात् चालू बाज़ार-भाव पर अनाज ख़रीदता है। अव यह सम्भव है कि उस अवधि में अनाज की कीमत गिर जाये। यदि ऐसा हुआ तो उसे हानि होगी। इस हानि से बचने के लिए वह हाजिर बाज़ार में अनाज खरीदने के साथ-साथ उतना ही माल वायदा सट्टा-बाज़ार में वेचने के लिए सौदा करेगा। अव यदि भाव गिरता है, तो उसे गोदाम में रखे माल पर तो हानि होगी, लेकिन उस हानि के वरावर उसे वायदा सट्टा-बाज़ार में विक्री के सौदे पर लाभ मिलेगा। इसके विपरीत यदि कीमत वढ़ती है, तो उसे वायदा सट्टा-बाज़ार में हानि उठानी पड़ेगी, लेकिन ख़रीदे गये माल पर उसे उतना ही लाभ होगा। इस तरह क्रय-विक्रय की क्रिया से कीमतों में उतार-चढ़ाव से बचाव के लिए जो प्रवन्ध किया जाता है, उसे पेशवन्दी कहते हैं।

hidden unemloyment (हिडेन अनएम्पलॉयमेण्ट) : गुप्त वेरोज़गारी।

'प्रच्छन्न वेरोज़ारी' का दूसरा नाम।

देखिए : disguised unemployment.

hire purchase (हायर परचेज) : किराया ख़रीद।

उपभोक्ता-उधार का एक रूप। इस प्रणाली के अन्तर्गत किसी वस्तु को ख़रीदते समय क्रेता को उस वस्तु की कीमत का एक निश्चित भाग जमा कराना पड़ता है और व्याज-सहित वाकी रकम निर्धारित अवधि के दौरान (जैसे कि छः छःमही एक साल या दो साल के भीतर) नियमित रूप से किश्तों में चुकानी होती है। किराया-ख़रीद की मुख्य वात यह है कि जव तक अन्तिम किश्त चुका नहीं दी जाती तव तक विक्रेता उस वस्तु का मालिक वना रहता है। इस तरह वह वस्तु उधार के लिए जमानत का काम करती है।

विक्री वढ़ाने अथवा वस्तु-विशेष के प्रयोग को प्रोत्साहित करने के लिए किराया-ख़रीद-प्रणाली का सहारा लिया जाता है। ख़रीदनेवालों को भी इससे काफी सहूलियत हो जाती है। साधारण क्रेता के लिए महँगी वस्तु के लिए एक साथ पूरी कीमत दे पाना प्रायः कठिन होता है। किराया-ख़रीद से इस कठिनाई को दूर किया जा सकता है। लेकिन इस प्रणाली में प्रायः अनेक दोष पैदा हो जाते हैं। कभी-कभी व्याज-दरें ऊंची निर्धारित कर ली जाती हैं और उपभोक्ताओं को उनकी शक्ति के वाहर माल ख़रीदने के लिए तरह-तरह से प्रलोभन दिया जाता है। फलस्वरूप इससे उपभोक्ताओं की मुसीवतें अन्ततः वढ़ जाती हैं। वैसे भी इस प्रणाली के अन्तर्गत ख़रीदारी काफी महँगी पड़ती है, क्योंकि वकाया रकम पर नहीं वल्कि पूरी कीमत पर व्याज फैलाया जाता है। उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा एवं किराया-ख़रीद के सौदों की मात्रा को नियन्त्रित करने के लिए सरकारें आवश्यक कदम उठाती हैं।

historical school (हिस्टॉरीकल स्कूल): इतिहासवादी साम्प्रदाय।

आर्थिक विचारों का एक मतवाद, जिसके अनुसार वैज्ञानिक आर्थिक सिद्धान्त ऐतिहासिक अनुसन्धान के आधार पर ही प्राप्त किये जा सकते हैं । इतिहासवादी सम्प्रदाय आर्थिक सिद्धान्तों की निगमन-प्रणाली का विरोध करता है। संस्थापित अर्थशास्त्र में निगमन-प्रणाली का बहुत महत्त्व था, परन्तु इतिहासवादी सम्प्रदाय-समर्थकों ने इस परम्परा के औचित्य को नहीं स्वीकारा। उनके मतानुसार ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर आर्थिक सिद्धान्त स्थापित किये जाने चाहिए। अतीत की आर्थिक घटनाओं का विवेचन आर्थिक प्रक्रिया के विभिन्न पहलुओं पर समुचित प्रकाश डाल सकता है। इस विवेचन के आधार पर वर्तमान तथा भविष्य के बारे में आर्थिक नियम बनाये जा सकते हैं। आर्थिक इतिहास के विवेचन के आधार पर धीरे-धीरे सर्वसामान्य आर्थिक सिद्धान्तों की स्थापना की जा सकती है ।

इस तरह इतिहासवादी स्कूल मुख्यत: एक पृथक् रीति-विज्ञान पर आधारित है। परन्तु इसके समर्थक यह स्पष्ट नहीं करते कि आर्थिक इतिहास का विश्लेषण किस तरह किया जाये। विना आर्थिक अवधारणाओं, नियमों तथा प्रमेयों के आर्थिक इतिहास के तथ्यों को किस तरह व्यवस्थित तथा विश्लेषित किया जा सकता है, यह प्रश्न इतिहासवादी सम्प्रदाय के पृष्ठपोषक भूल जाते हैं।

hoarding (होडिंग): निसंचय ।

धन का जो भाग मुद्रा के रूप में रखा जाता है, उसे निसंचय कहना गलत होगा; क्योंकि मुद्रा-व्यवस्था द्वारा जारी की गयी सारी मुद्रा किसी-न-किसी के पास तो रहेगी ही । इस अर्थ में हमेशा निसं सारी मुद्रा की मात्रा के बराबर हो निसंचय अथवा संग्रह का वास्तविक जनता की अपनी परिसम्पत्ति को मुद्रा के रूप में रखने की प्रवृत्ति है। कुछ लोग निसंचय को बढ़ाना चाहें, यह तभी सम्भव होगा जबकि अन्य अपने संग्रह को घटाने को तैयार जायें। केन्स ने इस प्रवृत्ति को तरल अधिमान का नाम दिया था। इस प्र जो नकद मुद्रा रखी जाती है, वह व्यवस्था के सक्रिय मुद्रा-प्रवाह के कुछ समय तक, शामिल नहीं होती है ब्याज-दर के निर्धारण, लोगों तथा व्य सायों की परिसम्पत्ति के स्वरूप-निर्धार प्रभावकारी माँग तथा रोज़गार के के निर्धारण में निसंचय का बहुत महत्त्व पूर्ण हाथ रहता है।

देखिए : liquidity preference

holding company (होल्डिंग कम्पनी) नियन्त्रक कम्पनी ।

निगमित क्षेत्र की वह इकाई, अन्य इकाइयों के सारे या बहुसंख्य शेयर खरीदकर उन पर अपना नियन्त्र जमा लेती है, नियन्त्रक कम्पनी कहला हैं। इस तरह की सहायक कम्पनियाँ केवल शेयर खरीदकर ही हथियायी सकती हैं, वरन् नियन्त्रक कम्पनी सहायक कम्पनियों की स्थापना भी कर सकती है नियन्त्रक कम्पनी एक वित्तीय कम्पनी हो सकती है या उत्पादन की किसी में निरत कम्पनी भी।

आधुनिक पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में इस तरह एक नियन्त्रक कम्पनी छत्रछाया में कई सहायक कम्पनियाँ

एकत्र होकर एक औद्योगिक समूह बनाने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। यह बढ़ती हुई एकाधिकारिक प्रवृत्तियों की द्योतक है, जिसके कारण एक नियन्त्रक कम्पनी अपनी सारी पूँजी पर प्रबन्ध द्वारा नियन्त्रण जमा लेती है। साथ ही इस समूहीकरण से बड़े स्तर के उत्पादन की किफायतें भी मिलती हैं और सहायक कम्पनियाँ अपना पृथक् अस्तित्व और साख नहीं खोती हैं। कई बार प्रतियोगिता घटाने के लिए भी नियन्त्रक कम्पनियाँ अस्तित्व में आती हैं। नियन्त्रक कम्पनी सहायक कम्पनियों को काफी अंशों तक स्वायत्तता दे सकती हैं।

homogenous factor (होमोजीनस फैक्टर) : समरूप साधन।

उत्पादन का वह साधन, जिसकी प्रत्येक इकाई एक-जैसी होती है।

homogenous product (होमोजीनस प्रॉडक्ट) : समरूप उत्पाद।

जब किसी वस्तु के उत्पादन में लगी विभिन्न फर्मों के उत्पादन अभिन्न अथवा एक समान होते हैं और उपभोक्ताओं की दृष्टि से उनमें कोई अन्तर नहीं होता, तब ऐसे उत्पाद को समरूप उत्पाद कहते हैं। पूर्ण प्रतियोगिता की यह एक मान्यता होती है कि विभिन्न विक्रेता समरूप उत्पादन या वस्तु की बिक्री करते हैं, अर्थात् बिक्री की जानेवाली वस्तु की विभिन्न इकाइयाँ एक-जैसी होती हैं।

horisontal integration (हॉरिजेण्टल इण्टेग्रेशन) : समस्तर एकीकरण।

औद्योगिक संस्थानों के विलय की वह प्रवृत्ति, जिसमें एक ही प्रकार की उत्पादन-प्रक्रिया में लगी फर्में मिलकर एक संयुक्त इकाई के रूप में कार्य करने लगती हैं। इस प्रकार फर्में विशिष्टीकृत होकर बड़े पैमाने पर उत्पादन शुरू करती हैं। यह फर्मों के विकास का एक विशेष रूप है।

horisontal labour mobility (हॉरिजेण्टल लेबर मोबिलिटी) : श्रम की समस्तर गतिशीलता।

श्रम की गतिशीलता का विशेष रूप, जिसमें श्रमिक एक ही तरीके या स्तर के एक रोज़गार से दूसरे रोज़गार में चले जाते हैं। उदाहरणार्थ, कपड़ा-मिल का एक बुनकर दूसरी किसी कपड़ा-मिल में बुनकर के रूप में ही रोजगार करने लगे। इस प्रकार की गतिशीलता स्थानीय हो सकती है और प्रादेशिक भी। इस तरह की गतिशीलता एक ही व्यवसाय में होती है। साधारणत: काम की बेहतर दशाओं तथा अधिक मजदूरी की दर से प्रभावित होने से ऐसी गतिशीलता नजर आती है। इस तरह की गतिशीलता से एक उद्योग या व्यवसाय की कुल मिलाकर सामूहिक हालत पर तो कोई सीधा प्रभाव नहीं पड़ता, परन्तु उद्योग या व्यवसाय की विभिन्न इकाइयों की सापेक्ष स्थिति पर प्रत्यक्ष प्रभाव अवश्य पड़ता है। इस गतिशीलता से उद्योग में प्रतियोगिता का वातावरण बना रहता है।

hot money (हॉट मॅनी) : उत्प्रवाही मुद्रा।

अन्तर्राष्ट्रीय अल्पकालिक गतिशीलता वाली पूँजी का नाटकीयतापूर्ण नाम। ऊँची विनिमय-दर व अधिक सुरक्षा की भावना से पूँजी की यह गतिशीलता प्रभावित होती है। इस तरह यह आर्थिक तथा राजनीतिक, दोनों तरह के प्रभावों

का परिणाम होती है । ये अल्पकालिक पूंजी-प्रवाह् सटोरियों की कार्यवाही के नतीजे भी हो सकते हैं । इन पूंजी-प्रवाहों का देश के भुगतान-अधिशेष के स्थायित्व पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है । इससे देश के विदेशी-विनिमय के सुरक्षित कोष में चिन्ताजनक कमी आ सकती है और देश के विदेशी व्यापार तथा लेन-देन की क्षमता पर प्रतिकूल असर हो सकता है। विनिमय-स्थिरीकरण-खाते के कार्यक्षेत्र को वढ़ाकर तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न देशों की ऐसी स्थिति से मुकावला करने की क्षमता वढ़ाकर इन पूंजी-प्रवाहों तथा उनके प्रतिकूल प्रभावों को घटाया या रोका जा सकता है । अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा-कोष तथा अन्य विश्व-संगठन विकसित पूंजीवादी देशों की इस समस्या को सुलझाने के तरीके खोज रहे हैं । यूरो-डॉलरों की समस्या उत्प्रवाही मुद्रा का ही एक विशेष रूप है ।

देखिए : eurodollers.

household (हाउसहोल्ड) : परिवार ।

एक आर्थिक इकाई, जिसका आशय एक या अधिक लोगों से है जो स्वेच्छा से एक साथ रहते हैं, जिनका खान-पान सम्मिलित होता है और जो संयुक्त गृह-प्रवन्ध के सुलाभों में सहयोगी होते हैं। परिवार की इस विशेषता के कारण विभिन्न प्रकार के आगणन में इसे महत्त्वपूर्ण इकाई माना जाता है, जैसे कि अनेक उपभोग-वस्तुओं के लिए भावी वाज़ार-माँग, वचत, रोज़गार आदि ।

human capital (ह्यूमन कैपिटल) : मानव-पूंजी ।

आजकल उत्पादन के साधन श्रम के लिए प्रयुक्त किया जानेवाला पद । श्रम का कौशल वढ़ाने में शिक्षण तथा प्रशिक्षण के रूप में निवेश किया जाता है । इस हेतु वर्तमान उपभोग को कम किया जाता है और इस प्रकार के निवेश से श्रम की भावी उत्पादिता वढ़ती है । इसलिए श्रम को, विशेषकर कुशल श्रम को, मानव-पूंजी ठहराया जाता है। भौतिक पूंजी की भाँति मानव-पूंजी भी आर्थिक विकास का एक आवश्यक साधन है ।

hyper-inflation (हाइपर इन्फ्लेशन) : अतिस्फीति ।

कीमतों में निरन्तर वृद्धि तथा मुद्रा के मूल्य में ह्रास की प्रवृत्ति एवं प्रक्रिया का वह चरम चरण, जहाँ मुद्रा की क्रय-शक्ति शून्यप्राय:-सी हो जाती है तथा नयी मुद्रा जारी किये विना मुद्रा को सार्थक वनाना असम्भव-सा हो जाता है । यह ऐसी स्थिति है, जिसके लिए यह कहा जा सकता है कि लोग थैलों में भरकर मुद्रा वाज़ार में ले जायें और जेव में भरकर सौदा खरीदकर ले आयें । मुद्रा-स्फीति के निरन्तर वने रहने से उसके अतिस्फीति में वदलने का डर जड़ पकड़ता है । इस डर से प्रभावित हो जनता मुद्रा के वदले वास्तविक वस्तुएँ तथा सेवाएँ प्राप्त करने की कोशिश करती है । मुद्रा के रूप में वचत की प्रेरणा समाप्त हो जाती है । इससे प्रभावी माँग और भी वढ़ती है तथा अतिस्फीति की आशंका वास्तविकता वनने लगती है । इस तरह अतिस्फीति की दशा में मुद्रा की मात्रा न भी वढ़े तो, तो भी मुद्रा की गतिशीलता वहुत वढ़ जाती है । इसलिए मुद्रा की मात्रा की वृद्धि से अतिस्फीति की सीमा का अनुमान लगा सकना कठिन हो जाता

है। प्रथम महायुद्ध के बाद जर्मनी, ऑस्ट्रिया आदि देशों में अतिस्फीत की अवस्था उत्पन्न हो गयी थी। कई लैटिन अमरीकी देशों को भी इस स्थिति का सामना करना पड़ा है।

देखिए : inflation
galloping inflation.

idle money (आइडिल मॅनी) : निष्क्रिय मुद्रा।

किसी समय पर कुल मुद्रा-पूर्ति का वह भाग, जो चालू सौदों के वित्तीयन के लिए अथवा मुद्रा-बाजार में उधार देने के काम में इस्तेमाल नहीं किया जा रहा होता। तरलता अधिमान के कारण इसका उदय होता है। ब्याज पर उधार देने अथवा वस्तुएँ खरीदने की बजाय लोग विभिन्न कारणों से नकदी में अपने पास मुद्रा रखना पसन्द करते हैं। इस प्रकार किसी समय-विशेष पर रखी हुई मुद्रा को निष्क्रिय मुद्रा कहते हैं। इसकी मात्रा स्थिर नहीं होती। ब्याज-दर तथा अन्य वित्तीय परिसम्पत्तियों, जैसे कि बॉण्ड, शेयर आदि की कीमतों में परिवर्तन के फलस्वरूप इसकी मात्रा में भी घट-बढ़ होती है।

impact effect (इम्पैक्ट इफेक्ट) : तत्काल प्रभाव।

दीर्घकालीन प्रभाव के विपरीत किसी परिवर्तन या नीति का तुरन्त पड़नेवाला प्रभाव। प्रायः किसी परिवर्तन का तत्काल प्रभाव उसके अन्तिम प्रभाव से कुछ सीमा तक भिन्न होता है। कारण, परिवर्तन के फलस्वरूप कुछ शक्तियाँ काम करने लगती हैं जो कुछ समय तक बनी रहती हैं। इसके क्रियाशील होने से धीरे-धीरे तत्काल प्रभाव बदलने लगता है और अन्तिम प्रभाव बहुत-कुछ भिन्न हो जाता है। उदाहरण के लिए मान लें कि किसी वस्तु की माँग में भारी वृद्धि होती है। इस माँग-वृद्धि का तत्काल प्रभाव यह होगा कि उस वस्तु की कीमत तेजी से बढ़ जायेगी। इससे लाभ में वृद्धि होगी, जिससे आकर्षित होकर पुराने उत्पादक अधिक मात्रा में उत्पादन करने की कोशिश करेंगे और रोक-टोक न होने पर नये उत्पादक भी उस उद्योग में प्रवेश करेंगे। इसके फलस्वरूप पूर्ति की मात्रा बढ़ेगी और अपने बढ़े हुए स्तर की तुलना में कीमतें तब गिरेंगी। इस प्रकार माँग-वृद्धि का तत्काल प्रभाव तो कीमत में भारी वृद्धि रहा, लेकिन सम्भव है कि अन्ततः कीमत में थोड़ी ही वृद्धि हो पाये।

impact of tax (इम्पैक्ट ऑफ टैक्स) : कराघात।

कर का भार हमेशा उन्हीं लोगों पर नहीं रहता है, जिन पर कर लगाया जाता है। कराधान ऐसा हो सकता है कि आरम्भ में कर का भुगतान तो कोई व्यक्ति करे, लेकिन उसका भार कम-अधिक सीमा तक कोई दूसरा व्यक्ति वहन करे। अर्थात् कर-भार एक-दूसरे पर खिसकाया जा सके। यह भी हो सकता है कि करदेयता और करवाह्यता, दोनों एक ही व्यक्ति पर हो। कर का सर्वप्रथम भुगतान करापात कहलाता है और इसके अन्तिम भार के वहन को कराघात कहते हैं। इस प्रकार कराघात उस व्यक्ति पर पड़ता है जो आरम्भ में कर चुकाता है, जबकि करापात उस व्यक्ति पर पड़ता है जो अन्ततः उस कर-भार का वहन करता है। सामान्य

तौर से आय और पूँजी पर लगाये गये करों के सम्बन्ध में कराघात और करापात दोनों एक ही व्यक्ति या स्थान पर होते हैं। लेकिन वस्तुओं पर लगाये गये करों के साथ कराघात और करापात अलग-अलग व्यक्तियों पर पड़ते हैं। उदाहरण के लिए, विक्री-कर आरम्भ में विक्रेता चुकाता है, लेकिन कीमत बढ़ाकर वह इस भार को क्रेताओं पर खिसका देता है। इस प्रकार कम-अधिक सीमा तक इसका करापात क्रेताओं पर होता है।

देखिए : direct tax
incidence of taxation
indirect tax.

imperfect competition (इम्परफेक्ट कॉम्पिटीशन) : अपूर्ण प्रतियोगिता।

वस्तुओं या संसाधनों के बाजार की वह स्थिति, जिसमें पूर्ण या शुद्ध प्रतियोगिता के विभिन्न तत्त्वों में से कुछ का अभाव हो। अपूर्ण प्रतियोगिता के तत्त्व विभिन्न बाजारों में कमो-वेस सीमा तक पाये जा सकते हैं। ऐसे बाज़ारों में विकेता कीमत को कुछ अंशों तक प्रभावित कर सकते हैं और क्रेता-विशेष भी। विक्रता उत्पाद-विभेद, विज्ञापन आदि तरीकों से अपने उत्पाद की माँग को नियन्त्रित कर सकते हैं। वे प्रतियोगिता-फर्मों के उद्योग में प्रवेश के मार्ग में कई तरह की रुकावटें खड़ी कर सकते हैं। कई विक्रेता मिलकर दुरभिसन्धिपूर्ण तथा निर्वन्धात्मक नीतियाँ अपनाकर बाज़ार में अपना प्रभुत्व वढ़ा सकते हैं। अपूर्ण बाजारों में सूचनाएँ सीमित क्षेत्र में ही प्राप्त होती हैं, जिससे क्रेता या विक्रेता विशेष लाभ उठा सकते हैं। इन बाज़ारों में सूचना निश्चिततापूर्ण भी नहीं होती। अतः कीमत, उत्पादन तथा माँग-सम्वन्धी निर्णय अनिश्चितता के वातावरण में किये जाते हैं। इन बाज़ारों में मुनाफे की प्रत्याशा भी अनिश्चयपूर्ण होती है।

साधारणतः किसी भी वस्तु या संसाधन का वाज़ार सैद्धान्तिक पूर्ण प्रतियोगिता की शर्त्तें पूरी करने में समर्थ नहीं होता। इसलिए विभिन्न अंशों में अपूर्ण प्रतियोगिता बाज़ारों की सामान्य स्थिति होती है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्र की पूर्ण प्रतियोगिता की पूर्व-कल्पना केवल सैद्धान्तिक रूप से उपयोगी थी। कीमत-सिद्धान्तों के सही निरूपण के लिए अपूर्ण प्रतियोगिता की पूर्व-कल्पना वहुत महत्त्वपूर्ण सावित हुई। इससे इन सिद्धान्तों का यथार्थवादी मूल्य तथा इनकी नीति-निर्धारण में उपादेयता वढ़ गयी।

अपूर्ण प्रतियोगिता के सिद्धान्त कीमत-सिद्धान्त के सन्दर्भ में उत्पाद-विभेद तथा वर्धमान प्रतिफल की स्थिति के विवेचन के फलस्वरूप उभरकर सामने आये। किसी फर्म के उत्पाद का माँग-वक्र या उसका औसत आगम-वक्र अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में पूर्ण प्रतियोगिता की तरह चालू बाज़ार-कीमत की उँचाई पर सीधी क्षितिजीय रेखा नहीं होता है, अपितु बायीं से दायीं ओर नीचे झुकता हैं। अतः अपूर्ण प्रतियोगिता में फर्म का सन्तुलन-विन्दु सीमान्त आगत तथा सीमान्त लागत की समानता के बिन्दु पर होता है। इस स्थिति में फर्म को सामान्य से अधिक लाभ या मुनाफा प्राप्त हो सकता है। नये फर्मों का प्रवेश कठिन तथा बाधापूर्ण होने के कारण या आवश्यक

ज्ञान या सूचना के अभाव में ऐसा असामान्य मुनाफा अपूर्ण वाज़ार में काफ़ी अर्से तक चल सकता है।

पूँजीवाद में संसाधनों का युक्तिसंगत वितरण पूर्ण प्रतियोगिता की पूर्वकल्पना पर आधारित होता है। जब अपूर्ण प्रतियोगिता को वाज़ार की सामान्य स्थिति माना जाने लगता है तो पूँजीवाद के अन्तर्गत संसाधनों के युक्तिसंगत आवण्टन का तर्क ढह जाता है। तव राजकीय हस्तक्षेप तथा पूँजीवादी नियमों से हटकर व्यवस्था करना आवश्यक हो जाता है।

देखिए : monopolistic competition
perfect competititon.

imperfect market (इम्परफेक्ट मार्केट) : अपूर्ण वाज़ार।

वह वाज़ार, जिसमें अपूर्ण प्रतियोगिता का चलन होता है।

देखिए : imperfect competition

imperialism (इम्पीरियलिज्म) : साम्राज्यवाद।

एक राष्ट्र द्वारा अन्य राष्ट्रों पर आर्थिक प्रभुत्व जमाकर उनका शोषण करना। लेनिन के अनुसार साम्राज्यवाद पूँजीवाद का विकसित रूप है।

देखिए : colonialism.

imperial preference इम्पीरियल प्रेफ़रेन्स) : साम्राज्य अधिमान, साम्राज्य रियायतें।

ब्रिटिश साम्राज्य के देशों का ब्रिटेन द्वारा व्यापार में विशेष टैरिफ की सुविधाएँ देने की नीति का नाम। अब यह नीति ब्रिटिश राष्ट्र-मण्डल के देशों द्वारा आपसी व्यापार में विशेष टैरिफ रियायतें देने के रूप में प्रचलित है। १९३२ में हुए ओटावा सम्मेलन में इस नीति को लागू करने का निर्णय लिया गया था। इस नीति से ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के देशों को आपसी व्यापार वढ़ाने में सहायता मिली। टैरिफ एवं व्यापार-सम्वन्धी सामान्य करार (ग्राण्ट) इन तरजीहों अथवा रियायतों को और वढ़ाने की नीति को वढ़ावा नहीं देता, क्योंकि इसका ध्येय मुक्त व्यापार को प्रोत्साहित करना है। विकासशील देशों के पनपते आर्थिक राष्ट्रवाद के कारण भी साम्राज्य अधिमानों का महत्त्व घटता जा रहा है।

import duties (इम्पोर्ट ड्युटीज) : आयात-शुल्क।

वे शुल्क, जो किसी देश की सरकार द्वारा आयात-वस्तुओं पर लगाये जाते हैं। इनका उद्देश्य सरकार की आय को वढ़ाना अथवा देश के उद्योगों को संरक्षण देना होता है। आयात-शुल्क लगाने से विदेशी माल महँगा हो जाता है। इस कारण उस माल से सम्वन्धित स्वदेशी उद्योगों के लिए विदेशी प्रतियोगिता से अपनी रक्षा करना और अपेक्षाकृत अधिक तेजी से विकास करना सम्भव हो जाता है।

import licence (इम्पोर्ट लाइसेन्स) : आयात लाइसेन्स।

एक दस्तावेज, जिससे आयातक को वस्तु-विशेष के आयात के लिए अधिकार मिलता है। इसकी व्यवस्था विदेशी विनिमय पर नियन्त्रण की स्थिति में की जाती है। इसके सहारे सरकार के लिए आयात् व्यापार पर निगरानी रखना एवं उसका

नियमन करना सम्भव हो जाता है।

imports (इम्पोर्ट्स) : आयात।

वाणिज्य द्वारा दूसरे देशों से खरीदी गयी वस्तुएँ तथा सेवाएँ। सेवाओं की खरीद को 'अदृश्य आयात' और वस्तुओं की खरीद को 'दृश्य आयात' कहा जाता है। सारे विश्व के दृष्टिकोण से देखने पर निर्यात और आयात एक-दूसरे के बराबर होते हैं। इसलिए आयात को निर्यात के बदले में प्राप्त वस्तुओं व सेवाओं के रूप में समझा जा सकता है।

आर्थिक विकास के प्रारम्भिक चरणों में पूंजीगत वस्तुओं और तकनीकी जानकारी का भारी मात्रा में आयात आवश्यक बन जाता है। मशीन-निर्माण-क्षमता प्राप्त कर लेने के बाद आयात में कटौती करना सम्भव हो जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान-शेष को सन्तुलित करने के लिए अनेक तरीकों से आयात को नियन्त्रित किया जाता है। विकसित देश अल्पविकसित देशों से आयात को प्रोत्साहन देकर उनके विकास में सहायक हो सकते हैं।

imputed cost (इम्प्युटेड कॉस्ट) : आरोपित लागत।

वैकल्पिक प्रयोगवाले अपने उत्पादन-साधनों को जो फर्म स्वयं इस्तेमाल करती है, उनकी विकल्प लागत। बहुधा उत्पादक फर्म अपने साधनों (जैसे कि अपनी भूमि, वित्तीय साधन, प्रबन्धकीय सेवाएँ आदि) को उत्पादन-कार्यों में लगाती है। इसके लिए अलग-अलग साधनों की कीमत नहीं चुकायी जाती। बाहर से खरीदे गये साधनों को उनकी निर्धारित कीमतें देने के बाद जो राशि फर्म के पास शेष रहती है, उसमें उसके अपने साधनों की कीमतें शामिल रहती हैं। यदि ये साधन और कहीं इस्तेमाल किये गये होते तो उनको उनकी कीमतें मिलतीं। ये कीमतें उस फर्म में उसके अपने साधनों के इस्तेमाल में लाने की वास्तविक लागत ठहरेगी। इस प्रकार खुले रूप में कीमत न मिलने पर भी फर्म इस्तेमाल में लाये गये अपने प्रत्येक निजी साधन की लागत निकाल सकती है। यह लागत उस कीमत के बराबर होगी जो उस साधन को किसी दूसरे प्रयोग में मिल सकती थी। इस प्रकार निकाली गयी लागत को आरोपित लागत कहा जाता है।

imputed income (इम्प्युटेड इनकम) : आरोपित आय।

फर्म की आरोपित लागतें उस फर्म में इस्तेमाल किये गये उसके अपने साधनों की आरोपित आय कहलाती हैं।

incidence of tax (इन्सीडेन्स ऑफ टैक्स) : करापात।

करारोपण यद्यपि किसी अन्य व्यक्ति पर किया जाता है, परन्तु जो व्यक्ति कर की राशि को अन्ततः चुकाता है वही कर का भार उठाता है। करापात, कराघात से भिन्न है। जिस व्यक्ति या फर्म पर कर लगाया जाये, वह कराघात सहता है। इसके विपरीत, करापात का वहन आर्थिक शक्तियों के आधार पर निर्धारित होता है। आय, सम्पत्ति तथा पूंजी पर लगाये गये कर का भार साधारणतः कराघात सहनेवाले व्यक्ति पर ही होता है, क्योंकि यह आय, पूंजी या सम्पत्ति की मात्रा पर निर्भर रहता है और इसको दूसरों पर खिसकाना सम्भव नहीं होता है। परन्तु वस्तुओं या सेवा पर लगाये गये करों

भार क्रेताओं तथा विक्रेताओं के वीच माँग की लोच की प्रकृति के अनुसार बँट जाता है। एक ओर जहाँ बेलोच माँग वाली वस्तुओं पर आरोपित कर का भार पूरी तरह विक्रेताओं पर होता है, वहाँ बीच की स्थितियों में कर-भार क्रेता तथा विक्रेता के बीच बंट जाता है।

इस अवधारणा की मुख्य वात यह है कि करारोपण एक जटिल प्रक्रिया है, जो अर्थव्यवस्था को कई परोक्ष-अपरोक्ष रूपों में प्रभावित करती है। करापात कहाँ पड़ता है, यह पता लगाकर कर-नीति के आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा प्रशासनिक पहलुओं का सचेतन निर्धारण करने में सहायता मिलती है।

करापात का एक दूसरा अर्थ भी हो सकता है। किसी व्यक्ति, फर्म, समूह या आर्थिक क्षेत्र पर सरकार द्वारा लगाये गये सब करों का सम्पूर्ण बोझ। वैसे इस अवधारणा के लिए ज्यादा उपयुक्त शब्द कर-भार या कर-बोझ है।

देखिए : impact of tax.

income (इन्कॅम) : आय।

किसी अवधि-विशेष के सन्दर्भ में श्रम के प्रतिफल तथा उत्पादन के भौतिक साधनों (सम्पत्ति) के स्वामित्व से प्राप्त होनेवाली राशि को आय कहते हैं। यह प्रतिफल मुद्रा के रूप में मिले, तो इसे मुद्रा-आय कहते हैं और यदि यह प्रतिफल वस्तुओं और सेवाओं के रूप में हो, तो इसे वस्तुपरक आय कहते हैं। बाजार में प्रचलित कीमतों के आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि एक विशेष मुद्रा-आय कितनी मात्रा में विभिन्न वस्तुएँ और सेवाएँ खरीद सकती है। इस प्रकार हमें वास्तविक आय और जानकारी होती है। भूमि, श्रम, पूंजी और उत्तम साधनों की आय को क्रमशः लगान, मजदूरी, व्याज और लाभ का नाम दिया जाता है। एक व्यक्ति की आय विभिन्न प्रकार की आय-कोटियों का सम्मिश्रण हो सकती है।

income determination theory (इन्कॅम डिटरमिनेशन थिअॅरी) : आय-निर्धारण-सिद्धान्त।

वह समष्टिगत सिद्धान्त, जो अर्थव्यवस्था की राष्ट्रीय आय के स्तर को किसी समय-विशेष पर (अल्पकालीन सिद्धान्त) तथा किसी अवधि-विशेष में (दीर्घकालीन सिद्धान्त) निर्धारित करनेवाले तत्त्वों तथा उनके आपसी सम्बन्धों को स्पष्ट करने का प्रयास करता है। दीर्घकालीन आय-निर्धारण-सिद्धान्त तो आर्थिक विकास-सिद्धान्त का ही दूसरा नाम है। केन्स के अल्पकालिक आय-निर्धारण सिद्धान्त के पहले 'से के नियम' के आधार पर आय-निर्धारण-प्रक्रिया को समझाया जाता था। केन्स के इन सिद्धान्तों को अनेक लोगों ने सुस्पष्ट, सम्पूर्ण और सुदृढ़ बनाया है।

अल्पकाल में तथा अन्य बातें यथावत रहने पर राष्ट्रीय आय की मात्रा सम्पूर्ण प्रभावी माँग पर निर्भर करती है। सम्पूर्ण प्रभावी माँग उपभोग-व्यय, निवेश-व्यय, सार्वजनिक व्यय तथा निर्यात को जोड़कर प्राप्त की जा सकती है। सम्पूर्ण प्रभावी माँग के निर्धारक तत्त्वों में आय, ब्याज की दर, उपभोग-फलक, निवेश-फलक, राजकीय वित्त तथा मुद्रा-नीति तथा निर्यात के निर्धारक तत्त्वों को

शामिल किया जा सकता है। मुद्रा की माँग, मुद्रा की पूर्ति, तरलता अधिमान, पूंजी तथा शेयर-बाज़ार की स्थिति आदि तत्त्वों का आय के स्तर पर प्रभाव पड़ता है। राष्ट्रीय आय के सन्तुलन की स्थिति तब प्राप्त होगी जब आय का स्तर तथा ब्याज की दरें ऐसी हों कि वस्तुओं, सेवाओं, मुद्रा तथा परिसम्पत्तियों के बाज़ारों में एक साथ सन्तुलन हो। यह सन्तुलन संसाधनों, विशेषकर श्रम के पूर्ण रोज़गार के स्तर पर, उससे नीचे या उससे ऊपर, कहीं भी हो सकता है। क्लासिकल अर्थशास्त्र के अनुसार यह सन्तुलन-बिन्दु हमेशा पूर्ण रोज़गार के स्तर पर होने की प्रवृत्ति रखता था।

इस सिद्धान्त का राजकीय आर्थिक नीति के निर्धारण में बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान होता है।

encome effect (इन्कॅम इफ़ेक्ट) : आय-प्रभाव।

किसी वस्तु की कीमत में परिवर्तन आने से उपभोक्ता की वास्तविक आय में परिवर्तन आता है। इस प्रकार आय में हुए परिवर्तन के कारण उपभोक्ता विभिन्न वस्तुओं और सेवाओं के उपभोग-परिमाण को बदलता है। यह आय-प्रभाव कहलाता है। कीमत में परिवर्तन होने से न केवल उपभोक्ता घटी हुई कीमतवाली वस्तु को अपेक्षाकृत ऊँची कीमतवाली वस्तु के बदले प्रतिस्थापित करता है, वरन् वास्तविक आय के घटने-बढ़ने के अनुसार प्रत्येक वस्तु के उपभोग को घटाता-बढ़ाता है। कुछ वस्तुएँ (जिन्हें निम्नस्तरीय वस्तुएँ कहते हैं) कम आय-स्तर पर खरीदी जाती हैं। आय के बढ़ने पर इनके स्थान पर बढ़िया स्थानापन्न वस्तुएँ उपभोग की जाती हैं। इस प्रकार आय-प्रभाव के कारण घटिया वस्तुओं के स्थान पर बढ़िया वस्तुओं का प्रयोग होने लगता है।

income elasticity of demand (इन्कॅम इलास्टिसिटी ऑफ डिमाण्ड) : माँग की आय-लोच।

क्रेता की आय में परिवर्तन के फलस्वरूप किसी वस्तु की माँग में होनेवाला परिवर्तन। इस प्रकार माँग की आय-लोच बताती है कि आय के घटने-बढ़ने पर किसी वस्तु की माँग किस सीमा तक घटती या बढ़ती है। आय-प्रभाव से गुणात्मक सम्बन्ध का बोध होता है, माँग की आय-लोच से उस सम्बन्ध का मात्रात्मक मूल्य ज्ञात होता है। माँग की मात्रा में होनेवाले आनुपातिक परिवर्तन को आय में हुए आनुपातिक परिवर्तन से भाग देकर आय-लोच का पता लगाया जा सकता है। कीमत-लोच की भाँति आय-लोच की माप चाप-लोच-विधि अथवा बिन्दु-लोच-विधि द्वारा की जा सकती है। सामान्यतः माँग की आय-लोच धनात्मक (आय के बढ़ने पर माँग में वृद्धि होना) या शून्य (आय-वृद्धि से माँग में कोई परिवर्तन न होना) होती है। लेकिन कुछ स्थितियों में आय-लोच ऋणात्मक हो सकती है—अर्थात् आय-वृद्धि होने पर माँग में कमी होना। ऐसा कुछ आय-स्तरों पर निम्नस्तरीय वस्तुओं के साथ होता है।

incomes policy (इन्कॅम्स पॉलिसी) : आय-नीति।

स्फीति रोकने के परम्परागत उपायों की

असफलता के फलस्वरूप इस सम्वन्ध में नये तरीकों की खोज की गयी। इनमें आय-नीति का मुख्य स्थान है। आय-नीति के अनुसार लाभ, कीमत और मजदूरी को नियन्त्रित रखने के लिए राज्य या तो नियोक्ताओं तथा मजदूर-संघों को रजामन्द करे या फिर उन्हें कानूनन वाध्य करे, ताकि मुद्रा-आय में वृद्धि वास्तविक उत्पादन में होनेवाली वृद्धि से तेज न होने पाये। इस नीति की परिकल्पना यह है कि आय में वास्तविक उत्पादन से सम्वन्धित वृद्धि स्फीतिकारी नहीं होगी। सामूहिक सौदाकारी या एकाधिकारिक कारणों से यदि आय में तो वृद्धि हो, परन्तु उत्पादन न बढ़ पाये तो ऐसी स्थिति में कीमतें बढ़ेंगी। मजदूरी की दर तो अनुवन्ध द्वारा निर्धारित करके तय की जा सकती है, लेकिन अवशिष्ट आय होने के नाते लाभ घटता-वढ़ता रहता है। कई नये व भारी निवेश तथा जोखिमपूर्ण उद्योगों में असमानतावाली अर्थव्यवस्था में लाभ की ऊँची दर की प्रत्याशा के विना नये निवेश नहीं किये जा सकेंगे। इस प्रकार मजदूरी की दर तो स्थिर हो जायेगी, लेकिन लाभ की दर स्थिर नहीं हो पायेगी। ऐसी स्थिति में मजदूर-संघ आय-नीति का विरोध करेंगे। इन्हीं कारणों से ब्रिटेन आदि देशों में आय-नीति सफल नहीं हो पायी है।

income tax (इन्कॅम टैक्स): आय-कर।

व्यक्तियों तथा कम्पनियों की सव तरह की आय पर लगाया जानेवाला कर। मजदूरी, व्याज, लगान, मुनाफ़ा आदि सव तरह की आय पर एक कानूनन तय सीमा से अधिक आय पर, साधारणतः कुछ कर-मुक्त छूटें घटाकर यह कर लगाया जाता है। अधिकांश देशों में जैसे-जैसे आय ऊँची होती है, कर की दर वढ़ती चली जाती है। ऐसा आयकर आरोही कर कहलाता है। ह्रासमान या आनुपातिक आय-दर सामाजिक न्याय की दृष्टि से दोषपूर्ण होती हैं। वहुत अधिक आय पर अधिकर भी लगाया जाता है।

आय-कर अधिकांश देशों में राजस्व का वहुत महत्त्वपूर्ण स्रोत है। आय-कर के श्रम, वचत तथा निवेश की प्रेरणा पर पड़े प्रभाव तथा कराधान की क्षमता से सम्बन्धित सवालों पर अर्थशास्त्रियों में काफी मतान्तर रहे हैं। आय-कर से प्राप्त राजस्व वहुत ऊँची कर-दर के एक विन्दु-विशेष के बाद कम भी हो सकता है, क्योंकि लोग श्रम के बदले अवकाश और वचत के वदले निजी सुविधाओं पर व्यय को ज्यादा महत्त्व देना शुरू कर सकते हैं। आय-कर का महत्त्व सामाजिक आय के पुनर्वितरण में भी है, क्योंकि ऊँची आयवालों से प्राप्त राजस्व कम आयवाले समूहों के हित में खर्च किया जाता है। शिक्षा, स्वास्थ्य, मनोरंजन, रिहाइश आदि पर किया गया खर्च श्रम की उत्पादिता को बढ़ाता है तथा अर्थ-व्यवस्था को अवसर की समानता की ओर अग्रसर कर सामाजिक न्याय को वढ़ावा देता है।

inconvertible note issue (इन्कन्वर्टेवल नोट इस्यू): अपरिवर्तनीय नोट निर्गम।

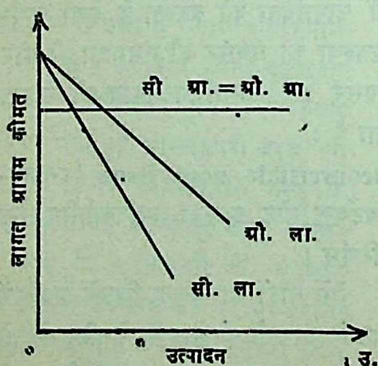
ऐसे नोटों का चलन, जिसके वदले में नोट के धारकों को देश के केन्द्रीय वैंक से समान मूल्य का सोना या चाँदी माँगने का अधिकार नहीं होता। अर्थात् ऐसे नोट सोना-चाँदी में परिवर्तनीय नहीं होते।

इन नोटों पर जनता का विश्वास सोने या चाँदी मे परिवर्तनीयता पर निर्भर नहीं होता, वरन् देश की मुद्रा-व्यवस्था की सुदृढ़ता पर निर्भर करता है। आजकल नोटों के जारी करने की यही व्यवस्था सब जगह प्रचलित है।

increasing returns (इन्क्रीजिंग रिटर्न्स): वर्धमान प्रतिफल।

उत्पादन का पैमाना या स्तर बढ़ाने पर उत्पादन-लागत में कमी आने की प्रवृत्ति। बड़े स्तर के उत्पादन से कई प्रकार की तकनीकी तथा मौद्रिक बचतें फर्म को प्राप्त होती हैं। इनके परिणामस्वरूप उत्पादन की औसत लागत घट जाती है। इसीलिए इस प्रवृत्ति को घटती हुई या असमान लागत की प्रवृत्ति के नाम से भी जाना जाता है। इस घटती लागत का कारण आन्तरिक तथा बाह्य दोनों प्रकार की बचतें होती हैं।

पूर्ण प्रतियोगी फर्म का सन्तुलन उस विन्दु पर प्राप्त होता है, जहाँ फर्म का सीमान्त लागत-वक्र औसत लागत-वक्र को नीचे से ऊपर बढ़ते हुए काटे और सीमान्त



आगम के बराबर हो। स्पष्ट है कि ऐसा बढ़ती हुई लागतवाली स्थिति में ही हो सकता है। इसके विपरीत घटती ला की स्थिति में ज्यों-ज्यों फर्म के उत्पा का विस्तार होगा, उसका मुनाफा बढ़ जायेगा। अत: फर्म का आकार इ बढ़ जायेगा कि पूर्ण प्रतियोगिता स्थिति समाप्त हो जायेगी। इस प्र चिरस्थायी या दीर्घकालिक वर्धमान प्र फल की प्रवृत्ति पूर्ण प्रतियोगिता से मे नहीं होती है। वर्धमान प्रतिफल आर्थि विकास, बढ़ती उत्पादिता और तकनी प्रगति से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है।

indent (इन्डेण्ट) : माँग-पत्र।

विदेशी व्यापार में प्रयुक्त शब्द माल की माँग, विशेषत: ऐसी जो अ कर्त्ताओं के माध्यम से की जाये तो माँग को प्रकट करनेवाला पत्र माँग-प कहलाता है। एक माँग-पत्र तो ऐसा हो है जिसमें निर्धारित मात्रा की वस्तु किसी भी फर्म से खरीदकर सम्भरित जा सकती हैं। दूसरे प्रकार का माँग-प वह होता है, जिसमें माल के सम्भरण स्रोत का स्पष्ट रूप से उल्लेख कर दि जाता है।

indenture (इन्डेंचर): अनुबन्ध-पत्र।

किन्हीं दो या अधिक पक्षों के बी किसी भी विषय पर इकरारनामा।

independent variable (इन्डिपेंडे वैरिएबल) : स्वाधीन चर।

वह चर, जिसका अनुज्ञात सीमा भीतर मूल्य चुना जा सकता है और जि यह मूल्य किसी अन्य चर के मूल्य निर्धारित करता है।

index number (इन्डेक्स नम्बर) सूचकांक।

एक माप या संख्या, जिसमें परि

ऐसी किसी वस्तु में, जो सीधे तौर पर नापी या देखी नहीं जा सके, विभिन्न समयों या स्थानों पर हुए परिवर्तनों को दिखाता है। यह एक ऐसी संख्या होती है जो कुछ वस्तुओं के औसत मान को किसी आधार-अवधि के औसत-मान प्रतिशत के रूप में दिखाती है। सामन्य कीमत-स्तर, वास्तविक राष्ट्रीय आय, विक्री की मात्रा, औद्यौगिक उत्पादन आदि में हुए परिवर्तन सूचकांकों द्वारा दिखाये जाते हैं।

जैसे, जब हम यह कहते हैं कि राष्ट्रीय आय का सूचकांक आजकल १७५ है तो हमारा अभिप्राय यह होता है कि राष्ट्रीय उत्पाद का औसत मान सन् १९६० के राष्ट्रीय उत्पाद के औसत मान से ७५ प्रतिशत बढ़कर अब १७५ प्रतिशत हो गया है।

सूचकांक विभिन्न चरों में हुए परि-वर्तनों को संक्षेप में प्रकट करने काका रगर तरीका होता है। इसके द्वारा बहुत-सारी चीजों का मान संक्षेप में और आधार-वर्ष से तुलनीय रूप में प्रकट करने में सहायता मिलती है। समय-क्रम के आँकड़ों में परिवर्तन की दर प्रकट करना सूचकांक की खास विशेषता होती है। सूचकांकों के औसत संख्या होने के कारण इनकी एक समस्या उन विभिन्न संख्याओं को अलग-अलग 'भार' प्रदान करना है जिनका यह औसत प्रतिनिधित्व करता है। चूंकि सूचकांक भारित औसत होते हैं, अतः गलत या अनुपयुक्त भारों के चुनाव से ये दूषित हो जाते हैं। सांख्यिकी में सूचकांकों की गणना की अनेक पद्धतियाँ प्रचलित हैं, जिनमें 'लेसपेयर्स सूचकांक' तथा 'पॉशे सूचकांक' बहुत प्रसिद्ध हैं।

अर्थशास्त्र में राष्ट्रीय आय, औद्योगिक उत्पादन, जीवन-स्तर, कीमत-स्तर, मजदूरी, शेयर कीमतें आदि अनेक चरों के समय-क्रम-आँकड़ों को सूचकांकों द्वारा दिखाया जाता है। ये आँकड़े अलग-अलग समयों के साथ-साथ अलग-अलग स्थानों या इकाइयों से भी सम्बन्धित हो सकते हैं। साधारणतः ये सूचकांक तीन तरह के होते हैं:—

(क) कीमत सूचकांक : किसी वस्तु की निश्चित मात्रा की वर्तमान कीमत को उसी वस्तु की उसी मात्रा की आधार-वर्षीय कीमत के प्रतिशत के रूप में प्रकट किया जाता है। फिर इन प्रतिशतों (या कीमत सापेक्षों) का भारित औसत लेकर कीमत सूचकांक गिना जाता है।

(ख) मात्रा सूचकांक : इस सूचकांक में वस्तुओं की भौतिक मात्रा में आये प्रतिशत-परिवर्तनों का औसत, बिना कीमतों के परिवर्तन पर विचार किये, लिया जाता है।

(ग) मूल्य सूचकांक : इसमें किसी वस्तु की सारी मात्रा की किसी खास समय की मौद्रिक कीमत को आधार-वर्ष की मौद्रिक कीमत के प्रतिशत के रूप में लेकर इन प्रतिशतों का औसत लिया जाता है। इस तरह इसमें कीमत तथा मात्रा दोनों ही संयुक्त रूप से दिखायी जाती हैं।

सूचकांकों की गणना काफी जटिल और विवादास्पद विषय है।

indicater (इन्डिकेटर) : संकेतक।

एक योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था में केन्द्रीय योजनाकारों को फर्म-विशेष को कई प्रकार की सूचनाएँ देनी पड़ती हैं, विशेष रूप से

योजना में निर्धारित उनके कार्यक्रमों के सम्बन्ध में और साथ ही योजना की प्रगति आदि के सम्बन्ध में उनसे अनेक प्रकार की सूचनाएँ प्राप्त भी करनी पड़ती है। परन्तु जहाँ योजनावद्ध अर्थव्यवस्था का संचालन विकेन्द्रित रूप में होता है, वहाँ आयोजित कार्यक्रमों का निर्धारण केन्द्रीय योजनाकारों से मिले संकेतकों के आधार पर फर्में स्वयं करती हैं। ये संकेतक सम्पूर्ण उत्पादन की सकल कीमत, उत्पादन की निवल कीमत या लाभ-दर का रूप ले सकते हैं। संकेतक के आधार पर विकेन्द्रित रूप से योजना-निर्धारण निर्णय-प्रक्रिया को विकेन्द्रित करते हुए भी अर्थ-व्यवस्था में घटना एवं प्रत्याशित सन्तुलन विठाने एवं सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रयास किया जाता है। किसी एक ही संकेत की सहायता से इन उद्देश्यों की प्राप्ति वहुत ही दुष्कर है। इसलिए साधारणतः कई संकेतकों का एक साथ प्रयोग करके एक विकेन्द्रित व्यवस्था में विभिन्न फर्मों के कार्यों को सामाजिक दृष्टिकोण से संचालित करने का प्रयास किया जाता है।

indifference curve (इन्डिफरेन्स कॅर्व)। अनधिमान वक्र।

उपभोक्ता की माँग का एक विशिष्ट विश्लेषण इस पूर्वकल्पना पर आधारित है कि वस्तुओं की उपयोगिता मापनीय नहीं अपितु तुलनीय होती है। उपभोक्ता अपनी निश्चित आय, अधिमान, वस्तुओं की निश्चित कीमतों तथा पूर्ण प्रतियोगिता के आधार पर वस्तुओं तथा सेवाओं का ऐसा संयोग उपभोग करना चाहता है जो उसे उपयोगिता के उच्चतम शिखर पर पहुँचा दे।

इस विश्लेषण का आधार यह है कि उपभोक्ता के सामने अनेक वस्तुओं तथा उनकी विविध मात्राओं के वीच चयन करने की समस्या होती है। अपनी रुचि तथा अधिमान के आधार पर उपभोक्ता विभिन्न वस्तुओं के उन जोड़ों या संयोगों को उनसे प्राप्त उपयोगिता के आधार पर क्रमवद्ध कर लेते हैं। इस प्रक्रिया में वे यह वताने में समर्थ होते हैं कि वस्तुओं के कौन-कौन-से संयोग उन्हें समान सन्तुष्टि देंगे। इस तरह के क्रमांकन को अधिमान-माप कहा जाता है।

अधिमान-माप द्वारा दी गयी सूचनाओं को दो वस्तुओं के सन्दर्भ में एक द्वि-अक्षीय रेखाचित्र पर दिखाया जा सकता है। इन दो वस्तुओं के वे सब संयोग जिनसे उपभोक्ता को समान सन्तुष्टि मिलती है और इसलिए वह उनके वीच चयन करने में तटस्थतापूर्ण रुख अपनाता है, एक वक्र के विभिन्न विन्दुओं द्वारा दिखाये जा सकते हैं। चूँकि उपभोक्ता इन विभिन्न संयोगों को समान समझता है अतः इन्हें दिखानेवाले वक्र को अनधिमान वक्र या सम-सन्तुष्टि वक्र कहा जाता है। एक दि-अक्षीय रेखाचित्र पर ऐसे अनेक वक्र खींचे जा सकते हैं जो अलग-अलग सन्तुष्टि के स्तर दर्शाते हों। यद्यपि प्रत्येक अनधिमान वक्र पर दिखाये गये दो वस्तुओं के जोड़े एक समान रूप से पसन्द किये जाते हैं, परन्तु अलग-अलग अनधिमान वक्र सन्तुष्टि के अलग-अलग स्तर प्रकट करते हैं। इन अनधिमान वक्रों को नीचे से ऊपर की ओर बढ़ती हुई संख्याओं द्वारा अंकित किया जा सकता है। ज्यादा संख्या-

वाला अनधिमान वक्र छोटी संख्यावाले वक्र से ज्यादा सन्तुष्टि देते हैं। अपनी सन्तुष्टि अधिकतम करने को प्रयत्नशील उपभोक्ता अपने साधनों तथा परिस्थितियों के आधार पर सबसे ऊँचे अनधिमान वक्र पर पहुँचना चाहेगा। ऐसा अनेक अनधिमान वक्रों को दिखानेवाला रेखाचित्र 'अनधिमान मानचित्र' कहलाता है।

इन अनधिमान वक्रों में कुछ विशेषताएँ होती हैं जो इनके आकार में नजर आती हैं। पहले, अनधिमान वक्र वायें से दायें की ओर नीचे झुकते हुए खींचे जाते हैं। इस आकार का अर्थ यह है कि जब हम एक वस्तु की उपभोक्ता को प्राप्त मात्रा घटाते हैं तो उपभोक्ता को सन्तुष्टि के उसी स्तर पर कायम रखने के लिए दूसरी वस्तु की उसे प्राप्त मात्रा बढ़ानी पड़ती है।

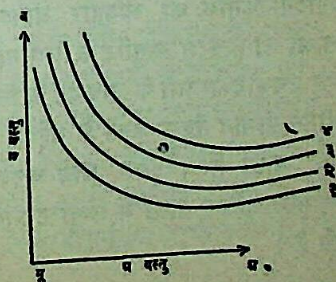
दूसरे, अनधिमान वक्र मूल विन्दु से उन्नतोदर होते हैं, अर्थात् नीचे से देखने पर वाहर की ओर निकले हुए नजर आते हैं। इस आकार का तात्पर्य यह दिखाना है कि जैसे-जैसे एक वस्तु की सापेक्षिक मात्रा घटती है, इस वस्तु की अतिरिक्त इकाई प्राप्त करने के लिए उपभोक्ता दूसरी ज्यादा बहुलता से प्राप्त वस्तु की ज्यादा मात्रा का बदले में त्याग करने को तैयार रहेगा। दूसरे शब्दों में प्रतिस्थापन की सीमान्त-दर घटती हुई होती है।

तीसरे, उपभोक्ता का अधिमान माप संगत होता है, अर्थात् ऊँचा अनधिमान वक्र हमेशा नीचे अनधिमान वक्र की अपेक्षा ज्यादा पसन्द किया जायेगा। इसलिए अनधिमान वक्र कभी एक-दूसरे को काटते नहीं हैं।

उपभोक्ता के माँग-सम्वन्धी व्यवहार की सैद्धान्तिक व्याख्या करने में अनधिमान वक्र बहुत सहायक होते हैं। एक तरह से अनधिमान मानचित्र को उपभोक्ता की आत्मपरक स्थिति का प्रतिविम्व माना जा सकता है। इस आत्मपरक स्थिति को वाज़ार की स्थिति (उपभोक्ता की निश्चित आय तथा वस्तुओं की निश्चित कीमतें, जो 'कीमत रेखा' द्वारा दिखायी जाती हैं) से मिलाने पर यह पता लगाया जा सकता है कि अपनी आय को इन दो वस्तुओं पर किस तरह खर्च करके वह सन्तुलन की स्थिति प्राप्त करेगा।

तीन वस्तुओं से ज्यादा वस्तुओं की स्थिति का विवेचन रेखाचित्र द्वारा नहीं किया जा सकता और तव वीजगणितीय विधियों का सहारा लेना पड़ता है।

अनधिमान विश्लेषण की यह पूर्वकल्पना कि उपभोक्ता समान सन्तुष्टि देनेवाले विभिन्न वस्तुओं के संयोग बता सकता है, बहुत काल्पनिक और अवास्तविक है। इस तरह के विश्लेषण के आधार पर व्यावहारिक विवेचन नहीं किया जा सकता। वास्तविक दुनिया के उपभोक्ता और अनधिमान वक्र-विश्लेषण के उपभोक्ता में बहुत कम और गौण समानताएँ मिलेंगी। नीचे हम एक अनधिमान मानचित्र का नमूना दिखाते हैं :



indifference map (इन्डिफरेन्स मैप): अनधिमान मानचित्र।

एक उपभोक्ता के अधिमान माप का रेखाचित्रीय प्रदर्शन, जिसमें कई अनधिमान वक्र क्रमागत रूप से दिखाये जाते हैं। यह मानचित्र उपभोक्ता की आत्मपरक दशाओं को दिखाता है।

देखिए : indifference curve.

indirect production (इन्डाइरेक्ट प्रॉडक्सन) : अप्रत्यक्ष उत्पादन।

विनिमयी अर्थव्यवस्था में उत्पादक विशेषीकरण का सहारा लेते हैं। फलस्वरूप वे किसी विशेष वस्तु या सेवा का उत्पादन कर अपनी आय उपार्जित करते हैं। इस आय को खर्च करके वे अपनी आवश्यकता की अन्य वस्तुएँ व सेवाएँ प्राप्त करते हैं। इस प्रकार विनिमय के सहारे प्रत्यक्ष रूप से किसी खास तरह के उत्पादन में संलग्न व्यक्ति अपनी आवश्यकता की अन्य वस्तुएँ प्राप्त कर लेते हैं। अर्थात् विनिमय एक तरह से अप्रत्यक्ष उत्पादन के रूप में आवश्यकता की वस्तुएँ जुटाता है।

अप्रत्यक्ष उत्पादन का एक अन्य अर्थ में भी प्रयोग किया जाता है। इसका आशय पूँजी-वस्तुओं के उत्पादन से है जो आगे चलकर उपभोग-वस्तुओं के उत्पादन में सहयोग देती हैं। इस प्रकार अप्रत्यक्ष उत्पादन-तकनीक का व्यवहार आवश्यकताओं की तत्काल सन्तुष्टि के लिए नहीं, वरन् उपभोग-वस्तुओं के उत्पादन के लिए पूँजीगत सामान तैयार करने के उद्देश्य से किया जाता है। इससे आगे चलकर अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में सन्तुष्टि प्राप्त होती है।

indirect tax (इन्डाइरेक्ट टैक्स): अप्रत्यक्ष कर।

वस्तुओं तथा सेवाओं पर लगाये गये कर। ये कर वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादकों, विक्रेताओं तथा आयातकों से वसूले जाते हैं। इन करों का भार कीमतें बढ़ाकर उपभोक्ताओं पर डाला जा सकता है। इस प्रकार करान्तरण किस सीमा तक किया जा सकता है, यह करारोपित वस्तु की माँग की लोच आदि तत्त्वों पर निर्भर रहता है। जीवन की आवश्यक वस्तुओं पर लगाया गया कर मुख्यतः उपभोक्ताओं पर अन्तरित कर दिया जायेगा। अप्रत्यक्ष करों के क्षेत्र तथा उनकी दरों में परिवर्तन करने से उपभोग तथा उत्पादन के स्वरूप को प्रभावित किया जा सकता है।

समता के दृष्टिकोण से अप्रत्यक्ष करों को प्रत्यनुपाती बताया जाता है। ये कर करदाता की आय पर निर्भर नहीं करते। अतः धनी व्यक्ति भी जीवन की आवश्यकता की वस्तुओं पर उतना ही कर देते हैं, जितना कि निर्धन। इस प्रकार इन करों का बोझ ग़रीबों पर ज्यादा पड़ता है। परन्तु आजकल ये कर वस्तुओं के व्यापक परिसर पर लगाये जाते हैं, जिनमें धनीवर्ग द्वारा विशेष रूप से खरीदी जानेवाली वस्तुओं पर, कीमतानुसार, कर की ऊँची दर लगायी जाती है। आधुनिक राज्य की आगम की जरूरत इतने बड़े परिमाण पर होती है कि अप्रत्यक्ष करों को पूरी तरह हटाना सम्भव नहीं हो पाता है। अतः इन करों की अपेक्षाकृत ऊँची दरें धनीवर्ग द्वारा उपभोग्य वस्तुओं पर लगाकर इन करों का प्रत्यनुपाती

प्रभाव कम किया जा सकता है। साथ ही प्रत्यक्ष करों द्वारा एक सीमा के बाद आय अर्जित करने की प्रेरणा कुन्द होने के कारण अप्रत्यक्ष करों की आवश्यकता बढ़ जाती है।

indivisibility (इन्डिविजिबिलिटी) : अविभाज्यता।

उत्पादन के पूंजी आदि कुछ साधन तकनीकी कारणों से एक न्यूनतम आकार में मिलते हैं। उनके द्वारा छोटे स्तर पर उत्पादन करने पर इन साधनों का पूरा उपयोग नहीं हो पाता है। दूसरे शब्दों में उत्पादन के वे साधन अविभाज्य कहलाते हैं, जिनके द्वारा उत्पादन की एक निश्चित मात्रा से कम उत्पादन करने के लिए भी उत्पादन के साधनों की इसी न्यूनतम मात्रा को लगाना पड़ेगा, क्योंकि ये साधन विभाजित करके कम मात्रा में नहीं लगाये जा सकते हैं। ऐसी स्थिति में बिना पूंजी बढ़ाये, सिर्फ सहायक संसाधनों को बढ़ाकर उत्पादन एक निश्चित सीमा तक बढ़ाया जा सकता है। इस सीमा के बाद उत्पादन की मात्रा में थोड़ी भी वृद्धि करने के लिए अविभाज्य साधनों की पूरी इकाई को बढ़ाना पड़ेगा। इस प्रकार फिर एक ऐसी स्थिति आ जायेगी, जब कुछ अन्य सहायक साधनों की मात्रा बढ़ाकर उत्पादन को काफी सीमा तक बढ़ाया जा सकता है। उत्पादन में इस प्रकार आयी वृद्धि सीमान्त लागत में वृद्धि से काफ़ी ज्यादा होती है। अविभाज्यता के कारण उत्पादन के विभिन्न साधनों का परिशुद्ध अनुपात कायम रखना कठिन हो जाता है।

induced investment (इन्ड्यूस्ड इन्वेस्टमेण्ट) : उत्प्रेरित निवेश।

वह निवेश, जो बहुत-कुछ स्पष्ट आन्तरिक आर्थिक प्रभावों के कारण किया जाता है। उदाहरण के लिए लोगों की आय की माँग में वृद्धि और फलस्वरूप विभिन्न वस्तुओं की माँग में वृद्धि होने के कारण उत्पादन बढ़ना लाभप्रद हो जाता है। इस प्रकार अभिप्रेरित होकर किया गया निवेश उत्प्रेरित निवेश कहलाता है। दूसरी ओर कुछ निवेश नये साधनों की खोज, नये उत्पादों या नये उत्पादन-तरीकों की खोज अथवा आर्थिकेतर कारणों से किये जाते हैं। ये उत्प्रेरित निवेश के विपरीत स्वायत्त निवेश होते हैं।

देखिए : antonomous investment.

inductive method (इन्डक्टिव मेथॅड): आगमन रीति।

इस रीति, जिसे ऐतिहासिक रीति भी कहते हैं, के अन्तर्गत किसी विशेष तथ्य या तथ्यों के आधार पर सामान्यीकरण करने का प्रयास किया जाता है। यह रीति आर्थिक तथ्यों अथवा संकलित सामग्री के अध्ययन से आरम्भ होती है और इन तथ्यों व सामग्री के अध्ययन के आधार पर सामान्य नियमों की स्थापना की जाती है। अर्थशास्त्र में आगमन रीति का प्रतिपादन और विकास विशेष रूप से जर्मन इतिहासवादी सम्प्रदाय के अर्थशास्त्रियों द्वारा किया गया। इन अर्थशास्त्रियों के मतानुसार अर्थशास्त्र-अध्ययन की यह रीति वास्तविक रीति है; क्योंकि इसमें आर्थिक घटनाओं का वर्णन उनके वास्तविक अध्ययन के आधार

पर किया जाता है ।

industrial bank (इन्डस्ट्रियल वैंक): औद्योगिक बैंक ।

वित्त-संस्था का दूसरा नाम—वह संस्था जो मुख्य रूप से किराया-खरीद के सौदों का वित्तपोषण करती है। वैसे तो औद्योगिक वैंक जमा स्वीकार करते हैं, उधार देते हैं और किराया-खरीद के सौदों से सम्वन्धित अन्य वित्तीय कार्य करते हैं, फिर भी ये व्यापक रूप से वे सारे वैंक-कार्य नहीं करते जो वाणिज्य वैंकों द्वारा, किये जाते हैं ।

industrial democrasy (इन्डस्ट्रियल डेमोक्रेसी): औद्योगिक लोकतन्त्र ।

उद्योगों के प्रवन्धन तथा संचालन की एक विशेष व्यवस्था । उद्योगों में उसके नियन्त्रक मालिक, कार्यकर्त्ता व मज़दूर आदि विभिन्न वर्ग तथा समूह होते हैं । औद्योगिक लोक-तन्त्र में एक प्रतिष्ठान में लगे मज़दूर समान अधिकारों के आधार पर सामूहिक रूप से व्यवस्था तथा प्रबन्ध-सम्वन्धी निर्णय लेने में हिस्सा वँटाते हैं। इस प्रकार इस व्यवस्था में मज़दूरों के अधिकार प्रवन्ध-क्षेत्र में भी बढ़ते हैं । इस व्यवस्था का समर्थन इस आधार पर किया जाता है कि अपने कार्य के सिलसिले में निर्णय स्वयं श्रमिकों को ही लेना चाहिए। इससे कार्यक्षमता तथा स्वतन्त्रता, दोनों ही क्षेत्रों में लाभ होता है। परन्तु समाज के सामूहिक हितों को इस व्यवस्था में प्रतिनिधित्व दिये विना इसके संकीर्ण सम्प्रदायवाद तथा संघाधिपत्यवाद में वदलने की पूरी सम्भावता है ।

industrial psychology इण्डस्ट्रियल साइकोलॉजी) : औद्योगिक मनोविज्ञान ।

व्यक्ति का उसके कार्य के सम्बन्ध में अध्ययन । इसमें इस तरह की विभिन्न बातों का अध्ययन किया जाता है, जैसे कि विभिन्न रोज़गारों के लिए व्यक्ति की उपयुक्तता, उसके कार्य-परिवेश का दक्षता पर प्रभाव, उद्योग-विशेष में मानवीय सम्वन्ध आदि ।

industrial relations (इन्डस्ट्रियल रिलेशन्स) : औद्योगिक सम्वन्ध ।

मज़दूरों तथा नियोक्ताओं अथवा मजदूर संघों तथा नियोक्ताओं के संघटनों के आपसी सम्वन्ध । दोनों वर्गों के हितों में विरोध तथा दोनों ओर से अपने-अपने हितों की रक्षा करने के प्रयास में मतभेद व विवाद चलते रहते हैं । इस तरह ये औद्योगिक सम्बन्ध कभी सहयोग-पूर्ण और कभी विवादग्रस्त हो जाते हैं। औद्योगिक सम्वन्ध जव खराव हो जाते हैं तव सारे समाज पर बुरा प्रभाव पड़ता है । इन सम्वन्धों के नियमन तथा नियन्त्रण के लिए सरकारी तौर पर आवश्यक कानून बनाये जाते हैं ।

industrial reserve army (इनडस्ट्रियल रिजर्व आर्मी) : औद्योगिक संरक्षित सेना ।

कार्ल मार्क्स द्वारा प्रचारित अवधारणा, जिसके अनुसार पूंजीवादी व्यवस्था में बेरोजगारी वनाये रखने में पूंजीपतियों के दृष्टिकोण से कुछ महत्त्वपूर्ण लाभ हैं तथा आर्थिक निर्णय लेने की शक्ति पूंजीपतियों के हाथ में केन्द्रित होने के कारण वहाँ वेरोजगारी या औद्योगिक संरक्षित सेना के पाये जाने की प्रवृत्ति पायी जाती है । मज़दूरी का भुगतान उत्पादन-लागत का आवश्यक अंग है । जैसे-जैसे मज़दूरी

की दर बढ़ती है, मज़दूरी-कोष बढ़ाना पड़ता है और मुनाफा कम होता है। जैसे-जैसे बेरोज़गारों की संख्या कम होती है, श्रमिकों की सौदा-शक्ति और फलतः मज़दूरी की दर बढ़ती है। अतः मशीनों का प्रयोग बढ़ाकर, यन्त्रीकरण करके तथा पूंजी-सघन तकनीकों का प्रयोग करके पूंजीपति बेरोज़गारों की फौज बनाये रखते हैं। इससे न केवल मज़दूरों की सौदा-शक्ति और मज़दूरी की दर कम रहती है, अपितु नये निवेशों पर काम करने के लिए श्रम भी आराम से उपलब्ध हो जाता है।

श्रमिक संगठनों की बढ़ती शक्ति के कारण यह प्रवृत्ति लागत-मूलक मूल्यस्फीति के रूप में भी प्रकट होने लगा है।

industrial revolution (इन्डस्ट्रियल रिवोल्यूशन) : औद्योगिक क्रान्ति।

पुराने औद्योगिक ढाँचे में मूलभूत परिवर्तन लाकर नये औद्योगिक ढाँचे का प्रादुर्भाव। इससे तात्पर्य उद्योगों के रूप, आकार, उत्पादन-प्रणालियों, संगठन, प्रभाव तथा फलितार्थों में मूलभूत और गहरे परिवर्तन से है न कि इन बातों के सहसा, एक ही झटके में हो जाने से। यह प्रक्रिया कई वर्षों या दशकों में जाकर पूरी होती है। इस तरह यह शब्द एक तरह से आर्थिक जीवन में एक नये युग के सूत्रपात का सूचक है।

सबसे पहले इस शब्द का प्रचलन अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तथा उन्नीसवीं शताब्दी में ग्रेट ब्रिटेन में हुए मूलभूत औद्योगिक परिवर्तन के सन्दर्भ में हुआ था। इस क्रान्ति में शक्ति-संचालित मशीनों, नयी मशीनों तथा बड़े-स्तर पर संचालित स्थायी पूंजीप्रधान उद्योगों का उदय हुआ, जिसके फलस्वरूप न केवल औद्योगिक क्षेत्र का महत्त्व बढ़ा तथा आर्थिक विकास में तेजी आयी वरन् जीवन का हर पहलू प्रभावित हुआ। शायद यह कहना गलत नहीं होगा कि इस क्रान्ति ने सामन्तवाद के पूंजीवाद में परिवर्तन की प्रक्रिया को सम्पूर्ण कर दिया। आगे चलकर ब्रिटेन-जैसी यह क्रान्ति कई पश्चिमी देशों में भी आयी। सोवियत रूस-जैसे समाजवादी देशों में यह क्रान्ति एक योजनाबद्ध रूप में लायी गयी। आज के अल्पविकसित देश अभी भी ऐसी क्रान्ति लाने की प्रक्रिया पूरी नहीं कर पाये हैं। यह औद्योगिक क्रान्ति मानव-समाज के विकास की एक बहुत बड़ी मंजिल है।

industry (इन्डस्ट्री) : उद्योग।

ऊपरी तौर पर एक सीधा तथा स्पष्ट-सा शब्द, जिसका परिशुद्ध अर्थ देना बहुत कठिन है। कई फर्मों के समूह को उद्योग कहते हैं। लेकिन किस आधार पर फर्मों को एक समूह में रखें, इसपर कोई एक राय नहीं है। साधारणतः पूर्ण प्रतियोगितावाले बाज़ार में उन सब फर्मों को एक उद्योग में शामिल किया जाता जिनके उत्पाद सर्वथा समरूप होते हैं। परन्तु वास्तविक जीवन में ऐसी पूर्ण प्रतियोगिता तथा सर्वथा समरूप उत्पादवाली फर्में नजर नहीं आतीं। अतः उद्योग का अर्थ मोटे तौर पर समान प्रकार के कच्चे माल एवं मूलतः मिलते-जुलते उत्पादन-तरीकों से ऐसे उत्पादों का उत्पादन करना है जो किसी विशेष प्रकार की आवश्यकता को पूरा करते हैं और आपस में एक-दूसरे के निकट स्थानापन्न उत्पाद होते हैं; जैसे: सूती कपड़ा उद्योग, कागज

उद्योग, जुट उद्योग, फिल्म उद्योग आदि। स्पष्टतः यह एक कामचलाऊ श्रेणी-विभाजन है, जिसका तार्किक आधार पूरी तरह से स्पष्ट और न्यायसंगत नहीं है।

inelastic demand (इन्एलास्टिक डिमाण्ड) : वेलोच माँग।

जब किसी वस्तु की कीमत में घट-बढ़ होने से उसकी माँग की मात्रा में कुछ भी परिवर्तन नहीं होता या उसमें उस अनुपात से कम परिवर्तन होता है, तब ऐसी माँग को बेलोच अथवा लोचहीन माँग कहते हैं। माँग ऐसी स्थिति में लोचहीन हो सकती है जब उस वस्तु के स्थान पर किसी अन्य वस्तु का प्रयोग न किया जा सकता हो, वह वस्तु जीवन के लिए अनिवार्य हो, उस वस्तु की माँग आदत के कारण हो अथवा उक्त वस्तु पर होनेवाला व्यय किसी व्यक्ति के कुल व्यय का अल्पांश हो। साधारणतया किसी व्यक्ति की आमदनी जितनी अधिक होती है, उतनी ही अधिक वस्तुओं और सेवाओं के सम्बन्ध में उसकी माँग वेलोच होगी। जब किसी वस्तु के लिए माँग लोचहीन होती है, तब उसकी खरीद में थोड़ी-सी भी वृद्धि करने के लिए उसकी कीमत में अपेक्षाकृत अधिक बड़ा परिवर्तन करना पड़ेगा।

inelastic supply (इन्एलास्टिक सप्लाइ) : वेलोच पूर्ति।

जब किसी वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने पर उसकी पूर्ति अपरिवर्तित रहती है अथवा उसमें अपेक्षाकृत थोड़ा परिवर्तन होता है, तब ऐसी पूर्ति को वेलोच या लोचहीन पूर्ति कहते हैं। साधारणतया पूर्ति उस स्थिति में लोचहीन या कम लोचदार होती है, जब वह वस्तु शीघ्र नष्ट होनेवाली होती है, और उसकी पूर्ति तथा स्टॉक में कोई विशेष अन्तर नहीं होता है, उस वस्तु के उत्पादन में सीमान्त लागत तेजी से बढ़ती है अथवा उस वस्तु के उत्पादन के लिए बहुत जटिल उत्पादन-तकनीक का या विशिष्ट साधनों का प्रयोग करना पड़ता है। समय-अवधि का पूर्ति की लोच पर विशेष प्रभाव पड़ता है। उत्पादक को समय जितना थोड़ा मिलेगा, पूर्ति में आवश्यक परिवर्तन लाना उतना ही कठिन होगा। फलस्वरूप अल्पकाल में पूर्ति लोचहीन होगी। इसके विपरीत समय जितना लम्बा होगा, पूर्ति की लोच उतनी ही अधिक होगी। पूर्ति उस समय भी वेलोच होगी, जब भविष्य में कीमत में और अधिक वृद्धि होने की आशा होगी।

inequaility of incomes (इन्इक्वलिटी ऑफ इन्कॅम्स) : आय की असमानता।

गैर-समाजवादी, वर्गविभेदपूर्ण अर्थव्यवस्थाओं का एक आवश्यक लक्षण, जिसके अनुसार आय का वितरण ऐसा होता है कि एक वर्ग के सदस्यों की आय दूसरे वर्ग के लोगों से बहुत ज्यादा होती है। प्रायः अधिक आय प्राप्त करनेवाला वर्ग जनसंख्या का बहुत छोटा हिस्सा होता है। फलस्वरूप राष्ट्रीय आय का बड़ा भाग कुछ लोगों की जेब में चला जाता है तथा अधिकांश जनता राष्ट्रीय आय के छोटे अनुपात के आधार पर अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने को बाध्य हो जाता है। सम्पत्ति तथा कार्य दोनों द्वारा प्राप्त आय में ऐसी विषमताएँ पायी जाती हैं, परन्तु सम्पत्ति या उत्पादन के भौतिक

साधनों के स्वामित्व द्वारा उत्पन्न असमानताएँ ज्यादा व्यापक तथा मूलभूत होती हैं। इन असमानताओं में समय के साथ-साथ विभिन्न आय-समूहों के बीच की खाई को चौड़ा करते रहने की स्वतः चालित प्रवृत्ति पायी जाती है।

आर्थिक सिद्धान्तों में आय के वितरण का सीमान्त उत्पादिता-सिद्धान्त इन आय की विषमताओं की घटना की व्याख्या करने तथा अप्रत्यक्ष रूप से इनका नैतिक समर्थन करने का प्रयास करता है। करीव-करीव परिभाषागत रूप से मुनाफे को उद्यमी का सीमान्त उत्पाद बताकर यह सिद्धान्त निजी सम्पत्ति तथा उसके द्वारा पैदा की गयी आय की असमानताओं का समर्थन करता है। परन्तु इस सिद्धान्त की कठोर शर्तों और पूर्वकल्पनाओं के चलते इसे व्यावहारिक जीवन में लागू नहीं माना जा सकता है। लगभग सभी अर्थशास्त्री आय की विषमताओं को पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का गम्भीर दोष मानते हैं। परन्तु करारोपण, राजकीय वित्त-नीति, सार्वजनिक क्षेत्र तथा सामाजिक सुरक्षा-व्यवस्था आदि तरीकों द्वारा व्यवहार में और अनेक अव्यावहारिक तथा अप्रयुक्त उपायों द्वारा कुछ लोग इसे काबू में लाने की नीति का प्रतिपादन करते हैं। इसके बाद भी जो असमानताएँ कायम रहती हैं, उन्हें वे पूँजीवाद के 'लाभों' की 'कीमत' के रूप में स्वीकार करने का विचार पेश करते हैं।

आज विश्व की एक-तिहाई जनता समाजवादी व्यवस्था के अन्तर्गत आय तथा अवसर की समानता की दशाएँ अपने बीच उत्पन्न कर चुकी हैं और तेजी से अधिकाधिक समानता की ओर बढ़ रही हैं। जब उनकी उत्पादन-शक्तियों का विकास समाजवाद का दूसरा साम्यवादी चरण प्राप्त करेंगी तो आय की समानताओं का क्षेत्र इतना व्यापक हो जायेगा कि हर व्यक्ति अपनी क्षमतानुसार काम करे और आवश्यकतानुसार अपनी जरूरतें पूरी करे।

आय की असमानताएँ अल्पविकसित पूँजीवादी तथा पूँजीवाद-पूर्व अर्थव्यवस्थाओं में और भी ज्यादा व्यापक और गहरी होती हैं। आर्थिक पिछड़ेपन के महत्त्वपूर्ण कारणों तथा प्रभावों में निर्विवाद रूप से आय की असमानताओं का ऊंचा स्थान होता है।

देखिए : egalitarianism
equality of opportunity
socialism.

infant industry argument (इन्फैण्ट इन्डस्ट्री आरगुमेण्ट) : शिशु-उद्योग तर्क।

शिशु अथवा नवजात उद्योग उस उद्योग को कहते हैं जो देश में पहली बार स्थापित किया गया है, जो अभी परीक्षण तथा वित्तीय तनाव की स्थिति से गुजर रहा है, और जो आरम्भिक अवस्था में विदेशी प्रतियोगिता के कारण स्थायी तौर पर स्थापित नहीं हो सकता। ऐसे उद्योगों को प्रशुल्कों में तब तक संरक्षण प्रदान करना जरूरी समझा जाता है, जब तक वे उत्पादन की शैशव अवस्था को पार नहीं कर लेते। संरक्षण के सहारे ये उद्योग उत्पादन का परिमाण बढ़ाकर

लागत को घटा सकेंगे और अन्ततः न्यूनतम औसत लागत की अवस्था अर्थात् इष्टतम आकार की अवस्था को पा सकेंगे। तभी वे विदेशी उद्योगों की प्रतियोगिता का भली प्रकार सामना कर पायेंगे। यदि ऐसे उद्योगों को शुरू की अवस्था में संरक्षण नहीं दिया जायेगा, तो ये पहले से जमे हुए विदेशी उद्योगों की प्रतियोगिता में टिक न सकेंगे और इनका विकास रुका रहेगा या ये खत्म हो लेंगे। इस प्रकार का तर्क शिशु-उद्योग-तर्क के नाम से जाना जाता है। इसके विरुद्ध यह तर्क भी दिया जाता है कि संरक्षण-सम्बन्धी सुविधाएँ प्राप्त करते रहने के लिए ये उद्योग प्रायः अपने बचपन से ही चिपके रहते हैं और विकास करने का भरसक प्रयास नहीं करते।

inferior goods (इन्फीरियर गुड्स) : घटिया वस्तुएँ।

वे वस्तुएँ, जिनके लिए माँग आय-वृद्धि के साथ गिरती है। उदाहरण के लिए लोगों की आय बढ़ने पर सम्भव है कि वे साइकिल के स्थान पर मोटर का अधिक इस्तेमाल करने लगें। ऐसी स्थिति में साइकिल की माँग आय बढ़ने पर गिरेगी। यहाँ साइकिल एक निम्नस्तरीय अथवा घटिया वस्तु है। ऐसी वस्तु के लिए माँग की आय-लोच ऋणात्मक होती है।

देखिए : giffen goods
income effect.

inflation (इन्फ्लेशन) : स्फीति।

कीमतों के लगातार तेजी से बढ़ने की प्रक्रिया या मुद्रा के मूल्य में निरन्तर कमी आते रहने की प्रक्रिया। पिछले दो-तीन दशकों से पूंजीवादी विकसित तथा विकासशील देशों में स्फीति ने काफी स्थायी-सा महत्त्व हासिल कर लिया है। स्फीति के मूल में सम्पूर्ण राष्ट्रीय प्रभावी माँग तथा वस्तुओं और सेवाओं की पूर्ति में असन्तुलन होता है, जिसमें माँग पूर्ति से अधिक होती है। ऐसी स्थिति कई कारणों से उत्पन्न हो सकती है। मौद्रिक अधिकारी तथा संस्थाएँ बहुत अधिक मुद्रा का प्रचलन करें तो अर्थव्यवस्था में तरलता तथा प्रभावी माँग बढ़ सकती है। माँग के बढ़ने की सामान्य दर के मुकाबले पूर्ति-वृद्धि की दर दीर्घकालिक तथा अल्पकालिक कारणों से पिछड़ सकती है। फलस्वरूप वास्तविक उत्पादन-सम्बन्धी कारणों से कीमतों के बढ़ने की प्रवृत्ति शुरू हो सकती है। एक पूर्ण रोजगार वाली अपूर्ण बाज़ार की अर्थव्यवस्था में मुनाफे तथा मजदूरी की दर बढ़ाने से उत्पादन-लागत बढ़ेगी और मज़दूरी-मुनाफा-कीमत-वृद्धि का चक्र शुरू हो जायेगा। युद्ध, आपात्कालीन स्थिति, विभिन्न प्रकार की निवेश परियोजनाओं के मुद्रा-निर्माण द्वारा वित्तन के कारण अर्थव्यवस्थाओं की मौद्रिक सम्पूर्ण प्रभावी माँग सम्पूर्ण पूर्ति से ज्यादा होकर कीमतें बढ़ाने की वर्धमान प्रक्रिया शुरू कर सकती हैं। किन्हीं भी कारणों से कीमतें बढ़ने की प्रक्रिया शुरू होने पर मनोवैज्ञानिक कारणों तथा जमाखोरी के कारण यह प्रक्रिया और अधिक ज़ोर पकड़ सकती है।

स्फीति के कारण अनेक दुष्प्रभाव उत्पन्न होते हैं। आर्थिक गणना, विशेषतः दीर्घकालिक गणना अर्थहीन हो जाती है।

इसलिए तथा जमाखोरी और सटेबाज़ी के कारण साधनों का आवण्टन दोषपूर्ण हो जाता है। मज़दूरी की दर की अपेक्षा मुनाफे की दर तेजी से बढ़ती है तथा आय की असमानताएँ बढ़ती हैं। स्थिर आय-वर्ग का वास्तविक उपभोग घटता है तथा मुनाफा प्राप्त करनेवाले वर्गों के पक्ष में आय का पुनर्वितरण होता है। निर्यात घटते हैं तथा वचत और निवेश को धक्का लगता है। वास्तविक निवेश का स्थान वित्तीय निवेश ले लेते हैं।

अल्पविकसित देश जवरी वचत वढ़ाने के लिए कुछ सीमा तक स्फीति की प्रक्रिया का सहारा ले सकते हैं। परन्तु यह वहुत ही कठोर अनुशासित कदम होता है, जिसे अन्य सहायक नीतियों द्वारा दृढ़ करना पड़ता है। परन्तु जब यह स्फीति-नीति कठिन नीति-मूलक निर्णयों से वचने के लिए अपनायी जाती है तो आर्थिक स्थायित्व के साथ-साथ विकास की गति भी खोनी पड़ती है। ऐसी स्थिति में स्फीति अपने सव दुष्प्रभाव दिखाती है।

स्फीति का मुकावला करने के लिए मुद्रा, राजस्व, विदेशी व्यापार तथा प्रत्यक्ष नियन्त्रण आदि सभी नीतियों को अपनाना पड़ता है। पूँजीवादी देशों में पूर्ण रोज़गार की नीति स्फीतिकारक सावित होने लगी है तथा उनके सामने कीमत-वृद्धि की एक खास दर तथा वेरोज़गारी की एक खास दर के वीच एक का चयन करने का विकल्प आ खड़ा होता है। समाजवादी देश प्रायः स्फीति की समस्या से विमुक्त हैं।

देखिए : inflationary gap
inflationary spiral.

inflationary gap (इन्फ्लेशनरी गैप): स्फीति अन्तराल।

एक अर्थव्यवस्था की वह स्थिति, जव सम्पूर्ण राष्ट्रीय पूर्ति (या आय) उस अवधि की सम्पूर्ण प्रभावी माँग को पूरा करने में असमर्थ होती है। सम्पूर्ण प्रभावी माँग तथा सम्पूर्ण पूर्ति का अन्तर इस स्फीति अन्तराल का माप माना जा सकता है। इस असन्तुलन के फलस्वरूप कीमतें वढ़ेंगी और स्फीति की स्थिति उत्पन्न हो जायेगी।

देखिए : inflation
inflationary spiral.

inflationary spiral (इन्फ्लेशनरी इस्पायरल): स्फीति-उत्चक्र।

निरन्तर स्फीति की ऐसी अवस्था के लिए इस शब्द का प्रयोग किया जाता है जिसमें कीमतों में हुई वृद्धि मज़-दूरियों में वृद्धि करने की माँग को उकसा देती है, जिसे पूरा करने पर उत्पादकों के लिए वस्तुओं की लागत वढ़ जाती है और फलस्वरूप वे अपने माल की कीमतें और वढ़ाने लगते हैं। इस प्रकार कीमतों में हुई वृद्धि मज़दूरी-वृद्धि के जरिये कीमतों में और भी वृद्धि कर देती है। इस कीमत-मज़दूरी-लागत-कीमत में वृद्धि के स्फीतिजनक उत्चक्र को रोकना अन्ततः अधिकाधिक कठिन वनता जाता है।

infrastructure (इन्फ्रास्ट्रक्चर): आधा-रिक संरचना।

किसी अर्थव्यवस्था के वे मूलाधार (जैसे परिवहन व संचार-प्रणाली, शक्ति-सुविधाएँ तथा अन्य सार्वजनिक सेवाएँ) जिन पर आर्थिक कार्यकलाप (उद्योग,

व्यापार आदि) निर्भर करता है। जनता का शैक्षिक स्तर तथा सामाजिक प्रवत्तियाँ, औद्योगिक दक्षताएँ और प्रशासनिक अनुभव-जैसी अमूर्त परिस्थितियाँ भी इसमें शामिल होती हैं। किसी राष्ट्र की आधारिक संरचना जितनी अधिक अच्छी व पूर्ण होगी, उस देश की आर्थिक गतिविधियाँ उतनी ही अधिक अच्छी तरह से और अधिक प्रभावोत्पादक ढंग से संचालित हो सकेंगी। इसीलिए आधारिक संरचना की पूर्णता और प्रभावोत्पादकता किसी देश की विकासशीलता की कसौटी मानी जाती है। चूंकि इसका निर्माण करने में श्रम तथा व्यय अधिक होता है और इनका प्रतिफल लम्बे समय के बाद मिलता है, इसलिए यह कार्य या तो सरकार करती है या सरकार की सहायता से किया जाता है। किन्तु इनका निर्माण देश के समस्त आर्थिक संसाधनों की आर्थिक सम्भावनाओं को ध्यान में रखते हुए ही किया जाना चाहिए।

inheritance tax (इन्हेरिटेन्स टैक्स) : उत्तराधिकार-कर।

किसी मृतक व्यक्ति की धन-सम्पदा को उत्तराधिकार के रूप में ग्रहण करनेवाले उत्तराधिकारियों से उस धन-सम्पदा पर लिया जानेवाला कर। इस कर-राशि का निर्धारण मृतक द्वारा छोड़ी गयी धनराशि तथा मृतक के साथ पारिवारिक सम्बन्धों के आधार पर निर्धारित की जाती है। सम्पदा-कर से यह इस रूप में भिन्न होता है कि यह मृतक की सम्पदा का उसके उत्तराधिकारियों में विभाजन करने से पूर्व लगाया जाता है।

इस कर का मुख्य सैद्धान्तिक औचित्य यह बताया जाता है कि जिस पर यह कर लगाया जाता है, वह आकस्मिक रूप से प्राप्त धन में से कर दे सकता है। दूसरे, यह भी कहा जाता है कि जिस सरकार की सुव्यवस्था के कारण उसे यह धन मिला है, उसकी सहायता के लिए उसे कर देना चाहिए। इसका एक अन्य औचित्य यह भी बताया जाता है कि उत्तराधिकार से प्राप्त धन के कारण समाज में जो आर्थिक असमानता पनपने लगती है, उसका इस कर से निवारण किया जा सकता है।

inland bill of exchange (इनलैंड बिल ऑफ एक्सचेंज) : देशीय हुण्डी।

वह हुण्डी, जो एक ही देश में जारी की जाती है और वहीं उसकी रकम प्राप्त होती है।

देखिए : bill of exchange.

innovation (इन्नोवेशन) : नव्य, नवल।

किसी नव्य या नवल वस्तु, सेवा अथवा उनका उत्पादन करने की किसी प्रक्रिया का प्रचलन करना। इसे नवीन वस्तु के सन्दर्भ में नवोत्पाद, नवीन सेवा के सन्दर्भ में नवाचार और नवीन प्रक्रिया के सन्दर्भ में नव प्रक्रिया भी कह सकते हैं। यह आविष्कार से इस रूप में भिन्न है कि आविष्कार में किसी ऐसी चीज की खोज की जाती है जो पहले से मौजूद नहीं होती, जबकि नव्य में उस नयी खोज का वास्तविक प्रचलन या प्रयोग किया जाता है। उत्पादिता बढ़ाने तथा पहले से श्रेष्ठ वस्तुओं का उत्पादन करने की दृष्टि से आर्थिक संवृद्धि में नव्य का महत्त्वपूर्ण भाग होता है। वस्तुओं तथा प्रक्रियाओं में नवी-

नता का प्रचलन करना प्रतियोगिता में सफलतापूर्वक टिके रहने के लिए आवश्यक होता है। इन्हीं के फलस्वरूप नये कारखानों तथा उपकरणों में अक्सर भारी निवेश किया जाता है, जिससे देश के कार्यकलापों को नयी प्रेरणा मिलती है। विज्ञान तथा टेक्नालॉजी में हुई चतुर्दिक् प्रगति के कारण आज नित्य-प्रति अनेक नवोत्पादों तथा नवप्रक्रियाओं का जन्म हो रहा है।

input-output analysis (इनपुट-आउटपुट अनालिसिस) : आगत-निर्गत विश्लेषण।

अर्थशास्त्र के अध्ययन की वह शाखा, जिसमें उत्पादन की संरचना या ढाँचे का इस तरह अध्ययन किया जाता है कि उत्पादन में लगे संसाधनों तथा उत्पादन-प्रक्रिया द्वारा उत्पादित विभिन्न वस्तुओं तथा सेवाओं का संख्यात्मक सम्बन्ध जाना जा सकता है। इस अध्ययन के आधार पर यह जाना जा सकता है कि उत्पादन का एक खास किस्म का स्वरूप उत्पादन के विभिन्न साधनों (जैसे : श्रम, कच्चा माल, ऊर्जा, पूंजीगत साज-सामान, तकनीकी ज्ञान तथा मध्यवर्ती वस्तुओं) की कितनी-कितनी मात्रा की माँग करेगा। इस तरह साधनों के उपयोग की सीमा, स्वरूप तथा भविष्य के बारे में नीति-सम्बन्धी जरूरतों को समझा जा सकता है। सबसे प्रमुख रूप से इस विश्लेषण द्वारा उत्पादन का संश्लिष्ट, पारस्परिक निर्भरता का रूप स्पष्ट, संख्यात्मक रूप में मालूम होता है। इस अध्ययन के आधार पर यह निश्चित किया जा सकता है कि एक अपरिवर्तित स्थिति में एक वस्तु की अमुक मात्रा उत्पादित करने के लिए विभिन्न साधनों की कितनी-कितनी मात्रा की आवश्यकता होगी। यह सूचना आगत-निर्गत सूचकांक, अर्थात् उत्पाद की एक इकाई उत्पादित करने के लिए कितनी मात्रा में यह साधन चाहिए, द्वारा प्राप्त की जाती हैं। स्पष्ट है कि आयोजन में इस सूचना का बहुत महत्त्व है।

इस विश्लेषण का प्रयोग अपरिवर्तित प्रतिफल के नियम की पूर्वकल्पना के आधार पर किया जाता है। अतः जब वर्धमान या ह्रासमान प्रतिफल की स्थिति लागू होती है तब आयोजन, नीति-निर्धारण या भविष्यवाणी करने में इस विश्लेषण की उपादेयता घट जाती है। अमरीकी अर्थशास्त्री लियोनतिफ ने इस शाखा में काफी काम किया है।

inputs (इन्पुट्स) : आगत।

किसी उत्पादक द्वारा प्रयुक्त उत्पादन-साधनों के विभिन्न परिमाणों के लिए कभी-कभी 'आगत' शब्द का भी प्रयोग किया जाता है।

देखिए : factors of production.

institutional economics (इन्स्टीच्युशनल इकॉनॉमिक्स) : सांस्थानिक अर्थशास्त्र।

अर्थशास्त्रीय विचारधारा का एक सम्प्रदाय, जिसके अनुसार अधिकांश कार्यकलापों का निर्धारण ऐसी संस्थाओं द्वारा होता है जिनका सम्बन्ध अधिकतर मानवीय मनोवृत्तियों से होता है और जिनका आधार मौजूदा परम्पराएँ तथा आर्थिक व्यवस्थाएं होती हैं। अर्थशास्त्र के अध्ययन की इस पद्धति के अनुसार आर्थिक विकास का निर्धारण करने में व्यक्तियों द्वारा लाभपरक निर्णयों की बजाय संस्थाओं (जैसे व्यावसायिक निगम या

श्रमिक संघ) की भूमिका पर अधिक बल दिया जाता है। श्री थॉर्सटीन बैब्लिन इस सम्प्रदाय के अगुआ थे। इस सम्प्रदाय के विद्वानों ने जिन संस्थाओं का अध्ययन किया, उनका आकलन करने और उनमें संशोधन करने के लिए आर्थिक सिद्धान्त के तत्त्वों का उपकरणों के रूप में प्रयोग किया था। उनका मत था कि आर्थिक आचरण का प्रतियोगिता एक महत्त्वपूर्ण लक्षण है, किन्तु यह प्रतियोगिता बाजार में होने की बजाय शक्ति और सम्पत्ति हथियाने के लिए अधिक होता है। संस्था-वादियों के कथनानुसार संस्थापक अर्थ-शास्त्रियों ने यह भूल की थी कि उन्होंने व्यक्ति के आर्थिक आचरण का अध्ययन करने के लिए मानवीय मनोवृत्तियों तथा रूढ़ियों की वजाय उसके तर्कसंगत मन्तव्यों को आधार बनाया था।

insurance (इन्शुअरेन्स) : बीमा।

सम्भावित क्षतियों या जोखिमों का एकत्रण करने अथवा एक वड़े समूह में वितरण करने की एक प्रणाली। इसके अन्तर्गत एक बीमाकर्त्ता या हामीदार प्रीमि-यम या अधिमूल्य के रूप में कुछ धनराशि लेकर बीमाशुदा को एक निर्धारित क्षति या हानि होने की दशा में उसकी भरपाई करने के लिए सहमत हो जाता है। बीमे के पीछे निहित मुख्य सिद्धान्त यह है कि इसमें अनेक प्रकार की जोखिमों की भरपाई करने के लिए बहुसंख्यक लोग एक निधि में अपना-अपना अंशदान एक नियत अवधि तक करते रहते हैं, जिसमें से किसी व्यक्ति को होनेवाली विशेष प्रकार की क्षति के लिए भरपाई की जा सकती है। इस प्रकार सभी की जोखिमें एक स्थान पर इकट्ठी होकर सभी में वितरित होती रहती हैं और भिन्न-भिन्न व्यक्तियों को समयानुसार क्षतिपूर्ति की धनराशि मिलती रहती है। आजकल जीवन, व्यवसाय, चोट, घात आदि अनेक प्रकार की जोखिमों के लिए बीमा किया जाता है।

intangible assets (इन्टैन्जिबल ॲसेट्स) : अमूर्त परिसम्पत्तियाँ।

किसी फर्म के सुनाम और पेटेन्ट अधिकारों को अमूर्त या अगोचर परि-सम्पत्तियाँ कहते हैं। इन पर फर्म-विशेष का स्वामित्व होता है और इनका अपना मुद्रा-मूल्य होता है।

intensive cultivation (इन्टेन्सिव कल्टीवेशन) : गहन खेती।

भूमि के अनुपात में श्रम तथा पूंजी का अधिक मात्रा में प्रयोग करके खेती करना। इससे प्रति हेक्टर उपज वहुत बढ़ जाती है। जिन देशों में भूमि की तुलना में आवादी का घनत्व वहुत अधिक होता है, वहाँ इस पद्धति से खेती करना आव-श्यक व लाभदायक ठहरता है। इंगलैंड, जापान आदि देशों में इसी पद्धति से खेती की जाती है।

interest (इन्टरेस्ट) : ब्याज।

कर्ज ली गयी मुद्रा-राशि की कीमत। यदि कोई राशि किसी निश्चित समय के लिए उसके द्वारा किसी अन्य को उसके प्रयोग के लिए दी जाती है तो इस त्याग के बदले मूलधन के अतिरिक्त ज्यादा राशि ली जाती है। यह अतिरिक्त राशि ब्याज कहलाती है जो एक व्यक्ति को अपनी मुद्रा-राशि के प्रयोग का हक एक निश्चित अवधि के लिए किसी अन्य को हस्तान्त-रित करने के वदले में मिलती है। ब्याज

की इस राशि को प्रायः प्रति सैकड़ा सालाना दर के रूप में प्रकट किया जाता है। जैसे यदि कोई व्यक्ति किसी को ५००० रुपये उधार दे और दो साल बाद ५५०० रुपये उससे प्राप्त करे तो हो हम कहेंगे कि ब्याज की दर ५ प्रतिशत सालाना थी। ब्याज की दर को चक्रवर्धी दर के रूप में भी प्रकट किया जा सकता है।

अर्थशास्त्र में ब्याज के दिये जाने की कई व्याख्याएँ की गयी हैं। इन्हें ब्याज के विभिन्न सिद्धान्तों के नाम से जाना जाता है। क्लासिकल ब्याज-सिद्धान्त में ब्याज को पूँजी पर प्रतिफल की दर माना जाता था। अतः इसकी व्याख्या पूँजी की उत्पादिता के साथ जोड़ दी गयी। इसी सिद्धान्त का विकसित रूप ऋणयोग्य-राशि-सिद्धान्त के रूप में निकला। इस सिद्धान्त में ऋण की माँग पूंजी की सीमान्त उत्पादिता से जोड़ी गयी तथा ऋणयोग्य मुद्रा-राशि की पूर्ति वचत करने की इच्छा, तथा वाद में वैंकों आदि वित्तीय संस्थाओं और मौद्रिक अधिकारियों की नीति पर आधारित की गयी।

वचत करने की इच्छा 'समय अधिमान' से सम्वन्धित है। कोई भी व्यक्ति अपनी आय का वर्तमान में उपभोग करने को स्वतन्त्र है। यदि वह ऐसा नहीं करता है तो वह इस उपभोग से प्राप्त सन्तुष्टि का का त्याग करता है। ब्याज को इस त्याग का प्रतिफल माना जा सकता है जो उसे भविष्य में वर्तमान में स्थगित किये गये उपभोग के वदले में मिलता है। ब्याज के संयम-सिद्धान्त में तथा समय अधिमान-सिद्धान्त में इस मनोवैज्ञानिक तत्त्व को काफी प्रमुख स्थान दिया गया है। भविष्य की अनिश्चितता इस सिद्धान्त को कुछ वस्तुपरक आधार प्रदान करती है। क्लासिकल सिद्धान्त में वचत तथा समय अधिमान के सम्वन्ध के आधार पर ब्याज की दर द्वारा बचत का निवेश से सन्तुलन विठाया जाता था। अतः आय, रोज़गार और उत्पादन पर ब्याज की दर का गहरा असर पड़ता था।

जे० एम० केन्स ने इन पुराने ब्याज के सिद्धान्तों की आलोचना करके ब्याज को मूलतः मौद्रिक घटना माना। कर्ज देने का अर्थ है मुद्रा या तरलता का परित्याग करके वदले में किसी अमौद्रिक परिसम्पत्ति को स्वीकार करना। तरलता का आर्थिक महत्त्व असन्दिग्ध है। इसे छोड़ने की लागत को ब्याज के रूप में देखा जा सकता है। अतः केन्स ने मुद्रा की माँग की तरलता-अधिमान के विभिन्न आधारों के रूप में विवेचना की और इसे मुद्रा की पूर्ति से सम्वन्धित करके ब्याज की दरों के निर्धारण की प्रक्रिया समझायी। केन्स का सिद्धान्त अल्पकालिक तथा क्लासिकल सिद्धान्त दीर्घकालिक प्रभावों पर ज़ोर देता है।

वास्तविक जीवन में जोखिम, अनिश्चितता, सामान्य वातावरण आदि का भी ब्याज की दर पर असर पड़ता है। ब्याज की दर का परिसम्पत्तियों के स्वरूप, वचत, निवेश, रोज़गार तथा राष्ट्रीय आय और आय के वितरण पर भी गहरा असर पड़ता है। साधनों के आवण्टन तथा तकनीकों के चयन पर ब्याज की दर गहरा असर डालती है। संक्षेप में इसे एक महत्त्वपूर्ण आर्थिक चर तथा आर्थिक स्थिति के बैरोमीटर के रूप में देखा जा सकता है।

interim budget (इन्टरिम वजेट) : अन्तरिम वजट ।

वित्त-वर्ष के दौरान अतिरिक्त वजट । वार्षिक वजट पास होने के बाद उस वर्ष के दौरान आर्थिक स्थिति में परिवर्तन होने के कारण कराधान में आवश्यक संशोधन करने के लिए अतिरिक्त वजट प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रकार के वजट को अन्तरिम वजट कहते हैं।

interlocking directorate (इन्टर-लॉकिंग डाइरेक्टोरेट) : अन्तर्ग्रंथित निदेशक प्रथा ।

संयुक्त पूंजी कम्पनियों में प्रवन्ध-व्यवस्था एक निदेशक-मण्डल के हाथ में रहती है। कई व्यवसायी अनेक कम्पनियों में शेयर खरीदते हैं। कुछ कम्पनियाँ ही अन्य कम्पनियों के शेयर खरीद लेती हैं। इन स्थितियों में इन कम्पनियों के कई निदेशक एक ही होते हैं। या यों कहिए कि कुछ व्यवसायी एक से ज्यादा कम्प-नियों के निदेशक होते हैं। सामान्य निदे-शकोंवाली कम्पनियाँ आपस में सम्वन्धित हो जाती है । यही घटना 'अन्तर्ग्रंथित निदेशक प्रथा' कहलाती है। यह एकाधि-कार तथा सम्पत्ति के स्वामित्व के केन्द्री-करण की सूचक है । ऐसी परस्पर-सम्वन्धित कम्पनियों में कई लेन-देन तथा आर्थिक सम्बन्ध इन निदेशकों के व्यक्ति-गत हित के अनुरूप किये जाते हैं। नतीजा यह होता है कि शेयरधारियों के तथा अर्थव्यवस्था के सामाजिक-आर्थिक हितों की कुर्वानी चन्द निहित व्यक्तिगत स्वार्थों के लिए कर दी जाती है। इसलिए कई देशों का कम्पनी-कानून इस प्रवृत्ति को रोकने के लिए नियमन करता है।

देखिए : managing agency system.

intermediate goods (इन्टरमिजियेट् गुड्स) : मध्यवर्ती वस्तुएँ ।

वे वस्तुएँ जो अन्तिम उत्पाद नहीं होती हैं अपितु दूसरी वस्तुओं के उत्पादन में काम आती हैं (जैसे लोहा, इस्पात, सीमेंट, कोयला आदि), वे मध्यवर्ती वस्तुएँ कहलाती हैं। यह वात वस्तुओं के प्रयोग पर निर्भर करती है। जैसे विजली मध्यवर्त्ती उत्पाद भी है और अन्तिम उत्पाद भी । जिन अर्थव्यवस्थाओं में आर्थिक विकास की सचेतन रण-नीति के अन्तर्गत मध्यवर्त्ती वस्तुओं में निवेश और उनके उत्पादन को ऊँची प्राथमिकता दी जाती है, वहाँ यह आवश्यक है कि इनके उपभोग पर भी नियन्त्रण रखा जाये। अन्यथा इन 'मध्यवर्त्ती' वस्तुओं का अन्तिम उत्पादों के रूप में प्रयोग सम्भव है।

internal debt (इन्टर्नल डेट्) : आन्तरिक ऋण ।

किसी देश के राष्ट्रीय ऋण का वह भाग, जो वहाँ के लोगों और संस्थाओं द्वारा सरकार को दिया जाता है।

internal economies (इन्टर्नल इकॉनॉमीज़) : आन्तरिक किफायतें, आन्तरिक सुलाभ ।

इनका आशय उन बचतों या सुलाभों से है जो किसी फर्म को, उसके अपने विस्तार के कारण, प्राप्त होते हैं। ये उसे वाहरी व्यवहार द्वारा नहीं, वल्कि अपनी प्रवन्ध-व्यवस्था में सुधार लाने के कारण मिलते हैं । जब कोई फर्म अपने काम के पैमाने को बढ़ाती है, तब उसके लिए उच्चतर श्रम-विभाजन का सहाय

लेना, विशेषज्ञों तथा कुशल श्रमिकों को काम पर लगाना, मशीनों से भरपूर काम लेना एवं नवीनतम व विशिष्ट मशीनों का प्रयोग करना, अवशिष्ट पदार्थों को लाभप्रद ढंग से इस्तेमाल करना आदि सम्भव हो जाता है। इन अनेक वातों से उसे भारी वचत होती है और औसत लागत कम हो जाती है। चूँकि ये वचतें उस फर्म को अपनी आन्तरिक वातों से, उसकी अपनी प्रवन्ध-व्यवस्था में सुधार लाने के फलस्वरूप प्राप्त होतीं हैं, इसलिए इन्हें आन्तरिक किफ़ायतें या आन्तरिक सुलाभ कहते हैं।

international economics (इन्टरनेशनल इकॉनॉमिक्स) : अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र।

अर्थशास्त्र की वह शाखा, जिसके अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक अध्ययन किया जाता है। इसमें मुख्य रूप से विदेशी विनिमय, भुगतान-शेष, अन्तर्राष्ट्रीय सहायता तथा ऋण, विनिमय-दरें तथा व्यापार-करार आदि का विवेचन होता है।

international liquidity (इन्टरनेशनल लिक्वीडिटी) : अन्तर्राष्ट्रीय तरलता।

विभिन्न प्रभुसत्तावाले देशों की अपनी-अपनी कानूनी मुद्रा होती है, जिसकी देश की सीमा के बाहर कानूनी ग्राह्यता नहीं होती है। अतः अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के संचालन के लिए सर्वमान्य, सर्वग्राह्य विनिमय के साधन की आवश्यकता होती है। ये अन्तर्राष्ट्रीय विनिमय के साधन ही अन्तर्राष्ट्रीय तरलता कहलाते हैं। जैसे-जैसे विश्वव्यापार की मात्रा बढ़ती है, अन्तर्राष्ट्रीय तरलता की भी बढ़ते हुए स्तर पर ज़रूरत होती है।

सोना हमेशा अन्तर्राष्ट्रीय तरलता का मुख्य अंग रहा है। डॉलर तथा स्टर्लिंग भी पूँजीवादी दुनिया की महत्त्वपूर्ण आरक्षित करेन्सियाँ हैं। परन्तु डॉलर तथा स्टर्लिंग के संकट, सोने की पूर्ति की वहुत कम लोच तथा विश्वव्यापार की वढ़ती ज़रूरतों के कारण 'स्पेश्यल ड्राइंग राईट्स' (विशिष्ट निष्कासन अधिकार) भी—जो कि अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा-कोष द्वारा विभिन्न देशों को कुछ खास शर्तों पर मुहैय्या किये जाते हैं—अन्तर्राष्ट्रीय तरलता के अंग वन गये हैं। यद्यपि सोने की आधिकारिक कीमत नहीं वढ़ायी गयी है, परन्तु विभिन्न देशों की अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा-कोष से ज़रूरतें सोने की चालू वाज़ार-कीमतों के आधार पर पूर्ति होने के कारण अन्तर्राष्ट्रीय तरलता वढ़ी है। अन्तर्राष्ट्रीय तरलता-सम्बन्धी व्यवस्थाएँ अभी भी दस प्रमुख विकसित पूँजीवादी देशों (जो कि विश्व-व्यापार के मुख्य भागीदार हैं) द्वारा निर्धारित की जाती हैं तथा अफ्रीका, एशिया तथा दक्षिण अमरीका के नवोदित विकासशील देशों के हित गौण स्थान ही रखते हैं।

international trade (इन्टरनेशनल ट्रेड) : अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार।

वस्तुओं, सेवाओं और साधनों का एक देश से दूसरे देश के वीच में लेन-देन। विभिन्न देशों के संसाधनों, लागतों, कीमतों, ज़रूरतों और माँग के स्तर की भिन्नता के कारण विभिन्न देशों में वस्तुओं, सेवाओं और साधनों की खरीद-बिक्री के आर्थिक सम्बन्ध कायम होते हैं। जिस तरह उत्पादन द्वारा उपभोग के लिए प्राप्त वस्तुओं की विवि-

धता और मात्रा में वृद्धि होती है, उसी तरह विश्वव्यापार द्वारा भी चयन का क्षेत्र तथा चयन की क्षमता बढ़ती है। संचार तथा आवागमन के साधनों के विकास तथा औद्योगिक क्रान्ति ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का महत्त्व बहुत बढ़ा दिया है। अर्थशास्त्र में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का अध्ययन करने के लिए अलग से एक शाखा पनप गयी है। अर्थशास्त्र में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से सम्बन्धित कई सिद्धान्त हैं। इनमें रिकार्डो का तुलनात्मक लाभ-सिद्धान्त तथा हेक्शचर-ओहलीन का संसाधन-देन-सिद्धान्त बहुत प्रमुख हैं। रिकार्डो ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को दोनों व्यापारिक भागीदार देशों के हित में साबित करके मुक्त व्यापार की नीति का प्रतिपादन और मर्केण्टिलिस्टों की सीमित व्यापार-नीति का खण्डन किया। हेक्शचर-ओहलिन प्रमेय द्वारा विश्वव्यापार के स्वरूप की व्याख्या करने का प्रयास किया गया।

विश्वव्यापार का विश्व-आर्थिक विकास, उपनिवेशवाद, आर्थिक उतार-चढ़ाव, विश्वयुद्धों तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। जिन देशों ने इस व्यापार की सम्भावनाओं को समझा, उनका उपयोग किया और इसके दुष्प्रभावों से बचने की सफल चेष्टा की, वे आर्थिक होड़ में और आर्थिक में कल्याण आगे बढ़ गये।

inter-personal comparison of utility (इन्टर-पर्सनल कम्पैरिजन ऑफ युटिलिटी) : उपयोगिता की अन्तर-व्यक्तिगत तुलना।

कल्याण अर्थशास्त्र में विभिन्न व्यक्तियों द्वारा संसाधनों के आवण्टन, आय के वितरण और तकनीकों के चयन द्वारा प्राप्त उपयोगिताओं की तुलना का प्रश्न उठा है जिससे कि सामाजिक दृष्टि से उपयोगिता को अधिकतम करनेवाले निर्णय लिये जा सकें। या इस तरह कहिए, चूँकि सामाजिक उपयोगिता विभिन्न व्यक्तियों द्वारा प्राप्त उपयोगिताओं का जोड़ मानी जाती है अतः सब लोगों की उपयोगिता को जोड़ने में कुछ व्यक्तियों द्वारा प्राप्त उपयोगिता का अन्य व्यक्तियों द्वारा प्राप्त कम या ज्यादा उपयोगिता या ऋणात्मक उपयोगिता की तुलना का सवाल पैदा होता है। परन्तु चूँकि उपयोगिता बहुत आत्मपरक अवधारणा है और इसका कोई वस्तुगत माप नहीं हो पाता, अतः अन्तर-व्यक्तिगत उपयोगिताओं की तुलना असम्भव साबित होती है। इस दुविधा से बचने के लिए परेटो का इष्टतम सिद्धान्त बनाया गया, जिसके अनुसार सामाजिक कल्याण तब इष्टतम होता है जब बिना किसी की स्थिति को बदतर किये किसी के भी कल्याण का स्तर सुधारा जाना सम्भव न रहे। जाहिर है कि यह एक बहुत ही सीमित और व्यवहार में नहीं पायी जानेवाली स्थिति है। ऐसी स्थितियों में, जब किसी आर्थिक निर्णय या प्रक्रिया से कुछ लोगों की उपयोगिता बढ़ती हो और कुछ की घटती हो, बिना अन्तर-व्यक्तिगत उपयोगिता की तुलना किये उन निर्णयों या प्रक्रियाओं की सामाजिक उपादेयता निर्धारित करने के लिए काल्डॅर-हिक्स ने यह सुझाव दिया कि यदि वे लोग, जिनकी स्थिति सुधरी है, उन लोगों की, जिनकी उपयोगिता घटी है क्षतिपूर्ति कर दें और फिर भी वे पहले से ऊँचे अनधिमान वक्र पर जा सकें तो

यह सामाजिक दृष्टि से उत्तम निर्णय है। परन्तु इस सुझाव की अव्यावहारिकता के बारे में भी दो रायें नहीं हैं।

वास्तव में, अन्तर-व्यक्तिगत उपयोगिता-तुलना न केवल असम्भव अपितु अनावश्यक भी है। सामाजिक-आर्थिक निर्णय वर्गगत, समूहगत, उपवर्गगत या समष्टिगत दृष्टिकोण से देखे जाने चाहिए। इस दृष्टिकोण में व्यक्तियों या परिवारों पर होनेवाले प्रभाव को भी नजर में रखा जा सकता है। परन्तु कुछ अर्थशास्त्री अचेतन या चेतन रूप में एक व्यक्ति को आर्थिक प्रभाव अंकित करने का घटक मानकर आर्थिक क्रियाओं के अनिवार्य, अपरिहार्य और मूलतः सामाजिक स्वरूप की अवहेलना करना चाहते हैं। इस प्रवृत्ति के स्पष्ट राजनीतिक और वर्ग-स्वार्थगत फलितार्थ हैं, जो पूँजीवादी व्यवस्था के निहित स्वार्थों की पुष्टि करते हैं। अन्तर-व्यक्तिगत उपयोगिता-तुलना के मुद्दे से सम्बन्धित विवाद को समझने के लिए यह मूलभूत दृष्टिकोण अवश्य सामने रखना चाहिए।

intrinsic value (इन्ट्रिन्जिक वैल्यू) : यथार्थ मूल्य।

यह बहुप्रचलित धारणा कि किसी वस्तु में, उदाहणार्थ किसी कीमती धातु में, कीमत के अलावा उसका कुछ आन्तिरक मूल्य भी होता है। अर्थशास्त्री मूल्य को विषयगत मानते हैं जो उस वस्तु की उपलब्ध मात्रा की तुलना में उसके लिए उपभोक्ताओं की माँग पर आधारित होता है। इस कारण इस मत के अनुसार यथार्थ मूल्य नाम की कोई चीज नहीं होती।

inventories (इन्वेण्टरीज) : भण्डार।

कच्चे मालों, मध्यवर्ती वस्तुओं, उपादानों और उपकरणों, अर्धनिर्मित वस्तुओं तथा तैयार माल का भण्डार। एक व्यवसाय को अनेक कारणों से भण्डार रखने पड़ते हैं। इनमें पूर्ति तथा माँग की अनिश्चितता, उनके मिलने में समय के व्यवधान, उत्पादन को लगातार चालू रखने की ज़रूरत तथा उससे प्राप्त लाभ, कीमतों के घट-बढ़ की आशंका तथा जोखिम आदि हैं। परन्तु व्याज, छीजन, गोदाम का किराया, कीमत में कमी की सम्भावना आदि भण्डार बनाकर रखने की लागतें हैं।

देखिए : stocks.

inventory investment (इन्वेण्टरी इन्वेस्टमेण्ट) : भण्डार-निवेश।

भण्डार बनाने के लिए लगायी गयी मुद्रा-राशि भण्डार-निवेश कहलाती है। अधिकांश व्यवसाय विभिन्न वस्तुओं का भण्डार एक खास स्तर पर रखते हैं। कई बार विशेष परिस्थितियों के कारण इस भण्डार को घटाना या बढ़ाना पड़ता है। तब भण्डार-निवेश में कमी या बढ़ती करनी पड़ती है। कई बार ऐसा भी होता है कि कुछ अज्ञात या और अप्रत्याशित प्रभावों के कारण भी भण्डार घट या बढ़ जाते हैं। तब भण्डार-निवेश में अस्वैच्छिक कमी या बढ़ती आ जाती है। व्यवसाय की स्थिति तथा भविष्य के बारे में अस्वैच्छिक भण्डार-निवेश या अनिवेश महत्त्वपूर्ण संकेत और सूचना देते हैं।

inventory investment cycle (इन्वेण्टरी इन्वेस्टमेण्ट साइकल) : भण्डार-निवेश-चक्र।

भण्डार-निवेश व्यावसायिक निवेश

के महत्त्वपूर्ण भाग होते हैं। जैसा कि हमने 'भण्डार-निवेश' के अन्तर्गत देखा था, इनमें स्वैच्छिक तथा अस्वैच्छिक घट-बढ़ होती रहती है। निवेश का आर्थिक क्रियाओं के स्तर, गति और विकास-दर पर गहरा असर होता है। चूंकि भण्डार-निवेश सम्पूर्ण निवेश का महत्त्वपूर्ण अंग है, इसलिए इसके स्तर में आये उतार-चढ़ाव आर्थिक क्रियाओं के स्तर और स्थायित्व को प्रभावित करते हैं। इस तरह आये आर्थिक उतार-चढ़ावों का चक्र (नियमिततापूर्ण क्रम) 'भण्डार-निवेश-चक्र' कहलाता है। विक्री के या उपभोग तथा निवेश के साथ-साथ वस्तुओं के भण्डार में घट-बढ़ करने के व्यावसायिकों के निर्णय आय, रोजगार, उपभोग, राजकीय आगम आदि को प्रभावित करते हैं। चूंकि प्रायः व्यवसायी अपनी बिक्री और भण्डार में एक अनुपात बनाये रखना चाहते हैं, अतः बिक्री में घट-बढ़ का भण्डार पर और फिर उत्पादन पर बढ़ा हुआ प्रभाव पड़ता है। और इसीलिए भण्डार में कमी-वेसी उत्पादन में बढ़े हुए स्तर पर उतार-चढ़ाव लाती है। इस तरह के उतार-चढ़ाव, भण्डार में घट-बढ़ के चलते लाये जाने के कारण, भण्डार-निवेश-चक्र कहलाते हैं।

investment (इन्वेस्टमेन्ट) : निवेश।

पूंजीगत वस्तुओं पर किया गया खर्च, जिससे भविष्य में उत्पादन-क्षमता बढ़ती है। निवेश का यह अर्थ सामाजिक दृष्टि से है। एक व्यक्ति के नजरिये से किसी भी परिसम्पत्ति, चाहे वह भौतिक हो या मौद्रिक, की खरीद निवेश कहलाती है। इन परिसम्पत्तियों से व्यक्ति या व्यवसाय की अर्जन-शक्ति बढ़ती है। मौद्रिक परिसम्पत्तियों की खरीद वित्तीय निवेश कही जा सकती है। चूंकि ये परिसम्पत्तियाँ कुछ अन्य लोगों की देनदारियाँ हैं, इसलिए सामाजिक निवेश की गणना में ये एक-दूसरी को काट देती हैं। इसीलिए सामाजिक निवेश की गणना में ये परिसम्पत्तियाँ सम्मिलित नहीं की जाती हैं। एक व्यक्ति के दृष्टिकोण से शिक्षा, स्वास्थ्य, बच्चों के लालन-पालन पर किये गये खर्च में निवेश के तत्त्व पाये जा सकते हैं। वस्तुतः मनुष्य तथा उसकी श्रम-शक्ति के विकास पर किये गये व्यय को, एक दृष्टि से और कुछ अंशों तक, निवेश माना जा सकता है। परन्तु यह निवेश अभौतिक, अगोचर, नापने में कठिन या असम्भव, उपभोग-व्यय से मिश्रित तथा उत्पादन-सम्बन्धी प्रभावों से अप्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित होने के कारण भौतिक निवेश की कोटि में नहीं रखा जा सकता है।

निवेश का आर्थिक विकास, उत्पादिता, आर्थिक कल्याण और देशों की राष्ट्रीय शक्ति पर गहरा प्रभाव पड़ता है। आर्थिक उतार-चढ़ाव, वेरोजगारी, पूर्ण रोजगार, स्फीति-अवस्फीति, मजदूरी की दर, तकनीकी प्रगति तथा जीवन-स्तर आदि को बिना निवेश-सम्बन्धी व्यवहार की व्याख्या किये समझा ही नहीं जा सकता है।

निवेश के निर्धारक तत्त्वों में माँग का स्तर, साधनों की उपलब्धि, बचत का स्तर, वित्तीय साधनों की उपलब्धि, मुनाफे या प्रतिफल की प्रत्याशित दर, अनिश्चितता तथा जोखिम-सम्बन्धी वातावरण, सामाजिक-राजनीतिक स्थिति, उद्यम की

भावना, ऐतिहासिक परम्परा आदि अनेक आर्थिक और आर्थिकेतर तत्त्वों के नाम लिये जा सकते हैं। परन्तु यह तो विभिन्न तत्त्वों की अपूर्ण-सी सूची है, न कि निवेश का कोई सिद्धान्त। केन्स ने इस काम की कठिनता का संकेत निवेश पर 'पाशविक भावना' के प्रभाव का उल्लेख करके किया है। मार्क्स का व्यवस्थागत निवेश-सिद्धान्त, जिसके अनुसार 'संचय तथा और अधिक संचय' पूंजीपतियों के लिए दैवी साधना के समान है, पूंजीवादी देशों के बढ़ते निवेश, राष्ट्रीय आय अनुपात और इस प्रक्रिया में आयी बाधाओं और इससे उत्पन्न संकटों पर सटीक बैठता है।

investment demand curve (इन्वेस्टमेण्ट डिमाण्ड कॅर्व) : निवेश-माँग-वक्र।

प्रत्येक सम्भव ब्याज-दर पर निवेश-व्यय के लिए फर्म कुल कितनी-कितनी मुद्रा-राशि उधार लेने को तैयार होगी, इसे दर्शानेवाले वक्र को निवेश-माँग-वक्र कहा जाता है। ब्याज-दर वह कीमत होती है जो उधार पाने के लिए देनी पड़ती है। इस प्रकार उपभोक्ता-माँग-वक्र की भाँति निवेश-माँग-वक्र प्रत्येक कीमत पर उधार के लिए माँग की मात्रा दर्शाता है।

investment function (इन्वेस्टमेण्ट फंक्सन) : निवेश फलन।

निवेश और उसके मुख्य निर्धारक तत्त्वों के बीच सम्बन्ध, जैसे कि ब्याज-दर, क्षमता-उपयोग-दर तथा उत्पादन की परिवर्तन-दर।

देखिए : investment.

investment opportunity curve (इन्वेंस्टमेण्ट अपरच्युनिटी कॅर्व) : निवेश-अवसर-वक्र।

इसका आशय उस वक्र से है, जो वर्तमान निवेश-व्यय के लिए इस्तेमाल की जा रही वर्धमान मुद्रा-राशि और उसके फलस्वरूप प्राप्त होनेवाली भावी आय के बीच सम्बन्ध दर्शाता है। इरविंग फिशर ने पूंजी और ब्याज-सिद्धान्त के सन्दर्भ में इस वक्र का व्यापक प्रयोग किया।

investment trust (इन्वेस्टमेण्ट ट्रस्ट) : निवेश न्यास, निवेशक कम्पनी।

एक ऐसी कम्पनी जिसका काम दूसरी कम्पनियों में निवेश करना होता है। यह कम्पनी अपने शेयर बेचकर तथा अन्य तरीकों से बचतें एकत्रित करके उन्हें लाभदायक निवेशों में लगाती है। यह एक तरह की संस्थागत निवेशक इकाई है, जो बचत तथा निवेश दोनों को प्रोत्साहन देती है। नयी तथा पुरानी दोनों प्रकार की कम्पनियों में निवेश न्यास या कम्पनी धन लगाती है। ब्रिटेन आदि विकसित पूंजीवादी देशों में निवेशक कम्पनियाँ काफी महत्त्वपूर्ण वित्तीय संस्थाएँ हैं। निवेशक कम्पनियाँ युनिट ट्रस्ट से इस अर्थ में भिन्न हैं कि इनमें कम्पनी अपने शेयर बेचती है और शेयरधारी इस कम्पनी के मुनाफे का हिस्सा प्राप्त करते हैं। परन्तु युनिट ट्रस्ट युनिटें जारी करती हैं जो इस ट्रस्ट द्वारा शेयर खरीदने में लगायी जाती हैं। युनिटधारी ट्रस्ट के मुनाफे के मालिक नहीं होते हैं, अपितु युनिट ट्रस्ट द्वारा निश्चित लाभांश प्राप्त करते हैं। दूसरे शब्दों में, युनिटधारियों को ट्रस्ट की प्रबन्ध-व्यवस्था में भागीदारी नहीं मिलती है।

invisible balance (इन्विज़िबॅल

बैलेन्स) : अदृश्य शेष ।

किसी देश के भुगतान-शेष के खाते की अदृश्य मदों के सम्बन्ध में जो रकम प्राप्त होती है और जो देनी पड़ती है, उसका शेष। यह शेष शून्य भी हो सकता है तथा ऋणात्मक और धनात्मक भी।

invisible hand (इन्विज़िबल हैण्ड) : अदृश्य शक्ति।

एडम स्मिथ द्वारा प्रयुक्त शब्द। एडम स्मिथ ने इसे अपने इस विचारधारा के स्पष्टीकरण के लिए प्रयोग किया कि वैसे तो प्रत्येक व्यक्ति आर्थिक क्षेत्र में अपने-अपने लाभ के लिए कार्य करता है, लेकिन 'अदृश्य शक्ति' के निर्देशन से उसका वह कार्य सारे समाज के लाभ को भी बढ़ाने में सहायक होता है। इस आधार पर उन्होंने आर्थिक क्षेत्र में व्यक्ति को छूट देने की बात का समर्थन किया। उनके अनुसार ऐसी स्थिति में व्यक्ति का कार्य उसके लाभ को बढ़ाने के साथ-साथ अदृश्य शक्ति के द्वारा सामाजिक लाभ को भी बढ़ायेगा।

देखिए : capitalism
price mechanism.

invisible items (इन्विज़िबल आइटम्स) : अदृश्य मदें।

सेवाओं के आयात और निर्यात को अदृश्य मदें कहते हैं। इन सेवाओं में जहाजरानी भाड़ा, बैंकिंग सेवाएँ, रायल्टी, बीमे की आय, किराये, व्याज, लाभ, पर्यटकों द्वारा किया गया व्यय आदि शामिल होते हैं। वस्तुओं की भाँति चूँकि इन मदों का लेखा-जोखा कस्टम हाउसों द्वारा नहीं रखा जाता है, इसलिए इनको आयात और निर्यात की अदृश्य मदें कहा जाता है। भुगतान-शेष के खाते में दृश्य मदों के साथ-साथ इन अदृश्य मदों को भी शामिल किया जाता है।

involuntery saving (इन्वालेण्टरी सेविंग) : अनैच्छिक बचत।

वह बचत, जो व्यक्ति अपनी इच्छा से नहीं करता बल्कि उपभोग के लिए वस्तुओं के उपलब्ध न होने और इस प्रकार बढ़ती हुई कीमतों के कारण उसे करनी पड़ती है। यदि मुद्रा-आय की अपेक्षा वस्तुओं की कीमतें अधिक तेज़ी से बढ़ती हैं, तो ऐसी स्थिति में वास्तविक उपभोग में कमी होगी और वास्तविक बचत में वृद्धि। यह बचत अनैच्छिक बचत कहलायेगी। जब सरकार लोगों पर कर लगाती है और उस धनराशि को निवेश के लिए इस्तेमाल करती है, तब यह भी एक प्रकार की अनैच्छिक बचत होती है; क्योंकि लोग इस उपाय से अपनी आय के एक हिस्से को खर्च करने से रोक दिये जाते हैं।

देखिए : forced saving.

iron law of wages (आयरन लॉ ऑफ वेजेज) : मज़दूरी का लौह नियम।

इसे निर्वाह-मज़दूरी-सिद्धान्त भी कहा जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार मज़दूरी श्रमिकों के निर्वाह-व्यय के स्तर पर निर्धारित होगी। मज़दूरी न इससे कम होगी और न अधिक। यदि मज़दूरी निर्वाह-व्यय से अधिक है, तो श्रमिकों में विलासिता आने से जनसंख्या में वृद्धि होगी और फलस्वरूप मज़दूरों की संख्या बढ़ने से मज़दूरी गिरेगी और अन्ततः वह निर्वाह-स्तर पर आ पहुंचेगी। इसके विपरीत यदि मज़दूरी निर्वाह-स्तर से कम है

तो श्रमिक भली प्रकार जीवन-निर्वाह न कर पायेंगे। ऐसा होने पर मृत्यु-दर बढ़ेगी और फलस्वरूप श्रमिकों की संख्या घटने से मज़दूरी ऊपर उठकर निर्वाह-स्तर के बराबर हो लेगी। इस प्रकार इस नियम के अनुसार मज़दूरी निर्वाह-स्तर पर निर्धारित होगी। चूँकि इस नियम के अनुसार मज़दूरी निर्वाह-स्तर पर वँधी होती है और उसके ऊपर-नीचे नहीं जा सकती, इसलिए इसे मज़दूरी का लौह नियम कहते हैं।

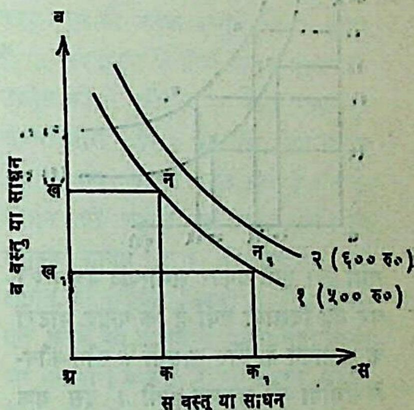
इस सिद्धान्त के प्रणेता फ्रान्स के प्रकृतिवादी सम्प्रदाय के अर्थशास्त्री माने जाते हैं और सम्भवतः फ्रान्स की तत्कालीन परिस्थितियाँ इसके अनुरूप भी थीं। लेकिन हाल के इतिहास में इसकी पुष्टि नहीं होती। आज तो 'निर्वाह' शब्द का अर्थ भी वदल गया है, क्योंकि वर्धमान जीवन-स्तर के परिणामस्वरूप इस स्तर में वृद्धि होती जाती है और निर्वाह-स्तर इसीका द्योतक वन गया है। इस नियम में माँग-पक्ष की उपेक्षा की गयी है और मज़दूरी तथा जनसंख्या के बोच जो प्रत्यक्ष सम्वन्ध स्थापित किया गया है, वह भी सही नहीं है। साथ ही, इस नियम के सहारे मजदूरी की दरों में अन्तर का स्पष्टीकरण नहीं हो पाता।

irredeemable security (इरिडीमेवॅल सिक्योरिटी) : अप्रतिदेय प्रतिभूति।

वह प्रतिभूति, जिस पर प्रतिदान की तिथि नहीं होती। इसके धारक को व्याज पाने का अधिकार तो होता है, लेकिन पूंजी-राशि के प्रतिदान का नहीं। इससे इसका विक्री-कीमत पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

iso-cost line (आइसो-कॉस्ट लाइन) : सम-लागत रेखा।

वह रेखा, जो दो वस्तुओं या उत्पादन के साधनों के वे विभिन्न संयोग दिखाती है जिन्हें एक निश्चित सम्पूर्ण व्यय-राशि द्वारा खरीदा जा सकता है। जैसे कि इस चित्र में पहली रेखा यह



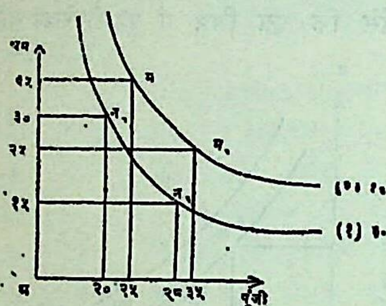
दिखाती है कि ५०० रुपये से न, न₁ आदि विन्दुओं द्वारा दिखाये गये स तथा ब वस्तु या साधन के कौन-कौन-से विभिन्न संयोग खरीदे जा सकते हैं। दूसरी रेखा भी इसी प्रकार की एक सम-लागत रेखा है।

iso-product curve (आइसो प्रॉडक्ट कॅर्व) : समोत्पाद वक्र।

एक ऐसा वक्र, जो दो साधनों के उन विभिन्न संयोगों को दर्शाता है जिनसे किसी वस्तु की निश्चित मात्रा का उत्पादन किया जा सकता है। मान लें कि दस मोटरें तैयार की जानी हैं और हम यह मालूम करना चाहते हैं कि श्रम और पूंजी के वे विभिन्न संयोजन कौन-से हैं, जिनसे इतनी मोटरों का उत्पादन सम्भव है। आगे के रेखा-चित्र में इसे दिखाया गया

है ।

इस रेखा-चित्र में यह दिखाया गया है कि या तो १५ श्रम तथा २८ पूंजी या ३० श्रम तथा २० पूँजी की इकाइयों द्वारा १० मोटरें उत्पादित की जा सकती हैं। यह समोत्पाद वक्र (१) पर दिखाया



गया है। इसी प्रकार समोत्पाद वक्र (२) पर यह दिखाया गया है कि पन्द्रह मोटरों के उत्पादन के लिए साधनों के कौन-कौन-से संयोगों की जरूरत होगी । इस वक्र का झुकाव दोनों साधनों की एक-दूसरे के लिए सीमान्त प्रतिस्थापन-दर को प्रकट करती है।

isoquants (आइसोक्वाण्ट्स) : समोत्पाद वक्र ।

'आइसो प्रॉडक्ट कॅर्व' अर्थात 'समोत्पाद वक्र' का ही दूसरा नाम ।

देखिए : iso-product curve.

issued capital (इस्यूड कैपिटल) : निर्गमित पूँजी ।

किसी कम्पनी की पूँजी का वह भाग, जो वास्तव में शेयर के रूप में निवेशकों को जारी किया जाता है। यह अधिकृत पूँजी के बराबर या उससे कम हो सकती है ।

issuing house (इसूयिंग हाउस) : निर्गम कोठी ।

एक वित्तीय प्रतिष्ठान, जो सार्वजनिक सीमित कम्पनियों की ओर से उनकी पूँजी के हिस्सों या शेयर को सर्वसाधारण जनता को बेचने के कार्य में विशेष दक्षता रखता है। जब कोई कम्पनी स्थापित होती है, तब निर्गम कोठी उसकी समस्त पूँजी या उसके बड़े भाग के शेयर का निर्गम करने का कार्य अपने हाथ में ले लेती है और इस प्रकार उस कम्पनी को अपेक्षित धनराशि तत्काल मिल जाती है । उसके पश्चात् निर्गम कोठी उन शेयरों को कुछ अधिक कीमत पर साधारण जनता में बेच देती है ।

itinerant salesman (इटिनरेण्ट सेलसमैन) : परिभ्रामी विक्रेता ।

फेरीवाले, खोंमचेवाले आदि घूम-घूमकर बेचनेवाले व्यापारी इस कोटि में आते हैं। इस कोटि में ऐसे खुदरा व्यापारियों को भी शामिल किया जा सकता है, जिनके पास व्यवसाय के लिए कोई स्थायी स्थान नहीं होता; जैसे कि पटरियों पर दूकान लगानेवाले, सचल दूकानदार आदि ।

J

job analysis (जॉब अनालिसिस) :कार्य-विश्लेषण ।

किसी कार्य का यह मालूम करने के लिए विश्लेषण कि उसे भली प्रकार कर सकने के लिए श्रमिक में कौन-से गुण होने चाहिए ।

jobber (जॉबर) : मुकद्दम, जाबर ।

बिचौलिया के रूप में कार्य करनेवाला थोक व्यापारी, विशेष रूप से उपभोग-वस्तुएँ तैयार करनेवाले उद्योगों के क्षेत्र में। यह उत्पादकों से माल खरीदता है और खुदरा व्यापारियों के हाथ बेच देता है। साधारणतया यह अपने विशिष्ट आर्डर के अनुसार बना माल इतनी बड़ी मात्रा में नहीं खरीदता कि स्वयं विनिर्माण-थोक व्यापारी कहलासके ।

joint consultation (ज्वाएण्ट कन्सल्टेशन) : संयुक्त परामर्श ।

किसी उद्योग के प्रबन्धकों और श्रमिकों के बीच सलाह-मशविरा । प्रायः उद्योगों में मालिक-मज़दूर समितियाँ बनायी जाती हैं जहाँ समय-समय पर दोनों पक्षों से सम्बन्ध रखनेवाले मसलों पर विचार-विनिमय किया जाता है; जैसे कि कारखाने में सुरक्षा व कार्य-सम्बन्धी मसले, समयोपरि कार्य, अनुपस्थापिता, आदि । इस प्रकार की व्यवस्था का उद्देश्य श्रमिकों के असन्तोष को दूर कर उद्योग के लिए उनका सहयोग प्राप्त करना होता है ।

joint costs (ज्वाएण्ट कॉस्ट्स) : संयुक्त लागत ।

दो या दो से अधिक वस्तुओं या सेवाओं का एक साथ उत्पादन करने की लागतें । संयुक्त लागत की बात विशेष रूप से मूल उद्योगों के सम्बन्ध में देखने को मिलती है, जहाँ एक ही कच्चे माल से तरह-तरह की अनेक वस्तुएँ तैयार होती हैं । उदाहरण के लिए पेट्रोल-शोधन के उद्योग को ले लीजिए । यहाँ एक ही कच्चा माल (तेल) से गैस, मिट्टी का तेल व अन्य पदार्थ प्राप्त होते हैं । तेल-शोधन की लागत इन सब चीजों की संयुक्त लागत है । गैस-उत्पादन की लागत को पूर्णतया मिट्टी का तेल उत्पादन करने की लागत से अलग नहीं किया जा सकता । कारण, ये तो संयुक्त लागतें हैं ।

joint demand (ज्वाएण्ट डिमाण्ड) : संयुक्त माँग ।

कुछ वस्तुएँ ऐसी होती हैं, जिनका प्रयोग साधारणतया एक साथ किया जाता है; जैसे कि स्याही और कलम, मोटर और पेट्रोल, चाय और चीनी आदि । ऐसी वस्तुओं की माँग संयुक्त माँग कहलाती है। इस दशा में किसी एक वस्तु की माँग में वृद्धि होने से दूसरी वस्तु की माँग में भी वृद्धि होगी ।

इस अवधारणा का प्रयोग सर्वप्रथम अलफ्रेड मार्शल ने किया । उन्होंने इसका प्रयोग उत्पादन-साधनों की माँग एवं उपभोक्ता-माँग, दोनों के विश्लेषण के लिए किया । उनके अनुसार उत्पादन-साधनों के क्षेत्र में लोहा, सीमेण्ट, ईंट आदि

निविष्टियों की माँग संयुक्त माँग है जो इमारत की माँग के कारण पैदा होती है। इसी प्रकार उपभोग-क्षेत्र में रोटी और मक्खन, ग्रामोफोन और रिकार्ड आदि संयुक्त माँग के उदाहरण हैं, क्योंकि उपभोक्ता ऐसी वस्तुओं का साथ-साथ इस्तेमाल करते हैं। किसी एक वस्तु की माँग में होनेवाले परिवर्तन का दूसरी वस्तु या वस्तुओं की माँग पर क्या प्रभाव पड़ेगा, इसके स्पष्टीकरण के लिए संयुक्त माँग के सिद्धान्त का सहारा लिया जाता है।

joint products (ज्वाएण्ट प्रॉडक्ट्स) : संयुक्त उत्पाद।

जब एक ही उत्पादन-प्रक्रिया अथवा एक ही कच्चे माल के प्रयोगों से दो या दो से अधिक वस्तुओं का उत्पादन इस प्रकार होता है कि किसी एक वस्तु का उत्पादन दूसरी वस्तु या वस्तुओं के बिना असम्भव है, तब ऐसी वस्तुओं को 'संयुक्त उत्पाद' की संज्ञा दी जाती है। गैस, मिट्टी का तेल व अन्य सार्वजनिक वस्तुएँ संयुक्त उत्पाद के उदाहरण हैं, क्योंकि पेट्रोल-शोधन की एक ही प्रक्रिया से इन सबका एक साथ उत्पादन होता है।

देखिए : joint supply.

joint stock company (ज्वाएण्ट स्टॉक कम्पनी) : संयुक्त पूँजी कम्पनी।

व्यवसाय-संगठन का अपेक्षाकृत एक नया रूप, जिसे वर्तमान समय में अधिकाधिक अपनाया जा रहा है। अमरीका में इसे व्यवसाय-निगम कहते हैं। संयुक्त पूँजी कम्पनी किसी व्यवसाय-विशेष को चलाने के लिए खोली जाती है। इसकी किसी नाम के अन्तर्गत रजिस्ट्री करानी पड़ती है। शेयरधारी इसके मालिक होते हैं और इसका प्रबन्ध निर्देशक-मण्डल के अधीन होता है, जिसके सदस्य शेयरधारी अपने में से वोट द्वारा निर्वाचित करते हैं। शेयरधारियों से पृथक कम्पनी का अपना एक अलग अस्तित्व होता है। इसे शेयरधारियों से अलग एक कानूनी सत्ता प्राप्त होती है। शेयरधारियों के बदलने से कम्पनी टूटती नहीं; वह चलती रहती है।

कम्पनी विभिन्न प्रकार के शेयर जारी करके पूँजी जुटाती है। ये शेयर विभिन्न प्रकार के होते हैं। लाभ की स्थिति में शेयरधारियों को लाभांश बाँटा जाता है। शेयर छोटे-छोटे मूल्य के होते हैं और ये अन्तरणीय होते हैं। शेयरधारियों की देनदारी उनके द्वारा खरीदे गये शेयरों के मूल्य तक ही सीमित होती है। इस प्रकार शेयरधारी अपनी शक्ति के अनुसार और इच्छानुसार जोखिम का भार अपने ऊपर ले सकते हैं। पूँजी का कुछ भाग कम्पनी ऋणपत्र जारी करके इकट्ठा कर सकती है। ये ऋण के प्रमाणपत्र होते हैं। कम्पनी इन्हें एक निश्चित ब्याज-दर पर जारी करती है और निर्धारित समय के बाद मूलधन और ब्याज चुकाकर कम्पनी बॉण्ड या ऋणपत्रों को वापस ले लेती है। ऋणपत्र खरीदनेवाले कम्पनी के प्रबन्ध में कोई भाग नहीं लेते। वे कम्पनी के ऋणदाता होते हैं, मालिक नहीं।

कम्पनी-व्यवस्था से अनेक महत्त्वपूर्ण लाभ प्राप्त होते हैं। इसके सहारे बड़ी-से बड़ी मात्रा में पूँजी इकट्ठी की जा सकती है। प्रबन्ध-कार्य में भाग लिये बिना

अनेक लोग इसमें भाग ले सकते हैं। देनदारी सीमित होने से जोखिम का भार भी बहुसंख्यक शेयरधारियों में बँट जाता है। अधिक मात्रा में पूँजी उपलब्ध होने से बड़े पैमाने के उत्पादन के विभिन्न लाभ प्राप्त किये जा सकते हैं, जिससे औसत लागत घट जाती है। इसके अतिरिक्त, चूँकि कम्पनी को लम्बे समय के लिए पूँजी उपलब्ध होती है और कम्पनी की जीवन-अवधि भी अधिक लम्बी होती है, इसलिए कम्पनी दीर्घकालीन दृष्टि से अधिक लाभकारी निवेश-नीति अपना सकती है। और फिर, स्वामित्व और प्रबन्धन को एक-दूसरे से अलग करके कम्पनी-व्यवस्था ने प्रबन्धकीय क्रान्ति लाने में भारी योगदान किया है।

लेकिन कम्पनी-व्यवस्था के अपने कुछ अवगुण भी हैं। इससे एकाधिकार को बढ़ावा मिलता है जिसके अन्तर्गत श्रमिकों और उपभोक्ताओं का शोषण होता है। साथ ही आर्थिक संकेन्द्रण को बल मिलता है, विभिन्न पक्षों के बीच विरोध बढ़ता है, वित्तीय धोखेबाजी, राजनीतिक भ्रष्टाचार आदि बुराइयों को पनपने का अवसर मिलता है। इन दोषों को दूर करने के लिए कानूनी व्यवस्था का सहारा लिया जाता है।

joint supply (ज्वाएण्ट सप्लाइ): संयुक्त पूर्ति।

दो या अधिक ऐसी वस्तुओं की पूर्ति, जिनका साथ-साथ उत्पादन होता है; जैसे कि गैस और कोक, ऊन और भेड़-बकरी का मांस, अनाज और भूसा आदि। संयुक्त पूर्ति वाली वस्तुओं के साथ किसी एक वस्तु की पूर्ति में परिवर्तन किये जाने पर दूसरी वस्तु की पूर्ति में भी उसी तरह का परिवर्तन होता है। ऐसी दशा में एक वस्तु की माँग में परिवर्तन का दूसरी वस्तु की पूर्ति पर और फलस्वरूप उसकी कीमत पर प्रभाव पड़ेगा। उदाहरण के लिए मान लीजिए कि अनाज की कीमत बढ़ जाती है। इससे उसकी कीमत बढ़ेगी और फलस्वरूप उसकी पूर्ति की मात्रा भी। ऐसा होने पर भूसे की पूर्ति भी बढ़ेगी और चूँकि इसकी माँग में कोई परिवर्तन नहीं आता है, इसलिए इसकी कीमत भी गिरेगी। संयुक्त उत्पादन के बीच अनुपात हमेशा स्थिर तो नहीं होता, फिर भी इसमें विशेष घट-बढ़ करना सम्भव नहीं होता।

journeyman (जर्नीमैन): जर्नीमैन, कारीगर।

मध्यकालीन गिल्ड-प्रणाली के अन्तर्गत जब कोई शिशु निर्धारित शिक्षुता-काल पूरा कर लेता था और गिल्ड द्वारा उसका कार्य सन्तोषजनक मान लिया जाता था, तब वह जर्नीमैन अथवा कुशल कारीगर कहलाने लगता था। जर्नीमैन बनने पर उसे पूरी मज़दूरी पाने का हक मिल जाता था। साधारणतया जर्नीमैन कुछ समय तक अतिरिक्त अनुभव प्राप्त करने के लिए, जिस मास्टर के नीचे उन्होंने शिक्षुता प्राप्त की थी, उसीके यहाँ नौकरी कर लिया करते थे। उसके बाद स्वयं मास्टर बनकर स्वतन्त्र रूप से व्यवस्था चलाते थे।

just price (जस्ट प्राइस): यथोचित कीमत।

मध्ययुग में प्रचलित नीतिपरक अवधारणा। उस समय के विचार के अनुसार प्रत्येक वस्तु या सेवा की अपनी

एक यथोचित कीमत होती है, जिससे कम या अधिक कीमत का लेन-देन बुरा समझा जाता था। सामान्य तौर से प्रथानुसार कीमत को यथोचित कीमत ठहराया जाता था। अभाव के समय विक्रेता द्वारा ऊँची कीमत लेना और अधिक उत्पादन की स्थिति में क्रेता की ओर से कम कीमत देने का प्रयास किया जाना अनुचित माना गया।

इस प्रकार मध्ययुग में इस अवधारणा को आर्थिक क्रियाओं की नैतिकता आँकने के लिए प्रयोग किया जाता था। नीतिपरक होने के नाते आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने यथोचित कीमत की अवधारणा का प्रयोग छोड़ दिया है। लेकिन कभी-कभी कीमत-नियन्त्रण और आर्थिक शोषण के सिलसिले में इसका जिक्र किया जाता है।

K

key industry (की इन्डस्ट्री) : मूल उद्योग।

वह उद्योग, जो अन्य उद्योगों एवं देश की सारी अर्थव्यवस्था के लिए महत्त्वपूर्ण होता है। यदि किसी बात का मूल उद्योग पर प्रभाव पड़ेगा, तो स्पष्टतः उससे देश के अन्य उद्योग भी प्रभावित होंगे। सामान्य तौर से पूंजीगत-माल-उद्योग, निर्माण-उद्योग, इस्पात-उद्योग आदि मूल उद्योग की कोटि में रखे जाते हैं। अल्पविकसित देशों में खाद्य और वस्त्र-उद्योग मूल उद्योग हो सकते हैं। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के लिए किसी उद्योग के महत्त्व को देखकर यह निर्धारित किया जा सकता है कि वह मूल उद्योग है या नहीं।

keynesian economics (केन्सियन इकॉनॉमिक्स) : केन्स का अर्थशास्त्र।

नव-प्रतिष्ठित अर्थशास्त्र उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और बीसवीं शताब्दी के पहले तीन दशकों में बहुत लोकप्रिय और मान्य रहा। इस अवधि में पूंजीवाद किन्हीं गम्भीर तात्कालिक समस्याओं में नहीं उलझा हुआ था और आर्थिक सिद्धान्तों के व्यावहारिक प्रयोग की कोई बड़ी जरूरत नहीं उपस्थित हुई थी, परन्तु बीसवीं सदी के चौथे दशक में विश्वव्यापी भीषण मन्दी तथा व्यापक बेरोजगारी ने पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं की जड़ें हिला दीं। इस स्थिति में अर्थशास्त्र से यह अपेक्षा की गयी कि वह इन समस्याओं से निपटने के कारगर उपाय सुझाये। परन्तु वह अर्थशास्त्र अपने 'से के नियम' के आधार पर, जिसके अनुसार अर्थव्यवस्था में पूर्ण

रोज़गार के स्तर पर स्वतः सन्तुलन की प्रवृत्ति पायी जानी चाहिए, इस स्थिति का सामना नहीं कर पाया। इस स्थिति का मुकाबला करने में समर्थ ज्यादा व्यावहारिक आर्थिक सिद्धान्तों के विकास में स्वीडन में गुन्नार मिर्डल, पोलैण्ड में माइकेल केलेस्की और ग्रेटब्रिटेन में मेनार्ड केन्स आदि अर्थशास्त्रियों ने बहुत हाथ बंटाया। अलग-अलग परन्तु करीब-करीब एक ही अवधि में रोज़गार, राष्ट्रीय आय, सामान्य कीमत-स्तर तथा व्याज की दर के निर्धारण के नये सिद्धान्त इन अर्थशास्त्रियों ने विकसित किये। इन नये आर्थिक-सिद्धान्तों का सबसे ज्यादा प्रभावशाली और प्रसिद्ध पृष्ठपोषक जॉन मेनार्ड केन्स था। इसीलिए यह आन्दोलन 'केन्सियन क्रान्ति' के नाम से भी जाना जाता है।

केन्स का यह नया अर्थशास्त्र नवप्रतिष्ठित अर्थशास्त्र से कुछ मूलभूत अर्थों में भिन्न है। व्यष्टिगत, सन्तुलनमूलक अर्थशास्त्र की जगह समष्टिगत आर्थिक सिद्धान्तों ने ली, जिनमें कीमत-निर्धारण तथा वचत, निवेश, रोज़गार तथा राष्ट्रीय आय के ज्यादा वास्तविक सिद्धान्तों का समावेश था। पुराने अर्थशास्त्र की समयातीत पूर्वकल्पना का स्थान समय के प्रति सचेतन जागरूकता ने ले ली।

रोज़गार को सम्पूर्ण प्रभावी माँग से सम्बन्धित करके मार्क्स तथा माल्थस द्वारा सुझायी गयी दिशा को पुनर्स्थापित किया गया। केन्स ने बताया कि 'से के नियम' के विपरीत, वचत की मात्रा निवेश की मात्रा से स्वतन्त्र नहीं हो सकती है, क्योंकि वचत की मात्रा आय पर निर्भर होती है और आय के स्तर के निर्धारण में निवेश का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। वस्तुतः पूर्ण रोज़गार से नीचे स्तर पर आय के सन्तुलन की सम्भावना को स्वीकार करते हुए केन्स ने बताया कि यदि वेरोज़गार श्रम उपलब्ध है तो निवेश बढ़ने से राष्ट्रीय आय बढ़ेगी, फलतः वचत तथा उपभोग दोनों बढ़ेंगे। उपभोग के बढ़ने से (प्रभावी माँग के बढ़ने से) राष्ट्री आय तव तक बढ़ती रहेगी जब तक कि वचत में वृद्धि निवेश में हुई वृद्धि के बराबर नहीं हो जाती है।

इस सिद्धान्त के कारण वह पुराना सिद्धान्त धराशायी हो गया, जिसके अनुसार वचत तथा निवेश में समानता व्याज की दर द्वारा स्थापित की जाती थी। केन्स के अनुसार, व्याज की दर का निर्धारण किसी भी समय विद्यमान समस्त परिसम्पत्तियों की मात्रा तथा मुद्रा की माँग और पूर्ति द्वारा होता है। मुद्रा की माँग को केन्स ने तरलता अधिमान के रूप में स्पष्ट किया। केन्स के सिद्धान्तों ने मुद्रा की मात्रा के सिद्धान्त को भी एकांगी सावित कर दिया। केन्स के अनुसार मौद्रिक व्यवस्था सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था की कार्यप्रणाली का एक भाग है तथा व्याज की दर पर इसका गहरा असर पड़ता है। परन्तु सामान्य कीमत-स्तर तथा अन्य वास्तविक चरों पर इसका प्रभाव अप्रत्यक्ष तथा अनिकट होता है।

चूंकि पूर्ण रोज़गार के स्वतः विद्यमान होने की प्रवृत्ति निजी उद्यम-प्रणाली में नहीं है, अतः केन्स के सिद्धान्तों ने राजकीय रोज़गार-नीति की नींव डाली।

इस नीति के अनुसार सरकार को राजस्व तथा अन्य नीतियों द्वारा प्रभावी माँग को ऐसे ऊँचे स्तर पर बनाये रखना चाहिए कि बेरोजगारी न्यूनतम रखी जा सके। पिछले ३०-३५ सालों में यह नीति बहुत प्रभावशाली रही है, परन्तु इसके कारण स्फीति की समस्या विकट हो गयी है। केन्स के सिद्धान्त अल्प-कालिक हैं, परन्तु उनके आधार पर राष्ट्रीय आय की दीर्घकालिक वृद्धि के सिद्धान्त नव-केन्सवादियों ने विकसित किये हैं। संक्षेप में, केन्स ने पूँजीवाद को एक गम्भीर संकट और विरोधाभास से बचने की राह सुझायी। परन्तु अब नयी किस्म के विरोधाभास उभर रहे हैं और केन्सवादी इलाज उन पर लागू नहीं हो रहे हैं।

key worker (की वर्कर): मूल श्रमिक।

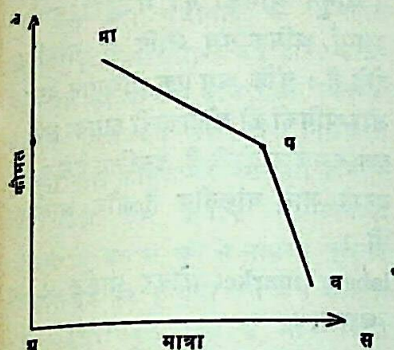
किसी कारखाने का वह विशेष कुशल श्रमिक, जिसका कार्य उस कारखाने में लगे अन्य श्रमिकों के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। यदि विकासशील या नये स्थानों पर शाखाएँ खोलते समय केवल मूल श्रमिकों को ही वहाँ भेजा जाए, तो उन स्थानों के लोगों को रोज़गार दिलाने में आसानी होगी।

kinked demand curve (किंक्ड डिमाण्ड कॅर्व): विकुंचित माँग-वक्र।

अल्पाधिकार की स्थिति में कीमत-निर्धारण की प्रक्रिया काफी जटिल हो जाती है। अर्थशास्त्र में इस कीमत-निर्धारण के बारे में अनेक सिद्धान्त प्रचलित हैं। व्यवहार में जहाँ अल्पाधिकारिक स्थिति विद्यमान होती है वहाँ यह देखा गया है कि कीमतों में अनम्यता या अपरिवर्तन-शीलता का गुण पाया जाता है। लम्बी अवधि तक ये कीमतें एक ही स्तर पर बनी रहती हैं। इस घटना या प्रवृत्ति की एक व्याख्या विकुंचित माँग-वक्र की सहायता से की जती है।

इस विवेचन के अनुसार अल्पाधिकारी फर्म का उसके उत्पाद के लिए माँग-वक्र ऐसा होता हे कि फर्म इस कीमत को बदलकर अपने मुनाफे का स्तर सुधार नहीं सकती है। अल्पाधिकारी स्थिति में एक फर्म की कीमत या उत्पादन के मात्रा-सम्बन्धी निर्णयों की अन्य फर्मों पर प्रति-क्रिया इस बात को तय करने में बहुत महत्त्वपूर्ण होती है कि ये निर्णय लिये जायें या नहीं। विकुंचित माँग-वक्र एक ऐसी स्थिति को प्रकट करते हैं जब वर्तमान कीमतों पर अन्य फर्मों की प्रतिक्रिया एक प्रकार की हो तथा इस कीमत से कम कीमतों पर उनकी प्रतिक्रिया दूसरी प्रकार की हो। यदि यह फर्म अपनी कीमत बढ़ाती है तो इस माँग-वक्र पर दिखायी गयी लोच के अनुसार अन्य फर्में अपने उत्पाद की कीमतें नहीं बढ़ायेंगी; क्योंकि कीमत बढ़ानेवाली फर्म के उत्पाद की माँग घट जायेगी। इसीलिए यह फर्म अपनी कीमतें नहीं बढ़ायेगी। दूसरी ओर यदि यह फर्म कीमत घटाती है तो अन्य फर्में भी कीमतें कम करेंगी, क्योंकि माँग-वक्र ऐसी है कि कीमत नहीं घटाने पर वे अन्य फर्में अपना बाज़ार खोयेंगी। इस तरह इस फर्म के माँग-वक्र का वर्तमान कीमत से ऊपर के क्षेत्र में झुकाव चालू कीमत के नीचे के क्षेत्र से अलग किस्म का झुकाव है। इसलिए इन दोनों क्षेत्रों में माँग की लोच अलग-अलग प्रकार की

है। जैसा कि नीचे के रेखा-चित्र में दिखाया गया है, ऐसी स्थिति में चालू कीमत पर माँग-वक्र में विकुंचन आ जाता



है। इस विश्लेषण से यह तो स्पष्ट होता है कि क्यों अल्पाधिकारी कीमत 'प' बिन्दु पर अनम्य हो जाती है, परन्तु यह मूल कीमत 'प' किस तरह निर्धारित होती है यह प्रश्न विना उत्तर के ही रह जाता है। विकुंचित माँग-वक्र का विश्लेषण पॉल स्वीजी के नाम से जुड़ा हुआ है।

kondratieff cycle (कोण्ड्राटीफ साइकल) : कोण्ड्राटीफ चक्र।

व्यापार-चक्र कई अवधियों के हो सकते हैं। आर्थिक इतिहास में ५ वर्ष, ६ वर्ष, ११ वर्ष आदि अनेक अवधियों का उल्लेख मिलता है जिनकी व्यापार-चक्र-सिद्धान्तों के आधार पर व्याख्या करने के प्रयास किये गये हैं। कोण्ड्राटीफ चक्र एक वहुत दीर्घकालिक (५६ साल के) व्यापार-चक्र का नाम है, जो एक रूसी अर्थशास्त्री एन० डी० कोण्ड्राटीफ के नाम पर आधारित है। कोण्ड्राटीफ ने दीर्घावधि व्यापार-चक्रों के अध्ययन और विश्लेषण की दिशा में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया था।

L

labour (लेबर) : श्रम।

उत्पादन का मूल एवं सक्रिय साधन। इसका आशय मनुष्य की उत्पादन-सेवाओं से है। मनुष्य के वे सब मानसिक व शारीरिक कार्य, जो उत्पादन में लगे होते हैं अथवा जो किसी आर्थिक प्रतिफल की आशा से किये जाते हैं, श्रम कहलाते हैं। श्रम में किसानों व कारखानों में काम करनेवाले मजदूरों की उत्पादन-सेवाएँ ही नहीं वरन डाक्टरों, वकीलों, शिक्षकों आदि जैसे लोगों की विशिष्ट सेवाएँ भी सम्मिलित होती हैं।

'श्रम' साधन की अपनी कुछ विशेषताएँ हैं, जिनके कारण इसमें और अन्य साधनों के बीच काफी भिन्नता नजर आती है। श्रम-सम्बन्धी समस्याओं के

अध्ययन में इन विशेषताओं को ध्यान में रखना आवश्यक होता है। मुख्य विशेषताएँ ये हैं—श्रमिक केवल अपना श्रम वेचता है और स्वयं में लगी पूंजी को अपने पास रखता है, श्रमिक को स्वयं उपस्थित होकर अपना श्रम वेचना पड़ता है, श्रम नाशवान है, श्रमिकों की सौदाकारी शक्ति अपेक्षाकृत कमजोर होती है, विशिष्ट योग्यताप्राप्त श्रम की अतिरिक्त पूर्ति को उपलब्ध करने में काफी अधिक समय लगता है, तथा श्रमिक साधन भी है और साध्य भी।

labour force (लेवर फोर्स) : श्रमिक शक्ति।

किसी देश की कुल जनसंख्या का वह भाग, जो रोज़गार में लगा हुआ है अथवा कार्य करने के लिए उपलब्ध है। दूसरे शव्दों में इसका आशय कार्यकारी आयु-वर्ग के लोगों की संख्या से है, चाहे वे काम में लगे हुए हों या नहीं। साधारणतया १५ से ६० वर्ष की आयु के वीच के लोग इस कोटि में शामिल किये जाते हैं। भारत की कुल जनसंख्या में ऐसे लोगों का अनुपात ५२ प्रतिशत के लगभग है।

labour intensive (लेवर इन्टेन्सिव) : श्रम-प्रधान।

वह उत्पादन-प्रक्रिया अथवा उद्योग, जिसमें अन्य साधनों की अपेक्षा श्रम का अधिक इस्तेमाल किया जाता है। कुटीर उद्योग, लघु उद्योग और सेवा उद्योग सामान्य तौर से श्रम-प्रधान उद्योग होते हैं। पूंजी के अभाव एवं वेरोज़गारी की दशाओं में श्रम-प्रधान तकनीक का सहारा लेना अथवा श्रम-प्रधान उद्योगों का विकास अधिक लाभकारी ठहराया जाता है।

labour legislation (लेवर लेजिस्लेशन) : श्रम-विधान।

श्रमिकों के हितों की रक्षा और विकास के लिए सरकार द्वारा वनाये गये कानून। ये कानून श्रमिकों की मज़दूरी, कार्य की दशाएँ, श्रमिक संघ आदि से सम्बन्धित होते हैं। चूँकि श्रम एक नाशवान वस्तु है और श्रमिकों की सौदाकारी क्षमता अपेक्षाकृत कमज़ोर होती है, इसलिए ऐसे कानून वनाये जाने वांछनीय हैं और आवश्यक भी।

labour market (लेवर मार्केट) : श्रम वाज़ार।

वह वाज़ार, जहाँ श्रमिक की मज़दूरी और रोज़गार की दशाएँ निर्धारित होती हैं। अन्य वस्तुओं की कीमतों की भाँति श्रम की कीमत (अर्थात् मज़दूरी) भी वाज़ार में श्रम की माँग और पूर्ति की सापेक्ष स्थिति द्वारा निर्धारित होती है। मज़दूरी-निर्धारण से सम्वन्धित इस वाज़ार को श्रमिक वाज़ार अथवा श्रम-वाज़ार कहते हैं।

labore movement (लेवर मूवमेण्ट): श्रम-आन्दोलन।

श्रमिकों के जीवन-स्तर को ऊपर उठाने एवं काम की परिस्थितियों में सुधार लाने के उद्देश्य से चलाया गया आन्दोलन। इसमें मज़दूर संघों तथा अन्य दलों व समूहों की क्रियाएँ शामिल रहती हैं। इसके अन्तर्गत संसद में आन्दोलन का राजनीतिक प्रतिनिधित्व प्राप्त करने की भी चेष्टा की जाती है।

labour theory of value (लेवर थिअरी ऑफ वैल्यू) : मूल्य का श्रम-सिद्धान्त।

मार्क्स के आर्थिक सिद्धान्तों का एक

प्रमुख अंग। मार्क्स के आर्थिक सिद्धान्त पूँजीवाद की प्रकृति और उसके विकास की प्रक्रिया समझाने के लिए विकसित किये गये थे। पूँजीवाद के अन्तर्गत अधिशेष के सम्पत्तिधारी वर्ग द्वारा अधिकृत करने की प्रक्रिया बाजार में 'स्वतन्त्र' रूप से किये गये सौदों द्वारा निर्धारित मजदूरी तथा कीमत की घटनाओं के नीचे छिप गयी थी, जबकि सामन्तवादी व्यवस्था में प्रत्यक्ष रूप से सामन्त कृषकों के अधिशेष को हथिया लेते थे। कीमतों तथा मजदूरी की सतह के नीचे छिपी अधिशेष-अधिग्रहण की प्रक्रिया को स्पष्ट करने में मार्क्स के मूल्य के श्रम-सिद्धान्त का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

क्लासिकल अर्थशास्त्र की परम्परा में, उसकी सैद्धान्तिक सूझ-बूझ का प्रयोग करते हुए उसके इस सिद्धान्त को, कि वस्तुओं का विनिमय उनके उत्पादन में लगे श्रम के समय के अनुसार निर्धारित मूल्यों पर होता है, मार्क्स ने यह अर्थ दिया कि मूल्य का उत्पादन केवल श्रम द्वारा ही होता है। स्पष्ट है कि मार्क्स का मूल्य का श्रम-सिद्धान्त क्लासिकल अर्थशास्त्रियों के सिद्धान्त से भिन्न है। मार्क्स ने बताया कि चूँकि सब वस्तुएँ अपने श्रम-मूल्य (उनके उत्पादन में लगे श्रम के समय) पर विनिमय की जाती हैं, श्रम (जो कि पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में एक वस्तु की तरह खरीदे-बेचे जाने के कारण एक वस्तु बन गया है) भी अपने श्रम-मूल्य पर बेचा और खरीदा जायेगा। श्रम के श्रम-मूल्य से हमारा मतलब उस श्रम-शक्ति से है जो मजदूरों के जीवन-निर्वाह तथा पुनरोत्पादन के लिए आवश्यक वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन में लगायी जाती है। किसी भी वस्तु की उत्पादन-प्रक्रिया में श्रमिक अपना श्रम-मूल्य तथा उससे ज्यादा एक अधिशेष उत्पादित करते हैं। अर्थात् यह केवल श्रम की ही विशेषता है कि वह अपने मूल्य से अधिक उत्पादन करता है। श्रम द्वारा अपने मूल्य के अतिरिक्त जिस मूल्य का उत्पादन होता है, वह अधिशेष पूँजीपति हथिया लेते हैं; क्योंकि उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व के कारण वे उत्पादन-प्रक्रिया को नियन्त्रित करते हैं। यही मुनाफे तथा शोषण का आदि-मूल या उद्गम है।

परन्तु इस सिद्धान्त का यह अर्थ नहीं है कि उत्पादन में श्रम के अलावा किसी अन्य साधन की जरूरत नहीं होती है। मार्क्स के अनुसार, प्रकृति के सहयोग के अतिरिक्त उत्पादन शुरू होने से पहले मशीनें तथा कच्चा माल (अपरिवर्तित पूँजी) होने चाहिए तथा उत्पादन के दौरान श्रमिकों के निर्वाह के लिए निर्वाह के साधनों का भण्डार (परिवर्तनीय पूँजी) होना चाहिए। मूल्य के श्रम-सिद्धान्त का तात्पर्य यह है कि इस प्रक्रिया द्वारा उत्पादित वस्तुओं के मूल्य में अपरिवर्तित तथा परिवर्तनीय पूँजी का मूल्य उसी स्तर पर स्थानान्तरित होता है जबकि श्रम-शक्ति उसके मूल्य को बढ़ा देती है। अर्थात् श्रम-शक्ति द्वारा मूल्य का सृजन होता है। इसलिए निवल उत्पादन तो अपरिवर्तित पूँजी में श्रम-शक्ति द्वारा जोड़ा गया मूल्य ही है।

मार्क्स के मतानुसार मूल्य के श्रम-सिद्धान्त का यह अभिप्राय भी नहीं है कि

निवल उत्पादन केवल श्रमिकों को ही मिलना चाहिए। यदि ऐसा हो तो संचय तथा प्रगति के लिए कोई अधिशेष प्राप्त नहीं हो सकेगा। मार्क्स के अनुसार पूँजीवाद में यह अधिशेष, जो सामाजिक श्रम-शक्ति का प्रतिफल है, व्यक्तिगत अधिकार में चला जाता है। यह न्यायसंगत नहीं है। इस पर तो सामाजिक अधिकार होना चाहिए।

देखिए : marxian economics
abstract labour
surplus value.

labour turnover (लेवर टर्नओवर): श्रमिक आवर्त।

एक फर्म छोड़कर दूसरी फर्म में श्रमिकों के जाने की दर। इस दर को फर्म में काम करनेवाले श्रमिकों की कुल संख्या के अनुपात में वर्ष के भीतर उस फर्म को छोड़कर जानेवाले श्रमिकों के रूप में व्यक्त किया जाता है। स्पष्टतः श्रमिक आवर्त-दर जितनी ऊँची होगी, उस फर्म के लिए श्रम की लागत उतनी ही अधिक वैठेगी; क्योंकि ऐसी सूरत में नये श्रमिकों की भर्ती, उनके प्रशिक्षण आदि में फर्म को अधिक खर्च करना पड़ेगा।

laissez-faire (लेसे-फेएर) : अवन्ध नीति।

आर्थिक क्षेत्र में सरकार की अहस्तक्षेप की नीति। एडम स्मिथ ने वाणिज्यवाद की प्रतिवन्धक नीति को राष्ट्रीय दृष्टि से वहुत अहितकर ठहराया और विकल्प के रूप में अवन्ध नीति का प्रतिपादन किया। इस नीति के अनुसार सरकार को चाहिए कि वह अपने कार्यों को देश की वाहरी आक्रमणों से सुरक्षा करने तथा देश में शान्ति व सुव्यवस्था कायम रखने तक ही सीमित रखे और आर्थिक क्रियाओं के संचालन में व्यक्तियों को स्वतन्त्र छोड़ दे। इससे व्यक्ति और समाज, दोनों का लाभ अधिकतम हो सकेगा। इसके लिए तर्क यह दिया गया कि व्यक्ति अपने हितों को वेहतर समझता है और वाहरी रुकावट व हस्तक्षेप न होने की स्थिति में वह अपने हितलाभ को अधिकतम करने के लिए भरसक प्रयत्न करेगा। जव सव व्यक्ति इस प्रकार प्रयास करेंगे, तव व्यक्तियों का अपना-अपना लाभ तो अधिकतम होगा ही, साथ ही अदृश्य शक्ति के क्रियाशील होने से सामाजिक कल्याण भी अधिकतम होगा। इस तरह अवन्ध नीति से व्यक्तिगत स्वाधीनता को प्रोत्साहन मिलेगा, आर्थिक संसाधनों का श्रेष्ठतम उपयोग होगा और आर्थिक विकास की गति तेज होगी। इस विचारधारा को संस्थापक अर्थशास्त्रियों का पूरा समर्थन मिला और इंगलैंड में उन्नीसवीं शताव्दी के उत्तरार्द्ध तक इसका प्रभाव वना रहा। उसके वाद आर्थिक क्षेत्र में सरकारी हस्तक्षेप और नियमन की माँग ज़ोर पकड़ने लगी।

land (लैण्ड) : भूमि।

उत्पादन का एक साधन, जिसका आशय केवल जमीन की ऊपरी सतह से नहीं है, अपितु इसमें जल, वायु, खनिज पदार्थ, पहाड़, वन आदि वे सभी पदार्थ शामिल हैं जो किसी राष्ट्र को प्रकृति के निःशुल्क उपहार के रूप में प्राप्त होते हैं। इस प्रकार इसका आशय किसी स्थान के प्राकृतिक संसाधनों से होता है।

पूंजी से अलग रखने के लिए पर-

मतावादी अर्थशास्त्री भूमि की इन विशेषताओं पर ज़ोर देते थे—(१) भूमि प्रकृति की निःशुल्क देन है। पूँजी की भाँति भूमि मनुष्य द्वारा उत्पादित साधन नहीं है। (२) भूमि की पूर्ति पूर्णतः सीमित है; इसे घटाया-बढ़ाया नहीं जा सकता। (३) भूमि अनश्वर है; मनुष्य इसे नष्ट नहीं कर सकता। (४) भूमि स्थिर या अचल है; इसमें स्थान-गतिशीलता का गुण नहीं पाया जाता।

अनेक वर्तमान अर्थशास्त्री भूमि की इन विशेषताओं को स्वीकार नहीं करते। इनके मतानुसार यद्यपि भूमि मनुष्य द्वारा उत्पादित नहीं होती तथापि मनुष्य के श्रम के लगे बिना इसका कोई आर्थिक महत्त्व नहीं होता। वे इस बात पर बल देते हैं कि यह सदा सत्य नहीं है कि भूमि प्रकृति का निःशुल्क उपहार है। भूमि के अनेक उपयोग हो सकते हैं। इस कारण किसी उपयोग की दृष्टि से भूमि की भी लागत (विकल्प लागत) होती है। इसी प्रकार उनका कहना है कि भूमि की पूर्ति पूर्णतः सीमित नहीं है। भूरक्षण से इसकी पूर्ति घट जाती है और भूमि-उद्धार के सहारे कुछ सीमा तक इसकी पूर्ति में वृद्धि लायी जा सकती है। उर्वरक, सिचाई आदि उपायों के द्वारा भूमि की उपज में भारी वृद्धि लायी जा सकती है जो कि भूमि की पूर्ति में वृद्धि के समान है। फिर भी भूमि को एक अलग कोटि में रखना अधिक उपयुक्त ठहरता है।

land mortgage bank (लैण्ड मार्टगेज बैंक) : भूमि-बन्धक बैंक।

ये वे बैंक होते हैं जो भूमि की जमानत पर किसानों को दीर्घकाल के लिए ऋण देते हैं। इन्हें भूमि-विकास बैंक भी कहते हैं। भारत में इनका संगठन सहकारिता के सिद्धान्तों पर किया गया है। ये मुख्य रूप से ऋण पत्र जारी करके पूँजी इकट्ठी करते हैं। ये लोगों से दीर्घकालीन जमा भी स्वीकार करते हैं। भारत में इस प्रकार के बैंकों की बड़ी आवश्यकता है। एक तो भारत मुख्य रूप से कृषि-प्रधान देश है और दूसरे, दीर्घकालीन ऋण की प्राप्ति के लिए देश में सुविधाएँ अपर्याप्त हैं। यही कारण है कि भारत में इन बैंको को राज्य सरकारें और रिजर्व बैंक विशेष प्रोत्साहन दे रहे हैं।

land reforms (लैण्ड रिफॉर्म्स) : भुमि-सुधार।

भूमि-सुधार का आशय भूमि के साथ किसानों से सम्बन्धों में सुधार लाये जाने से है। सीमित अर्थ में इसका मतलब केवल भूमि के स्वामित्व के सम्बन्ध में छोटे भूमिधरों और खेतिहर मजदूरों के लाभ के लिए परिवर्तन लाने से है। लेकिन व्यापक अर्थ में इसका आशय व्यक्ति और भूमि के सम्बन्धों (विशेष रूप से जोत के आकार और भूधारण-व्यवस्था) के आयोजित एवं संस्थागत पुनर्गठन से है। स्पष्ट शब्दों में यह एक सामाजिक परिवर्तन है जो खेती से सम्बन्धित लोगों की भलाई के लिए लाया जाता है।

जहाँ भूधारण-प्रणाली और जोत के आकार के सम्बन्ध में स्थिति ठीक नहीं होती, वहाँ स्वस्थ और द्रुत गति से कृषि-विकास के लिए तकनीकी सुधार के साथ-साथ भूमि-सुधार की समुचित व्यवस्था एक आवश्यक शर्त्त होती है। ऐसी व्यवस्था होने पर ही उत्पादन में भारी एवं स्थायी वृद्धि

सम्भव हो सकेगी, खेती में निवेश बढ़ सकेगा और किसानों को उनकी मेहनत और निवेश के अनुसार प्रतिफल मिल सकेगा। इन्हीं बातों के आधार पर भारत में भूमि-सुधार पर विशेष बल दिया जा रहा है। लेकिन विभिन्न कठिनाइयों के कारण अभी भारत इस दिशा में बहुत आगे नहीं बढ़ पाया है।

land tenure (लैण्ड टेन्योर) : भूधारण।

यह वह प्रणाली है, जिसके अन्तर्गत भूस्वामी और काश्तकारों के सम्बन्धों, उनके अधिकार और दायित्वों का निर्धारण होता है। इसका सम्बन्ध इन अनेक बातों के तय करने से है कि किसानों को किन शर्तों पर खेती करने के लिए भूमि मिलती है, उन्हें कितना और किस रूप में लगान चुकाना है, कब व किन स्थितियों में उन्हें बेदखल किया जा सकता है, आदि। इस प्रकार भूधारण-प्रणाली का आशय उन सब दशाओं व शर्तों से है जिनके अन्तर्गत भूमि पर अधिकार प्राप्त होता है एवं उस पर खेती की जाती है।

भूधारण-प्रणाली का कृषि-भूमि की उत्पादिता और उत्पादन-मात्रा पर, गाँव के सामाजिक और राजनीतिक जीवन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। यदि भूधारण-प्रणाली सरल, निश्चित एवं न्यायपूर्ण है, तो किसान पूरी मेहनत से खेती करेंगे। इससे उनकी और खेती की दशा सुधरेगी और साथ ही अधिक व श्रेष्ठ उत्पादन होने से सारे समाज को लाभ पहुँचेगा। इसके विपरीत भूधारण-प्रणाली के दूषित होने पर कृषि-उत्पादन की मात्रा कम होगी, किसानों का शोषण होगा, उनकी गरीबी बढ़ेगी और समाज में असन्तोष तथा तनाव की स्थिति पैदा होगी।

large scale production (लार्ज स्केल प्रॉडक्सन) : बड़े पैमाने पर उत्पादन।

जब किसी व्यवसाय में उत्पादन-इकाइयाँ बड़े आकार की होती हैं और प्रत्येक इकाई में अधिक मात्रा में उत्पादन-साधनों को जुटाकर उत्पादन किया जाता है, तब उसे बड़े पैमाने का उत्पादन अथवा अधिमात्रा उत्पादन कहते हैं। रेल-परिवहन, लोहा व इस्पात के कारखाने, मोटर व सीमेण्ट के कारखाने आदि बड़ी मात्रा की उत्पादन-प्रणाली के उदाहरण हैं।

वर्तमान समय में बड़ी मात्रा की उत्पादन-प्रणाली का अधिकाधिक सहारा लिया जा रहा है। वस्तुतः आधुनिक आर्थिक जीवन की यह एक प्रमुख विशेषता बन गयी है। इससे तरह-तरह की बाह्य और आन्तरिक किफायतें प्राप्त होती हैं, जिनके फलस्वरूप औसत लागत घटने से उत्पादकों के लाभ में वृद्धि होती है। उपभोक्ताओं को अधिक मात्रा में और कम कीमत पर अनेक प्रकार की वस्तुएँ सुलभ हो जाती हैं। साथ ही श्रमिकों को काम करने में तरह-तरह की सुविधाएँ मिलती हैं और अधिक मज़दूरी भी। लेकिन इसकी अपनी कुछ हानियाँ भी हैं जैसे कि लोच-रहित ढाँचा, वर्ग-संघर्ष में वृद्धि, तालमेल बिठाने व शीघ्र निर्णय करने के सम्बन्ध में कठिनाई तथा गुटबन्दी व एकाधिकार को बढावा।

बड़े पैमाने पर उत्पादन के विस्तार की सीमा के निर्धारण में इन अनेक कारकों का हाथ होता है—प्रबन्धन की

कठिनाई, बाज़ार की सीमा, साधनों की उपलब्ध मात्रा एवं बचतों की समाप्ति।

देखिए : economies of mass production
economies of scale
internal economies.

law of demand (लॉ ऑफ डिमाण्ड) : माँग का नियम।

यह नियम किसी वस्तु की कीमत और उसकी माँग की मात्रा के बीच सम्बन्ध स्थापित करता है। इस नियम के अनुसार अन्य बातों के पूर्ववत् रहने पर कीमत के घटने पर माँग बढ़ती है और कीमत के बढ़ने पर माँग घटती है। अर्थात् दोनों के बीच विपरीत या प्रतिलोम सम्बन्ध है; दोनों एक-दूसरे की विपरीत दिशा में घटते-बढ़ते हैं। कीमत के कम होने से माँग बढ़ जाती है और कीमत के बढ़ने से माँग घट जाती है। लेकिन माँग का नियम कीमत और माँग के घटने-बढ़ने के बीच कोई निश्चित या आनुपातिक सम्बन्ध स्थापित नहीं करता।

कीमत में परिवर्तन होने से माँग में विपरीत दिशा में परिवर्तन होने को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है। कीमत में घट-बढ़ के दो मुख्य प्रभाव होते हैं : १. आय प्रभाव और २. प्रतिस्थापन प्रभाव। उदाहरण के लिए मान लें कि किसी वस्तु की कीमत कम हो जाती है। इसका एक परिणाम तो यह होगा कि खरीदार की क्रय-शक्ति बढ़ जायेगी। उसकी आय का एक भाग अतिरिक्त खरीद के लिए बचा रहेगा। ऐसी परिस्थिति में वह साधारणतः वस्तु को अधिक मात्रा में खरीदने को तैयार हो जायेगा। जो लोग पहले उसे नहीं खरीद सके थे, सम्भवतः अब उसे खरीदने लगेंगे। अतः माँग में वृद्धि होगी। दूसरा परिणाम यह होगा कि वह वस्तु अन्य प्रतियोगी या प्रतिस्थापक वस्तुओं की अपेक्षा सस्ती हो जायेगी। लोग अन्य प्रतिस्थापक वस्तुओं की खरीद बन्द या कम करके इस वस्तु को अधिक खरीदने लगेंगे। फलस्वरूप इस बात के कारण भी वस्तु की माँग बढ़ जायेगी। इसी प्रकार मान लीजिए कि वस्तु की कीमत बढ़ जाती है। इसका परिणाम यह होगा कि एक ओर तो लोगों की वास्तविक आय घट जायेगी और दूसरी ओर वह वस्तु अन्य प्रतिस्थापक वस्तुओं की तुलना में महँगी हो जायेगी। इन दोनों प्रकार के प्रभावों के फलस्वरूप उस वस्तु की माँग घट जायेगी।

कुछ अवसरों पर माँग का नियम लागू नहीं होता। उदाहरण के लिए जिन वस्तुओं का उपभोग प्रदर्शन की भावना के कारण होता है, उनकी माँग कीमत के बढ़ने पर और भी बढ़ती है। निम्नस्तरीय वस्तुओं की माँग प्रायः कीमत के कम होने पर भी नहीं बढ़ती। इसी प्रकार मन्दी के समय में कीमत के कम होते रहने पर भी माँग में वृद्धि नहीं होती; प्रायः माँग घटती ही जाती है। इसके विपरीत युद्ध-काल में कीमत के बढ़ने पर भी माँग बढ़ती जाती है। ऐसा इसलिए होता है कि इस स्थिति में कीमत के और भी ऊपर बढ़ने की सम्भावना रहती है। ऐसे अपवादों को छोड़कर माँग का नियम सर्वत्र लागू होता है।

law of supply (लॉ ऑफ सप्लाइ) : पूर्ति का नियम।

यह नियम किसी वस्तु की कीमत और उसकी पूर्ति के सम्बन्ध को व्यक्त करता है। साधारणतया अन्य बातों के पूर्ववत् रहने पर किसी वस्तु की कीमत के बढ़ने पर उस वस्तु की पूर्ति की मात्रा बढ़ती है, और कीमत के घटने पर पूर्ति की मात्रा घटती है। अर्थात् कीमत और पूर्ति के बीच सीधा सम्बन्ध होता है। दोनों एक ही दिशा में घटती-बढ़ती हैं। जब कीमत बढ़ती है, तब पूर्ति की मात्रा भी बढ़ती है और जब कीमत घटती है, तब पूर्ति की मात्रा भी घटती है। यही पूर्ति का नियम कहलाता है। इस नियम के अनुसार ऊँची कीमत पर पूर्ति अधिक होती है और नीची कीमत पर कम।

कीमत और पूर्ति के बीच इस प्रकार के सम्बन्ध का कारण स्पष्ट है। कीमत के बढ़ने पर अधिक लाभ प्राप्त करने की सम्भावना बढ़ जाती है, जिसके प्रभाव से अनेक नये उत्पादक उस वस्तु से सम्बन्धित उद्योग की ओर खिंच आयेंगे और पुराने उत्पादक पहले की अपेक्षा अधिक मात्रा में उत्पादन करने की व्यवस्था करेंगे। इस प्रकार कीमत के बढ़ने पर पूर्ति की मात्रा बढ़ जायेगी। इसके विपरीत जब कीमत घटती है, तब लाभ के घटने अथवा हानि की सम्भावना पैदा होने से कुछ उत्पादक उस वस्तु का उत्पादन बन्द कर देंगे और कुछ पहले की अपेक्षा कम मात्रा में उत्पादन करने लगेंगे। फलस्वरूप पूर्ति की मात्रा घट जायेगी।

ध्यान रहे कि पूर्ति का नियम कीमत और पूर्ति के बीच कोई निश्चित आनुपातिक सम्बन्ध स्थापित नहीं करता। यह केवल इतना ही करता है कि कीमत के बढ़ने से पूर्ति में बढ़ने की प्रवृत्ति होती है और कीमत के घटने से पूर्ति में घटने की प्रवृत्ति होती है।

laws of returns (लॉज़ ऑफ़ रिटर्न्स) : प्रतिफल के नियम।

आगत और निर्गत के सम्बन्धों को उत्पादन की भौतिक तथा तकनीकी दशाओं के आधार पर स्थापित करनेवाला नियम, जिसे कभी-कभी उत्पादन के नियम के नाम से भी जाना जाता है। अर्थशास्त्र की वह शाखा, जो आय के सामाजिक वर्गों में वितरण के सवाल को उत्पादन के साधनों की कीमत-निर्धारण के सवाल द्वारा प्रतिस्थापित करना चाहती थी, इस सिद्धान्त को साधनों की कीमत-निर्धारण-प्रक्रिया का आवश्यक अंग मानती है। यह नियम वास्तव में उत्पादन के साधनों के संयोगों और उनसे प्राप्त प्रतिफल के संख्यात्मक सम्बन्धों को तीन कोटियों में रखता है। पहले, जहाँ संसाधनों की वृद्धि की दर प्रतिफल की वृद्धि की दर के बराबर है, अपरिवर्तित प्रतिफल का नियम या अपरिवर्तित लागत का नियम कहलाता है। दूसरे, जहाँ संसाधनों की मात्रा में वृद्धि के साथ-साथ प्रतिफल की वृद्धि की दर बढ़ती है, वर्धमान प्रतिफल का नियम या ह्रासमान लागत का नियम कहलाता है। तीसरे, जहाँ एक सीमा के बाद साधनों की मात्रा बढ़ाने का परिणाम उत्पादन में घटती हुई दर पर वृद्धि के रूप में नजर आता है, ह्रासमान प्रतिफल या वर्धमान लागत का नियम कहलाता है। इन तीनों नियमों में से कौन-सा या किस सीमा तक कौन-सा और बाद में

कौन-सा नियम लागू होता है, उसका उत्पादन-फलक पर तथा सम-उत्पाद-वक्र के आकार पर असर पड़ता है।

देखिए : constant returns
diminishing returns
economies of scale
increasing returns.

lease (लीज) : पट्टा।

एक करार, जिसके अनुसार जमीन या जायदाद का मालिक (पट्टाकर्त्ता) किसी दूसरे व्यक्ति (पट्टेदार) को निर्धारित लगान या किराये पर एक निश्चित अवधि के लिए अपनी जमीन या जायदाद इस्तेमाल करने का अधिकार देता है। पट्टेदार को उस अवधि में निर्धारित किश्तों में लगान या किराया चुकाना होता है। किराये की रकम में निश्चित समय बीतने पर (जैसे कि हर सातवें या दसवें वर्ष) संशोधन करने की व्यवस्था की जा सकती है।

legal tender (लिगल टेण्डर) : विधिग्राह्य।

जिस मुद्रा को लोग सब प्रकार के लेन-देन व ऋणों के भुगतान में स्वीकार करने के लिए कानून की ओर से बाध्य होते हैं, उसे विधिग्राह्‌य या वैध मुद्रा कहते हैं। ऐसा इस लिए किया जाता है, ताकि मुद्रा के रूप में किये गये सौदों पर लोगों का विश्वास हो सके और उनको कानूनन लागू किया जा सके। विधिग्राह्‌यता सीमित भी हो सकती है और असीमित भी। जब कोई मुद्रा किसी भी मात्रा में चुकायी जा सकती है और लेनेवाले मना नहीं कर सकते, तब उसे असीमित विधिग्राह्‌य मुद्रा कहते हैं। इसके विपरीत जो मुद्रा एक विशेष राशि तक ही विधिग्राह्‌य होती है, वह सीमित विधिग्राह्‌य मुद्रा कहलाती है।

lender of last resort (लेण्डर ऑफ लास्ट रिजार्ट) : अन्तिम ऋणदाता।

केन्द्रीय बैंक का एक आवश्यक कार्य। देश का केन्द्रीय बैंक सदस्य बैंकों को ऋण देने के लिए हर समय तैयार रहता है, यद्यपि ऐसा वह अपनी शर्तों पर ही करता है। इससे केन्द्रीय बैंक को ब्याज-दर और मुद्रा-पूर्ति पर अपना प्रभाव डालने में मदद मिलती है। साथ ही केन्द्रीय बैंक के इस कार्य से देश के बैंक-व्यवसाय पर विश्वास भी बढ़ता है।

letter of credit (लेटर ऑफ क्रेडिट): साख-पत्र।

एक आदेश-पत्र, जो एक बैंक दूसरे देश के किसी बैंक को जारी करता है कि लिखित व्यक्ति को निर्धारित राशि का भुगतान कर दे। पत्र जारी करनेवाला बैंक को उस राशि की प्रतिपूर्ति की गारण्टी करता है। इसके सहारे विदेशी व्यापार के भुगतान के लेने-देने में बड़ी सुविधा होती है। चूंकि निर्यातक को अपने ही देश के बैंक से रकम मिल जाती है, इसलिए वे साख-पत्र स्वीकार कर लेते हैं। प्रायः निर्यातक माल लादने के पहले भुगतान पाने की पुष्टि अथवा भुगतान पाने में देरी को न्यूनतम करने के लिए साख-पत्रों की माँग करते हैं।

liabilities (लाइबिलिटीज): देयताएँ।

वे ऋण या मुद्रा-राशियाँ, जो किसी व्यक्ति या कम्पनी को दूसरों को चुकानी होती है। बैंक-जमा, शेयरधारियों की पूंजी, रिजर्व-निधि आदि बैंक की देन-

दारियाँ या देयताएँ कहलाती हैं। किसी कम्पनी की देनदारियों में शेयरधारियों द्वारा अभिदत्त पूँजी, बैंक-ऋण, कम्पनी के रिजर्व, उधार-पूँजी पर ब्याज, शेयर पर लाभांश आदि को शामिल किया जाता है। लेखा की दृष्टि से देनदारियों को अल्पकालीन और दीर्घकालीन तथा रक्षित और अरक्षित की कोटियों में विभक्त किया जाता है।

limited liability (लिमिटेड लाइबिलिटी) : सीमित देयता।

व्यवसाय में किसी मालिक की हानि को उसके द्वारा लगायी गयी पूँजी के मूल्य तक सीमित करना। यदि किसी संयुक्त पूँजी कम्पनी अथवा निगम को अपना कारोबार बन्द करना पड़े, तो उसके शेयरधारियों को खरीदे गये शेयर के मूल्य तक ही हानि उठानी पड़ेगी; उससे अधिक नहीं। कारण, कम्पनी के शेयरधारियों की देयता सीमित होती है। इसके विपरीत यदि वे एकलस्वामित्व व्यवसाय के अन्तर्गत कारोवार करते होते या साझेदार होते, तो ऐसी स्थिति में उन्हें अपनी सारी सम्पत्ति से हाथ धोना पड़ता; क्योंकि ऐसे व्यवसाय-संगठन असीमित देयता के आधार पर चलाये जाते हैं। सीमित देयता के व्यवहार से वड़े-वड़े व्यवसायों के लिए भारी मात्रा में पूँजी जुटाना सम्भव हो गया है। आधुनिक युग में व्यवसाय-संगठन के रूप में कम्पनियों व निगमों के उदय और विकास का मूल कारण सीमित देयता के सिद्धान्त का व्यवहार में लाया जाना है।

limping standard (लिम्पिग स्टैण्डर्ड): पंगु मान।

वह करेन्सी-प्रणाली, जो नाम के लिए तो द्विधातु-मान पर आधारित होती है, लेकिन यथार्थ में एक ही धातु की मुद्रा से भुगतान आदि का काम लिया जाता है।

line of credit (लाइन ऑफ क्रेडिट) : उधार-रेखा।

१. उधार की वह अधिकतम राशि, जो कोई बैंक किसी व्यवसाय-फर्म को देने के लिए निश्चित करता है। इस निर्धारित राशि तक फर्म उधार पा सकती है।

२. कर्ज की वह राशि, जिसे कर्जदार इसी शर्त पर ले सकता है कि वह उस राशि से सामान कर्जदाता से ही खरीदे। कई विकसित देश अल्पविकसित देशों को इसी प्रकार के ऋण देते हैं।

linkage effects (लिंकेज इफेक्ट्स) : अनुवन्धन-प्रभाव।

किसी नये कारखाने या उद्यम के आरम्भ करने से उत्पन्न प्रभाव। आर्थिक क्रियाओं की पारस्परिक निर्भरता के कारण एक नया कारखाना शुरू होने पर अन्य अनेक चीजों (जैसे: कच्चे माल, उपकरणों, शक्ति के साधनों, मजदूरों के उपभोग की वस्तुओं और सेवाओं आदि) की माँग बढ़ती जाती है। यदि वह कारखाना ऐसे क्षेत्र में स्थापित किया जाता है, जहाँ उनसे सम्बन्धित उद्योग पहले से नहीं हैं, तो ऐसे उद्योगों के उदय होने के लिए वहाँ आधार बनेंगे। इस प्रकार के प्रभाव दो भागों में बाँटे जा सकते हैं। एक तो पश्चानु-बन्धन प्रभाव जो नवस्थापित कारखाने के उत्पादन के लिए सहायक वस्तुओं व सेवाओं के मुहैय्या करने के फलस्वरूप प्रकट होते हैं। जैसे कि इस्पात

मिल के स्थापित होने से कोयला व लोहा खनन, भारी मशीन व औज़ार उद्योगों को बढ़ावा मिलता है। दूसरे, अग्रानुबन्धन प्रभाव जो उस कारखाने में हुए उत्पादन के प्रयोग के आधार पर बढ़ते हैं। जैसे कि मोटरों, बसों, ट्रकों आदि के उत्पादन के फलस्वरूप सड़कों, पेट्रोल-पम्पों, मरम्मत के कारखानों आदि को प्रोत्साहन मिलता है। परिवहन, संचार-साधन आदि दोनों तरह के प्रभावों के मिश्रण हैं। आर्थिक विकास और विशेष रूप से औद्योगीकरण की प्रक्रिया को समझने में इन प्रभावों की जानकारी विशेष महत्त्व रखती है। बिना उद्यमकर्त्ता-वर्ग के या सार्वजनिक प्रयासों के ये प्रभाव क्रियाशील नहीं हो पाते।

liquid assets (लिक्विड ॲसेट्स): तरल परिसम्पत्तियाँ।

वे परिसम्पत्तियाँ, जो सरलता और सुविधा से मुद्रा के रूप में परिवर्तित की जा सकें। इस सुविधा के आधार पर विभिन्न परिसम्पत्तियों में विभिन्न अंशों में तरलता मौजूद होती है। स्पष्टतः मुद्रा अधिकतम तरल परिसम्पत्ति है। एक वाणिज्य बैंक केन्द्रीय बैंक के पास जमा-राशि को भी मुद्रा के समान तरल मानेगा। अल्पकालिक ऋण, शेयर, हुण्डियाँ, सरकारी ऋणपत्र, दीर्घकालिक ऋण, मशीनें, कारखाने, दीर्घकालिक प्रयोग की वस्तुएँ आदि विभिन्न परिसम्पत्तियाँ कम-अधिक आसानी से मुद्रा में भी बदली जा सकती हैं। इनकी कीमतों में भी अन्तर आ सकता है। अतः इन्हें मुद्रा के रूप में बदलने में हानि-लाभ की गुंजाइश रहती है। कम तरल परिसम्पत्तियाँ आय उपार्जित करके तरलता की कमी की क्षतिपूर्ति करती हैं। किसी भी वाणिज्य बैंक, फर्म आदि के लिए इन विभिन्न तरलतावाली परिसम्पत्तियों का अनुकूलतम मिश्रण बनाये रखना एक कठिन और महत्त्वपूर्ण समस्या है। जहाँ एक ओर व्यावसायिक लेन-देन की जरूरतें तरलता की आवश्यकता बढ़ाती हैं, वहाँ दूसरी ओर तरल परिसम्पत्तियों का अर्थ होता है आय-उपार्जन के अवसरों का त्याग। इस दुविधा का समाधान परिसम्पत्तियों के सर्वोत्तम ढाँचे को प्राप्त करने के लिए आवश्यक है।

liquid capital (लिक्विड कैपिटल): तरल पूंजी।

मुद्रा-पूंजी को तरल पूंजी कहते हैं, क्योंकि आसानी से इसे इच्छित रूप दिया जा सकता है। आवश्यकतानुसार इसे पूंजी-वस्तुएँ प्राप्त करने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है।

liquidity preference (लिक्विडिटी प्रेफरेन्स): तरलता अधिमान।

मुद्रा की माँग। व्यक्ति तथा व्यावसायिक संस्थान अपनी परिसम्पत्तियों के एक भाग को हमेशा मुद्रा के रूप (तरल रूप) में अपने पास रखना चाहते हैं। मुद्रा की यह माँग तरलता-अधिमान कहलाती है।

मुद्रा को तरल रूप में रखने की माँग व्यावसायिक लेन-देन की आवश्यकता, आकस्मिक स्थितियों का सामना करने तथा सट्टे के उद्देश्य से उत्पन्न होती है। अर्थात् मुद्रा की माँग का कारण मुद्रा के विनिमय-माध्यम कार्य से ही नहीं, वरन् उसके मूल्य के भण्डार-कार्य से भी सम्बन्धित है। यहाँ तक कि तरलता अधिमान

की अवधारणा को मुद्रा, ब्याज, आय तथा रोज़गार के सिद्धान्तों में महत्त्वपूर्ण बनानेवाले सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री केन्स के अनुसार लेन-देन की जरूरतों तथा आकस्मिक स्थितियों का सामना करने के उद्देश्यों से माँगी गयी मुद्रा की राशि साधारणतः तथा अल्पावधि में अपरिवर्तित रहती है। उनके मतानुसार सट्टेबाजी के उद्देश्य से माँगी गयी तरलता हमेशा घटती-बढ़ती है। अतः यह अल्पकालिक ब्याज-दर के निर्धारण में महत्त्वपूर्ण हाथ बँटाती है। सट्टेबाजी के उद्देश्य से सम्बन्धित तरलता-अधिमान लोगों की बाज़ार-मूलक प्रत्याशाओं से काफी प्रभावित होता है। जब लोग यह आशा करने लगें कि प्रतिभूतियों के भाव गिरनेवाले हैं (अर्थात् ब्याज-दर बढ़नेवाली है), तब लोग प्रतिभूतियों की खरीद स्थगित कर देंगे। इस प्रकार तरलता-अधिमान घटेगा, क्योंकि लोग आगे चलकर अपेक्षित ऊँची ब्याज-दर का लाभ उठाना चाहेंगे। इसके विपरीत प्रत्याशा तरलता-अधिमान को कम करेगी। कुछ लोगों का विचार है कि ब्याज-दर के निर्धारण में तरलता-अधिमान की अत्यधिक घट-बढ़ को केन्स के सिद्धान्तों में अत्यधिक महत्त्व दे दिया गया है।

liquidity ratio (लिक्विडिटी रेशियो): तरलता-अनुपात।

किसी बैंक की कुल परिसम्पत्ति में नकदी और तरल परिसम्पत्तियों का जो अनुपात होता है, उसे तरलता-अनुपात कहा जाता है। नकदी और तरल परिसम्पत्तियों में साधारणतया प्रपत्र-क्रेतागृहों को दिये गये शीघ्रावधि कर्जे तथा सरकार व अन्य उधार लेनेवालों द्वारा जारी किये गये अल्पकालीन बॉण्ड शामिल किये जाते हैं। पहले तरलता-अनुपात को बैंक के स्तर एवं उसकी स्थिरता के संकेतक के रूप में इस्तेमाल किया जाता था। लेकिन धीरे-धीरे इसका यह महत्त्व जाता रहा। अब इसका मुख्य महत्त्व मुद्रा-प्राधिकारियों द्वारा मुद्रा-पूर्ति के नियन्त्रण के लिए इसके प्रयोग में है।

loan (लोन) : कर्ज।

किसी व्यक्ति, कम्पनी, सरकार अथवा अन्य संस्थाओं द्वारा दूसरों से मुद्रा-राशि का उधार लिया जाना। कर्ज कई प्रकार के होते हैं, जैसे कि अल्पावधि कर्ज और दीर्घकालिक कर्ज, रक्षित और गैर-रक्षित कर्ज, सुलभ व दुर्वह कर्ज, निजी और सार्वजनिक कर्ज आदि। कर्ज अनेक उद्देश्यों से और विभिन्न ढंग से लिये जाते हैं।

loanable funds (लोनेबॅल फण्ड्स): उधारार्थ निधि।

ब्याज-दर के निर्धारण से सम्बन्धित अवधारणा। वस्तुतः ब्याज-दर के निर्धारण का एक सिद्धान्त।

कुछ अर्थशास्त्रियों का मत है कि ब्याज मुद्रा की कीमत है। अतः अन्य कीमतों की तरह इसका निर्धारण भी माँग और पूर्ति के पक्षों द्वारा बाज़ार में होता है। कर्ज लेनेवाले माँग-पक्ष का तथा कर्ज देनेवाले पूर्ति-पक्ष का प्रतिनिधित्व करते हैं।

उधारार्थ निधि का आशय उस मुद्रा-राशि से है जो व्यक्तियों व संस्थाओं को कर्ज देने के लिए उपलब्ध है। इस कर्ज हेतु निधि के महत्त्वपूर्ण स्रोत ये हैं—व्यक्तिगत या पारिवारिक क्षेत्र की बचतें,

व्यवसाय तथा संस्थाओं की बचतें, बैंकों द्वारा दी जानेवाली कर्ज की राशि एवं प्रतिभूतियों की खरीद पर लगी राशि तथा सरकार द्वारा की गयी बचत (अर्थात् सार्वजनिक राजस्व तथा सार्वजनिक चालू व्यय का अन्तर)। मुक्तद्वार-अर्थव्यवस्था में विदेशों से विभिन्न रूपों में प्राप्त पूंजी-गत प्रवाह भी कर्ज हेतु निधि में शामिल किये जायेंगे।

localisation of industries (लोकला-इजेशन ऑफ इन्डस्ट्रीज) : उद्योगों का स्थानीयकरण।

उद्योगों के भौगोलिक केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति। अनेक आर्थिक तथा आर्थिकेतर कारणों से (जैसे कि अनुकूल भौगोलिक परिस्थितियाँ, मण्डी की निकटता, कच्चे माल तथा श्रम व पूँजी की उपलब्धि, सर-कारी प्रोत्साहन आदि) किसी क्षेत्र या स्थान-विशेष में किसी खास किस्म के उत्पादन के अनेक कारखाने खुल जाते हैं। अधिकांश उद्योगों में इस प्रकार किसी स्थान-विशेष में केन्द्रित होने की प्रवृत्ति पायी जाती है। इसे उद्योगों का स्थानीय-करण अथवा भौगोलिक विशिष्टीकरण या प्रादेशिक श्रम-विभाजन कहते हैं।

निजी क्षेत्र के कारखानों में इस प्रवृत्ति का मूल कारण लागत को न्यूनतम करने का ध्येय होता है, जिससे कि लाभ अधिकतम हो सके। कच्चा माल, मशीन, श्रम, बाजार आदि के सरलता, शीघ्रता एवं अपेक्षाकृत कम लागत पर मिलने के कारण कुछ क्षेत्रों में कुछ खास वस्तुओं के उत्पादन की लागत अपेक्षाकृत कम बैठती है। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों के सिलसिले में स्थान-निर्धारण-सम्बन्धी निर्णय अनेक आर्थिक तथा सामाजिक प्रभावों को नजर में रखकर किये जाते हैं। इस प्रकार के निर्णय कुछ उद्योगों के किसी क्षेत्र में स्थानीयकरण को बढ़ावा दे सकते हैं। परन्तु सामाजिक तथा आर्थिकेतर कारणों से कभी-कभी स्थानीयकरण के पक्ष के आर्थिक आधारों की उपेक्षा भी की जाती है।

उद्योगों के स्थानीयकरण से अनेक लाभ प्राप्त होते हैं। उदाहरण के लिए, इससे श्रम के विशिष्टीकरण में मदद मिलती है, उस स्थान की ख्याति के फल-स्वरूप विक्री बढ़ जाती है, अवशिष्ट पदार्थों का लाभकारी उपयोग सम्भव बन जाता है तथा आविष्कार व तकनीकी सुधार के क्षेत्रों में प्रगति होती है। लेकिन निजी क्षेत्र के अन्तर्गत इस विषय में सुनियोजित एवं तालमेल-युक्त निर्णय न लिये जाने के कारण उद्योगों में अत्यधिक केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति भी पनपने लगती है। एक कारखाने की किसी क्षेत्र में सफलता एक प्रकार की भेड़ियाधसान की प्रवृत्ति पैदा कर देती है। इससे अत्यधिक नगरीकरण, आवास की कमी, भीड़-भाड़, सामरिक दृष्टि से कमजोरी, श्रमिकों की कार्य-क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव आदि समस्याएँ पैदा हो जाती हैं। क्षेत्रीय विषमताएँ भी बढ़ जाती हैं। जिन क्षेत्रों में किसी उद्योग के प्रारम्भ में अपेक्षाकृत अधिक लाभ होता है, वहाँ कालान्तर में यह प्रवृत्ति उन लाभकारी प्रभावों की समाप्ति पर भी जारी रहती है। फलस्व-रूप सामाजिक संसाधनों का प्रादेशिक वितरण अकुशल होने लगता है। प्रादेशिक विषमता की प्रवृत्ति प्रबलतर होती रहती

है। इसलिए स्थानीयकरण के सम्बन्ध में निर्णय वृहत् सामाजिक निष्कर्षों पर खरा उतरे, ऐसी व्यवस्था दीर्घकालिक दृष्टिकोण से आवश्यक हो जाती है।

lock-out (लॉक-आउट) : तालाबन्दी।

औद्योगिक विवाद की स्थिति में मालिक द्वारा उठाया गया एक कदम। साधारण तौर से मज़दूरों तथा मालिकों में समझौता न होने की स्थिति में जब मजदूर हड़ताल तोड़ने के लिए तैयार नहीं होते, तब मालिक लोग अपना व्यवसाय वन्द कर देते हैं। अर्थात् मालिक श्रमिकों को अपनी शर्त्तों के विपरीत काम पर लगाना स्वीकार नहीं करते। श्रम नष्टवान है और मज़दूरों की आर्थिक स्थिति भी अपेक्षाकृत कमजोर होती है। अत: मालिकों द्वारा तालावन्दी मज़दूरों के सामूहिक सौदाकारी प्रयासों को विफल करने का एक तरीका है।

long period (लॉन्ग पीरियड) : दीर्घावधि।

आर्थिक स्थितियों तथा शक्तियों के परिवर्तन से सम्बन्धित अवधि। अलग-अलग आर्थिक शक्तियाँ भिन्न-भिन्न कालावधियों में परिवर्तित होती हैं। जहाँ कुछ शक्तियाँ आये दिन अपना रूप बदलती रहती हैं, वहाँ दूसरी ओर कुछ अन्य शक्तियाँ काफी लम्बे अर्से तक अपरिवर्तित बनी रहती हैं। यदि हम कुछ चीजों को बदलना चाहें, तो विना विशेष समय के व्यवधान के हम उन आर्थिक शक्तियों को बदल सकते हैं, लेकिन कुछ कारकों को बदलने में काफी लम्बा समय लगता है। इस प्रकार विभिन्न आर्थिक चरों की प्रकृति तथा उनका आर्थिक सन्तुलन पर प्रभाव जानने के लिए उनका यह समय से सम्बन्धित पहलू भी जानना जरूरी होता है।

सर्वप्रथम अलफ्रेड मार्शल ने आर्थिक चरों से सम्बन्धित समय-तत्त्व का महत्त्व स्पष्ट करने के लिए दीर्घकाल तथा अल्पकाल की अवधारणाएँ प्रस्तुत कीं। दीर्घकाल से तात्पर्य समय की कलेण्डरी लम्बाई से नहीं है। दीर्घकाल का अर्थ उस अवधि से होता है, जिसमें कोई आर्थिक चर आवश्यकतानुसार घटाया-बढ़ाया जा सके ताकि फिर से सन्तुलन की स्थिति प्राप्त हो जाये। इस प्रकार दीर्घावधि वह अवधि है, जिसमें हर आर्थिक तत्त्व को परिवर्तित होने के लिए पूरा समय मिल जाता है। स्पष्ट है कि जहाँ कुछ वस्तुओं का उत्पादन आवश्यकतानुसार चार-छः महीनों में ही घटाया-बढ़ाया जा सकता है, वहाँ कई वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन बिना कुछ वर्षों के अन्तराल के नहीं वदला जा सकता। अधिक स्पष्टीकरण के लिए यह कहा जा सकता है कि दीर्घावधि समय की वह लम्बी अवधि है, जिसमें आर्थिक शक्तियों को आपस में एक-दूसरे के अनुरूप पूरी तरह से सामंजस्यपूर्ण होने का पूरा अवसर मिल जाता है। यदि किसी वस्तु की माँग में रुचि, स्वभाव या उत्पादन-प्रणाली में परिवर्तन के कारण काफ़ी वृद्धि हो गयी है, तो दीर्घकाल समय की वह लम्बाई होगी जिसमें नये निवेश के फलस्वरूप उत्पादन-क्षमता तथा उत्पादन-मात्रा माँग की बदली हुई परिस्थितियों के अनुरूप हो जाये। लॉर्ड केन्स ने दीर्घकाल की इस पूर्ण सामंजस्य स्थापित करने योग्य लम्बाई पर व्यंग्य कसते हुए कहा :

था कि दीर्घकाल में हम सब मर जाते हैं।

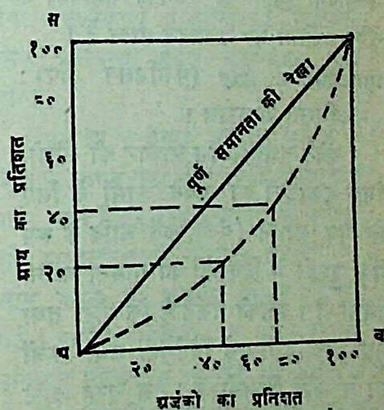
long rate (लॉन्ग रेट): मुद्दती दर।

विदेशी विनिमय-बिल का बट्टा करने के लिए बैंकों द्वारा लगायी गयी दर। यह दर उस हालत में लगायी जानेवाली दर है, जब विनिमय-बिल अपनी पूरी परिपक्वता पर भुगतान की जानेवाली होती है।

lorenz curve (लॉरेंज़ कर्व): लॉरेंज वक्र।

वह वक्र, जो किसी चीज के वितरण-स्वरूप को दर्शाता है। साधारण तौर से लारेंज वक्र को किसी देश में आय-वितरण की असमानता की माप के लिए प्रयोग किया जाता है। निम्न रेखा-चित्र में एक काल्पनिक लारेंज वक्र दर्शाया गया है। इस रेखा-चित्र में अ-ब पर अर्जकों का प्रतिशत (सबसे निर्धन वर्ग से आरम्भ करते हुए) और अ-स पर आय का प्रतिशत दिखाया गया है। यहाँ अ-ल रेखा (जो विकर्ण खींची गयी है) पूर्ण समानता की रेखा है। इस पर प्रत्येक बिन्दु यह दर्शाता है कि अर्जकों का प्रतिशत भाग और उसको मिलनेवाली आय का प्रतिशत भाग एक-दूसरे के बराबर हैं। आय-वितरण में पूर्ण समानता की स्थिति कल्पना मात्र है, क्योंकि वास्तविक जीवन में आय-वितरण में कम-अधिक असमानता पायी जाता है। मान लें कि किसी देश में आय-वितरण का जो ढाँचा है उसके आधार पर अ-क-ट-ल वक्र खींचा गया है। यह लारेंज वक्र, जो अ-ल रेखा से हटा हुआ है, उस देश में आय-वितरण की असमानता की माप प्रस्तुत करता है। इस लारेंज वक्र के क बिन्दु पर ४० प्रतिशत अर्जकों को केवल २० प्रतिशत आय प्राप्त होती है। और ट बिन्दु पर ८० प्रतिशत अर्जक आय का कुल ४० प्रतिशत भाग प्राप्त करते हैं। इस प्रकार लारेंज वक्र अर्थ-व्यवस्था में आय के असमान वितरण को दिखाते हैं। लारेंज वक्र पूर्ण समानता की रेखा से जितनी दूर हटे हुए होंगे, आय की असमानता उतनी ही अधिक होगी।

इस तकनीक को व्यवहार में लाने के लिए अर्जकों एवं उनके द्वारा अर्जित आय-सम्बन्धी आँकड़ों की जानकारी आवश्यक है। इस प्रकार के विस्तृत और सही आँकड़े आसानी से उपलब्ध नहीं होते, विशेष एवं अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में। इस कारण लारेंज वक्र तकनीक के इस्तेमाल में कठिनाई का सामना करना पड़ता है।



M

machine goods sector (मशीन गुड्स सेक्टर) : मशीनी वस्तु-क्षेत्र।

सामाजिक उत्पादन का वह भाग, जिसमें मशीन, कल-पुर्जे आदि पूंजीगत वस्तुओं का उत्पादन होता है। परन्तु यह सम्पूर्ण पूंजीगत क्षेत्र के वराबर नहीं होता, क्योंकि इसमें कच्चा माल, इमारत आदि वस्तुओं के उत्पादन में लगी इकाइयाँ शामिल नहीं होतीं। इसे तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है। पहला, जहाँ उन मशीनों का उत्पादन होता है जिनसे उपभोग-वस्तुओं का उत्पादन होता है। दूसरा वह भाग, जिसमें मध्यवर्त्ती वस्तुओं का उत्पादन होता है। तीसरा भाग वह है, जिसमें उन मशीनों का उत्पादन होता है जिनकी सहायता से और मशीनों का उत्पादन होता है।

macmillan gap (मैकमिलन गैप) : मैकमिलन अन्तराल।

छोटे तथा मध्यम आकार की औद्योगिक इकाइयों को अपने कामों के लिए वित्तीय साधन (पूंजी, कर्ज आदि के रूप में) जुटाने में दिक्कतों का सामना करना पड़ता है। इसकी वजह है कि पूंजी तथा मुद्रा-बाज़ार में वड़े निर्गमनों तथा कर्जों को तरजीह मिलती है। इस तरह छोटे तथा मध्यम आकार के उद्योगों के साधनों में जो कमी रह जाती है उसे 'मैकमिलन अन्तराल' भी कहा जाता है। सन् १९३१ में ब्रिटेन की सरकार ने एक वित्त और उद्योग समिति मैकमिलन की अध्यक्षता में विठायी थी। इस समिति ने छोटे तथा मध्यम उद्योगों की इस समस्या की ओर ध्यान दिया तथा इसे पूरा करने के तरीकों की सिफारिश की। इसीलिए इस कमी को 'मैकमिलन अन्तराल' भी कहा जाने लगा।

macroeconomics(मैक्रोइकॉनॉमिक्स): समष्टि अर्थशास्त्र।

अर्थशास्त्र की वह शाखा, जिसमें आय, व्यय, उपभोग, रोज़गार, निवेश, कीमत-स्तर, मज़दूरी आदि समुच्चीकृत आर्थिक तत्त्वों तथा उनके पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है। नकारात्मक रूप से यह शाखा आर्थिक तत्त्वों का एकशः या व्यष्टिमूलक दृष्टि से अध्ययन नहीं करती, वरन् उनके किसी समूह-विशेष का समुच्चीकृत रूप से, आपसी अन्तर्सम्बन्धों-सहित, विवेचन करती है। उदाहरण के लिए समष्टिमूलक अर्थशास्त्र में सामान्य कीमत-स्तर के निर्धारण का अध्ययन किया जाता है, जबकि व्यष्टिमूलक अर्थशास्त्र के अन्तर्गत एक-एक वस्तु, सेवा या उत्पादन-साधन की कीमत के निर्धारण की समस्या का विवेचन किया जाता है। समष्टिमूलक अर्थशास्त्र में समुच्चयों के बीच सम्बन्धों का विश्लेषण किया जाता है, प्रणाली की स्थैतिक या गत्यात्मक सन्तुलन की दशाएं मालूम की जाती हैं और सन्तुलन-स्थिति की विशेषताओं का पता लगाया जाता है। इस आधार पर किसी मूल समुच्चय (जैसे

कि निवेश-स्तर या सरकारी व्यय) में परिवर्तनों के परिणामों का प्राक्कलन किया जाता है।

नव-क्लासिकल स्कूल में समष्टि अर्थशास्त्र की समस्याओं की अपेक्षाकृत अवहेलना की गयी थी। लार्ड केन्स की सुविख्यात पुस्तक 'दि जेनरल थिअॅरी' के प्रकाशन के वाद समष्टिमूलक अर्थशास्त्र की ओर ध्यान दिया जाने लगा। वस्तुतः ये दोनों शाखाएँ एक-दूसरी की प्रतिपूरक हैं। कई स्थितियों में तो दोनों के वीच भेद करना मुश्किल हो जाता है। सामान्य कीमत-स्तर को, सापेक्ष कीमतों को अथवा रोज़गार-स्तर के परिवर्तनों को संसाधनों के आवण्टन से पृथक नहीं किया जा सकता है। समष्टि अर्थशास्त्र वड़े समूह से सम्वन्धित विषयों का अध्ययन करता है, अतः यहाँ व्यष्टि अर्थशास्त्र की भाँति यह परिकल्पना नहीं की जा सकती कि जव हम किसी एक इकाई के व्यवहार का अध्ययन करते हैं, तव अन्य इकाइयों का व्यवहार पूर्ववत् रहता है। इस प्रकार समष्टि अर्थशास्त्र की अध्ययन-प्रणाली भी फरक हो जाती है।

maintaining capital intact (मेन्टेनिंग कैपिटल इन्टैक्ट) : पूंजी को स्थिर वनाये रखना।

पूंजी की घिसावट को पुनर्स्थापन द्वारा एक निश्चित, वर्तमान स्तर पर वनाये रखना।

देखिए : depreciation
replacement
gross investment.

malthusian theory of population (माल्थुसियन थिअॅरी ऑफ पॉपुलेशन): मॉल्थस का जनसंख्या-सिद्धान्त।

अठारहवीं शताब्दी में टी० आर० माल्थस नामक अंग्रेज पादरी द्वारा प्रतिपादित जनसंख्या का सिद्धान्त। इस सिद्धान्त में जनसंख्या और जीवननिर्वाह के लिए आवश्यक खाद्यान्नों की वृद्धि-दर का सम्वन्ध दिखाकर जनसंख्या-वृद्धि के खतरों की ओर इंगित किया गया है। खाद्यान्नों का उत्पादन ह्रासमान सीमान्त उत्पादन-नियम की प्रवृत्ति के कारण जनसंख्या-वृद्धि से पिछड़ जाता है। फलस्वरूप प्राकृतिक या निरोधात्मक प्रतिवन्धों का प्रचलन होता है। इस प्रकार इस सिद्धान्त के आधार पर निष्कर्ष निकाला गया है कि मज़दूरी की दर जीवन-निर्वाह के न्यूनतम स्तर से अधिक नहीं की जा सकती; क्योंकि मज़दूरी की दर में वृद्धि जनसंख्या में तेज़ी से वृद्धि लाकर खाद्यान्नों की पूर्ति तथा उनकी माँग में असन्तुलन पैदा कर देगी। फलस्वरूप, प्राकृतिक या निरोधात्मक प्रतिवन्धों द्वारा जनसंख्या कम होगी।

मॉल्थस न केवल आर्थिक प्रगति के प्रभावों, स्वरूप तथा संगठन को समझ नहीं पाये, वरन् स्थिर कृषि-उत्पादन के नियम को कालान्तरवाली गतिमय स्थिति पर लागू करने का असंगत प्रयास भी कर बैठे। इसलिए पिछली डेढ़ शताब्दी का इतिहास मॉल्थस के सिद्धान्त को झुठलाता है। जिन अल्पविकसित देशों में जनसंख्या की वृद्धि को खतरनाक माना जा रहा है, वहाँ इसका कारण जनसंख्या की कृषि-उत्पादन से तीव्र वृद्धि नहीं वरन् आधुनिक औद्योगीकरण की अपर्याप्तता है; फिर भी जनाधिक्यता के खतरों की सम्भावनाओं के

प्रति जागरूकता उत्पन्न करने का श्रेय तो मॉल्थस को सहज ही दिया जा सकता है।

managed currency (मैनेज्ड करेन्सी): प्रवन्धित करेन्सी।

वह मुद्रा-व्यवस्था, जिसमें करेन्सी या मुद्रा की सम्पूर्ण मात्रा पर मुद्रा-प्राधिकारियों का नियन्त्रण रहता है। यदि मुद्रा पूरी तरह से स्वर्ण या रजत कोषों द्वारा समर्थित हो, तो मुद्रा की मात्रा के सम्वन्ध में किसी प्रवन्ध की आवश्यकता ही पैदा नहीं होगी। कारण, इन धातुओं की मात्रा स्वतः ही मुद्रा की मात्रा निर्धारित कर कर देगी। लेकिन इस स्वतः परिचालित प्रक्रिया में इतनी देरी लग सकती है कि आर्थिक जीवन मुद्रा की अत्यधिकता या अत्यल्प मुद्रा के कारण अस्त-व्यस्त हो जाये। अतः मुद्रा की मात्रा को नियमित करना आवश्यक हो जाता है। मुद्रा-नीति और मुद्रा अर्थशास्त्र का ध्येय यह वताना है कि मुद्रा की मात्रा को कव, क्यों और कैसे अनियन्त्रित किया जाये।

management (मैनेजमेण्ट) : प्रवन्ध।

आर्थिक इकाइयों के कार्यों का संचालन। उत्पादन के साधनों के वर्गीकरण में प्रवन्ध को एक पृथक् कोटि का उत्पादन का साधन वताया जाता था। कभी-कभी प्रवन्ध को उद्यम से भी जोड़ा जाता रहा है। वास्तव में देखा जाये तो प्रवन्ध से तात्पर्य है उत्पादन-प्रक्रिया-सम्वन्धी निर्णय लेना, उत्पादन के विविध पहलुओं में सामंजस्य स्थापित करना तथा उत्पादन-सम्बन्धी कार्यों को संगठित-संचालित करना। उद्यमी उत्पादन-प्रक्रिया के बारे में बुनियादी निर्णय लेता है तथा इन निर्णयों से सम्वन्धित रहता है। परन्तु आधुनिक विशिष्टीकरण के कारण उद्यमी तथा प्रवन्धक द्वारा लिये जानेवाले निर्णयों के क्षेत्र में अन्तर हो गया है; पहले वे दोनों प्रकार के निर्णय पृथक् रूप से नहीं लिये जाते थे। इस तरह प्रवन्धक एक विशेष प्रकार क. श्रम करनेवाला उपनाम होता है। श्रमिकों की ही भाँति वे अपनी क्षमताओं को नियत पारिश्रमिक के बदले वेचते हैं।

आधुनिक व्यवसायों की जटिल, तकनीकी प्रकृति के कारण प्रवन्ध वैयक्तिक न रहकर टीम द्वारा किया जानेवाला कार्य हो गया है। यह कार्य एक व्यक्ति द्वारा नहीं किया जाकर समितियों द्वारा किया जाता है। प्रवन्ध में जन्मजात गुणों के मुकावले शिक्षा तथा प्रशिक्षण का महत्त्व वढ़ रहा है।

managerial revolution (मैनेजेरियल रिवोल्यूशन) : प्रवन्धकीय क्रान्ति।

जेम्स वर्नहम द्वारा प्रचलित किया गया शब्द। इसका आशय पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के विकास के उस चरण से है, जव ऐसे निगम आर्थिक संगठन का सर्वप्रमुख रूप वन जायें जिनमें शेयरधारी निर्णायक शक्ति न होकर प्रवन्धक निर्णायक वन जायें। यह परिवर्तन ऐसा है जिसका प्रभाव निजी सम्पत्ति की प्रकृति, आर्थिक शक्ति के केन्द्रीकरण, पूंजीवाद के भावी विकास की दर तथा प्रकृति पर गहरे रूप से पड़ा है। सम्पत्ति के साथ आर्थिक सत्ता का सम्वन्ध प्रवन्धकीय क्रान्ति द्वारा वदला है या नहीं, यह काफी विवादास्पद विषय है। स्पष्ट है कि आधुनिक निगमों वाली अर्थव्यवस्था में प्रवन्धक-वर्ग का महत्त्व वहुत वढ़ गया है। गॉलब्रेथ जैसे अर्थ-

शास्त्री इस शक्तिशाली प्रबन्धक-वर्ग को 'टेक्नोस्ट्रक्चर' कहते हैं।

manchester school (मैंनचेस्टर स्कूल): मैंनचेस्टर सम्प्रदाय।

आर्थिक व्यक्तिवाद या निर्बाध अर्थ-व्यवस्था के मतवाद, जिसके अनुसार राज्य की सर्वोत्तम आर्थिक नीति व्यक्तियों तथा व्यवसायियों के आर्थिक कामों को बिना हस्तक्षेप के चलते रहने देना है। इसका दूसरा नाम मैंनचेस्टरवाद भी है। मैंनचेस्टर सम्प्रदाय के अर्थशास्त्रियों ने, खासकर कॉवडेन तथा ब्राईट ने, इस मत की काफी वकालत की थी। अठारहवीं सदी के पूर्वार्द्ध में ब्रिटेन में अनाज-कानून-विरोधी अभियान के दौरान, स्वतन्त्र या मुक्त व्यापार के समर्थक अर्थशास्त्रियों ने इस मत को आगे बढ़ाया। जर्मनी में राज्य के न्यूनतम आर्थिक कार्यक्षेत्र के इन सिद्धान्तों को खास तौर पर मैंनचेस्टर सम्प्रदाय नाम से जाना जाता था।

manorial system (मैंनोरियल सिस्टम): जागीरदारी प्रथा।

मध्ययुगीन सामन्ती ग्राम्य संगठन-व्यवस्था का नाम, जो इस रूप में मुख्यतः ब्रिटेन में प्रचलित थी। गाँव की अधिकांश जमीन एक भूस्वामी के आधिपत्य में हुआ करती थी। यह भूस्वामी वहाँ का राजा या सामन्त होता था। कुछ गाँव चर्च के अधीन भी होते थे। इस जमीन का, साझे की चरागाहों की जमीन को छोड़कर, एक भाग तो भूस्वामी के अधीन होता था और कुछ जमीन खेतिहरों को दी जाती थी। खेतिहर भूस्वामी की जमीन पर भी काम करते थे और अपने खेत की उपज का एक भाग भूस्वामी को लगान के तौर पर देते थे।

देखिए : feudalism.

manpower (मैंनपावर) : जन-शक्ति।

सब प्रकार के श्रम की वह मात्रा जो देश में किसी विशेष समय पर उपलब्ध होती है।

manufacturing iudustry (मैंनुफैक्चरिंग इन्डस्ट्री): विनिर्माण उद्योग।

ये वे उद्योग हैं, जहाँ प्राथमिक वस्तुओं से विनिर्मित माल तैयार किया जाता है। ये छोटे पैमाने पर भी चलाये जाते हैं और बड़े पैमाने पर भी। इनमें तरह-तरह की वस्तुओं का उत्पादन होता है। अल्प-विकसित देशों में ऐसे उद्योगों का बड़ा अभाव पाया जाता है। राष्ट्रीय आय और रोज़गार में इनका योगदान ऐसे देशों में अपेक्षाकृत बहुत थोड़ा होता है।

marginal cost (मार्जिनल कॉस्ट) : सीमान्त लागत।

एक और इकाई के उत्पादन से जो कुल लागत में वृद्धि होती है, अर्थात् उसके उत्पादन पर जो अतिरिक्त लागत बैठती है, उसे सीमान्त लागत कहते हैं। मान लें कि १० इकाइयों की कुल उत्पादन-लागत १०० रुपये है और ११ इकाइयाँ उत्पादन करने पर कुल लागत को बढ़ाकर १०८ रुपये कर देती हैं। यहाँ सीमान्त लागत ८ रुपये ठहरेगी। उत्पादन बढ़ने पर सीमान्त लागत बढ़ या घट सकती है और समान भी रह सकती है।

उत्पादन-मात्रा के निर्धारण में सीमान्त लागत की अवधारणा विशेष महत्त्व रखती है। पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में कोई फर्म तब तक उत्पादन बढ़ाती रहेगी जब तक कि सीमान्त लागत

कीमत के बराबर नहीं हो लेगी। जिस उत्पादन-मात्रा पर दोनों समान हो जायेंगी, वह सर्वाधिक लाभकारी उत्पादन ठहरेगा। अपूर्ण प्रतियोगिता की दशा में लाभ को अधिकतम करने के लिए सीमान्त लागत को सीमान्त आय (अतिरिक्त आय) के बराबर करना ज़रूरी होता है।

सबसे ज्यादा मुनाफा देनेवाले निवेशों में अतिरिक्त राशि लगाने पर निवेश की लागत पर जो प्रतिफल की दर मिलती है, उसे केन्स ने पूँजी की सीमान्त कुशलता का नाम दिया। किसी निवेश की मुनाफा-क्षमता को प्रतिफल की प्रतिशत-दर की व्याज की न्यूनतम अपेक्षित दर से तुलना करके जाना जा सकता है। वैकल्पिक निवेशों की प्रतिफल-दर की व्याज की न्यूनतम अपेक्षित दर से तुलना करके अधिकतम मुनाफेवाले निवेश का पता लगाया जा सकता है और इन निवेशों को मुनाफे की दृष्टि से क्रमवद्ध किया जा सकता है। किसी भी समय वाज़ार की व्याज-दर निश्चित होने पर, निवेश की मात्रा उस सीमा तक ले जायी जायेगी जहाँ पर पूँजी की सीमान्त कुशलता अनिश्चितता और जोखिम के हिसाब से ठीक व्याज की दर के बरावर हो जायेगी। निवेश के अपूर्ण और अविकसित सिद्धान्तों में इस पूर्वकल्पना का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

marginal firm (मार्जिनल फर्म): सीमान्त फर्म।

वह फर्म, जिसकी उत्पादन-लागत इतनी होती है कि वस्तु की चालू बाज़ार-कीमत से वह पूरी-भर हो सके। ऐसी फर्म अपने को उस व्यवसाय में बनाये रखने तक ही समर्थ होती है। एक प्रकार से वह किनारे पर टिकी होती है। सीमान्त लागत में वृद्धि या औसत आय में कमी होने की दशा में वह अपने को बचा न सकेगी। उसे वह व्यवसाय छोड़ना पड़ेगा।

marginal land (मार्जिनल लैण्ड): सीमान्त भूमि।

वह भूमि, जो खेती की सीमा पर होती है। स्पष्ट शब्दों में यह वह भूमि है, जिस पर वर्तमान कीमतों पर केवल खेती की लागत ही निकल पाती है। लागत के ऊपर कोई वचत नहीं होती और चूँकि अर्थशास्त्र में लगान का आशय बचत से होता है, इसलिए यह लगान-हीन भूमि होती है। इससे ऊपरवाली भूमि पर लगान प्राप्त होगा। लेकिन ध्यान रहे कि सीमान्त भूमि कोई निश्चित कोटि या उर्वरतावाली भूमि नहीं है। लागत या कृषि-पदार्थों की कीमतों में घट-बढ़ होने से पहले की अपेक्षा कम या अधिक उपजाऊ भूमि सीमान्त भूमि का स्थान ग्रहण कर लेगी।

marginal product (मार्जिनल प्रॉड्क्ट): सीमान्त उत्पाद।

किसी साधन की एक और इकाई लगाने से जो उत्पादन में वृद्धि होती है, अर्थात् जो अतिरिक्त उत्पादन होता है, उसे सीमान्त उत्पादन कहते हैं।

marginal productivity theory (मार्जिनल प्रॉडक्टिविटी थिअॅरी): सीमान्त उत्पादिता-सिद्धान्त।

साधनों के कीमत-निर्धारण या वितरण का एक प्रमुख सिद्धान्त। इस सिद्धान्त के अनुसार उत्पादन के किसी साधन का माँग-वक्र उसकी सीमान्त-उत्पादिता द्वारा

तय होता है। यह माँग-वक्र तथा साधन का पूर्ति-वक्र मिलकर वस्तुओं की कीमत की तरह ही साधनों की कीमत निर्धारित करते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार किसी भी साधन की कीमत उसके सीमान्त उत्पाद के वरावर होगी। किसी भी प्रतियोगितात्मक अर्थव्यवस्था में, जहाँ उत्पादक अपना मुनाफा अधिकतम करना चाहते हैं, फर्म साधनों की खरीद तव तक जारी रखेगी जव तक कि सीमान्त उत्पाद साधन की कीमत से ज्यादा है, परन्तु सीमान्त उत्पाद की कीमत के वरावर होने के वाद साधन की और इकाइयों की खरीद फर्म के मुनाफे की दृष्टि से लाभदायक नहीं होती। इस प्रकार सीमान्त उत्पादिता-सिद्धान्त के अनुसार फर्मों का मुनाफा अधिकतम होता है, वल्कि इसके अनुसार साधनों का प्रयोग इस तरह किया जाता है कि वे कम उत्पादितावाले प्रयोगों से अधिक उत्पादितावाले प्रयोगों में लगाये जाते हैं। इस सिद्धान्त का प्रयोग पूँजीवादी वाज़ार-अर्थव्यवस्था की वितरण-व्यवस्था के नैतिक समर्थन के लिए भी किया जाता है। सीमान्त उत्पादिता के अनुसार वितरण का अर्थ यह हुआ कि उत्पादन का हर साधन अपनी उत्पादिता के अनुसार पारिश्रमिक प्राप्त करता है।

परन्तु ध्यान से देखने पर यह दावा उचित प्रतीत नहीं होता है। इस सिद्धान्त से यह अर्थ भी निकलता है कि सीमान्त इकाई के अलावा अन्य सब इकाइयाँ अपनी उत्पादिता से कम पारिश्रमिक प्राप्त करती हैं, क्योंकि उनकी कीमत उनकी उत्पादिता से कम है। सीमान्त उत्पाद की गणना सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक दोनों दृष्टियों से वहुत त्रुटिपूर्ण है। इसकी पूर्वकल्पनाएँ वास्तविक जगत से कतई मेल नहीं रखती हैं। संक्षेप में, सीमान्त उत्पादिता का सिद्धान्त नव-प्रतिष्ठित अर्थशास्त्र की पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था को न्याय-संगत ठहराने की पेशकश से ज्यादा कुछ नहीं है। यदि हर उत्पादन-साधन अपना पारिश्रमिक सीमान्त उत्पादन के आधार पर प्राप्त करे तो इस वितरण-प्रक्रिया में सारा उत्पादन तभी समाप्त होगा जव स्थिर प्रतिफल का नियम लागू होता हो। वास्तविक जगत के वारे में ऐसे तकनीकी सम्वन्धों की पूर्वकल्पना तर्कहीन और असंगत है। इसलिए सारे सीमान्त उत्पादों को जोड़ने की समस्या भी इस सिद्धान्त का खोखलापन जाहिर करती है।

देखिए : euler's theorem.

marginal propensity to consume (मार्जिनल प्रोपेन्सिटी टु कनज़्यूम) : सीमान्त-उपभोग प्रवृत्ति।

आय-वृद्धि का उपभोग-व्यय पर पड़नेवाला प्रभाव। आय में वृद्धि का जो अनुपात उपभोग-व्यय में लगता है, उसे सीमान्त उपभोग-प्रवृत्ति कहते हैं। इस अवधारणा का सर्वप्रथम केन्स ने प्रयोग किया। उनके गुणक सिद्धान्त में इसे महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। केन्स के अनुसार साधारणतया आय के वढ़ने पर सीमान्त उपभोग-प्रवृत्ति में कमी आती है अर्थात् आय-वृद्धि का अधिक अंश वचत में लगेगा। लेकिन निर्धन वर्ग के लोगों में सीमान्त उपभोग-प्रवृत्ति ऊँची होती है।

marginal propensity to save (मार्जिनल प्रोपेन्सिरी टु सेव) : सीमान्त वचत-प्रवृत्ति।

लार्ड केन्स द्वारा प्रयुक्त अवधारणा, जिसका आशय आय-वृद्धि के वचत पर पड़नेवाले प्रभाव से है। आय-वृद्धि का जो भाग वचत करने में लगाया जाता है, उसे सीमान्त वचत-प्रवृत्ति कहते हैं। स्पष्टतया यदि सीमान्त उपभोग-प्रवृत्ति ऊँची है, तो सीमान्त वचत-प्रवृत्ति नीची होगी और सीमान्त उपभोग-प्रवृत्ति नीची होने पर सीमान्त बचत-प्रवृत्ति ऊँची होगी। केन्स के आधारमूलक मनोवैज्ञानिक नियम (आय-वृद्धि के साथ सीमान्त उपभोग-प्रवृत्ति का होना) से सहज निष्कर्ष यह निकलता है कि आय के वढ़ने के साथ सीमान्त बचत की प्रवृत्ति भी बढ़ती है।

marginal rate of substitution (मार्जिनल रेट ऑफ सव्स्टीट्यूशन) : प्रतिस्थापन की सीमान्त दर।

अनधिमान वक्र-विश्लेषण की एक महत्त्वपूर्ण अवधारणा। वह दर जिसके अनुसार एक वस्तु का दूसरी से प्रतिस्थापन करके उपभोक्ता सन्तुष्टि के एक निश्चित स्तर पर बना रहे, यानी न तो उसकी सन्तुष्टि की स्थिति सुधरे और न विगड़े। अर्थात् एक अनधिमान वक्र पर दिखायी गयी दो वस्तुओं के वीच की प्रतिस्थापन-दर को प्रतिस्थापन की सीमान्त दर कहेंगे। जहाँ पर ऐसे आर्थिक विवेक की परिकल्पना की जाती है, जिसके अनुसार उपभोक्ता अधिकतम सन्तुष्टि पाने की दृष्टि से अपने निर्णय लेता है, वहाँ प्रतिस्थापन की सीमान्त दर एक निर्णायक चर होती है। देखिए : indifference curves.

marginal revenue (मार्जिनल रेवेन्यू): सीमान्त आय।

एक और इकाई की विक्री से कुल आय-राशि में जो परिवर्तन होता है, अर्थात् जो अतिरिक्त राशि प्राप्त होती है, उसे सीमान्त आय कहते हैं। इस अवधारणा का महत्त्व इस वात में है कि अपने लाभ को अधिकतम करने (या हानि को न्यूनतम करने) के लिए प्रत्येक उत्पादक तव तक उत्पादन करता रहेगा जवतक कि सीमान्त आय सीमान्त लागत के वरावर न हो लेगी। दोनों के वीच समानता लाभ-अधिकतम-करण का विन्दु है, चाहे उद्योग या वाज़ार की स्थिति किसी भी प्रकार की क्यों न हो। चूंकि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत किसी फर्म के लिए कीमत एक-जैसी रहती है चाहे फर्म अधिक या कम माल की विक्री करे, इसलिए ऐसी दशा में सीमान्त आय कीमत के भी वरावर होगी।

marginal revenue product (मार्जिनल रेवेन्यू प्रॉडक्ट) : सीमान्त-उत्पाद-आय।

किसी उत्पादन-साधन की एक और इकाई के इस्तेमाल से प्राप्त होनेवाली आय। यह आय दो बातों पर निर्भर करेगी : १. उस साधन-इकाई के प्रयोग से प्राप्त उत्पादन-मात्रा और २. बिक्री-कीमत। दोनों को गुणा करके सीमान्त-उत्पाद-आय मालूम की जा सकती है। यदि किसी साधन का सीमान्त उत्पादन ५ इकाई है और बिक्री-कीमत २ रुपये प्रति इकाई है, तो इस दशा में सीमान्त-उत्पाद-आय ५×२=१० रुपये होगी। लाभ को अधिकतम करने के लिए कोई फर्म साधनों को तव तक लगाती रहेगी जव तक कि सीमान्त आय सीमान्त

लागत से अधिक होगी ।

marginal social product (मार्जिनल सोशल प्रॉडक्ट) : सीमान्त सामाजिक उत्पादन ।

सामाजिक उत्पादन में, या सामाजिक कल्याण में, उत्पादन के किसी साधन को काम में लायी गयी मात्रा में हुई थोड़ी-सी वृद्धि के कारण हुआ परिवर्तन सीमान्त सामाजिक उत्पादन कहलाता है ।

देखिए : social product.

marginal utility (मार्जिनल युटिलिटी): सीमान्त उपयोगिता ।

एक अतिरिक्त इकाई से प्राप्त उपयोगिता । किसी वस्तु की एक और इकाई की खरीद या उपभोग से जो कुल उपयोगिता में परिवर्तन आता है, उसे सीमान्त उपयोगिता कहते हैं। माल लें, कोई व्यक्ति चार आम खरीदता है जिनसे उसे कुल १०० इकाई उपयोगिता प्राप्त होती है; और जब वह एक और आम खरीदता है, तब कुल उपयोगिता बढ़कर ११० इकाई हो जाती है। यहाँ आम की सीमान्त उपयोगिता १० इकाई ठहरेगी। साधारणतया एक सीमा के बाद जैसे-जैसे किसी वस्तु की अधिकाधिक खरीद की जाती है, वैसे-ही-वैसे उसकी सीमान्त उपयोगिता गिरती जाती है ।

देखिए : diminishing marginal u ility.

market (मार्केट) : बाज़ार :

बाज़ार से तात्पर्य किसी वस्तु, सेवा या साधन को खरीदने को तैयार क्रेताओं तथा उसे बेचने को तत्पर विक्रेताओं के बीच के सम्बन्ध या सम्पर्क से है। जब किसी वस्तु, सेवा या साधन के लिए क्रेता या खरीदार (माँग करनेवाले) और विक्रेता (पूर्ति करनेवाले) हैं और वे आपस में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सम्पर्क स्थापित करके सौदे करते हैं तो उस वस्तु, सेवा या साधन के लिए बाज़ार विद्यमान है । इस प्रकार बाज़ार-विनिमय अर्थव्यवस्थाओं की एक अनिवार्य और मुख्य संस्था है । जिन अर्थव्यवस्थाओं में इन बाज़ार के सौदों द्वारा महत्त्वपूर्ण आर्थिक निर्णय लिये जाते हैं और ये निर्णय आर्थिक प्रक्रिया के संचालन के आधार पर होते हैं, उन अर्थव्यवस्थाओं में बाज़ार आर्थिक व्यवस्था की धुरी होते हैं । परन्तु योजनाबद्ध अर्थव्यवस्थाओं में भी बाज़ार विद्यमान होते हैं और महत्त्वपूर्ण काम करते हैं।

इस तरह बाज़ार का अर्थ आवश्यक रूप से किसी निश्चित स्थान से सम्बन्धित नहीं होता है ।

देखिए : market economy
perfect competition
imperfect competition
price mechanism.

marketable surplus (मार्केटेबुल सर्प्लस) : विक्रेय अधिशेष ।

उत्पादन का एक भाग उत्पादक अपने निजी उपभोग के लिए, स्टॉक के लिए अथवा भविष्य में उत्पादन आदि के उद्देश्य से अपने पास रखते हैं । उत्पादन का शेष भाग विपणन के लिए उपलब्ध होता है, जिसे विक्रेय अधिशेष कहा जाता है । कृषि-उत्पादन के क्षेत्र में इस अवधारणा का विशेष प्रयोग किया जाता है । द्रुत गति से आर्थिक विकास के लिए उत्पादन में भारी वृद्धि के साथ-साथ

विक्रेय अधिशेष की मात्रा में भी पर्याप्त वृद्धि लाना आवश्यक होता है।

market economy (मार्केट इकॉनॉमि) बाज़ार-अर्थव्यवस्था।

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का ही एक नाम, जो उसके संगठन, कार्य-प्रणाली और संस्थागत स्वरूप के एक पहलू को स्पष्ट करता है। ऐतिहासिक सन्दर्भ में पूंजीवाद के पहले की आर्थिक प्रणाझियों में बाज़ार या तो थे ही नहीं या बहुत कम व्यापक तथा सीमित थे। पूंजीवादी प्रणाली में बाज़ार को मुख्य धुरी माना जा सकता है। यहाँ वस्तुओं, सेवाओं, साधनों तथा वित्तीय साधनों (मुद्रा तथा उससे सम्बन्धित विभिन्न उपकरणों) आदि सबके बाज़ार होते हैं। इन बाज़ारों में माँग और पूर्ति की शक्तियों द्वारा तय चरों और निर्णयों के आधार पर सारे आर्थिक कार्य चलते हैं। साधनों का आवण्टन, उत्पादन का स्वरूप, आय का वितरण, कीमतों का निर्धारण, निवेश, बचत तथा भुगतान-सन्तुलन की स्थिति और यहाँ तक कि तकनीकी परिवर्तन के स्वरूप और दिशा सब बाज़ार की शक्तिग्रों द्वारा निर्धारित होते हैं।

आजकल की अर्थव्यवस्थाओं में पूर्ण प्रतियोगिता के तत्त्वों का लुप्त होता रूप, राजकीय कार्यों का बढ़ता क्षेत्र बाज़ार की शक्ति को अर्थव्यवस्था के संगठन तथा प्रबन्ध में कम तो करता है, परन्तु उनकी मूलभूत और निर्णायक भूमिका तो निजी सम्पत्ति, वर्ग-विभेद (श्रम के बाज़ार के जन्म) और निजी उद्यम-प्रणाली से जुड़ी हुई होने के कारण बरकरार है। इस प्रकार बाज़ार महज आर्थिक और तकनीकी सम्बन्धों को ही नहीं वरन मौलिक सामाजिक सम्बन्धों को भी प्रतिबिम्बित और प्रभावित करते हैं।

बाज़ार-अर्थव्यवस्था या प्रणाली को मुक्त या निर्बाध बाज़ार-प्रणाली, नीति या प्रक्रिया से आवश्यक रूप से सम्बन्धित ही नहीं किया जाता है, वरन् उसके पर्याय के रूप में भी पेश किया जाता है। पिछले सौ-डेढ़ सौ सालों के आर्थिक इतिहास, इस दौर के आर्थिक सिद्धान्त और समाजवादी देशों में अभी भी प्रचलित बाज़ारों के आधार पर इस मत को रद्द किया जा सकता है। इसी प्रकार बाज़ार-अर्थव्यवस्था को आवश्यक रूप से पूर्ण प्रतियोगिता, मुनाफा अधिकतम करने की प्रेरणा, राजकीय हस्तक्षेप की नीति आदि से सम्बन्धित नहीं किया जा सकता। बाज़ार-अर्थव्यवस्था का मूल तत्त्व माँग तथा पूर्ति की शक्तियों द्वारा कीमत-निर्धारण है। इस प्रक्रिया में निजी उद्यम का बड़ा हाथ होना जरूरी नहीं है। सामाजिक स्वामित्ववाले फर्म भी इस प्रक्रिया में भाग ले सकते हैं। इन कीमतों का प्रभाव-क्षेत्र भी उतना व्यापक होना जरूरी नहीं है, जितना कि पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में होता है। एकाधिकार, अल्पाधिकार और अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में भी बाज़ार और उसकी शक्तियाँ कार्यरत होंगी—केवल उनके तरीके और कार्यक्षेत्र बदल जायेंगे। बाज़ार को आर्थिक संगठन और प्रबन्ध की एक महत्त्वपूर्ण और प्रभावशाली प्रणाली समझना चाहिए।

देखिए : capitalism
laissez faire
price mechanism.

marketed surplus (मार्केटेड सरप्लस्): विक्रीत अधिशेष।

कुल उत्पादन का वह भाग, जिसकी वास्तव में विक्री की जाती है। विक्री के लिए माल का कितना भाग उत्पादक बाज़ार में लायेंगे, यह मुख्य रूप से वर्तमान कीमत-स्तर और कीमत के भावी अनुमान पर निर्भर करेगा। यदि उत्पादक की दृष्टि से कीमत अनुकूल है, तो वह स्टॉक से अधिक माल निकालकर वेचने के लिए तैयार होंगे। इसके विपरीत दशा में विक्रीत अधिशेष कम होगा, लोग स्टॉक में अधिक माल रखना पसन्द करेंगे। इस प्रकार विक्रेय अधिशेष की तुलना में विक्रीत अधिशेष कम भी हो सकता है और अधिक भी।

market forces (मार्केट फोर्सेज): बाज़ार-शक्तियाँ।

माँग और पूर्ति की शक्तियाँ, जो मिलकर किसी वस्तु की कीमत और उसकी क्रय-विक्रय की मात्रा निर्धारित करती हैं। सरकार या बड़ी-बड़ी फर्में बाज़ार-शक्तियों को मोड़ व प्रभावित कर सकती हैं। पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में कोई भी फर्म अपनी ओर से इन शक्तियों पर निर्णायक असर नहीं डाल सकती।

market price (मार्केट प्राइस): बाज़ार-कीमत।

अल्पकालीन सन्तुलन-कीमत, जो बाज़ार में किसी समय-विशेष पर माँग और पूर्ति की बाज़ार-शक्तियों द्वारा निर्धारित होती है। यह वह कीमत है, जिस पर किसी दिन या समय पर बाज़ार में किसी वस्तु का वास्तव में क्रय-विक्रय होता है। माँग और पूर्ति में परिवर्तन होने के साथ-साथ बाज़ार-कीमत घटती-बढ़ती रहती है। लेकिन यह उतार-चढ़ाव सामान्य तौर से वस्तु की सामान्य कीमत के इर्द-गिर्द ही होता है।

देखिए : equilibrium price.

marxian economics (मार्क्सियन इकॉनॉमिक्स): मार्क्सवादी अर्थशास्त्र।

बहुमुखी व्यक्तित्व और प्रतिभा के धनी कॉर्ल मार्क्स (१८१८-१८८३) राजनीतिक अर्थशास्त्र के प्रख्यात और क्रान्तिकारी प्रणेता भी थे। उनके आर्थिक सिद्धान्त मार्क्सवादी अर्थशास्त्र के नाम से जाने जाते हैं। अपने अप्रतिम ग्रन्थ 'कैपिटल' के तीन खण्डों के अलावा मार्क्स की आर्थिक विषयों पर अनेक रचनाएँ हैं, जिनमें आर्थिक प्रश्नों को सम्पूर्ण सामाजिक परिप्रेक्ष्य में एकीकृत रूप से समझाया गया है। मार्क्स के आर्थिक सिद्धान्त न केवल व्यापक गम्भीर और सैद्धान्तिक महत्त्व के हैं, बल्कि आलोचना, तोड़-मरोड़ और भ्रामक प्रचार के बावजूद सर्वाधिक लोकप्रिय तथा व्यवहारजगत में प्रभावशाली हैं। आज प्रायः एक तिहाई दुनिया सचेतन रूप से मार्क्स के सिद्धान्तों के आधार पर अपनी सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था की संरचना और संचालन में लगी हुई है।

मार्क्स का उद्देश्य पूंजीवादी व्यवस्था के गति के नियमों की व्याख्या करके एक क्रान्तिकारी समाजव्यवस्था के निर्माण की प्रक्रिया को बल देना था। वैज्ञानिक तर्क के नाम पर मार्क्स ने अपने सामाजिक उद्देश्यों को छिपाकर नहीं रखा। मार्क्स के आर्थिक सिद्धान्तों को क्लासिकल अर्थशास्त्र, खास कर एडम स्मिथ और रिकार्डो

की परम्परा, के परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए।

मार्क्स ने मनुष्य-समाज की सारी विकास-प्रक्रिया को अपने ऐतिहासिक भौतिकवाद या द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के सिद्धान्त के द्वारा समझाते हुए न केवल पूँजीवाद की ऐतिहासिकता को उजागर किया, वरन् मूलभूत आर्थिक-सामाजिक शक्तियों और प्रक्रियाओं और उनके सम्वन्धों का आधारभूत सिद्धान्त भी विकसित किया। उत्पादन-प्रक्रिया को सामाजिक उत्पादन-शक्तियों और सामाजिक उत्पादन-सम्वन्धों के जरिये स्पष्ट करते हुए मार्क्स ने उत्पादन-प्रणाली का एक ऐसा प्रारूप दिया जो उनके उद्‌गम, कार्य-प्रणाली, और विकास की प्रक्रिया को समझाने में समर्थ था। उत्पादन-शक्तियों और उत्पादन-सम्वन्धों की आपसी अन्तर्क्रिया द्वारा अन्तर्विरोधों के पैदा होने और उनके सुलझने से समाज-विकास की प्रक्रिया संचालित होती है। इस प्रक्रिया में मार्क्स ने आर्थिक विकास के क्रम को सामाजिक और राजनैतिक विकास की प्रक्रिया से आवश्यक रूप से सम्बन्धित किया।

इस व्यापक सिद्धान्त के मातहत मार्क्स ने पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली की व्याख्या की। मार्क्स की व्याख्या महज सैद्धान्तिक न होकर ठोस राजनीतिक-समाजिक कार्यक्रम की आधारशिला थी। पूँजीवाद में सामाजिक उत्पादन-सम्वन्ध दो परस्पर-विरोधी, वर्गों के आधार पर टिके हैं और निजी स्वामित्व तथा उद्यम के कारण पूँजीपति-वर्ग श्रमिक-वर्ग का का शोषण करता है। पूँजीवाद उत्पादन-शक्तियों का तीव्र विकास करने में समर्थ होता है; क्योंकि इस व्यवस्था में श्रम-विभाजन, संचय तथा तकनीकी प्रगति के अनुकूल परिस्थितियाँ विद्यमान होती हैं। मूल्य के श्रम-सिद्धान्त के आधार पर मार्क्स ने इस शोषण की व्यवस्था के वास्तविक स्वरूप को स्पष्ट किया जो कीमत, विनिमय और मुनाफे की सतह के नीचे छिपा रहता है। इस सिद्धान्त के आधार पर मार्क्स ने पूँजीवाद में अधि-शेष के उत्पन्न होने, अधिकृत किये जाने और उसके प्रसार के कारण, प्रक्रिया और प्रभावों का विवेचन किया। इस प्रकार मार्क्स ने उत्पादन की सामाजिक परि-स्थितियों को आर्थिक सिद्धान्तों में उनका उचित स्थान दिलाया। पूँजीवाद के पृष्ठ-पोषक आर्थिक सिद्धान्त जहाँ आर्थिक क्रियाओं को शुद्ध तकनीकी आधार पर देखते हैं, वहाँ मार्क्स ने ऐसे आर्थिक सिद्धान्तों के वर्ग-हित-पोषक रूप को स्पष्ट किया।

मार्क्स के अर्थशास्त्र में 'शोषण की दर' एक महत्त्वपूर्ण अवधारणा है। मजदूर अपने काम के घण्टों का एक भाग अपने उपभोग के लिए आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन में खर्च करता है और शेष भाग पूँजीपति के लिए उत्पादन करने में लगाता है। आधुनिक अर्थव्यवस्थाओं में, जहाँ कोई भी अकेले किसी वस्तु का उत्पादन नहीं करता है, श्रमिक के काम के इस विभाजन को आगत-निर्गत की एक बृहत व्यवस्था के अंग के रूप में ही दिखाया जा सकता है। अब शोषण की दर को सारी अर्थ-व्यवस्था के निवल मुनाफे और मजदूरी के अनुपात के रूप में प्रकट किया जा

सकता है।

मार्क्स के अनुसार, पूंजीपति के लिए श्रम के मूल्य तथा पूंजीपति द्वारा श्रमिक को दिये गये मूल्य का अन्तर 'अधिशेष मूल्य' (स) है। मजदूरी चुकाने के लिए जरूरी पूंजी को 'परिवर्तनीय पूंजी' (व) कहा गया और वाकी की पूंजी को 'अपरिवर्तनीय पूंजी' (क) बताया गया। अतः मार्क्स के अनुसार, सकल राष्ट्रीय उत्पाद स+व+क के वरावर होगा। सारी पूंजी में परिवर्तनीय पूँजी का अनुपात 'पूँजी की आंगिक संरचना' स/व 'शोषण की दर' और $\frac{स}{क+व}$ 'मुनाफे की दर'—ये मार्क्सवादी अर्थशास्त्र की प्रमुख अवधारणाएँ हैं। पूंजीपति मज़दूरों से शोषण किये गये अधिशेष को संचय तथा श्रम की जरूरत घटानेवाले तकनीकी विकास में लगाते हैं। इससे पूँजी की संरचना बढ़ती है। चूँकि केवल परिवर्तनीय पूँजी ही अधिशेष उत्पन्न करती है, इसलिए सारी पूँजी में परिवर्तनीय पूँजी के अनुपात घटने तथा शोषण की दर के अपरिर्वातित रहने की परिकल्पना के आधार पर मुनाफे की दर घटेगी। मार्क्स के मतानुसार मुनाफे की दर घटने की प्रवृत्ति पूँजीवाद के अन्तर्विरोधों का नतीजा है। इन अन्तर्विरोधों के कारण पूंजीवाद अन्ततः समाप्त हो जायेगा और समाजवादी व्यवस्था का जन्म होगा। मार्क्स ने मज़दूरों की संगठित शक्ति और राजनीतिक पहल को भी इस काम में महत्त्वपूर्ण भूमिका दी।

मार्क्स ने गतिमय अर्थशास्त्र की भी वैज्ञानिक दृष्टि से माकूल नींव रखी। आधुनिक विकास के अर्थशास्त्र की सारी सूझ-बूझ के मूल में उनका सरल पुनरोत्पादन तथा विस्तृन पुनरोत्पादन का सिद्धान्त और विभाग-एक तथा विभाग-दो की अवधारणा है।

मार्क्सवादी अर्थशास्त्र का मार्क्स के वाद भी काफी विकास हुआ है। एंगेल्स, लेनिन, बुखारिन, प्रियोब्रे झेन्सकी, रोज़ा ल्यूक्जेमवर्ग, मौरिस डोव, ओस्कर सांगे आदि के अलावा समाजवादी आर्थिक आयोजन की प्रक्रिया में लगे अनेक राजनीतिक अर्थशास्त्रियों ने मार्क्स के विचारों और सिद्धान्तों को आगे वढ़ाया है।

देखिए : mode of production
labour theory of value
surplus value.

mass production (मास प्रॉडक्शन) : अधिमात्रा उत्पादन।

किसी मानकित वस्तु का बड़े पैमाने पर उत्पादन, जिसके फलस्वरूप औसत लागत और कीमत कम हो जाती है। इसके लिए श्रम-विभाजन और यन्त्रीकरण का वड़ा सहारा लिया जाता है।

देखिए : large scale production.

mass unemployment (मास अनएम्प्लॉयमेण्ट) : व्यापक वेरोज़गारी।

यह वेरोज़गारी व्यापक मन्दी के काल में पैदा होती है जव लगभग सभी उद्योगों में भारी संख्या में श्रमिक बेकार हो जाते हैं। माँग में कमी इस प्रकार की बेरोज़गारी का मूल कारण होती है। यह बेरोज़गारी का अत्यन्त हानिकर रूप है और इसे दूर करने के लिए पूर्ण रोज़गार की योजनाएँ तैयार की जाती हैं।

maximum social advantage (मैक्सिमम् सोशल एडवाण्टेज) : अधिकतम सामाजिक हित ।

कल्याण के अर्थशास्त्र की एक मुख्य धारणा, जिसका आर्थिक नीति, सार्वजनिक वित्त आदि के विश्लेषण में प्रयोग किया जाता है ।

अधिकतम सामाजिक हित को कई तरह से समझाया गया है । एक मत के अनुसार आर्थिक नीतियाँ ऐसी होनी चाहिए कि वे समाज की कुल सन्तुष्टि को अधिकतम करें । यहाँ सन्तुष्टि को मापनीय माना गया है । यह भी माना गया है कि समाज के सब सदस्यों की निजी सन्तुष्टि को जोड़कर समाज की कुल सन्तुष्टि जानी जा सकती है । इस मत के अनुयायी यह भी मानते हैं कि धनी व्यक्ति की आय की सीमान्त उपयोगिता गरीब व्यक्ति की सीमान्त उपयोगिता से कम होती है । अतः करारोपण तथा अन्य आर्थिक कदम, जो आय को गरीबों के हक में पुनर्वितरित करते हैं, सामाजिक हित को अधिकतम करते हैं ।

दूसरी ओर कई अर्थशास्त्री अन्तरवैयक्तिक उपयोगिताओं को तुलनीय नहीं मानते हैं । वे लोग, विलफ्रेडो पैरेटो की राय में हाँ मिलाते हुए, अधिकतम सामाजिक हित उस स्थिति में समझते हैं जब कोई भी ऐसा काम सम्भव न हो जो बिना कुछ लोगों की सन्तुष्टि कम किये कुछ लोगों की सन्तुष्टि बढ़ा दे ।

बर्गसन का कल्याण-फलक तथा अन्य कई कल्याण-फलक भी अधिकतम सामाजिक हित की स्थिति का विश्लेषण करते हैं । ये सब सिद्धान्त बहुत व्यक्तिनिष्ठ हैं और समाज की प्रकृति को गलत ढंग से समझते तथा समझाते हैं । इनकी व्यावहारिक उपयोगिता शून्य है ।

देखिए : welfare economics.

means of production (मीन्स ऑफ प्रॉडक्शन) : उत्पादन के साधन ।

उत्पादन-कारकों या साधनों के लिए एक वैकल्पिक शब्द । यद्यपि इस शब्द का प्रयोग कभी-कभी केवल भूमि तथा पूंजी के लिए किया जाता है, अन्यथा भूमि, पूंजी और श्रम के साथ-साथ इसमें उद्यम तथा संगठन को भी समान महत्व प्रदान किया जाता है ।

medium of exchange (मीडियम ऑफ एक्सचेंज) : विनिमय माध्यम ।

मुद्रा का एक मुख्य कार्य । मुद्रा विनिमय का माध्यम या साधन है । वस्तुओं और सेवाओं का विनिमय मुद्रा के माध्यम से होता है । इस कार्य को सम्पन्न करना मुद्रा के लिए इस कारण सम्भव है कि इसमें सर्वमान्यता या सर्वग्राह्यता का गुण होता है । प्रत्येक व्यक्ति लेन-देन में बिना किसी हिचकिचाहट के मुद्रा स्वीकार करने के लिए तैयार रहता है । मुद्रा के इस प्रकार के कार्य से विनिमय-क्रिया बहुत सुविधाजनक बन जाती है और वस्तु-विनिमय की सबसे बड़ी कठिनाई, जो आवश्यकताओं के दोहरे संयोग के अभाव के रूप में सामने आती है, पूर्णतया दूर हो जाती है ।

memorandum of association (मेमोरण्डम ऑफ अशोसिएसन) : कम्पनी नियमावली ।

किसी कम्पनी के आकार, स्वरूप, रचना-विधान, प्रयोजन आदि का विवरण-

पत्र। जब किसी नयी कम्पनी का गठन किया जाता है, तब उससे सम्बद्ध अनेक दस्तावेज तैयार किये जाते हैं जिनमें नियमावली या विवरण-पत्र भी एक दस्तावेज होता है। इसमें कम्पनी का नाम, व्यवसाय का विवरण, अधिकृत पूँजी की राशि, समस्त पूँजी के कुल शेयरों की मात्रा तथा अंकित मूल्य, पंजीकृत कार्यालय का पता तथा सीमित देयता के सम्बन्ध में उस कम्पनी के निदेशकों के बयान आदि का विस्तृत विवरण दिया जाता है।

mercantilism (मर्केण्टिलिज्म) : वणिकवाद।

सत्रहवीं तथा अठारहवीं शताब्दी के शुरू के वर्षों में प्रचलित आर्थिक विचार-धारा, जो मूलतः देश की समृद्धि और उसके विदेश व्यापार-शेष के बीच सम्बन्ध के साथ जुड़ी हुई थी। वणिकवादी विचारक स्वर्ण व रजत अथवा मुद्रा-धातु को देश की शक्ति एवं सम्पन्नता का आधार मानते थे। इनके अनुसार देश को शक्तिशाली एवं सम्पन्न बनाने के लिए बहुमूल्य धातुओं के स्टॉक में वृद्धि लाना आवश्यक था। यह कार्य व्यापार-शेष को अनुकूल बनाकर किया जा सकता था। आयात की अपेक्षा निर्यात जितना अधिक हो, वह देश उतना ही अधिक बहुमूल्य धातु दूसरे देशों से पाकर अपनी शक्ति व समृद्धि को बढ़ा सकता था।

इस प्रकार वणिकवादियों के लिए अनुकूल व्यापार-शेष केन्द्र-बिन्दु बन गया। उन्होंने इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए आयात को न्यूनतम रखने एवं निर्यात को अधिकाधिक बढ़ाने की नीति का प्रतिपादन किया, ताकि इसके सहारे देश के लिए अधिक मात्रा में स्वर्ण की प्राप्ति सम्भव हो सके। इस नीति के सम्बन्ध में इस प्रकार के अनेक कार्य आवश्यक ठहराये गये : १. व्यापार तथा मुद्रा-संचलन का संवर्धन करना और इसके निमित्त देश के भीतर समृद्धि को बढ़ावा देनेवाली परिस्थितियों को बनाये रखना, २. मूल्यवान धातुओं और औद्योगिक कच्चे मालों को छोड़कर अन्य वस्तुओं के आयात को हतोत्साहित करना या निषिद्ध करना, ३. हर सम्भव उपाय से निर्यात को बढ़ाना और इसके बदले में स्वर्ण प्राप्त करने के लिए सुविधाओं की व्यवस्था करना, तथा ४. व्यापारिक सन्धियों के जरिये अपने फालतू उत्पादनों के लिए नये-नये बाज़ार खोजना एवं विदेशी बाज़ारों में विशेष रियायतें प्राप्त करने के लिए प्रयास करना। इस तरह के कार्य सरकारी सहयोग के बिना भली प्रकार नहीं किये जा सकते थे। इस कारण वणिकवादियों ने आर्थिक क्षेत्र में बड़े पैमाने पर सरकार द्वारा भाग लिये जाने पर विशेष बल दिया।

काफी लम्बे समय तक इस नीति का बड़ा प्रभाव रहा। यूरोप के लगभग सभी व्यापारी देशों ने इस नीति को अपनाया और इसके अनुरूप अपनी अर्थव्यवस्थाओं में अनेक विशेष परिवर्तन किये। निर्यात योग्य माल के उद्योगों में भारी निवेश किये गये, आयातों से स्पर्धा करने में स्वदेशी उद्योगों को समर्थ बनाने के लिए विदेशी माल पर भारी प्रशुल्क लगाये गये, और अनेक देशों में तो सोना-चाँदी को विदेशियों के हाथ बेचने पर कड़े प्रतिबन्ध भी लगा दिये गये।

एडम स्मिथ ने इस विचारधारा की कड़ी आलोचना की और इसके स्थान पर अवन्ध नीति का प्रतिपादन किया। वणिकवादियों ने अवश्य अपनी कुछ वातों को बहुत वढ़ा-चढ़ाकर रखा और कहीं-कहीं उनके विचारों में विरोधामास भी पाया जाता है, फिर भी मुद्रा के गत्यात्मक कार्यों एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार-सम्वन्धी समस्याओं के विश्लेषण में इनका योगदान काफी महत्त्वपूर्ण रहा है।

merger (मर्ज़र) : विलयन।

एक कम्पनी द्वारा दूसरी कम्पनी को आत्मसात करना या अपने कलेवर में उसे इस प्रकार से विलीन कर लेना कि केवल एक कम्पनी का ही अस्तित्व रह जाये और दूसरी कम्पनी का अस्तित्व समाप्त हो जाये। इस प्रक्रिया में अधिकतर तीन तरीकों का प्रयोग किया जाता है। एक तरीके के अनुसार एक कम्पनी दूसरी कम्पनी की परिसम्पत्तियों को खरीद लेती है और वदले में क्रेता कम्पनी नकद या हुण्डियों के रूप में भुगतान कर देती है। दूसरे तरीके में क्रेता कम्पनी दूसरी कम्पनी के सारे स्टॉक खरीद लेती है और वह उस क्रीत या विकी हुई कम्पनी की धारक कम्पनी बन जाती है, लेकिन क्रीत कम्पनी एक अलग कम्पनी के रूप में अपना कारोवार करती रहती है। तीसरे तरीके के अन्तर्गत एक कम्पनी दूसरी कम्पनी की परिसम्पत्तियों तथा देयताओं को स्वयं धारण कर लेती है, किन्तु उसके स्टॉक खरीदनेवाली कम्पनी को देने की वजाय उसके स्वामियों को दिये जाते हैं। इसमें दूसरी कम्पनी का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। इस व्यवस्था को सांविधिक विलयन भी कहा जाता है।

microeconomics (माइक्रोइकॉनॉमिक्स) : व्यष्टि अर्थशास्त्र।

व्यक्ति, फ़र्म, वस्तु, कीमत, मज़दूरी आदि के आर्थिक पक्ष का एकशः या व्यष्टिमूलक अध्ययन। यह अर्थशास्त्र की वह शाखा है, जिसमें भिन्न-भिन्न फर्मों, उनके उत्पादन तथा लागत, किसी एक वस्तु का उत्पादन तथा उसकी कीमत, अलग-अलग श्रमिकों की मज़दूरी आदि का एकशः अध्ययन किया जाता है। इसके विपरीत समष्टि अर्थशास्त्र में कुल राष्ट्रीय आय, उपभोग तथा माँग, समस्त वचत, निवेश और रोज़गार आदि का विवेचन होता है। व्यष्टिमूलक अर्थशास्त्र के अन्तर्गत व्यक्तिगत फर्मों अथवा उद्योगों के संगठन तथा संचालन के सिद्धान्तों का अध्ययन किया जाता है। इसका मूलभूत उद्देश्य उस प्रक्रिया को समझना है, जिसके अनुसार किसी समाज के कुल संसाधनों का वैकल्पिक प्रयोगों के बीच आवण्टन होता है। यहाँ केन्द्रीय अवधारणा का स्थान वाज़ार को प्राप्त होता है।

middleman (मिडिलमैन): विचौलिया, दलाल।

कोई ऐसा व्यापारी, जो उत्पादक तथा उपभोक्ता के वीच वस्तुओं के वितरण-कार्य में लगा हो। विचौलियों के अनेक रूप होते हैं; जैसे : सौदागर, थोक व्यापारी, फुटकर विक्रेता, क्रय-विक्रय दलाल, भड़सारी, अभिकर्ता आदि। उपभोक्ता और उत्पादक के बीच जितनी अधिक दूरी होगी अथवा वितरण-प्रक्रिया में जितनी अधिक जटिलता होगी या

उसमें विशेषज्ञता की जितनी अधिक मात्रा होगी, बिचौलियों की संख्या भी उतनी अधिक होगी। तकनीकी प्रगति के कारण उत्पादन, वितरण, उपभोग आदि के कार्यों में जटिलता तथा विशेषज्ञता बढ़ जाने के फलस्वरूप वर्तमान युग में बिचौलिये का महत्त्व भी बढ़ गया है। लेकिन जब बिचौलियों की संख्या आवश्यकता से अधिक बढ़ जाती है, तब एक ओर तो उपभोक्ताओं को ऊँची कीमतें देनी पड़ती हैं और दूसरी ओर वास्तविक उत्पादकों को उपभोक्ताओं द्वारा दी गयी कीमत का अपेक्षाकृत थोड़ा भाग ही मिल पाता है, जिसका उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

mint par of exchange (मिण्ट पार ऑफ एक्स्चेंज): विनिमय की टकसाल-दर।

स्वर्णमान के समय में प्रयुक्त अवधारणा स्वर्णमान अपनानेवाले दो देशों की करेन्सी की विनिमय-दर उनमें मौजूद शुद्ध स्वर्ण धातु की मात्रा के आधार पर निर्धारित होती थी। इस प्रकार निर्धारित दर को मुद्रा-विनिमय की टकसाल-दर कहते थे। बाजार-विनिमय-दर इस टकसाल-दर के ऊपर-नीचे स्वर्ण-बिन्दुओं की सीमाओं के भीतर रहती थी।

mint ratio (मिण्ट रेशिओ): टकसाल अनुपात।

द्विधातुमान करेन्सी-प्रणाली के अन्तर्गत दो धातुओं के मूल्यों के बीच अनुपात।

mixed economy (मिक्स्ड इकॉनॉमि): मिश्रित अर्थव्यवस्था।

एक बहुत प्रचलित, परन्तु बहुत अस्पष्ट अवधारणा। आर्थिक प्रणालियों का क्रमिक विकास होता रहता है। इस विकास की प्रक्रिया के प्रेरक तत्त्व प्रत्येक देश में अपना विशिष्ट रूप रखते हैं। इन तत्त्वों के कारण कोई भी अर्थव्यवस्था किसी आर्थिक प्रणाली का शत-प्रतिशत शुद्ध प्ररूप नहीं हो सकती है। प्रत्येक आर्थिक प्रणाली में अतीत की आर्थिक प्रणालियों के कुछ अवशेष पाये जायेंगे। साथ ही, वर्तमान आर्थिक प्रणाली के विकास के चरण के अनुरूप कुछ विशिष्टताएँ तथा आगत की आर्थिक प्रणाली के कुछ स्पष्ट या अस्पष्ट चिन्ह भी वहाँ विद्यमान होंगे। इस प्रकार हर अर्थव्यवस्था अनेक आर्थिक प्रणालियों का मिश्रण होती है।

परन्तु भारत तथा पश्चिम के पूंजीवादी देशों में मिश्रित अर्थव्यवस्था का अर्थ हो गया है, उत्पादन के संसाधनों के स्वामित्व की ऐसी प्रणाली जिसमें निजी सम्पत्ति के साथ-साथ सार्वजनिक तथा सहकारी सम्पत्ति भी पायी जाती है, और इनमें राज्य अपने व्यापक आर्थिक कार्यों को योजनाबद्ध रूप से संचालित करता है। कई लोग इस सीमित सार्वजनिक स्वामित्व और आयोजन को समाजवाद का लक्षण मानकर कहते हैं कि मिश्रित अर्थव्यवस्थाएँ वे हैं, जिनमें पूंजीवाद तथा समाजवाद दोनों साथ-साथ पाये जाते हैं। यह गलत विचार है। पूंजीवाद तथा समाजवाद साथ-साथ नहीं पाये जा सकते हैं और न समाजवाद को सार्वजनिक क्षेत्र या आर्थिक आयोजन मात्र द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में वास्तव में होता यह है कि पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाएँ

निजी सम्पत्ति, निजी उद्यम और बाज़ार-कीमत-प्रक्रिया के साथ-साथ राजकीय पूँजीवादी क्षेत्र, आर्थिक आयोजन और आय तथा सम्पत्ति के सीमित पुनर्वितरण की नीतियों को भी अपना लेती हैं। कम या ज्यादा मात्रा में आज सभी पूँजीवादी अर्थव्यवस्थाएँ मिश्रित हैं; क्योंकि निर्बाध अर्थव्यवस्था तथा प्रतियोगितात्मक पूँजीवाद अब विकास के अगले चरण में पहुँच चुका है।

मिश्रित अर्थव्यवस्था का एक अन्य अर्थ इतर-पूँजीवादी विकास-मार्ग के सन्दर्भ में हो सकता है। समाजवाद की ओर विकास की राह में एक पड़ाव इतर-पूँजीवादी विकास-मार्ग को अपनाना है। इसके अन्तर्गत एक ऐसी मिश्रित अर्थ-व्यवस्था का विकास किया जाता है कि अर्थव्यवस्था के सारे महत्त्वपूर्ण केन्द्र राज्य के हाथ में ले लिये जायें, एका-धिकारी पूँजीपति वर्ग को समाप्त कर दिया जाये, कृषि में बड़े भूपतियों से जमीन लेकर किसानों में बाँट दी जाये, कीमतें, बचत, निवेश आदि सब पर योजनाबद्ध सामाजिक नियन्त्रण स्थापित कर विकास की प्रक्रिया तेज कर दी जाये। ऐसी मिश्रित अर्थव्यवस्था सामाजिक पुनर्निमाण की दिशा में एक ठोस प्रयास है जो बहुत प्रभावी और कारगर होता है।

mobility (मोबिलिटी) : गतिशीलता।

उत्पादन के साधनों, खासकर श्रम, की एक स्थान से दूसरे स्थान और एक प्रयोग से दूसरे प्रयोग में जाने की प्रवृत्ति साधनों की गतिशीलता कहलाती है। व्यापार द्वारा वस्तुएँ भी गतिशील हो जाती हैं। साधनों की गतिशीलता के कारण सर्वोत्तम आर्थिक अवसरों के लाभ उठाये जा सकते हैं। इससे आर्थिक कुशलता की वृद्धि होती है। परन्तु गतिशीलता कभी भी पूर्ण नहीं होती है। पूर्ण प्रतियोगिता में पूर्ण गतिशीलता की पूर्वकल्पना की जाती है, परन्तु आर्थिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, भौतिक, राजनीतिक, कानूनी तथा दूरी से सम्बन्धित दिक्कतों के कारण गतिशीलता में कमी आ जाती है। विदेशी व्यापार साधनों तथा वस्तुओं की गतिशीलता को बढ़ाता है। संसाधनों के इष्टतम आवण्टन में गतिशीलता एक सहायक तत्त्व होती है।

mode of production (मोड ऑफ प्रॉडक्शन) : उत्पादन-प्रणाली, उत्पादन-व्यवस्था।

कार्ल मार्क्स ने समाज-विकास की प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए इस प्रक्रिया के कुछ चरणों को उत्पादन-प्रणालियों के रूप में व्यक्त किया। किसी भी समाज की उत्पादन-शक्तियाँ तथा वहाँ के उत्पादन-सम्बन्ध और उनसे सम्बन्धित उत्पादन के साधनों की स्वामित्व-प्रणाली मिलकर उस समाज की एक अवधि-विशेष की उत्पादन-प्रणाली का निर्धारण करते हैं। जब उत्पादन-शक्तियाँ विकास की बिलकुल शुरू की स्थिति में थीं और जीवन-निर्वाह तथा रक्षा के लिए मनुष्य को मिलकर आखेट तथा अन्य आर्थिक काम करने पड़ते थे तब उत्पादन के सब साधन सामूहिक सम्पत्ति थे। उत्पादन-प्रणाली को मार्क्स ने प्रारम्भिक साम्यवाद का नाम दिया। इसी प्रकार दास-उत्पादन-प्रणाली, सामन्ती उत्पादन-प्रणाली, पूँजी-

वादी उत्पादन-प्रणाली, समाजवादी और साम्यवादी उत्पादन-प्रणालियों की भी मार्क्स ने व्याख्या की।

मार्क्स के उत्पादन-प्रणालियों के नियमों के अनुसार एक उत्पादन-प्रणाली की सामाजिक उत्पादन-शक्तियाँ और सामाजिक उत्पादन-सम्बन्ध परस्पर संगत होते हैं। जब उनमें संगति और सहकार नहीं रहता है तब उनके परिवर्तन की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। निजी सम्पत्ति के सामाजिक सम्बन्धों पर आधारित वर्ग-विभेदवाली उत्पादन-प्रणालियाँ (जैसे दास, सामन्ती तथा पूँजीवादी उत्पादन-प्रणालियाँ) विरोधपरक उत्पादन-प्रणालियाँ तथा सामाजिक स्वामित्व पर आधारित सामाजिक वर्गरहित उत्पादन-प्रणालियाँ विरोध-रहित आर्थिक प्रणालियाँ कहलाती हैं। जब कई प्रकार के उत्पादन-सम्बन्ध और स्वामित्व-व्यवस्थाएँ एक साथ पायी जाती हैं तो प्रमुख उत्पादन-शक्तियों पर स्वामित्व और उनसे सम्बन्धित सामाजिक उत्पादन-सम्बन्धों के आधार पर उत्पादन-प्रणाली की पहचान की जाती है। मार्क्स ने सरल वस्तु-उत्पादन-प्रणाली का भी वर्णन किया है, जिसमें उत्पादन के साधन वास्तविक उत्पादकों के नियन्त्रण में होते हैं और ऐसे उत्पादक अपने निजी या परिवार के श्रम के आधार पर छोटे पैमाने पर निजी उपभोग तथा विनिमय के लिए उत्पादन करते हैं।

अर्थव्यवस्था को समझने एवं उसके नियमों की खोज करने में उत्पादन-प्रणालियों की अवधारणा, इससे सम्बन्धित अन्य अवधारणाएं तथा नियम बहुत महत्त्वपूर्ण होते हैं। सब आर्थिक नियम सभी उत्पादन-प्रणालियों पर लागू नहीं होते हैं। इसलिए सामान्य आर्थिक नियमों के साथ ही प्रत्येक उत्पादन-प्रणाली के अपने विशेष आर्थिक नियम भी होते हैं।

monetary policy (मॉनिटरी पॉलिसी): मुद्रा-नीति।

किसी राष्ट्र की मुद्रा-पूर्ति का वहाँ के केन्द्रीय बैंक द्वारा इस प्रकार प्रबन्ध करना कि इतनी मात्रा और ऐसी कीमतों पर ऋण की उपलब्धि सुनिश्चित हो सके जो निर्धारित राष्ट्रीय उद्देश्यों के अनुरूप हों। कीमत-स्थिरीकरण और पूर्ण रोजगार के उद्देश्य इनमें मुख्य हैं। स्वर्णमान के युग में मुद्रा-नीति का मूल उद्देश्य था केन्द्रीय बैंक के स्वर्ण-आरक्षणों को बचाना। जब भुगतान-शेष के प्रतिकूल होने की स्थिति में स्वर्ण बाहर जाने लगता था, तब बैंक-दर में वृद्धि की जाती थी और खुली बाज़ार-कार्रवाई की नीति अपनायी जाती थी ताकि वाणिज्य बैंकों की उधार-नीति के नकद-आधार को घटाया जा सके और इस प्रकार देश में मुद्रा की कुल मात्रा में कमी लायी जा सके। दूसरी ओर जब स्वर्ण देश में आने लगता था, तब इसके विपरीत नीति अपनायी जाती थी।

आज के जटिल आर्थिक तन्त्र में मुद्रा केवल विनिमय का माध्यम नहीं रही है। अब यह राष्ट्रीय आय के आकार, रोज़गार के स्तर, उपभोक्ता तथा उत्पादक वस्तुओं की माँग और फलस्वरूप बचत तथा निवेश भी मात्रा को भी प्रभावित करती है। इस कारण मुद्रा-नीति के सन्दर्भ में मुद्रा की मात्रा में परिवर्तन लाने की अपेक्षा तरलता के स्तर में अपेक्षित परिवर्तन लाना कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण हो गया है।

मुद्रा-नीति का रूप निर्धारित करने में भुगतान-शेष की दिशा से एक बड़ी बाधा उत्पन्न होती है। उदाहरण के लिए भुगतान-शेष प्रतिकूल होने पर प्रतिबन्धक नीति का सहारा लेना आवश्यक हो सकता है, लेकिन यह नीति आन्तरिक उत्पादन तथा व्यापार के लिए हमेशा उपयुक्त न होगी। अन्य उद्देश्यों के बीच भी विरोध पैदा हो सकता है। उदाहरणतया जीवन-स्तर को उन्नत करने के लिए वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि लाना विशेष रूप से वांछनीय समझा जाता है, लेकिन मुद्रा के मूल्य को यथोचित स्तर पर स्थिर करने के उद्देश्य से अपनायी गयी स्फीति-विरोधी नीति इसमें वाधक हो सकती है।

मुद्रा-नीति को कार्यान्वित करने के लिए केन्द्रीय वैंक द्वारा ऐसे मौद्रिक उपाय अपनाये जाते हैं जो निर्धारित उद्देश्य को पूरा करने के निमित्त मुद्रा की पूर्ति तथा तरलता को एक अपेक्षित स्तर पर वनाये रखने में सहायक होते हैं। परम्परागत उपायों में वैंक-दर-नियन्त्रण और खुली बाज़ार-कारंवाइयाँ प्रमुख रहे हैं। मुद्रा-नीति के व्यापक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अव नये उपायों का भी सहारा लिया जाता है, जैसे कि राजकोषीय आदेश, विशेष जमा, किराया-खरीद विनियमन, वजट-नीति और आय-कर व बिक्री-कर आदि में आवश्यक परिवर्तन।

monetary school (मॉनिटरी स्कूल) : मुद्रावादी सम्प्रदाय।

जो अर्थशास्त्री इस विचारधारा के हैं कि वैंक-ऋण के नियन्त्रण का उद्देश्य व्यायवसायिक कार्यकलाप में अधिक-से-अधिक स्थिरता लाना होन ।चाहिए, उन्हें अमरीका में मुद्रावादी सम्प्रदाय के अर्थ-शास्त्री कहा जाता है।

monetary system (मॉनिटरी सिस्टम): मुद्रा-प्रणाली।

किसी देश की मुद्रा का संचालन करने-सम्वन्धी नीतियों तथा परिपाटियों का द्योतक एक व्यापक शव्द। इसका आशय मुद्रा के सम्बन्ध में देश के भीतर और वाहर किये गये प्रबन्धों से है। देश के भीतर इसमें इस तरह की वातें आती हैं—मानक मुद्रा की परिभाषा, सिक्कों तथा मुद्रा का निर्गमन, मुद्रा आरक्षण, वैंक-मुद्रा की परिवर्तनीयता एवं उसका नियन्त्रण, प्रतीक सिक्कों की व्यवस्था आदि। वाह्य दृष्टि से इसका सम्बन्ध प्रयुक्त विदेशी विनिमय मान एवं इससे जुड़ी वातों से है; जैसे कि विनिमय-दर में घट-बढ़, विनिमय-नियन्त्रण, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा-कोष के साथ सम्बन्ध आदि।

monetary union (मॉनिटरी युनियन): मुद्रा संघ।

कुछ देशों के वीच समझौता, जिसके अन्तर्गत उनकी करेन्सियों के सम्बन्ध में सम्मत विनिमय-दर बनाये रखने के लिए व्यवस्था की जाती है; जैसे कि लैटिन मुद्रा संघ और इस्कैण्डनेविएन मुद्रा संघ।

monetary unit (मॉनिटरी युनिट): मुद्रा इकाई।

किसी देश की करेन्सी की मानक इकाई। भारत की मुद्रा इकाई रुपया है, अमरीका की डालर और इंगलैण्ड की पौण्ड।

money (मॅनी) : मुद्रा।

विनिमय-माध्यम एवं मूल्य-मापक का कार्य करनेवाली सर्वस्वीकार्य वस्तु। मुद्रा

का आशय किसी वस्तु-विशेष से नहीं है। कोई भी वस्तु, जो मुद्रा का कार्य करे, मुद्रा कहला सकती है। मुद्रा के दो मूल कार्य होते हैं—विनिमय का माध्यम और मूल्य-मापन का साधन। इन दो प्रधान कार्यों के आधार पर मुद्रा द्वारा कुछ सहायक कार्य भी किये जाते हैं; जैसे कि मूल्य-संचय व हस्तान्तरण का साधन तथा आस्थगित भुगतान का मान। इन कार्यों के अतिरिक्त मुद्रा के कुछ गत्यात्मक कार्य भी होते हैं, जिनका महत्त्व वर्तमान समय में बहुत बढ़ गया है। आजकल सरकार मुद्रा-पूर्ति के नियमन के सहारे उत्पादन-स्तर एवं औद्योगिक विस्तार की दर को प्रभावित करती है। मुद्रा के गत्यात्मक कार्य का सम्बन्ध इसी प्रकार की बातों से होता है। अस्तु, मुद्रा वह वस्तु है जो मुद्रा का कार्य करे। यह वह वस्तु है जो बिना किसी प्रकार की हिचकिचाहट के सर्वग्राह्य होती है, जो विनिमय-माध्यम का कार्य करती है तथा जिसके देने से लोग सभी प्रकार के व्यावसायिक ऋणों व बन्धनों से पूर्णतया मुक्त हो सकते हैं।

मुद्रा के प्रयोग के पहले वस्तु-विनिमय-प्रणाली प्रचलित थी। तब वस्तुओं का एक-दूसरे के साथ प्रत्यक्ष रूप में विनिमय होता था। इस सम्बन्ध में लोगों को अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। वस्तु-विनिमय की उन कठिनाइयों को दूर करने के लिए विनिमय-माध्यम का सहारा लिया गया। आरम्भ में विनिमय-माध्यम के रूप में वही वस्तु सबको स्वीकार्य होती थी जो स्वयं भी उपयोगी होती थी। इसलिए भिन्न-भिन्न समय और स्थान पर दुधारू पशु, भेंड़ें, चमड़ा, तम्बाकू, चाय, नमक, कौड़ियों आदि का प्रयोग मुद्रा के रूप में किया गया। प्रभावपूर्ण ढंग से मुद्रा का कार्य कर सकने के लिए आवश्यक है कि वस्तु टिकाऊ हो, विभाजन-योग्य हो तथा लाने-ले जाने में सुविधाजनक हो। उपर्युक्त वस्तुओं में ये गुण नहीं थे। इस कारण धीरे-धीरे इन वस्तुओं का चलन हटता गया और इनके स्थान पर दुर्लभ धातुओं का प्रयोग मुद्रा के रूप में किया जाने लगा।

आगे चलकर धातुओं में शुद्धता की गारण्टी देने के उद्देश्य से उनके निश्चित आकार तथा वजन के खण्डों पर सरकारी मोहर अंकित करने का चलन प्रारम्भ हुआ। इस प्रकार अंकित धातु-मुद्रा का जन्म हुआ। उत्पादन तथा व्यापार में भारी वृद्धि, मूल्यवान धातुओं की कमी, विश्वयुद्ध, राज्य-शासन-तन्त्र की सुव्यवस्था तथा केन्द्रीय बैंक-प्रणाली की सुदृढ़ता के परिणामस्वरूप आज कागजी या यन्त्र-मुद्रा ने प्रमुख स्थान ग्रहण कर लिया है, जिसके पीछे सरकार तथा केन्द्रीय बैंक की साख होती है। वैध मुद्रा न होते हुए भी बैंकड्राफ्ट, चेक, हुण्डियाँ आदि साख-पत्रों को उनको जारी करनेवाले की साख के कारण एक सीमित परिधि में मुद्रा के तौर पर इस्तेमाल किया जाता है। मुद्रा का कई दृष्टियों से वर्गीकरण किया जाता है, जैसे कि वास्तविक मुद्रा और लेखा-मुद्रा, विधिग्राह्य मुद्रा और ऐच्छिक मुद्रा, मानक मुद्रा तथा प्रतीक मुद्रा आदि।

देखिए : dynamic, functions of
money
functions of money.

money illusion (मॅनी एल्यूजन): मुद्रा-भ्रान्ति।

मुद्रा की क्रय-शक्ति पर ध्यान दिये विना उसका मानसिक मूल्यांकन करना। मुद्रा-भ्रान्ति का जन्म तब होता है, जब कोई व्यक्ति मुद्रा की क्रय-शक्ति की चिन्ता किये विना उसके अंकित मूल्य को ही वास्तविक समझ लेता है। ऐसी मानसिक प्रवृत्ति को पहले-पहल एक अमरीकी अर्थशास्त्री, इर्विंग फिशर, ने मुद्रा-भ्रान्ति कहा था। मुद्रा-भ्रान्ति से ग्रस्त कोई व्यक्ति मुद्रा के रूप में आय बढ़ जाने पर प्रसन्न होता है, चाहे कीमतें भी उतनी क्यों न वढ़ गयी हों और फलस्वरूप वास्तविक आय समान वनी रहे। इसके विपरीत मुद्रा-आय में कमी होने पर वेतनभोगी वर्ग खिन्न होता है, चाहे कीमतों में आनुपातिक कमी होने के फलस्वरूप वास्तविक आय पूर्ववत् वनी रहे। कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार मुद्रा-भ्रान्ति का प्रभाव वहुत प्रबल होता है और काफी बड़ी सीमा तक श्रमिक वास्तविक मज़दूरी की वजाय मुद्रा-मज़दूरी को आधार बनाकर कार्य करते हैं।

मुद्रा-भ्रान्ति की अवस्था में मुद्रा-आय में वृद्धि होने से श्रमिकों की पूर्ति बढ़ जाती है और कम-से-कम अल्पावधि में उनके उपभोग का स्तर भी वढ़ जाता है। लेकिन मुद्रा के मूल्य में भारी कमी और इस सम्वन्ध में व्यापक जानकारी ने मुद्रा-भ्रान्ति से ग्रस्त लोगों की संख्या को वहुत कम कर दिया है।

money in circulation (मॅनी इन सर्कुलेशन): संचलनगत मुद्रा।

निष्क्रिय मुद्रा के विपरीत वह मुद्रा जो विभिन्न प्रकार के सौदों के वित्तीयन अथवा लेन-देन के लिए प्रयोग की जा रही होती है। संचलनगत मुद्रा की मात्रा वैंक-जमा के परिमाण के साथ गहरे तौर पर जुड़ी होती है और उस पर निर्भर करती है।

money market (मॅनी मार्केट): मुद्रा-वाज़ार।

वह बाज़ार, जिसमें अल्पावधि-ऋणों व प्रतिभूतियों आदि का लेन-देन होता है। मुद्रा में कालपरक मूल्य होता है। इसलिए ब्याज पर मुद्रा के प्रयोग को खरीदा-वेचा जाता है। मुद्रा-वाज़ार में अल्पकालीन मुद्रा का लेन-देन होता है जबकि पूँजी-वाज़ार का सम्वन्ध दीर्घ-कालीन मुद्रा के लेन-देन के साथ होता है। मुद्रा-वाज़ार के संचालन में मुख्य रूप से वाणिज्य वैंकें, बीमा कम्पनियाँ, सरकारी वन्ध-पत्रों के व्यापारी, वाणिज्य प्रपत्रों के व्यापारी, वित्तीय कम्पनियाँ तथा वित्त-विशेषज्ञ भाग लेते हैं। ऋणों के स्वरूप के अनुसार मुद्रा-वाज़ार के भिन्न-भिन्न रूप होते हैं; जैसे कि वाणिज्यिक प्रपत्र-वाज़ार, समर्थक ऋण-वाज़ार, सरकारी वाज़ार, सरकारी हुण्डी-बाज़ार आदि।

money supply (मॅनी सप्लाइ): मुद्रा-पूर्ति।

किसी देश की अर्थव्यवस्था में किसी समय पर उपलब्ध मुद्रा की कुल राशि, जिसमें अधिकतर करेन्सी तथा माँग-जमा का प्रमुख अंश होता है। करेन्सी में वे सव सिक्के और कागजी मुद्रा शामिल होते हैं जो सरकार तथा वैंक द्वारा जारी किये जाते हैं। मुद्रा-पूर्ति में केवल वही मुद्रा सम्मिलित मानी जाती है जो वैंक से

बाहर जनता के पास होती है। मुद्रा की कुल पूर्ति का निर्धारण सरकार, बैंक, व्यवसायी वर्ग तथा उपभोक्ताओं द्वारा किया जाता है। कीमत, रोज़गार, आय आदि अनेक आर्थिक क्षेत्रों पर मुद्रा-पूर्ति की मात्रा का बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है।

money veil (मॅनी वेल) : मुद्रा-आवरण।

आर्थिक समस्याओं के मुद्रा-सम्बन्धी पहलुओं पर बहुत अधिक ध्यान दिये जाने के कारण कार्यरत वास्तविक आर्थिक शक्तियाँ छिप जाती हैं अथवा उन पर पर्दा पड़ जाता है। यही मुद्रा-आवरण कहलाता है। यदि पूर्ण रोज़गार की स्थिति में सरकार कोई योजना बनाती है, तो वैसे तो इसकी मुद्रा-लागत की चर्चा होगी। लेकिन सर्वाधिक महत्त्व की बात उसकी मुद्रा-लागत नहीं बल्कि उसकी वास्तविक लागत ठहरेगी; अर्थात् श्रम, पूंजी और अन्य साधन जिन्हें उनके वर्तमान उपयोग से हटाकर उस योजना में लगाने होंगे। मुद्रा के कारण इस बात पर एक पर्दा-सा पड़ जाता है, जिसे मुद्रा-आवरण का नाम दिया जायेगा।

money wages (मॅनी वेजेज): मुद्रारूप मजदूरी।

किसी श्रमिक को उसके कार्य के बदले मिलनेवाली नकद मजदूरी। इसके विपरीत वास्तविक आय में नकद मजदूरी से खरीदी जा सकनेवाली वस्तुओं और सेवाओं के अतिरिक्त उन सब सुविधाओं, रियायतों व सुलाभों को भी शामिल किया जाता है जो उस श्रमिक को उसके कार्य के बदले प्राप्त होते हैं; जैसे कि बोनस, पूरक आय के अवसर, मकान व चिकित्सा की सुविधाएँ, अतिरिक्त भुगतान आदि। श्रमिक की आर्थिक स्थिति का अनुमान उसकी वास्तविक मजदूरी के आधार पर ही लगाया जा सकता है, मुद्रारूप मज़दूरी के आधार पर नहीं।

देखिए : normal wages.

monometalism (मॉनोमेटलिज्म) : एकधातुमान।

वह मुद्रा-प्रणाली, जो एक धातु (स्वर्ण या रजत) पर आधारित होती है अर्थात् जहाँ एक धातु मुद्रामान के तौर पर इस्तेमाल होती है। इसके विपरीत द्विधातुमान के अन्तर्गत दो धातुएं मुद्रामान का काम करती हैं।

monopolistic competition (मॉनोपॅलिस्टिक कॉम्पटीशन): एकाधिकारी प्रतियोगिता।

अपूर्ण प्रतियोगिता का एक रूप, जिसमें एकाधिकार और प्रतियोगिता, दोनों के अंश नजर आते हैं। इस बाजार-स्थिति में विक्रेताओं की संख्या तो अधिक होती है, लेकिन बाज़ार के भौगोलिक विखण्डन अथवा वस्तु-विभेदन के कारण विभिन्न विक्रेताओं की वस्तुएँ परस्पर पूर्ण स्थानापन्न वस्तुएँ नहीं होती हैं। फलस्वरूप प्रत्येक विक्रेता अपनी वस्तु को अपने प्रतियोगी विक्रेताओं की लगभग समरूप वस्तुओं की तुलना में अधिक कीमत पर बेचने में सफल हो जाता है। दूसरे शब्दों में, उपभोक्ता एक विक्रेता की वस्तु को दूसरे विक्रेताओं की वस्तुओं की तुलना में अधिमान देते हैं। इस प्रकार प्रत्येक एकाधिकारात्मक प्रतियोगी विक्रेता की वस्तु के माँग-वक्र का ढलान नीचे की ओर

होता है। चूंकि यहाँ विक्रेताओं की संख्या अधिक होती है (जोकि पूर्ण प्रतियोगिता का लक्षण है) और माँग-वक्र का ढलान नीचे की ओर होता है (जोकि एकाधिकार की विशेषता है), इसलिए इस बाज़ार-स्थिति को एकाधिकारी प्रतियोगिता का नाम दिया जाता है। इस शताब्दी के तीसरे दशक में इंगलैण्ड में जे० बी० रॉबिन्सन और अमरीका में ई० एच० चैम्बरलीन ने साथ-साथ इस सिद्धान्त का विकास किया।

monopoly (मॉनोपॅली) : एकाधिकार।

एकाधिकार का आशय उस बाज़ार-स्थिति से है, जिसमें किसी वस्तु का केवल एक ही उत्पादक या विक्रेता होता है और उस वस्तु की कोई स्थानापन्न वस्तु नहीं होती। तकनीकी शब्दावली में इसे शुद्ध या पूर्ण एकाधिकार कहते हैं। शुद्ध प्रतियोगिता के समान शुद्ध एकाधिकार की स्थिति भी वास्तविक जीवन में देखने को नहीं मिलती। किसी वस्तु का केवल एक ही उत्पादक होना बहुत असाधारण घटना है। लेकिन उस वस्तु की कोई भी स्थानापन्न वस्तु उपलब्ध न हो, यह तो और भी अधिक असाधारण बात है। वास्तविक जीवन में प्रत्येक वस्तु की कोई-न-कोई स्थानापन्न वस्तु प्राप्त हो जाती है। दीर्घावधि के लिए तो यह बात विशेष रूप से लागू होती है। और फिर, चूंकि लोगों के पास खर्च करने के लिए मुद्रा सीमित मात्रा में होती है, इसलिए असमरूप वस्तुएँ एक-दूसरे के स्थान ग्रहण करने के लिए परस्पर प्रतियोगिता करती हैं। इस कारण वास्तविक जीवन में शुद्ध एकाधिकार की स्थिति नज़र नहीं आती। व्यवहार में इसके निकट की स्थिति को एकाधिकार मान लिया जाता है। दूसरे शब्दों में, व्यवहार में एकाधिकार की तकनीकी शर्तों को छोड़कर एकाधिकार की मात्रा के सम्बन्ध में बातचीत की जाती है।

यद्यपि शुद्ध एकाधिकार का वास्तविक आर्थिक जगत में लगभग कोई स्थान नहीं होता, तथापि शुद्ध एकाधिकार वस्तु की कीमत, उत्पादन-मात्रा तथा साधनों के आवण्टन की समस्याओं के विश्लेषण के लिए उपयोगी उपकरण प्रस्तुत करता है। इस विश्लेषण के आधार पर अपूर्ण प्रतियोगिता के विभिन्न रूपों के अन्तर्गत कीमत और उत्पादन-निर्धारण के सम्बन्ध में उठनेवाली अधिक जटिल समस्याओं का भली प्रकार अध्ययन किया जा सकता है।

एकाधिकारी का अपने उत्पादन व पूर्ति पर तो पूरा नियन्त्रण होता है, लेकिन यह बात माँग पर लागू नहीं होती। अतः उसे इस तथ्य को सामने रखना होगा कि अपेक्षाकृत कम कीमत पर ही वस्तु की अधिक मात्रा की बिक्री की जा सकती है। यदि वह कीमत निर्धारित करता है, तो उस कीमत पर वह कितना माल बेच सकेगा, यह उपभोक्ताओं की माँग पर निर्भर करेगा। और यदि वह बिक्री-मात्रा के सम्बन्ध में निर्णय लेता है, तो यह उपभोक्ताओं की माँग पर निर्भर करेगा कि उसके लिए उसे कितनी कीमत मिल सकेगी। स्पष्टतः एकाधिकारी यदि अधिक बेचना चाहता है, तो उसे कीमत कम करनी पड़ेगी और यदि अधिक चाहता है तो उसकी बिक्री कम होगी। साधारण परिस्थिति में ऐसा सम्भव नहीं है कि कीमत भी बढ़े और बिक्री भी बढ़े।

हर बाज़ार-स्थिति के उत्पादकों की भाँति एकाधिकारी भी वस्तु की उस मात्रा का उत्पादन करेगा, जिसपर उसकी सीमान्त आय वस्तु की सीमान्त लागत के बिल्कुल बराबर होगी। कारण, इस उत्पादन-मात्रा पर उसका लाभ अधिकतम हो सकेगा। पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत इसके साथ-साथ औसत लागत औसत आय के बराबर और कीमत सीमान्त लागत के बराबर होती है। लेकिन एकाधिकार की स्थिति में औसत आय औसत लागत और सीमान्त लागत से अधिक होती है। फलस्वरूप सामान्य लाभ के ऊपर एकाधिकारी को अतिरिक्त लाभ भी प्राप्त होता है, जिसे एकाधिकारी लाभ कहा जाता है।

प्रतियोगिता की तुलना में एकाधिकार के अन्तर्गत साधारणतः वस्तु की कीमत ऊँची और उत्पादन-मात्रा कम होती है। इसके कारण एक ओर तो उपभोक्ताओं का शोषण होता है और दूसरी ओर समाज में उत्पादन-साधनों का इष्टतम उपयोग नहीं हो पाता। कुछ और भी दोष पैदा होने लगते हैं। इन अनेक दोषों को दूर अथवा कम करने के लिए सरकार विभिन्न ढंग से एकाधिकार पर नियन्त्रण लगाने का प्रयास करती है।

monopsony (मोनोप्सनी) : एकक्रेताधिकार।

बाज़ार की वह स्थिति, जिसमें किसी वस्तु या सेवा का केवल एक खरीदार होता है। ध्यान रहे कि एकक्रेताधिकार की स्थिति में वस्तु के बेचनेवालों की संख्या के साथ कोई शर्त्त जुड़ी नहीं होती। विक्रेता की संख्या एक या थोड़ी भी हो सकती है और बहुत अधिक भी। आवश्यक बात यह है कि वस्तु का क्रेता एक हो। एकक्रेताधिकार की स्थिति उस समय पैदा हो सकती है जबकि एक व्यक्ति या संस्था को किसी वस्तु की चाह हो और अन्य के लिए उसकी जरूरत न हो, या फिर किसी वस्तु के सब ग्राहक मिलकर एक एजेन्सी के रूप में व्यवहार करें। एकक्रेताधिकार के उदाहरण तो दिये जा सकते हैं, लेकिन पूर्ण प्रतियोगिता और शुद्ध एकाधिकार की भाँति शुद्ध एकक्रेताधिकार की स्थिति भी बहुत असाधारण घटना है।

जिस प्रकार एकाधिकारी अपने लाभ को अधिकतम करने के लिए प्रयत्नशील रहता है, उसी प्रकार एकक्रेताधिकारी भी अधिकतम उपभोक्ता-अधिशेष प्राप्त करने का प्रयास करता है। यह उसे उस समय प्राप्त होगा जबकि खरीद की सीमान्त लागत उस वस्तु की सीमान्त उपयोगिता के बराबर होगी। शुद्ध एकक्रेताधिकार की स्थिति में क्रय-कीमत निर्धारित करने की क्षमता क्रेता में मौजूद होती है। सामान्य तौर से प्रतियोगितापरक स्थिति की तुलना में एकक्रेताधिकार की स्थिति में क्रेता की खरीद-कीमत और खरीद की मात्रा दोनों कम होती है।

moral suasion (मॉरल सुएशन) नैतिक प्रत्यायन।

दिये गये सुझाव को अमल में लाने के उद्देश्य से बैंकों पर मुद्रा-अधिकारियों द्वारा नैतिक दबाव। मुद्रा-नीति के सहायक के रूप में नैतिक प्रत्यायन या प्रबोधन का व्यवहार किया जाता है। बैंकों की उधार-नीति को वांछित दिशा में मोड़ने के लिए प्रायः मुद्रा-प्राधिकारी

प्रत्यक्ष उपाय अपनाने की बजाय बैंकों पर नैतिक दबाव डालने की नीति अपनाते हैं। आजकल इस नीति का काफी व्यवहार किया जाता है।

mortgage (मॉर्टगेज) : बन्धक।

एक कानूनी करार, जिसके अन्तर्गत उधार के लिए जमानत के तौर पर रखी गयी सम्पत्ति का स्वामित्व ऋणदाता को हस्तान्तरित कर दिया जाता है और उधार चुकता होने पर वह हस्तान्तरण समाप्त हो जाता है। प्रायः बीमा कम्पनियाँ व अन्य वित्तीय संस्थाएँ जायदाद रेहन रखकर उसकी कीमत का एक भाग बन्धकदाता को ऋण के रूप में देती हैं और जब वह ऋण चुकता कर दिया जाता है, तब बन्धक रखी गयी जायदाद बन्धकदाता को लौटा दी जाती है। इस प्रकार ऋण की अवधि तक ही जायदाद की मिल्कियत बन्धकग्राही के पास रहती है।

most favoured nation clause (मोस्ट फेवर्ड नेशन क्लाज़) : सर्वाधिक अनुगृहीत राष्ट्र शर्त।

राष्ट्रों के बीच हुए व्यापारिक समझौतों में प्रायः यह शर्त जुड़ी रहती है कि प्रत्येक पक्ष इस बात को स्वीकार करता है कि भविष्य में यदि किसी अन्य राष्ट्र को कोई विशेष सुविधा दी जायेगी, तो वह अतिरिक्त सुविधा दूसरे पक्ष के लिए भी उपलब्ध होगी।

multilateral trade (मल्टीलेटरल ट्रेड): बहुपक्षीय व्यापार।

किसी प्रकार की रुकावट के बिना विभिन्न देशों के बीच होनेवाला व्यापार। ऐसी स्थिति में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-विभाजन का पूरा-पूरा सहारा लिया जा सकता है। इसके फलस्वरूप सम्पूर्ण उत्पादन-मात्रा अधिकतम होगी और विनिमय हो लेने पर सब देशों को प्रत्येक वस्तु की जो मात्रा उपलब्ध होगी, वह उस मात्रा से अधिक बैठेगी जो उसको टैरिफ, विनिमय-नियन्त्रण, द्विपक्षीय करार आदि के अन्तर्गत किये गये व्यापार से प्राप्त होती। द्विपक्षीय व्यापार के विपरीत बहुपक्षीय व्यापार के अन्तर्गत हर दो देशों के लिए अपने-अपने आयात और निर्यात को अलग-अलग बराबर करने की आवश्यकता नहीं रहती, वे अन्य देशों के साथ किये गये व्यापार के सहारे आयात और निर्यात के बीच सन्तुलन स्थापित कर सकते हैं। स्पष्टतः बहुपक्षीय व्यापार की दशा में प्रत्येक देश अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में आयात और निर्यात कर सकेगा। इसी कारण से द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद बहुपक्षीय व्यापार के विस्तार के लिए विशेष प्रयास किये गये। इसके लिए मुद्राओं की निर्बाध परिवर्तनीयता एवं टैरिफ तथा अन्य प्रतिबन्धों का उन्मूलन आवश्यक है।

multinational corporation (मल्टीनेशनल कॉरपोरेशन) : बहुदेशीय कम्पनी।

उस कम्पनी या उद्यम को, जो अपने मूल देश के बाहर अनेक देशों में अपनी शाखाओं या उपकम्पनियों द्वारा उत्पादन करे तथा सेवा की सुविधाएँ उपलब्ध कराये, बहुदेशीय कम्पनी कहा जाता है। बड़े स्तर पर उत्पादन, बिक्री, पूंजी-निवेश तथा श्रम-नियोजन के कारण ये कम्पनियाँ बहुत बड़े आकार की और बहुत शक्ति-

शाली (आर्थिक तथा राजनीतिक दोनों रूपों में) होती हैं। इन कम्पनियों के निर्णय अपने विश्वव्यापी हितों को ध्यान में रखकर लिये जाते हैं। इसलिए ऐसा भी होता है कि ये कम्पनियाँ कुछ ऐसे निर्णय लेती हैं जो एक खास देश में स्थित शाखा तथा उस राष्ट्र के हितों के तो विपरीत हों, परन्तु उस कम्पनी के हितों के अनुकूल हों। इस प्रकार बहुदेशीय कम्पनी तथा राष्ट्रीय हितों में बहुत टकराव पैदा होता रहता है। परन्तु इन कम्पनियों के साधनों की विपुलता तथा इनके मूल सम्पत्तिशाली देशों के समर्थन के कारण ये कम्पनियाँ नवोदित विकासशील देशों की प्रभुसत्ता तथा हितों के विरुद्ध काफी काम करती रहती हैं। वास्तव में ये कम्पनियाँ विश्वव्यापी एकाधिकार तथा नवसाम्राज्यवाद के शक्तिशाली अंग हैं, जिनकी मंशाओं से तीसरी दुनियाँ के देशों को सचेत और सजग रहना चाहिए।

इन कम्पनियों का एकाधिकार नयी तकनीकों के क्षेत्र में सबसे ज्यादा गहरा है।

multiple exchange rates (मल्टीपिल एक्सचेंज रेट्स) : बहुविनिमय दरें।

सरकार द्वारा देश की करेन्सी के लिए एक से अधिक विनिमय-दरें निर्धारित करना। ऐसा करना प्रतिबन्धात्मक विनिमय-प्रणाली के अन्तर्गत सम्भव होता है। करेन्सी की माँग के उद्देश्य के अनुसार अलग-अलग विनिमय-दरें निर्धारित की जाती हैं।

उदाहरण के लिए, किसी देश में विदेशी पर्यटकों को आकर्षित करने अथवा कुछ खास किस्म की वस्तुओं के आयात के लिए विशेष विनिमय-दर की व्यवस्था की जा सकती है। इस शताब्दी के तीसरे दशक में सर्वप्रथम जर्मनी ने बहुविनिमय-दर की नीति का व्यवहार किया। १९४२ में ब्रेटनवुड्स सम्मेलन द्वारा इस नीति की कड़ी निन्दा की गयी। लेकिन आगे चलकर स्पेन, अर्जेंटीन आदि अनेक देशों ने बहु विनिमय-दरों का सहारा लिया।

multiple taxation (मल्टीपिल टॅक्सेशन) : बहुविध कराधान।

ऐसे कर, जो एक से ज्यादा बार चुकाने पड़ते हैं। ऐसे कर या तो एक ही या एक से ज्यादा कराधिकारियों द्वारा लगाये जा सकते हैं। जैसे बिक्री-कर, जितनी बार बिक्री हो, उतनी ही बार देना पड़ सकता है। विदेशों से प्राप्त आय पर वहाँ और अपने देश, दोनों जगहों में कर देना पड़ सकता है।

बहुविध कराधान या बहुमुखी करारोपण के कारण करदाताओं की असुविधा बहुत बढ़ जाती है और कर से बचने की प्रवृत्ति बढ़ती है। कई देश आपस में समझौता करके बहुविध कराधान से बचने की कोशिश करते हैं। केन्द्रीय सरकार भी विभिन्न राज्यों द्वारा बहुविध कराधान को रोकने की दिशा में कदम उठा सकती है।

multiplier (मल्टीप्लाएर) : गुणक।

समस्त माँग के किसी भाग में हुए परिवर्तन के कुल राष्ट्रीय आय पर पड़नेवाले प्रभाव की माप। मान लीजिए कि कुल निवेश, उपभोग, राष्ट्रीय आय आदि के दिये हुए स्तर पर कोई अर्थव्यवस्था पूर्ण रोज़गार के नीचे की स्थिति पर है।

ऐसी दशा में मान लीजिए कि उत्पादक निवेश-व्यय की दर में वृद्धि करते हैं, अर्थात संयन्त्र, मशीन और इमारतों पर अपना खर्च बढ़ाते हैं। अब राष्ट्रीय आय, व्यय में हुई इस वृद्धि के बराबर, बढ़ जायेगी। मज़दूरी, लाभ आदि के रूप में यह व्यय-राशि उन लोगों को भुगतान होगी, जो निवेश-वस्तुएँ तैयार करनेवाले उद्योगों को अपनी साधन-सेवाएँ प्रदान करते हैं। ये लोग अपनी इस आय के एक भाग को बचायेंगे और शेष भाग वस्तुओं और सेवाओं की खरीद में खर्च करेंगे। इस खर्च से इन वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन में लगे लोगों को आय प्राप्त होगी। इस प्रकार कुल राष्ट्रीय आय में और वृद्धि होगी। इस खर्च से सृजित आय फिर बचत और व्यय के लिए इस्तेमाल होगी। जो शक्ति पुन: व्यय होगी, उससे फिर आय का सृजन होगा, जिसे फिर बचत तथा व्यय के लिए इस्तेमाल किया जायेगा। इस प्रकार यह क्रम दोहराता आगे बढ़ता रहेगा।

अतः इसके फलस्वरूप प्रारम्भिक निवेश-वृद्धि से राष्ट्रीय आय में अन्ततः जो वृद्धि होगी, वह निवेश-वृद्धि की राशि से कई गुना अधिक होगी। राष्ट्रीय आय में इस प्रकार होनेवाली वृद्धि की मात्रा को गुणक का नाम दिया जाता है।

उदाहरण के लिए, यदि निवेश-राशि में १० करोड़ रुपये की वृद्धि की जाती है, जिसके प्रभाव से राष्ट्रीय आय में अन्ततः ३० करोड़ रुपये की वृद्धि होती है, तो यहाँ गुणक ३ होगा और राष्ट्रीय आय में ४० करोड़ रुपये की वृद्धि होने की दशा में गुणक ४ निकलेगा।

इस अवधारणा का प्रतिपादन १९३१ में आर. एफ. कान्ह द्वारा हुआ जिसे आगे चलकर जे. एम. केन्स ने अपने आर्थिक विश्लेषण में विशेष स्थान दिया। निवेश-परिवर्तनों के अतिरिक्त गुणक अवधारणा का प्रयोग विदेश-व्यापार, सरकारी व्यय और कराधान आदि में हुए परिवर्तनों के साथ भी किया जा सकता है।

अर्थव्यवस्था में प्रायः अनेक ऐसे कारक कार्य कर रहे होते हैं, जिनके बारे में जानकारी नहीं होती। इस कारण किसी गुणक का सही-सही पता लगाना सम्भव नहीं हो पाता।

multi-pruduct firm (मल्टी प्रॉडक्ट फर्म) : बहुउत्पाद फर्म।

वह फर्म जो अनेक प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन करती है। ऐसी नीति अंशतः विपणन के सुलाभ प्राप्त करने और अंशतः कुछ उत्पादों की माँग के उतार-चढ़ाव को बराबर करने के लिए अपनायी जाती है।

N

national capital (नेशनल कैंपिटल) : राष्ट्रीय पूँजी ।

समय-विशेष पर किसी देश की समस्त वास्तविक पूँजी के मुद्रा-मूल्य को राष्ट्रीय पूँजी का नाम दिया जाता है ।

national debt (नेशनल डेट्): राष्ट्रीय ऋण ।

राष्ट्रीय अथवा केन्द्रीय सरकार द्वारा लिया गया ऋण । यह ऋण विभिन्न उद्देश्यों और तरीकों से लिया जाता है । स्वदेश में लिये गये ऋण को आन्तरिक ऋण और देश के बाहर प्राप्त किये गये ऋण को विदेशी ऋण कहते हैं । भारत में इधर कुछ समय से राष्ट्रीय ऋण द्रुत गति से बढ़ रहा है । १८५१ ई० में भारत सरकार का कुल ऋण २६०० करोड़ रुपये के लगभग था, जो बढ़कर १९७३ ई० में २२,००० करोड़ रुपये की सीमा को पार कर चुका था । ऋण-राशि में इस भारी वृद्धि के अनेक आर्थिक और आर्थिकेतर कारण रहे हैं । कभी-कभी राष्ट्रीय ऋण का सार्वजनिक ऋण के अर्थ में प्रयोग किया जाता है, जिसमें केन्द्रीय सरकार के अलावा राज्य व स्थानीय सरकारों के ऋण भी शामिल रहते हैं ।

देखिए : public debt

national dividend (नेशनल डिविडेण्ड) : राष्ट्रीय आय ।

राष्ट्रीय आय के लिए प्रयुक्त एक पुराना पद ।

देखिए : national income,

national income (नेशनल इन्‌कम) : राष्ट्रीय आय ।

किसी देश में एक वर्ष के दौरान उत्पादित सब अन्तिम वस्तुओं और सेवाओं के बाज़ार-मूल्य का कुल योग अथवा उत्पादन-साधनों को उनकी आर्थिक क्रियाओं के बदले एक वर्ष में प्राप्त आय-राशियों का कुल योग । स्पष्टतः राष्ट्रीय आय का आशय किसी एक समय पर वस्तुओं के उपलब्ध स्टॉक से नहीं बल्कि किसी समय-अवधि (साधारणतया एक वर्ष) में उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं के प्रवाह से है । राष्ट्रीय सम्पत्ति और राष्ट्रीय आय के बीच यही मुख्य अन्तर होता है ।

राष्ट्रीय आय की माप तीन तरीके से की जा सकती है: १. अर्थव्यवस्था में एक वर्ष के दौरान उत्पादित सब वस्तुओं और सेवाओं के मुद्रा-मूल्य का जोड़ लगाकर (दोहरी गणना से बचने के लिए इस विधि में केवल अन्तिम वस्तुओं की कीमतों को ही जोड़ा जाता है । निवल राष्ट्रीय आय मालूम करने के लिए उत्पादन के कुल मूल्य में से पूंजी के मूल्य-ह्रास की रकम घटा दी जाती है और साथ ही विदेशी लेन-देन का भी हिसाब करना होता है ।), २. उत्पादन-साधनों को, उनकी सेवाओं के बदले, मिलनेवाले प्रतिफल (लगान, ब्याज, वेतन, लाभ आदि) का जोड़ लगाकर (इस विधि के अन्तर्गत यह सावधानी बरतनी होती है कि अन्तरण-रूप भुगतानों

की गणना न होने पाये अन्यथा दोहरे मूल्यांकन की गलती फिर हो लेगी।), और ३. कुल उपभोग और बचत या निवेश-राशियों को जोड़कर। इन तीनों तरीकों से एक ही परिणाम निकलना चाहिए, क्योंकि ये तरीके एक ही चीज को देखने के विभिन्न कोणस्वरूप हैं।

राष्ट्रीय आय के आगणन में अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, जैसे कि वस्तुओं के चयन की कठिनाई, अविक्रीत माल के मूल्यांकन की कठिनाई, अन्तिम वस्तुओं के निश्चय की कठिनाई, कीमत-परिवर्तन की कठिनाई, आवश्यक आँकड़ों की उपलब्धि-सम्बन्धी कठिनाई आदि। इन कठिनाइयों के कारण राष्ट्रीय आय का बिल्कुल सही-सही अनुमान नहीं लग पाता। अल्पविकसित देशों में इस सम्बन्ध में अधिक कठिनाइयाँ उठती हैं।

उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं के प्रवाह की माप होने के नाते राष्ट्रीय आय लोगों की आर्थिक स्थिति एवं उनके कल्याण के स्तर का बोध कराती है। लेकिन राष्ट्रीय आय इसका बिल्कुल सही संकेतक नहीं हो सकती। कारण, आर्थिक स्थिति और कल्याण-वस्तुओं और सेवाओं के प्रवाह के अतिरिक्त यह इन अनेक बातों से भी प्रभावित होती है; जैसे कि लोगों के बीच वस्तुओं का वितरण, उत्पादित वस्तुओं की कोटि व किस्में, परिवेश-सम्बन्धी स्थिति। राष्ट्रीय आय के बढ़ने पर इनमें सुधार आना आवश्यक नहीं है।

national insurance (नेशनल इन्स्योरेन्स) : राष्ट्रीय बीमा।

सामाजिक सुरक्षा-योजना, जिसके अन्तर्गत बेकारी भत्ता, प्रसूति हितलाभ, सन्तान-भत्ता, अस्वस्थता हितलाभ, दुर्घटना क्षतिपूर्ति, विधवा-सहायता, पेन्शन आदि की व्यवस्था की जाती है। जिस कोष से इन विभिन्न बातों के लिए भुगतान किये जाते हैं, उसमें नियोक्ता, कर्मचारी और सरकार अपना निर्धारित योगदान करते हैं। सर्वप्रथम जर्मनी ने राष्ट्रीय बीमा स्कीम की शुरुआत की थी। उस आधार पर बाद में इंगलैण्ड, अमरीका आदि देशों में इस योजना को लागू किया गया।

national product (नेशनल प्रॉडक्ट): राष्ट्रीय उत्पादन।

राष्ट्रीय आय का ही दूसरा नाम।

देखिए : national income.

nationalisation (नेशनलाइजेशन) : राष्ट्रीयकरण।

निजी क्षेत्र के उद्योग या व्यवसाय को सरकारी स्वामित्व व प्रबन्धन के अधीन लाने की क्रिया। ऐसा करते समय साधारणतया पुराने मालिकों को मुआवजा देने की व्यवस्था की जाती है। राष्ट्रीयकरण समाजवादी नीति का तो सदा से ही महत्त्वपूर्ण अंग रहा है, वैसे भी वर्तमान समय में परिस्थितियों के अनुसार कम-अधिक सीमा तक राष्ट्रीयकरण आवश्यक और वांछनीय ठहराया जाता है। इसके पक्ष में यह कहा जाता है कि इससे उत्पादन-क्षमता में वृद्धि होगी। इसका आधार यह है कि ऐसी स्थिति में प्रत्यक्ष रूप से सार्वजनिक साधनों का निवेश हो सकेगा, उत्पादन के पैमाने को बढ़ाया जा सकेगा और विभिन्न क्रियाओं के बीच कारगर ढंग से तालमेल बिठाना सम्भव बन जायेगा। और फिर, ऐसे उद्योग, जिनमें

अधिक पूँजी की आवश्यकता पड़ती है, जिनमें जोखिम का अंश अधिक होता है अथवा जो देश की प्रतिरक्षा व लोक-उपभोग की वस्तुओं और सेवाओं से सम्बन्धित होते हैं, सरकार के अधीन ही चलाये जाकर राष्ट्रीय हितों को भली प्रकार बढ़ा सकते हैं। मूल व भारी उद्योगों के सम्बन्ध में भी यह बात काफी बड़ी सीमा तक लागू होती है। यही कारण है कि विभिन्न देशों में भी समय-समय पर राष्ट्रीयकरण का सहारा लिया जाता है। भारत में इधर कई व्यवसायों का कम-अधिक सीमा तक राष्ट्रीयकरण किया गया है, जैसे कि जीवन-बीमा व्यवसाय, सड़क-परिवहन, बड़े वाणिज्य बैंक आदि। राष्ट्रीयकरण के खिलाफ अक्षमता, सरकारी घिसघिस, राजनीतिक दवाव, घूसखोरी आदि बातें उठायी जाती हैं। लेकिन इन बातों को प्रायः बहुत बढ़ा-चढ़ाकर रखा जाता है। ठीक प्रकार के उपाय अपनाकर इन्हें दूर किया जाना सम्भव है।

national wealth (नेशनल वेल्थ): राष्ट्रीय धन।

किसी देश में समय-विशेष पर उपलब्ध सब प्रकार की वस्तुओं और सम्पत्तियों के मुद्रा-मूल्य का कुल योग। राष्ट्रीय धन में पुनरुत्पादनीय मूर्त परिसम्पत्तियाँ (पूँजी-स्टॉक) और अपुनरुत्पादनीय परिसम्पत्तियाँ (जैसे कि भूमि व प्राकृतिक संसाधन), दोनों शामिल रहती हैं। स्पष्टतः राष्ट्रीय धन का आगणन मोटे रूप में ही किया जा सकता है, क्योंकि इसमें सम्मिलित कुछ चीजों के मूल्य की सही जानकारी सम्भव नहीं है। आजकल राष्ट्रीय धन के आगणन की ओर कोई विशेष ध्यान नहीं जाता। लोगों के आर्थिक कल्याण के संकेतक के रूप में अब राष्ट्रीय आय का अधिक प्रयोग किया जाता है। वैसे राष्ट्रीय आय की मात्रा पर पुनरुत्पादनीय मूर्त सम्पत्ति का गहरा प्रभाव पड़ता है।

natural economy (नेचुरल इकॉनॉमि): नैसर्गिक अर्थव्यवस्था।

मुद्राहीन अथवा वस्तु-विनिमयवाली अर्थव्यवस्था के लिए एक वैकल्पिक नाम। यह वह अर्थव्यवस्था होती है, जिसमें मुद्रा का प्रयोग नहीं होता और वस्तुओं का विनिमय प्रत्यक्ष रूप से वस्तुओं के रूप में होता है।

natural monopoly (नेचुरल मॉनोपॅली): प्राकृतिक एकाधिकार।

१. कुछ एकाधिकारों का उदय इस बात से होता है कि जलवायु, भूमि की बनावट आदि प्राकृतिक बातों के कारण वस्तु-विशेष का उत्पादन या उपलब्धि मुख्य रूप से किसी खास क्षेत्र में ही सम्भव हो पाती है, जैसे कि कनाडा में निकिल का खान अथवा गंगा के डेल्टे में जूट का उत्पादन। ऐसे एकाधिकार प्राकृतिक एकाधिकार कहलाते हैं।

२. एक अन्य अर्थ में भी प्राकृतिक एकाधिकार का प्रयोग होता है। जब बाज़ार के सम्बन्ध में फर्म का इष्टतम आकार इतना बड़ा होता है कि एक ही फर्म के लिए गुंजाइश रहती है, तब स्पष्टतः एकाधिकार की स्थिति पैदा होगी। ऐसे एकाधिकार को भी प्राकृतिक एकाधिकार कहते हैं। यहाँ एक ही फर्म निम्नतर औसत लागत पर उत्पादन करने

में समर्थ होगी। विजली व गैस उद्योग प्राकृतिक एकाधिकार के अच्छे उदाहरण ठहरते हैं। साधारणतया ऐसे एकाधिकार सरकार या स्थानीय प्राधिकारियों के अधीन चलाये जाते हैं।

natural order (नेचुरल ऑर्डर): नैसर्गिक विधान।

अठारहवीं शताब्दी के प्रकृतिवादी अर्थशास्त्रियों का यह विचार था कि आर्थिक जीवन का नियमन सार्वभौमिक नियमों से होता है। इस नैसर्गिक विधान को बनाये रखना व्यक्ति और समाज, दोनों के हित में है। इसके लिए आवश्यक है कि लोगों को अधिक-से-अधिक स्वाधीनता मिले और सरकार व्यक्ति के कार्यकलापों में हस्तक्षेप न करे। इसी आधार पर एडम स्मिथ ने अबन्ध नीति का विकास किया, जिसका लम्बी अवधि तक प्रभाव रहा।

देखिए : laisses-faire.

natural rate of interest (नेचुरल रेट ऑफ इन्टरेस्ट) : सन्तुलक ब्याज-दर।

विकसेल द्वारा प्रयुक्त अवधारणा। यह वह सन्तुलनकारी ब्याज-दर है जो कर्ज के लिए माँग और उधारार्थ निधि की पूर्ति का समीकरण करती है। ब्याज की वाजार-दर इस सन्तुलक ब्याज-दर से कम या अधिक हो सकती है। विकसेल ने इसका समय-समय पर होनेवाले अति उधार-विस्तार और उधार-संकुचन के स्पष्टीकरण के लिए प्रयोग किया। यदि बाजार-दर सन्तुलक ब्याज-दर से कम है, तो ऋण के लिए माँग में भारी वृद्धि होगी और फलस्वरूप उधार का अति विस्तार होगा। इसके विपरीत यदि ब्याज-दर अपेक्षाकृत अधिक है, तो उधार का विस्तार रुकेगा। इससे उत्पादन कम होगा और वेरोज़गारी बढ़ेगी।

natural resources (नेचुरल रिसोर्सेज): प्राकृतिक संसाधन।

वे सब संसाधन, जो प्रकृति विभिन्न रूपों में मनुष्य के प्रयोग के लिए प्रदान करती है; जैसे कि वन, पहाड़, जल, खनिज आदि। किसी देश का आर्थिक जीवन और सुख-समृद्धि काफी बड़ी सीमा तक प्राकृतिक संसाधनों की मात्रा तथा विविधता पर निर्भर करती है। लेकिन केवल प्रचुर मात्रा में प्राकृतिक संसाधनों के मौजूद होने से ही कोई देश अमीर नहीं बन जाता। विकास करने के लिए यह आवश्यक है कि इनके भरपूर उपयोग के लिए सही व वैज्ञानिक नीति का सहारा लिया जाये और देश में पूरक साधन, विशेष रूप से पूँजी और तकनीकी जानकारी, पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हों अन्यथा वह देश आगे न बढ़ सकेगा। भारत की अभी तक कुछ इसी प्रकार की स्थिति रही है।

near money (नियर मॅनी) : मुद्रावत्।

इसका आशय ऐसी किसी वस्तु से है जो तकनीकी दृष्टि से तो मुद्रा नहीं होती, अर्थात् उसमें विधिग्राह्यता का गुण नहीं होता, लेकिन जिसके द्वारा मुद्रा के कुछ कार्य सम्पन्न होते हैं। बिल या हुण्डी इसका एक अच्छा उदाहरण है।

negative tax plan (निगेटिव टैक्स प्लान) : ऋणात्मक कर-योजना।

कराधान की वह योजना जिसके अन्तर्गत निर्वाहस्तर के ऊपर के परिवारों

पर वर्धमान आय-कर लगाया जाता है और निर्वाह-स्तर के नीचेवाले परिवारों को सरकार की ओर से आर्थिक सहायता देने की व्यवस्था की जाती है, जिससे कि ऐसे परिवारों की आय निर्वाह-स्तर तक पहुँच सके। यह आर्थिक सहायता यहाँ ऋणात्मक कर होगी। आलोचकों का कहना है कि यह योजना व्यावहारिक नहीं है। इससे कार्य और बचत करने की प्रेरणा को ठेस पहुँचेगी।

neo-classical school (निओ-क्लासिकल स्कूल) नव-संस्थापक सम्प्रदाय।

कैम्ब्रिज सम्प्रदाय के लिए प्रायः प्रयुक्त शब्द। इस सम्प्रदाय के अर्थशास्त्रियों ने उन्नीसवीं शताब्दी में हुए परिवर्तनों के आधार पर संस्थापित अर्थशास्त्र के पुनर्निर्माण का कार्य किया। इंगलैंड में जेवन्स, आस्ट्रिया में मेन्ज़र तथा फ्रान्स में वालरा इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे। बाद के प्रमुख अर्थशास्त्रियों में मार्शल, वार्म वेनर्क, पैरेटो, क्लार्क और फिशर के नाम उल्लेखनीय हैं। इस सम्प्रदाय के सदस्य प्रतियोगिता को आर्थिक क्रियाओं का नियामक मानते थे। इनके अनुसार उत्पादन और उपभोग के बीच सन्तुलन स्थापित करने का कार्य प्रतियोगिता द्वारा होता है। इन्होंने अर्थशास्त्र के अध्ययन में गणित का बड़ा सहारा लिया, जिसके फलस्वरूप अर्थशास्त्र ने तकनीकी रूप धारण कर लिया और इस कारण इसके सम्बन्ध में जनसाधारण की रुचि कम हो गयी।

देखिए : cambridge school.

neo-malthusianism (निओ-माल्थ्यूसीयनिज़्म) : नव-माल्थसवाद।

सन्तति-निग्रह के उपायों के सहारे जनसंख्या-वृद्धि को सीमित करने के लिए माल्थस के अनुयायियों द्वारा चलाया गया आन्दोलन। इस आन्दोलन को अनेक राजनीतिज्ञों, चिकित्सकों, समाजशास्त्रियों तथा अर्थशास्त्रियों का समर्थन प्राप्त है। भारत-जैसे कुछ देशों की सरकार ने इसे सरकारी स्तर पर अपना लिया है। वैसे माल्थस स्वयं केवल नैतिक प्रतिबन्ध के समर्थक थे। वे जनसंख्या-वृद्धि को रोकने के लिए कृत्रिम तथा अस्वाभाविक उपायों के व्यवहार के विरुद्ध थे। नव-माल्थसवादियों के विचारानुसार यदि माल्थस भी इस समय ज़ीवित होते, तो वे भी सन्तति-निग्रह के आन्दोलन का समर्थन करते। कारण, वे उदार तथा व्यावहारिक व्यक्ति थे। लेकिन कुछ लोग इस विचार से सहमत नहीं हैं।

net assets (नेट असेट्स) : निवल परिसम्पत्तियाँ।

व्यवसाय में लगी पूँजी। स्थायी और चालू परिसम्पत्तियों में से चालू देनदारियाँ घटाकर निवल परिसम्पत्ति का हिसाब लगाया जा सकता है। पूँजी की प्रतिफल-दर निकालने के लिए इसे प्रायः इस्तेमाल किया जाता है।

net domestic product (नेट डोमेस्टिक प्रॉडक्ट): निवल घरेलू उत्पाद।

सकल घरेलू उत्पाद में से मूल्य-ह्रास निकालने के बाद बची राशि।

देखिए : gross domestic product.

net income (नेट इन्कॅम) : निवल आय।

किसी व्यवसाय की वह आय, जो

व्यवसाय-संचालन का खर्च निकालने के बाद बच रहती है। व्यक्ति के सम्बन्ध में इसका आशय आय-कर के भुगतान के बाद बची राशि से होता है।

net interest (नेट इन्टरेस्ट) : निवल ब्याज।

वह ब्याज, जिसमें मुद्रा-पूंजी के उपयोग के अतिरिक्त अन्य किसी बात के लिए भुगतान की राशि शामिल नहीं रहती। यदि उधार देने में कोई जोखिम न हो और न ही उसमें किसी प्रकार की असुविधा या अतिरिक्त खर्च व कार्य की आवश्यकता हो, तो ऐसी दशा में जो ब्याज चुकाया जायेगा, वह निवल ब्याज कहलायेगा। इस प्रकार निवल ब्याज सकल ब्याज का एक अंश होता है।

net investment (नेट इन्वेस्टमेण्ट) : निवल निवेश।

किसी अवधि-विशेष में पूंजी-निर्माण पर हुए कुल व्यय में से वर्तमान पूंजी की घिसावट व प्रतिस्थापन की राशि घटाने के बाद जो बचता है, उसे निवल निवेश कहा जाता है। इसे पूंजी-स्टॉक में परिवर्तन की माप के लिए इस्तेमाल किया जाता है। स्पष्टतः यदि वर्तमान पूँजी की घिसावट और प्रतिस्थापन के लिए पूरी व्यवस्था नहीं की जाती, तो निवल निवेश ऋणात्मक ठहरेगा।

net national product (नेट नेशनल प्रॉडक्ट) : निवल राष्ट्रीय उत्पाद।

राष्ट्रीय आय के आगणन के सम्बन्ध में प्रयुक्त अवधारणा। सकल राष्ट्रीय उत्पाद की राशि में मूलह्रास का हिसाब करके निवल राष्ट्रीय उत्पाद मालूम किया जा सकता है।

देखिए : gross national product.

net price (नेट प्राइस) : निवल कीमत।

वह कीमत, जिस पर वट्टा नहीं काटा जाता।

net profit (नेट प्रॉफिट) : निवल लाभ।

लेखा-विधि की दृष्टि से सब मुद्रा-लागत निकालने के बाद बची राशि को निवल लाभ कहा जाता है। कर चुकाने के बाद यह राशि अधिशेष के रूप में फर्म के मालिकों के बीच आय-वितरण तथा रिजर्व व नये निवेश-कार्यों के लिए उपलब्ध रहती है।

net reproduction rate (नेट रिप्रॉडक्शन रेट) : निवल जनन-दर।

जनन-दर का आशय प्रति एक हजार स्त्रियों के पीछे पैदा हुई लड़कियों की संख्या से है। इससे इस बात का बोध होता है कि जनसंख्या किस गति से अपने को प्रत्युत्पन्न कर रही है। यहाँ सकल और निवल जनन-दर में भेद किया जा सकता है। सकल जनन-दर में यह मान लिया जाता है कि किसी समय में जितनी बालिकाएँ पैदा हुई हैं, वे सब-की-सब शिशु-धारक-काल के अन्त तक जीवित रहेंगी, जबकि निवल जनन-दर में शिशु-धारक-काल के पहले और उसके दौरान मरनेवाली स्त्रियों का हिसाब किया जाता है।

अशोधित जन्म और मृत्यु की दरों की अपेक्षा निवल-दर जनसंख्या-प्रवृत्तियों का श्रेष्ठतर संकेतक है। यदि एक हजार स्त्रियाँ अपने पीछे प्रजनन-कार्य के लिए एक हजार स्त्रियाँ छोड़

जाती हैं, तो निवल जनन-दर एक के बराबर होगी। ऐसी स्थिति में जनसंख्या अपने को बस बनाये ही रख सकेगी। अर्थात् जनसंख्या स्थिर रहेगी। यदि निवल जनन-दर एक से अधिक है, तो जनसंख्या बढ़ेगी और यदि जनन-दर एक से कम है, तो जनसंख्या घटेगी।

neutral money (न्युट्रल मॅनी) : निष्प्रभाव मुद्रा।

इसका आशय उस मुद्रा से है, जो विनिमय-माध्यम और लेखा-इकाई के निष्क्रिय कार्य तो करती है, लेकिन उन गत्यात्मक कार्यों को नहीं करती जो अर्थव्यवस्था को प्रभावित करते हैं।

neutral rate of interest (न्युट्रल रेट ऑफ इण्टरेस्ट) : व्याज की निष्प्रभावी दर।

लार्ड केन्स द्वारा प्रयुक्त अवधारणा। यह वह सन्तुलनकारी व्याज-दर है जो वाध्य बचत न की जाने की दशा में निवेश को वास्तविक बचत के बराबर करती है।

new deal (न्यू डील) : न्यू डील, नवीन आर्थिक योजना।

राष्ट्रपति रूज़वेल्ट के शासन-काल में अमरीकी सरकार ने बड़ी मन्दी के हानिकर प्रभावों को दूर करने के लिए १९३३ में एक व्यापक कार्यक्रम अपनाया। इसके अन्तर्गत सरकार ने बड़े पैमाने पर निवेश-कार्य शुरू किया ताकि मन्दी के कारण बेकार लोगों को रोज़गार मिल सके। कृषि-उत्पादन की मात्रा घटाकर कृषि-पदार्थों की कीमतों एवं किसानों की आय बढ़ाने के लिए कदम उठाये गये। साथ ही बेकारी भत्ता, पेन्शन आदि की भी व्यवस्था की गयी। सरकारी नीति में इस प्रकार लाये गये परिवर्तन को न्यू डील अथवा नवीन आर्थिक योजना का नाम दिया गया। वजट में घाटे की बात को लेकर कुछ लोगों ने इस नीति का विरोध किया।

new issue market (न्यू इस्यू मार्केट): नवनिर्गम-बाज़ार।

पूंजी-बाज़ार का वह भाग, जो नये स्टॉक या शेयरों के क्रय-विक्रय से सम्बन्धित होता है। जिन संस्थाओं को पूंजी की आवश्यकता होती है, वे साधारणतया वित्तीय बिचौलियों के माध्यम से जनता व संस्थाओं में बिक्री के लिए शेयर और प्रतिभूतियाँ जारी करती हैं। नये शेयर जारी करने की अनेक विधियाँ हैं। नव निर्गम-बाज़ार बड़े-बड़े व्यवसायों के लिए विशेष महत्त्व रखता है। शेयरपूंजी-बाज़ार की भाँति नवनिर्गम-बाज़ार भी अधिकाधिक अन्तर्राष्ट्रीय रूप धारण करता जा रहा है।

nominal value (नॉमिनल वैल्यू) : अंकित मूल्य।

शेयर या प्रतिभूतियों के अंकित मूल्य का ही दूसरा नाम, जो उनके बाज़ार-मूल्य से कम या ज्यादा हो सकता है।

देखिए : face value
par value.

nominal wages (नॉमिनल वेजेज) : नकद मज़दूरी।

वह मुद्रा-राशि, जो किसी श्रमिक को उसके कार्य के बदले पारिश्रमिक के रूप में मिलती है। इसके विपरीत वास्तविक मज़दूरी का आशय उन सब वस्तुओं, सेवाओं, सुविधाओं और सुलाभों के जोड़

से है जो किसी श्रमिक को उसके कार्य के बदले प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से प्राप्त होता है। मूल रूप से श्रमिकों का जीवन-स्तर नकद मज़दूरी पर नहीं, बल्कि वास्तविक मज़दूरी पर निर्भर करता है।

non-capitalist path of development (नॉन-कैपिटलिस्ट पाथ ऑफ डेवलपमेण्ट): इतर-पूंजीवादीय विकास-पथ।

विकासमान देशों द्वारा तीव्र विकास के लिए अपनायी गयी सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र की एक महत्त्वपूर्ण रण-नीति, जिसमें विकास-प्रक्रिया को एक संयुक्त तथा परस्पर-सम्बन्धित प्रक्रिया माना गया है। इस नीति का आधार यह मत है कि पूंजीवाद और साम्राज्यवाद तीसरी दुनियाँ के आर्थिक अवरोध के लिए जिम्मेदार हैं और बिना इन्हें हटाये आर्थिक विकास सम्भव नहीं है। यह विचार यह भी मानता है कि तात्कालिक समाजवादी संरचना राजनीतिक और सामाजिक दृष्टि से अल्पकाल में सम्भव नहीं है। इस प्रकार इतर-पूंजीवादीय विकास-मार्ग समाजवादी परिवर्तन की एक मंजिल है।

इस आर्थिक नीति का आधार देश के गैरएकाधिकारी-गैरभूमिपति तवकों की एकता के आधार पर सार्वजनिक क्षेत्र का अर्थव्यवस्था के निर्धारक अंगों पर आधिपत्य, व्यापक भूमि-सुधार, अनुशासित तथा व्यापक आर्थिक आयोजन, बचत, निवेश तथा आर्थिक विकास की तेज दर, व्यापक संस्थागत परिवर्तन और आय तथा सम्पत्ति की अधिकाधिक समानता द्वारा निम्न आय-वर्ग के जीवन-स्तर में सामाजिक उपभोग तथा रोज़गार द्वारा शीघ्र सुधार है। विदेशी पूंजी, ऋण तथा तकनीकों के स्थान पर आत्म-परिपूरकता की नीति को अपनाकर नव-उपनिदेशवाद से मुक्ति पाना भी इस नीति का जरूरी अंग है।

non-price competition (नॉन-प्राइस कम्पिटीशन) : कीमतेतर प्रतियोगिता।

फर्मों या विक्रेताओं द्वारा अपने माल की बिक्री बढ़ाने के लिए अपनायी गयी वे नीतियाँ, जो सीधे तौर पर कीमत में परिवर्तन नहीं लाती हैं परन्तु क्रेता को वैसी ही रियायत के समान प्रतीत होती हैं, कीमतेतर प्रतियोगिता कहलाती हैं। विज्ञापन, बिक्री बढ़ाने की विविध योजनाएँ, मुफ्त भेंट, इनामी योजनाएं, थोक तथा खुदरा व्यापारियों को दी गयी सुविधाएँ आदि इस प्रकार की प्रतियोगिता के सामान्य रूप हैं। फर्में जहाँ दूसरी फर्मों द्वारा अपनी कीमत-नीति में लाये गये परिवर्तनों की नकल की सम्भावना देखती हैं, वहाँ ऐसी छिपी कीमत घटाने की योजनाएँ लागू करती हैं।

no-rent land (नो-रेण्ट लैण्ड): बेलगान भूमि।

रिकार्डो के लगान-सिद्धान्त से सम्बन्धित अवधारणा। इस सिद्धान्त के अनुसार इसका आशय सीमान्त भूमि से है—वह भूमि, जिस पर खेती करने से चालू कीमतों के अनुसार खेती की केवल लागत ही निकल पाती है। लागत के ऊपर यहाँ कुछ बचत नहीं होती। अर्थात् इस भूमि से कुछ भी अधिशेष उपलब्ध नहीं।

चूंकि अर्थशास्त्र में लगान का अर्थ अधिशेष से है, इसलिए ऐसी भूमि को

बेलगान भूमि कहते हैं। इससे श्रेष्ठतर भूखण्डों पर जो अतिरिक्त या वेशी उपज होगी, वह उन भूखण्डों का लगान ठहरेगा। इस प्रकार बेलगान भूमि अधिक उपजाऊ भूखण्डों पर लगान आँकने का आधार है।

normal price (नॉर्मल प्राइस) : सामान्य कीमत।

किसी वस्तु की दीर्घकालीन सन्तुलन-कीमत, जबकि माँग के साथ पूर्ति का भली प्रकार समंजन हो लेता है, सामान्य कीमत कहलाती है। यह औसत लागत के बरावर होती है। औसत लागत के बराबर न होने की दशा में उत्पादक अपने लाभ को अधिकतम करने के लिए पूर्ति की मात्रा घटा-बढ़ा लेंगे, और ऐसा करने के लिए दीर्घकाल की अवधि में पूरा अवसर मिल जाता है। यह बाज़ार-कीमत के लिए एक केन्द्रीय स्तर का काम करती है। इस स्तर से हटने पर बाज़ार-कीमत में उसकी ओर लौटने की प्रवृत्ति पायी जाती है।

normal profit (नॉर्मल प्रॉफिट) : सामान्य लाभ।

वह न्यूनतम लाभ, जिसके न मिलने पर उद्यम-कर्त्ता व्यवसाय-विशेष में नहीं रह सकेगा। इस प्रकार व्यवसाय की दृष्टि से सामान्य लाभ उद्यमकर्त्ता को उस व्यवसाय में रोकने और जोखिम उठाने की न्यूनतम कीमत है। स्पष्ट है कि सामान्य लाभ एक आवश्यक प्रतिफल है। इसके न मिलने पर उद्यमकर्त्ता उस कार्य को छोड़ देगा। इस कारण सामान्य लाभ लागत का एक अंश माना जाता है। पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत सन्तुलन की स्थिति में उद्यमकर्त्ता को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होगा, न उससे कम और न उससे अधिक।

O

obsolescesnce (आबसोलेसेन्स) : अप्रचलन।

कभी-कभी किसी पूंजी-वस्तु को उसकी घिसावट के कारण नहीं, बल्कि आर्थिक, तकनीकी अथवा बाहरी कारणों से बदलना जरूरी हो जाता है। जब इस प्रकार किसी पूंजी-वस्तु को हटाया जाता है अथवा उसका प्रयोग खत्म किया जाता है, तब यह अप्रचलन कहलाता है। मान लें कि किसी नयी उत्पादन-विधि या मशीन का विकास किया गया है। इसके फल-स्वरूप वर्तमान साज-सामान अलाभकारी बन जायेगा, क्योंकि इसके स्थान पर नयी मशीन लगाने से लागत में भारी कमी हो

सकेगी। इस प्रकार काम के लायक रहने पर भी वर्तमान मशीन को हटाना पड़ेगा। वह अप्रचलित मशीन हो लेगी। निवल राष्ट्रीय उत्पाद मालूम करने के लिए पुरानी व घिसी हुई मशीनों के साथ-साथ अप्रचलित मशीनों के प्रतिस्थापन का भी हिसाब-किताब करना आवश्यक होता है।

occupational hazard (आक्यूपेशनल हेजार्ड) : व्यवसाय जोखिम।

दुर्घटना व बीमारी-सम्बन्धी वे जोखिमें, जो व्यवसाय-विशेष में निहित होती हैं। जिन धन्धों में व्यावसायिक जोखिमें अधिक होती हैं, उनमें मज़दूरी की दरें अपेक्षाकृत ऊँची होती हैं। कारण, ऐसे व्यवसायों में कम लोग जाना पसन्द करेंगे और फलस्वरूप श्रम की पूर्ति कम होगी।

occupational structure (ऑक्यूपेशनल स्ट्रक्चर) : व्यवसायगत संरचना, ढाँचा।

किसी देश या क्षेत्र की जनसंख्या के विभिन्न व्यवसायों में वर्गीकरण से वहाँ के व्यवसायगत ढाँचे का पता चलता है। व्यवसायों का वर्गीकरण कृषि, उद्योग, सेवा आदि-जैसा स्थूल भी हो सकता है या इनको और ज्यादा छोटे व्यवसायों में बाँटकर इसे कम स्थूल या सूक्ष्म भी किया जा सकता है।

किसी भी अर्थव्यवस्था की प्रकृति वहाँ की व्यवसायगत संरचना द्वारा प्रकट हो जाती है। आधुनिक आर्थिक विकास के शुरू में व्यावसायिक ढाँचे में उद्योगों का महत्त्व बढ़ता है और बाद में सेवाओं या तृतीयक क्षेत्र का। परन्तु कृषि, उद्योगों या सेवाओं की प्रकृति में तकनीकी प्रगति, संगठनात्मक रूपों और संस्थागत स्वरूप के कारण इतने परिवर्तन आये हैं कि यह वर्गीकरण अपनी विभेदक विशिष्टता खोता जा रहा है। परन्तु फिर भी इतना तो सही है कि आर्थिक विकास के साथ-साथ जनसंख्या का ज्यादा भाग कम उत्पादिता-वाले व्यवसायों से ज्यादा उत्पादितावाले व्यवसायों में काम करने लगता है।

oligopoly (ऑलिगोपोली) : अल्पाधिकार।

वह बाज़ार, जिसमें किसी खास वस्तु या साधन की पूर्ति का अधिकांश भाग कुछ फर्मों के ही हाथ में केन्द्रित हो। ऐसी बाज़ार-स्थिति में हर फर्म दूसरी फर्मों के निर्णयों और कामों से काफी घनिष्ठ रूप से प्रभावित होती है। इन फर्मों की एक-दूसरे के बारे में जानकारी भी काफी व्यापक और विश्वसनीय होती है। इसलिए एक फर्म के लिए दूसरी फर्मों के निर्णयों और कामों के बारे में सही-सही अनुमान लगाना और उसके परिणाम से अपनी स्थिति को लाभ पहुंचाने तथा हानि होने से रोकने के कदम उठाना सम्भव हो जाता है। इस तरह अल्पाधिकारी बाज़ार में फर्में एक-दूसरे के निर्णयों और उनसे उपजे प्रभावों के बारे में अनिश्चितता और जोखिम की स्थिति का सामना करती हैं। कम संख्या, इस प्रकार की जोखिम और अधिक मुनाफे की प्रेरणा से ये फर्में आपस में साँठ-गाँठ की नीति भी अपना सकती हैं। इस तरह कीमत को लागत से काफी ऊंचा रखा जा सकता है और नयी फर्मों का प्रवेश रोकने के लिए बाधाएं खड़ी की जा सकती हैं। कीमतें स्थिर रखते हुए

अल्पाधिकारी फर्में कीमतेतर प्रतियोगिता द्वारा अपनी स्थिति सुधारने का प्रयास करती हैं।

ऐसी बाज़ार-स्थिति में सन्तुलन की खोज कठिन हो जाती है। कुछ अर्थशास्त्री अल्पाधिकार में सन्तुलन की स्थिति मानते हैं और कुछ एकाधिकार की स्थिति में लागू विश्लेषण को यहाँ भी लागू करते हैं। अल्पाधिकारी बाज़ार-स्थिति में साधनों का इष्टतम आवण्टन नहीं हो पाता है तथा निवेश, तकनीकी प्रगति और उपभोक्ता के हितों की हानि होती है। पूंजीवाद के विकास के साथ एकाधिकारी, अल्पाधिकारी बाज़ार भी विकसित होते हैं।

oligopsony (ऑलिगोप्सोनी) : अल्प-क्रेताधिकार।

बाज़ार की वह स्थिति, जहाँ पर खरीदारों की संख्या बहुत सीमित हो। स्पष्ट है कि ऐसी स्थिति में सब खरीदारों के व्यवहार में घनिष्ठ सम्बन्ध होगा। ऐसे बाज़ार में उत्पादकों पर खरीदारों का गहरा प्रभाव होगा। सारे खरीदार मिलकर साँठ-गाँठ करके फर्मों से नीची तथा लाभदायक कीमतें और अन्य सुविधाएँ प्राप्त कर सकते हैं। औद्योगिक कच्चे मालों के बाज़ार के वास्तविक जीवन में अल्पक्रेताधिकारी होने की काफ़ी सम्भावना है।

open account (ओपेन एकाउण्ट) : खुला लेखा।

व्यापारिक उधार का एक तरीका, जिसका व्यापक प्रयोग होता है। इसके अन्तर्गत विक्रेता अपनी बहियों में क्रेता या ग्राहक को दिये गये उधार को दर्ज कर लेता है और लदान-कागजात क्रेता को भेज दियें जाते हैं। इस प्रकार क्रेता का माल पर पूरा अधिकार हो जाता है। विक्रेता इस उधार का हिसाब अपने पास रखता है और भुगतान का समय आने पर (विक्री के ३० से ९० दिन बाद) क्रेता को बिल भेज देता है। उधार देने का यह तरीका बहुत आसान व कम खर्चीला है और साथ ही सुविधाजनक भी; क्योंकि करारशर्तों में बिना किसी कठिनाई के परिवर्तन किये जा सकते हैं। लेकिन इसके अन्तर्गत क्रेता द्वारा खाता न देखे जाने के कारण बिक्री की शर्तों के सम्बन्ध में झगड़ा उठने की सम्भावना रहती है।

open economy (ओपेन इकॉनॉमि): खुली अर्थव्यवस्था।

किसी क्षेत्र की अर्थव्यवस्था, जहाँ व्यापार पर कोई रोक-टोक नहीं होती। खुली अर्थव्यवस्था में आयात, निर्यात और साधनों के बाहर जाने-आने पर किसी प्रकार के प्रतिबन्ध नहीं लगाये जाते। लोग दूसरे क्षेत्र के निवासियों के साथ खुले रूप में बिना किसी नियन्त्रण के व्यापार कर सकते हैं।

open market (ओपेन मार्केट) : खुला बाज़ार।

वह बाज़ार, जिसमें खरीदने-बेचनेवालों पर किसी प्रकार का बाहरी प्रतिबन्ध नहीं होता और कीमतें स्वतन्त्र रूप से माँग और पूर्ति की शक्तियों द्वारा निर्धारित होती हैं।

open market operations (ओपेन मार्केट ऑपरेशन्स) : खुली बाज़ार-कार्रवाई।

केन्द्रीय बैंक का या मुद्रा-नीति का एक प्रमुख उपकरण। केन्द्रीय बैंक (भारत में रिजर्व बैंक) जब मुद्रा-प्रसार या मुद्रा-संकुचन की नीति लागू करना चाहता है, तब वह क्रमशः बाजार से सरकारी प्रतिभूतियाँ खरीदकर या बेचकर ऐसा कर सकता है। जब खुले बाजार यानी स्टॉक-बाजार में केन्द्रीय बैंक प्रतिभूतियाँ बेचता है, तब वह अर्थव्यवस्था में मुद्रा की मात्रा बढ़ाता है। दूसरी ओर, जब केन्द्रीय बैंक बाजार में प्रतिभूतियाँ खरीदता है, तब वह वहाँ से मुद्रा खींच लेता है।

बैंक-दर के साथ खुली बाजार-कार्रवाई मुद्रा-नीति के सबसे पुराने और प्रयुक्त उपकरण हैं। इस नीति से मुद्रा की मात्रा और फलतः ब्याज की दर को प्रभावित किया जाता है। इस तरह आर्थिक क्रियाओं, निवेश, बचत, उपभोग (या प्रभावी माँग), रोजगार तथा कीमत-स्तर को अप्रत्यक्ष रूप से, मौद्रिक प्रभावों द्वारा, नियन्त्रित करने का प्रयास किया जाता है। अर्थव्यवस्था की तरलता के स्तर को खुली बाजार-कार्रवाई सीधे रूप से प्रभावित करती है।

open shop (ओपेन शॉप) : संघयुक्त प्रतिष्ठान।

इसका आशय ऐसे व्यवसाय-प्रतिष्ठान या फर्म से है जो लोगों को इस बात का भेद किये बिना, कि वे संघ के सदस्य हैं या नहीं, काम पर लगाती है। उस पर ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं रहता कि केवल संघ के सदस्य ही नौकरी पर रखे जायें।

operating cost (ऑपरेटिंग कॉस्ट) : प्रचालन लागत।

परिवर्ती लागत के लिए एक वैकल्पिक शब्द।

देखिए : variable cost.

operating profit (ऑपरेटिंग प्रॉफिट): प्रचालन लाभ।

लेखा-विधि की दृष्टि से बँधी लागत काटने के पूर्व कुल सम्प्राप्ति या बिक्री-आय और कुल परिवर्ती लागत के बीच के अन्तर को प्रचालन लाभ कहा जाता है। दूसरे शब्दों में, यह सकल लाभ और प्रचालन लागत का अन्तर है।

operational research (ऑपरेशनल रिसर्च): संचालन-अनुसन्धान।

व्यवसाय-सम्बन्धी समस्याओं के सर्वश्रेष्ठ समाधान मालूम करने के लिए विभिन्न विकल्पों के गुणों-अवगुणों का विवेचन व मूल्यांकन। इसके अन्तर्गत समस्याओं के इष्टतम समाधान का पता लगाने के लिए आवश्यक विधियों का विकास किया जाता है। इसके लिए समस्याओं को पूरी तरह पहचानना पड़ता है, उनके मॉडल तैयार किये जाते हैं और फिर साधन- तकनीक के व्यवहार से उन मॉडलों से वास्तविक समस्याओं के लिए समाधान निकाले जाते हैं। संचालन-अनुसन्धान के क्षेत्र में गणित, इंजीनियरी और अर्थशास्त्र का विशेष सहारा लिया जाता है।

opportunity cost (ऑपरच्युनिटी कॉस्ट): विकल्प लागत।

उस वस्तु या विकल्प का मूल्य, जिसे किसी अन्य वस्तु की प्राप्ति या उत्पादन के लिए त्यागना पड़ेगा। उत्पादन के साधन सीमित होते हैं और साधारणतया उनके अनेक वैकल्पिक प्रयोग होते हैं।

स्पष्टतः जब उन्हें किसी एक वस्तु के उत्पादन के लिए इस्तेमाल किया जायेगा, तब उनके अन्य वैकल्पिक प्रयोग या प्रयोगों को छोड़ना पड़ेगा। साधनों के जिन अन्य वैकल्पिक प्रयोगों को त्यागना पड़ेगा, उनका मूल्य विकल्प लागत होगा उस वस्तु के लिए, जिसके उत्पादन में साधनों को वास्तव में लगाया जाता है। युद्ध के लिए साज-समान तैयार करने की विकल्प लागत वे सब वस्तुएँ ठहरेंगी जो साधनों के विकल्प प्रयोग से उत्पादित की जा सकती थीं। इस प्रकार किसी वस्तु की विकल्प लागत का आशय उस दूसरी वस्तु के उत्पादन के अवसर से है, जिसका उसके लिए त्याग करना पड़ता है।

optimum (ऑप्टिमम्) : इष्टतम।

विशेष उद्देश्य के सन्दर्भ में किसी चर द्वारा सर्वश्रेष्ठ मूल्य ग्रहण करना अथवा आर्थिक दृष्टि से किसी चीज की सबसे अच्छी स्थिति। इस प्रकार हम किसी देश की इष्टतम जनसंख्या अथवा इष्टतम फर्म या इष्टतम उत्पादन की बात कर सकते हैं।

optimum firm (ऑप्टिमम् फर्म) : अनुकूलतम फर्म, इष्टतम फर्म।

फर्म के आकार के बारे में प्रचलित अवधारणा। फर्म का वह आकार, जो दी हुई बाज़ार, तकनीक तथा प्रतियोगिता की स्थिति में न्यूनतम लागत पर उत्पादन करने में समर्थ हो, अनुकूलतम आकार कहलायेगा। इस विचार के पीछे यह धारणा निहित है कि बड़े स्तर के उत्पादन की किफायतें एक सीमा तक ही मिल पाती हैं और बाद में कुछ साधनों (जैसे प्रबन्ध-क्षमता, सूचनाभाव आदि) के कारण उत्पादन का पैमाना बढ़ाने पर औसत लागतें भी बढ़ेंगी। इस तरह एक ऐसा आकार होगा जो बड़े स्तर के उत्पादन की किफ़ायतों और बढ़ती लागतों के बीच सही सन्तुलन बिठायेगा। वह आकार सर्वोत्तम होगा।

बाज़ार (माँग तथा प्रतियोगिता) और तकनीक के स्तर को निश्चित तथा ज्ञात मानने के कारण यह धारणा अल्पकालिक और स्थैतिक है। एक गतिमय अर्थव्यवस्था में, या दीर्घकालिक स्थिति में, यह अवधारणा लागू नहीं होगी।

optimum output (ऑप्टिमम् आउटपुट) : इष्टतम उत्पादन।

उत्पादन की वह मात्रा जिस पर औसत लागत न्यूनतम होती है। इस मात्रा में कम या अधिक उत्पादन करने पर औसत लागत अधिक ठहरेगी। पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत प्रत्येक फर्म इष्टतम उत्पादन-स्तर प्राप्त करने के लिए प्रयास करेगी, क्योंकि ऐसा होने पर ही वह प्रतियोगिता में टिककर अपने लाभ को अधिकतम कर सकेगी।

optimum population (ऑप्टिमम् पॉपुलेशन) : अनुकूलतम या इष्टतम जनसंख्या।

जनसंख्या के आकार के बारे में एक सिद्धान्त, जिसके अनुसार साधनों की मात्रा, तकनीक आदि के निश्चित और ज्ञात होने पर वह जनसंख्या अनुकूलतम मानी जायेगी, जिसके आर्थिक क्रियाओं में भाग लेने के फलस्वरूप प्रति व्यक्ति आय अधिकतम हो। यह सिद्धान्त श्रम के अतिरिक्त अन्य साधनों की मात्रा तथा उत्पादन की तकनीकों के बारे में पूर्वकल्पना करके आय (या उत्पादन) तथा श्रम की पूर्ति के बीच एक

सम्बन्ध स्थापित करता है। इस सम्बन्ध से यह पता लगाया जा सकता है कि श्रम की पूर्ति (या जनसंख्या) के किस आकार पर प्रति व्यक्ति उत्पादन या आय अधिकतम होती है।

यह सरल और सुथरा तकनीकी सम्बन्ध एक बहुत कृत्रिम, परिवर्तनहीन, स्थैतिक स्थित में अनुकूलतम जनसंख्या का आकार बताता है। यह श्रम के सहायक साधनों की मात्रा और उत्पादिता को स्थिर मानकर चलता है। फिर श्रम की पूर्ति या कार्यशील जनसंख्या तथा सारी जनसंख्या का कोई एक निश्चित और ज्ञात सम्बन्ध नहीं है। यह सिद्धान्त व्यावहारिक दृष्टि से सहायक नहीं है और सैद्धान्तिक दृष्टि से बहुत सीमित है।

optimum resource allocation (ऑप्टिमम् रिसोर्स अॅलोकेशन) : इष्टतम साधन-आवण्टन।

आर्थिक कुशलता की स्थिति का दूसरा नाम।

देखिए : economic efficiency.

order cheque (ऑर्डर चेक) : आदेशी चेक।

जब किसी चेक पर पानेवाले के नाम के आगे 'या आदेश' शब्द लिखा होता है, तब उसे आदेशी या नामजोग चेक कहते हैं। इस चेक का रुपया केवल उसी व्यक्ति को मिल सकता है, जिसके लिए बैंक को आदेश दिया गया है। इस चेक का भुगतान यदि सही व्यक्ति को न हो, तो बैंक इसके लिए जिम्मेदार होगा। यही कारण है कि बैंक इस प्रकार के चेक का भुगतान अच्छी तरह जाँच-पड़ताल करने के बाद ही करता है।

ordinal utility (ऑरडिनल युटिलिटी) : क्रमसूचक उपयोगिता।

उपयोगिता की वह अवधारणा, जो उपयोगिता की मापनीयता पर नहीं बल्कि अधिमान-क्रम पर आधारित होती है।

देखिए : indifference curve.

ordinary shares (ऑर्डिनरी शेयर्स): साधारण शेयर।

किसी कम्पनी के साधारण शेयर वे होते हैं, जिनके धारकों को अधिमान शेयरों एवं अन्य प्राथमिकताप्राप्त शेयरों पर निर्धारित दर से लाभ-वितरण के बाद बची राशि प्राप्त होती है। इस प्रकार इन शेयरों पर लाभांश की राशि व्यवसाय की लाभकारिता के अनुसार घटती-बढ़ती रहती है। साधारण शेयर के धारक व्यवसाय के मालिक होते हैं और साधारणतया उनके मताधिकार खरीदे गये शेयरों के अनुसार होते हैं।

organisation (ऑरगनाइजेशन) : संगठन।

उत्पादन का एक साधन, जिसपर सर्वप्रथम मार्शल ने बल दिया। इसके पूर्व उत्पादन-साधनों को इन तीन कोटियों में विभाजित किया जाता था—भूमि, श्रम और पूंजी। मार्शल ने साधन के रूप में संगठन को एक अलग स्थान दिया। संगठन का आशय भूमि, श्रम और पूंजी को जुटाकर उनकी गतिविधियों में उचित रूप से समन्वय लाने एवं उनके कार्यों की देखभाल से है। आधुनिक उत्पादन-प्रणाली में इस साधन का बड़ा महत्त्व है। वैसे तो यह श्रम का ही एक विशिष्ट रूप है, लेकिन औद्योगिक क्रान्ति के बाद इसने उत्पादन-क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण स्थान ग्रहण

कर लिया है।

outlay (आउट्ले) : खर्च या लागत।

खर्च या लागत के लिए वैकल्पिक शब्द।

देखिए : cost

expenditure.

output (आउटपुट) : निर्गत, उत्पादन।

साधनों के इस्तेमाल से निश्चित काल में प्राप्त फल या पैदावार। किसी समय-अवधि में खानों में जो कोयले का खनन होता है, खेतों में जो अनाज पैदा होता है अथवा कारखानों में जो माल तैयार होता है, वे सब उद्योग-विशेष के उस समय में हुए उत्पादन या निर्गत ठहरेंगे। उदाहरण के लिए भारत में १९७२-७३ ई० में गेहूँ का उत्पादन ३१० लाख टन था और लोहे का २४० लाख टन।

over-capitalisation (ओवर- कैपिटलाइजेशन) : अधिपूंजीकरण।

किसी फर्म की वह स्थिति, जबकि उसकी वास्तविक परिसम्पत्तियों का मूल्य निर्गमित पूंजी से कम होता है। ऐसी स्थिति मूल्यह्रास के लिए पूरा प्रबन्ध न करने या मुद्रा-मूल्य के बढ़ जाने अथवा अत्यधिक कीमत देकर कुछ परिसम्पत्तियों के खरीदने के कारण पैदा हो सकती है।

over draft (ओवर ड्राफ्ट) : ओवर ड्राफ्ट, अधिविकर्ष।

बैंक से उधार लेने का एक तरीका। इस विधि के अन्तर्गत बैंक अपने ग्राहक या जमाकर्त्ता को आवश्यकता पड़ने पर जमा की रकम से अधिक राशि निकालने की सुविधा देता है। इसके लिए एक अधिकतम सीमा पहले से ही निश्चित कर दी जाती है और बैंक केवल उस राशि पर ब्याज लेता है जो वास्तव में उस व्यक्ति द्वारा प्रयोग में लायी जाती है। इस प्रकार की सुविधा के लिए कोई जमानत तो नहीं ली जाती, लेकिन यह सुविधा चालू खाते के ग्राहकों को ही दी जाती है। ऋण देते समय बैंक अपने यहाँ उस ग्राहक का एक नया खाता खोल लेता है और उसमें एक निश्चित अवधि के लिए ऋण की रकम जमा कर दी जाती है।

इस खाते से ऋण लेनेवाला अपने आवश्यकतानुसार चेक के सहारे रुपया निकलवाता रहता है। उतार-चढ़ाव-वाले व्यवसाय के वित्तीयन के लिए इस प्रकार की उधार-सुविधा बहुत सस्ती बैठती है। यह उधार माँग करने पर अथवा अनुबन्ध की समाप्ति पर प्रतिदेय होना है।

over-full employment (ओवर-फुल एम्पलॉयमेण्ट) : अति-पूर्ण रोजगार।

जब अर्थव्यवस्था में सम्पूर्ण प्रभावी माँग (उपभोग, निवेश, राजकीय खर्च तथा निर्यात) इतनी अधिक हो जाती है कि विद्यमान कार्यशील जनसंख्या पूरी तरह रोजगार पा लेती है, परन्तु फिर भी इस सारी माँग को पूरा करने के लिए पर्याप्त उत्पादन नहीं हो पाता है। अर्थात् इस स्थिति में अर्थव्यवस्था में श्रम के अभाव या श्रम की दुष्प्राप्यता की स्थिति लागू हो जाती है। श्रम के अलावा पूंजी आदि साधनों के अभाव में भी ऐसी अत्यधिक माँग की स्फीतिकारक स्थिति उत्पन्न हो सकती है।

देखिए : full employment

inflation.

overhead capital (ओवरहेड कैपिटल): उपरि पूंजी, बँधी पूंजी।

इसका आशय उस बँधी पूंजी से है, जिसका सम्बन्ध व महत्त्व किसी एक फर्म के लिए नहीं, बल्कि व्यापक क्षेत्र के लिए होता है और जिससे सभी लाभ उठाते हैं। पुल, सड़क, बाँध आदि इस प्रकार की पूंजी के उदाहरण हैं।

overhead costs (ओवरहेड कास्ट्स): उपरि लागत।

वे लागतें, जो अल्पकाल में उत्पादन के साथ घटती-बढ़तीं नहीं। उत्पादन न किये जाने की दशा में भी ये लागतें मौजूद रहती हैं, अर्थात् ये बँधी लागतें होती हैं; जैसे कि कारखाने का किराया, पुराने ऋण पर ब्याज आदि।

देखिए : fixed costs.

over-investment (ओवर-इन्वेस्टमेण्ट): अति-निवेश।

निवेश का वह स्तर, जो पूंजीगत या निवेश-वस्तुओं की उपलब्धि से ज्यादा उनके लिए माँग उत्पन्न कर दे, अति-निवेश की स्थिति कहलायेगी। निवेश से श्रम की माँग भी पैदा होती है और जब यह माँग कार्यशील जनसंख्या के स्तर से ज्यादा हो जाती है, तब भी अति-निवेश की स्थिति पैदा हो जायेगी। अति-निवेश के कारण निवेश की लागत बढ़ेगी तथा प्रतिफल की दर घटेगी। इस लागत में वृद्धि के कारण कीमत-स्तर बढ़ेगा। कालान्तर में इस प्रक्रिया के जारी रहने से लागत-वृद्धि-प्रेरित स्फीति भी चालू हो सकती है। कुछ नये साधनों की खोज, नये बाज़ार की उपलब्धि, नयी तकनीकों की खोज, मुद्रा तथा वित्त-बाज़ार की स्थिति आदि अति-निवेश के कारण होते हैं।

over-population (ओवर-पॉपुलेशन): जनाधिक्य।

किसी देश में जनातिरेक की स्थिति। जब किसी देश की जनसंख्या इष्टतम जनसंख्या से अधिक होती है, तब उसे जनाधिक्यवाला देश कहा जाता है। जनसंख्या के उस आकार को इष्टतम जनसंख्या कहते हैं, जिसके साथ अन्य साधनों के मेल से प्रति व्यक्ति आय अधिकतम हो सकती है। स्पष्टतः जनाधिक्य की स्थिति में प्रति व्यक्ति आय, जितनी हो सकती है, उससे कम होगी। थामस रावर्ट माल्थस के अनुसार जनाधिक्य की स्थिति का कारण यह है कि निर्वाह-साधनों की अपेक्षा जनसंख्या अधिक तेजी से बढ़ती है। ऐसी स्थिति में निर्वाह-साधनों की कमी पड़ेगी, गरीबी और भुखमरी बढ़ेगी, देश में तरह-तरह के रोग व संघर्ष फैलेंगे और फलस्वरूप मृत्यु-दर ऊँची होगी। ये सब जनाधिक्य की स्थिति के संकेतक हैं।

अति जनसंख्या के कारण अनेक गम्भीर खतरों का उदय होता है। इससे बेरोज़गारी बढ़ती है, पूंजी-निर्माण में बाधा पड़ती है, अनेक चीजों के अभाव की स्थिति पैदा होती है और प्रति व्यक्ति आय तथा जीवन-स्तर में गिरावट आती है। ऐसी स्थिति देश के आर्थिक विकास के साथ मेल नहीं खाती। इसके कारण आर्थिक विकास के रास्ते में तरह-तरह की बाधाएँ उत्पन्न होती हैं।

देखिए : malthusian theory of population
population
optimum population.

over-prduction (ओवर प्रॉडक्शन) : अत्युत्पादन ।

किसी एक वस्तु या सारी अर्थव्यवस्था के सन्दर्भ में अत्युत्पादन की स्थिति की कल्पना की जा सकती है । एक वस्तु के सम्बन्ध में अत्युत्पादन की स्थिति उस समय पैदा होती है जब किसी कीमत पर माँग की तुलना में पूर्ति अधिक होती है । कीमत में कटौती के सहारे माँग को प्रोत्साहित करके अतिरिक्त पूर्ति के खपाने का प्रयास किया जा सकता है, लेकिन सम्भव है कि घटी कीमत पर पूरी लागत न निकल सके ।

सारी अर्थव्यवस्था की दृष्टि से सामान्य अत्युत्पादन का आशय उस स्थिति से है जब उपभोग-माँग की तुलना में वस्तुओं का उत्पादन अधिक मात्रा में होता है । सामान्य अत्युत्पादन की स्थिति व्यापार-चक्र के अधोमुखी चरण में देखने को मिलती है । संस्थापक अर्थशास्त्रियों के अनुसार सामान्य अत्युत्पादन असम्भव है । इनका कहना था कि वस्तु-विशेष के सम्बन्ध में तो अत्युत्पादन सम्भव है जो कि समय के साथ आर्थिक शक्तियों के क्रियाशील होने के फलस्वरूप दूर हो लेगा, लेकिन सामान्य अत्युत्पादन सम्भव नहीं है । इसके लिए जे० बी० से के बाज़ार-नियम को आधार बनाया गया, जिसके अनुसार प्रत्येक पूर्ति अपनी माँग का स्वयं सृजन करती है । लेकिन आगे चलकर इस नियम की कड़ी आलोचना की गयी । आलोचकों ने दिखाया कि इस नियम की मान्यताएँ व दशाएँ अवास्तविक हैं और सामान्य अत्युत्पादन की स्थिति पैदा हो सकती है । बिक्री से प्राप्त मुद्रा-राशि के एक भाग को विनिमय-माध्यम के तौर पर इस्तेमाल करने की बजाय नकदी के रूप में रखा जा सकता है । इससे माँग घटेगी और अत्युत्पादन की स्थिति पनपेगी । इस आधार पर व्यापार-चक्र के अल्पोपभोग या अत्युत्पादन के सिद्धान्तों का विकास किया गया ।

देखिए : under consumption theory.

over-saving (ओवर-सेविंग) : अधि-बचत ।

निवेश की तुलना में बचत का अधिक होना । अधिबचत की स्थिति में निवेश अपेक्षाकृत कम किये जाने के कारण आय और उपभोग में कमी आयेगी । माल्थस और हॉब्सन-जैसे अर्थशास्त्रियों ने इस घटना को व्यापार-चक्र की अधोमुखी अवस्था के लिए जिम्मेदार ठहराया । कुछ अर्थशास्त्रियों ने यह विचार रखा कि चूँकि अधिबचत से अधिनिवेश होगा, इसलिए अधिबचत-सिद्धान्त को अधि-निवेश सिद्धान्त भी कहा जा सकता है । लेकिन लार्ड केन्स ने बताया कि आयो-जित निवेश-स्तर आयोजित बचत-स्तर पर निर्भर नहीं करता । उनके विचार के अनुसार विकसित अर्थव्यवस्था के लोग पूर्ण रोज़गार की स्थिति में ह्रासमान निवेश-अवसरों के कारण, जितनी राशि लाभकारी रूप में निवेश की जा सकती है, उससे अधिक राशि बचायेंगे । अतः जब तक अधिबचत को रोका नहीं जायेगा या सरकार द्वारा इस सम्बन्ध में प्रति-कारक उपाय नहीं किये जायेंगे, तब तक ऐसी स्थिति में व्यापक बेरोजगारी बनी रहेगी ।

over-time (ओवर-टाइम) : समयोपरि, ओवरटाइम।

रोज़गार की शर्तों में निर्धारित कार्य-समय के ऊपर अतिरिक्त काम के घण्टे। जब निर्धारित कार्य-समय के भीतर काम पूरा नहीं हो पाता, तब श्रमिकों से ओवर-टाइम काम कराने की व्यवस्था की जाती है। अतिरिक्त समय में जो काम किया जाता है, उसके लिए अपेक्षाकृत ऊँची दर से मज़दूरी दी जाती है। साधारणतया श्रमिक ऐसे स्थानों पर काम करना अधिक पसन्द करते हैं, जहाँ ओवरटाइम काम करने के लिए अधिक अवसर उपलब्ध होते हैं। प्रायः इसी उद्देश्य से काम के घण्टे कम करने की माँग की जाती है। चूँकि समयोपरि काम करने से श्रमिकों के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, इसलिए इस सम्बन्ध में अधिकतम सीमा निर्धारित करने की व्यवस्था की जाती है।

over-trading (ओवर ट्रेडिंग) : अतिवाणिज्यन।

जब किसी फर्म के पास व्यवसाय के वर्तमान स्तर की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कार्यशील पूंजी पर्याप्त होती है, तब कहा जाता है कि वह फर्म वाणिज्यन कर रही है। मान लें, कोई फर्म अधिक लाभ को देखते हुए उत्पादन बढ़ाती है और स्टॉक व चालू काम में अधिक पूंजी फँस जाने के कारण सभी वर्तमान खर्चे पूरा करने में असमर्थ है, तो उसके लिए यह अतिवाणिज्यन की स्थिति होगी। इस प्रकार यह स्थिति लाभ के ऊँचे स्तर के कारण पैदा होती है और प्रायः इससे मुद्रा की कमी पड़ती है।

over-valued currency (ओवर-वैल्यूड करेन्सी) : अधिमूल्य करेन्सी।

वह करेन्सी, जिसकी विनिमय-दर उसकी दीर्घकालीन सन्तुलन-दर से अधिक होती है। किसी करेन्सी की विनिमय-दर उस समय सन्तुलन में होती है जबकि उसके लिए माँग उसकी पूर्ति के बराबर होती है। यदि किसी निश्चित विनिमय-दर पर किसी देश की करेन्सी की पूर्ति उसकी माँग से अधिक है, तो उसे अधिमूल्य करेन्सी कहेंगे। पूर्ति की अपेक्षा माँग में यह कमी अनेक कारण से हो सकती है, जिसमें मुख्य है उस देश की निर्यात-वस्तुओं और सेवाओं की कीमतों का अन्य देशों की उसी प्रकार की वस्तुओं और सेवाओं की कीमतों से उच्चतर होना। इसका निर्यात पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा और भुगतान-शेष में घाटा बढ़ेगा। यदि माँग और पूर्ति का यह असन्तुलन लम्बी अवधि तक चलता रहे, तो उस देश के लिए भुगतान-शेष में हो रहे घाटे को रोकने व कम करने के उद्देश्य से अवमूल्यन का सहारा लेना आवश्यक हो लेगा। भारत का अनुभव इसी प्रकार का रहा है। चूँकि नियत विनिमय-दर पर डालर के प्रति भारतीय रुपया अधिमूल्यित था, इस कारण १९६६ ई० में इसका अवमूल्यन आवश्यक ठहराया गया।

P

paid-up capital (पेड-अप कैपिटल) : प्रदत्त पूंजी।

एक संयुक्त पूंजी-कम्पनी द्वारा जारी किये गये शेयरों की कीमत का वह भाग, जिसे शेयरधारियों से वसूल किया जा चुका है, प्रदत्त पूंजी कहलाता है।

paid-up shares (पेड-अप शेयर्स) : प्रदत्त शेयर।

प्रदत्त पूंजी का दूसरा नाम।

देखिए : paid-up capital.

paper money (पेपर मॅनी) : कागजी मुद्रा।

वह मुद्रा, जो किसी देश की सरकार द्वारा विधि-सम्मत विनिमय-माध्यम के रूप में प्रचलित की जाती है। कागजी मुद्रा के चलन के पहले विभिन्न प्रकार की धातविक मुद्राएँ तथा सिक्के चला करते थे।

paper profit (पेपर प्रॉफिट) : कागजी मुनाफा।

किसी शेयर या अन्य किसी परि-सम्पत्ति की कीमत के, उसकी खरीद कीमत से, ज्यादा होने पर उस सम्पत्ति के मालिक को लाभ तो होता है परन्तु बिना उस सम्पत्ति को बेचे वह यह लाभ प्राप्त नहीं कर सकता है। तब तक ऐसा लाभ कागजी मुनाफा कहलाता है।

paradox of value (पैराडॉक्स ऑफ वैल्यू) : मूल्य का विरोधाभास।

कीमत तथा मूल्य के सिद्धान्त के विकास के दौरान कुछ अर्थशास्त्रियों ने यह जिज्ञासा प्रकट की कि पानी, जो जीवन के लिए अनिवार्य है, मुफ्त में मिल जाता है और हीरा, जिसके बिना जीवन का काम चल सकता है, बहुत कीमती होता है। इस पहेली के अनेक समाधान सुझाये गये। कुछ सीमा तक इस पहेली का समाधान 'विनिमय मूल्य' तथा 'प्रयोग मूल्य' के अन्तर से मिल जाता है। पानी का प्रयोग-मूल्य बहुत अधिक होता है और विनिमय-मूल्य शून्य। हीरे का प्रयोग-मूल्य कम होता है और विनिमय-मूल्य ज्यादा। परन्तु सीमान्त उपयोगिता द्वारा इस समस्या का सन्तोष-जनक हल मिला। कीमत का निर्धारण कुल सन्तुष्टि के आधार पर नहीं अपितु सीमान्त सन्तुष्टि के आधार पर होता है।

pareto optimality (पैरेटो ऑप्टि-मैलिटी) : पैरेटो का अनुकूलतम सिद्धान्त।

विल्फ्रेडो पैरेटो द्वारा विकसित इष्ट-तम या अनुकूलतम कल्याण का सिद्धान्त।

देखिए : economic efficiency
social welfare.

par rate of exchange (पार रेट ऑफ एक्स्चेंज) : सम विनिमय-दर।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा-संगठन के अन्तर्गत सदस्य देशों द्वारा अपनी मुद्रा की सोने के रूप में निर्धारित विनिमय-दर सम विनि-मय-दर कहलाती है।

देखिए : exchange rates.

partial equilibrium (पारस्यल् इक्वि-लिब्रियम्) : आंशिक सन्तुलन।

अल्फ्रेड मार्शल तथा अन्य कई नव-प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री वस्तुओं, साधनों तथा परिसम्पत्तियों के कीमत-निर्धारण-सिद्धान्तों का विवेचन एक बार एक चीज में करने के विश्लेषणात्मक तरीके द्वारा करते थे। वास्तविक जीवन में सब कीमतें और आर्थिक निर्णय परस्पर सम्बन्धित होते हैं, परन्तु अध्ययन की सुविधा के लिए यह मान लिया जाता है कि जब एक बाजार का अध्ययन किया जाता है तब अन्य बाजारों की स्थिति निश्चित और अपरिवर्तित है। इस तरह कीमतें निर्धारित करनेवाली शक्तियों और उनके बारे में महत्त्वपूर्ण आर्थिक नियम स्थापित किये जा सकते हैं।

देखिए : ceteris paribus
general equilibrium.

participation rate (पार्टिसिपेशन रेट): सहभागी दर।

सम्पूर्ण जनसंख्या का उसके उस भाग से अनुपात, जो आर्थिक क्रियाओं में लगा हुआ है, सहभागी दर कहलाता है। यह दर जनसंख्या के आर्थिक दृष्टि से सक्रिय भाग के आकार के बारे में सूचना देती है।

देखिए : working population.

partnership (पार्टनरशिप) : साझेदारी।

व्यवसाय-संगठन का वह रूप, जिसमें दो या दो से ज्यादा (अधिकतम संख्या अलग-अलग देशों में वहाँ के कानून द्वारा तय की जाती है) व्यक्ति अपनी पूंजी, उद्यम-क्षमता तथा अन्य साधनों को मिलाकर संयुक्त रूप से, आपस में तय शर्तों के आधार पर, किसी व्यावसायिक काम को करते हैं, साझेदारी कहलाता है। साझेदारी में हर साझीदार पूरी तरह से व्यवसाय की देनदारियों के लिए जिम्मेदार होता है। किसी भी एक साझेदार के साझेदारी से अलग होने, पागल या दिवालिया होने या मर जाने पर वह साझेदारी समाप्त हो जाती है। कुछ साझेदारियों का करार पंजीकृत कराया जाता है, जबकि कुछ साझेदारियों का करार न तो लिखित होता है न उसे पंजीकृत कराया जाता है। पहली किस्म की साझेदारियाँ औपचारिक तथा दूसरे प्रकार की अनौपचारिक कही जा सकती हैं। अधिकांश देशों में साझेदारियों तथा संयुक्त पूंजी-कम्पनियों की कानूनी व्यवस्था (जैसे करारोपण, हिसाब-किताब की जाँच तथा उनके प्रकाशन की अनिवार्य व्यवस्था) में अन्तर होता है। साझेदारी आधुनिक पूंजीवादी उत्पादन की जरूरतों को कुछ ही अंशों तक पूरा कर पाती है। इसलिए अब विकसित पूंजीवादी देशों में इसका महत्त्व घट रहा है। इसका प्रचलन लघुस्तरीय उत्पादन तथा व्यापार में तो फिर भी है, परन्तु आधुनिक विशालस्तरीय उत्पादन में इसका स्थान नगण्य है।

par value (पार वैल्यू) : समता मूल्य।

प्रतिभूतियों या शेयरों की वह कीमत, जिस पर वे बाजार में शुरू-शुरू में बेचने के लिए जारी किये जाते हैं। इस कीमत को निर्गमन कीमत भी कहते हैं।

peasant economy (पैजेण्ट इकॉनॉमि:) कृषक-अर्थव्यवस्था।

सरल वस्तु-उत्पादन-प्रणाली का दूसरा नाम। इस प्रणाली के अन्तर्गत कृषि अर्थव्यवस्था का मुख्य क्षेत्र होता

है और किसान अपने निजी स्वामित्व के भू-खण्डों पर अपने तथा अपने परिवार के सदस्यों के श्रम द्वारा उत्पादन करते हैं। उत्पादन की तकनीक विशेष विकसित नहीं होती है। अधिकांश उत्पादन निजी उपभोग के लिए होता है, परन्तु अधिशेष का विनिमय भी किया जाता है। कृषक-अर्थव्यवस्था में उत्पादन के अधिकांश साधन आन्तरिक होते हैं, अतः उत्पादन की लागत तथा मुनाफे की धारणा लागू नहीं होती है। लागत का मुख्य भाग तो परिवार द्वारा किया गया उपभोग होता है, जो कृषक के लिए अनिवार्य है। ऐसे किसान अपने उत्पादन को अधिकतम करने के मन्तव्य से आर्थिक निर्णय लेते हैं।

तकनीकी प्रगति, कृषि-पदार्थों की माँग में वृद्धि के कारण बड़े स्तर के उत्पादन की ज़रूरत, औद्योगीकरण आदि कृषक-अर्थव्यवस्था के मूल आधार को चुनौती देते हैं। बड़े स्तर का उत्पादन बाहरी श्रम की ज़रूरत उत्पन्न करता है। इसी प्रकार कृषक परिवारों की बढ़ती जनसंख्या भी श्रम के अधिशेष की समस्या उत्पन्न करके कृषक-अर्थव्यवस्था के स्थायित्व को समाप्त करने की दिशा में सहायक होती है।

peasant farming (पॅजेण्ट फार्मिंग) : खेतिहर कृषि।

खेती की वह प्रणाली, जिसमें भूस्वामी अपने या अपने परिवार के श्रम द्वारा खेती-सम्बन्धी कामों का संचालन करते हैं।

देखिए : peasant economy.

per capita income (पर कैपिटा इन्कम): प्रतिव्यक्ति आय।

किसी भी देश या प्रदेश की औसत आय। कुल राष्ट्रीय आय को कुल जन-संख्या से भाग देने पर प्रतिव्यक्ति आय के आकार का पता चलता है।

प्रतिव्यक्ति आय को देश के आर्थिक विकास का सूचक माना जाता है। इससे किसी देश के औसत जीवन-स्तर का पता चलता है। किसी देश में वस्तुओं और सेवाओं तथा जनसंख्या के अनुपात को प्रकट करके प्रतिव्यक्ति आय उस देश की आवश्यकतापूर्ति की वास्तविक क्षमता को प्रकट करती है। परन्तु इस सूचक की कमियाँ भी स्पष्ट हैं। आर्थिक विकास केवल वस्तुओं की मात्रा ही नहीं, अपितु उन्हें प्राप्त करने के तरीके और लागत पर भी निर्भर रहता है। फिर, आय की असमानताओं, आय तथा रोज़गार की सुरक्षा और काम की दशाओं को प्रतिव्यक्ति आय द्वारा नहीं जाना जा सकता है। आय के बेहतर वितरण, रोज़गार तथा आय की सुरक्षा और काम की अच्छी दशाओं तथा अच्छे सांस्कृतिक-प्राकृतिक वातावरण के कारण एक प्रतिव्यक्ति कम आयवाले देश में लोग अपेक्षाकृत ज्यादा आयवाले देश से ज्यादा सुखी और सन्तुष्ट हो सकते हैं। विकास के इस सूचक का महत्त्व इसकी सरलता से गणना के कारण है। दूसरे, इसका महत्त्व इस बात में भी है कि एक सीमा के बाद बिना अच्छी प्रतिव्यक्ति आय के कल्याण की अन्य दशाएँ भी लागू नहीं हो सकती हैं।

perfect competition पर्फेक्ट कॅम्पिटीशन) : पूर्ण प्रतियोगिता।

पूंजीवादी निजी सम्पत्ति, निजी उद्यम, बाज़ार-कीमत-प्रक्रियावाली अर्थ-व्यवस्थाओं के अध्ययन के लिए बनायी गयी एक पूर्वकल्पना। जिन वस्तुओं या सेवाओं के बाज़ारों में क्रेता और विक्रेता बहुत बड़ी संख्या में हों ताकि कोई भी अपने निर्णयों से बाज़ार-कीमत को प्रभावित नहीं कर सके, सभी उत्पादक एक समान वस्तु का उत्पादन करते हों तथा सबको बाज़ार की स्थिति का पूर्ण ज्ञान हो और इस पूर्ण ज्ञान के अनुरूप उत्पादन के साधन बिना रुकावटों के व्यवहार करते हों तो उन वस्तुओं के बाज़ार में पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति पायी जाती है। ऐसी स्थिति में, नव-प्रतिष्ठित अर्थशास्त्र के अनुसार, संसाधनों का आवण्टन अनुकूलतम होगा अर्थात् उपभोक्ता, उत्पादक, संसाधन सभी अपनी दी हुई स्थिति में, सर्वश्रेष्ठ स्थिति में होंगे। ऐसी स्थिति में सभी संसाधनों का पूरा उपयोग होगा और वहाँ कोई बेरोज़-गारी की समस्या नहीं होगी। ऐसे बाज़ारों में एक समान कीमत और सामान्य मुनाफ़ा-दर प्रचलित होगी। कीमत का निर्धारण बाज़ार-माँग और बाज़ार-पूर्ति द्वारा संयुक्त रूप से उस स्तर पर होगा जहाँ माँग और पूर्ति बराबर हो।

पूर्ण प्रतियोगिता की परिकल्पना वास्तविक जीवन से बहुत दूर है। शायद कुछ देशों में पूंजीवाद की प्रारम्भिक अवस्थाओं में मोटे तौर पर ये दशाएँ विद्यमान थीं। परन्तु संचय, प्रतियोगिता, तकनीकी प्रगति और मुनाफे में वृद्धि की प्रवृत्तियाँ उस स्थिति को नष्ट कर चुकी हैं। अब एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता, अल्पाधिकार या एकाधिकार की स्थिति ही बाज़ारों में पायी जाती है। आर्थिक सिद्धान्तों में अभी भी इस काल्पनिक और अयथार्थवादी पूर्वकल्पना से चिपके रहने की प्रवृत्ति अर्थशास्त्र को जीवन और वास्त-विकता से दूर करती है। पूर्ण प्रतियोगिता पर आधारित आर्थिक विश्लेषण का उचित स्थान तो आर्थिक विचारों के विकास का इतिहास है।

perfect market (पर्फेक्ट मार्केट): पूर्ण बाज़ार।

वह बाज़ार, जिसमें पूर्ण प्रतियोगिता पायी जाती हो, 'पूर्ण बाज़ार' कहलाता है।

देखिए : perfect competition.

personal loan (पर्सनल लोन) : व्यक्ति-गत कर्ज।

बैंकों या अन्य वित्तीय संस्थानों द्वारा किसी व्यक्ति को दिया गया कर्ज व्यक्तिगत कर्ज या ऋण कहलाता है। यह ऋण बिना किसी धरोहर या बन्धक की गारण्टी के उस व्यक्ति को उसकी साख के आधार पर दिया जाता है। ऐसे कर्ज का उद्देश्य व्यावसायिक, व्यक्तिगत या और कुछ भी हो सकता है। बैंकें साधारणतः व्यक्तिगत कर्ज मकान बनाने या खरीदने के लिए या अन्य दीर्घकालिक प्रयोग की वस्तुएँ खरीदने के लिए देती हैं। कई बार ऐसे कर्ज कुछ सामाजिक दायित्वों को पूरा करने के लिए भी दिये जाते हैं।

personal wealth (पर्सनल वेल्थ): व्यक्तिगत सम्पत्ति।

वह सम्पत्ति, जो किसी व्यक्ति की हो। इसमें शुद्ध परिसम्पत्तियों के अलावा किसी व्यक्ति के आर्थिक दृष्टि से विशेष

लाभदायक गुण (जैसे किसी चिकित्सक, लेखक, गायक आदि की व्यावसायिक निपुणता) भी शामिल किये जाते हैं। सामाजिक सम्पत्ति व्यक्तिगत सम्पत्तियों को जोड़कर नहीं प्राप्त की जा सकती है, क्योंकि एक व्यक्ति की लेनदारियाँ अन्य लोगों की देनदारियाँ होती हैं और सामाजिक दृष्टि से वे एक-दूसरे को काट-कर शून्य हो जाती हैं।

physical controls (फिजीकल कॅण्ट्रोल्स): प्रत्यक्ष नियन्त्रण।

राजकीय आर्थिक नियन्त्रण का वह रूप, जिसके अन्तर्गत विभिन्न आर्थिक चरों (जैसे आय, उत्पादन, उपभोग, निवेश, कीमतें, निर्यात, आयात आदि) के बारे में सीधे कानून द्वारा प्रतिबन्ध लगा दिये जाते हैं। कानून द्वारा कीमत-निर्धारण, निवेश-सीमा-निर्धारण, वस्तुओं की खरीद-बिक्री पर रोक, राशनिंग, वस्तुओं के भण्डार पर रोक या उनकी हदबन्दी आदि प्रत्यक्ष नियन्त्रण के उदाहरण हैं। करों या राजस्व-नीति, या मुद्रा-नीति तथा कीमत-प्रक्रिया द्वारा लागू किये गये अप्रत्यक्ष नियन्त्रणों के मुकाबले प्रत्यक्ष नियन्त्रण के नतीजे ज्यादा निश्चित, मापनीय और शीघ्र प्राप्य होते हैं। कई लोग प्रत्यक्ष नियन्त्रणों को आर्थिक स्वतन्त्रता पर रोक मानते हैं। स्पष्ट है, ऐसे नजरिये में आर्थिक क्रियाओं का सामाजिक स्वरूप स्पष्ट नहीं होता है; अन्यथा सामाजिक क्रियाओं पर सामाजिक नियन्त्रण पूरी तरह से वाजिब है और नियन्त्रण का रूप परिस्थितियों के अनुसार तय किया जाना चाहिए। वस्तुतः ऐसे सन्दर्भों में स्वतन्त्रता की दुहाई निहित स्वार्थों की रक्षा का प्रयास मात्र है।

physiocrats (फिजियोक्रैट्स): प्रकृति-वादी अर्थशास्त्री।

अठारहवीं सदी में फ्रान्स में एफ० क्वेने के नेतृत्व में कई अर्थशास्त्री आर्थिक विषयों पर एक विशेष दृष्टिकोण का प्रतिपादन करते हुए आर्थिक सिद्धान्त बना रहे थे। यह आधुनिक अर्थशास्त्र का प्रारम्भिक काल था। इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार भूमि एवं कृषि ही सम्पत्ति और मूल्य का एकमात्र स्रोत थी। इस मत को तार्किक रीति से क्वेने ने स्थापित किया। उसके अनुसार किसानों के पास पिछले साल के उत्पादन से बचा अनाज का भण्डार होता है। इस भण्डार से बीज और खाना लेकर किसान इस भण्डार से दुगुनी फसल पैदा करते हैं। इस फसल से वे अपने भण्डार को फिर से भर लेते हैं और जो अधिशेष बचता है, उसे भूस्वामी को दे देते हैं। इस तरह इस सिद्धान्त पर तात्का-लिक फ्रान्सीसी सामन्तवाद का प्रभाव स्पष्ट है। जमींदार इस अधिशेष का एक हिस्सा तो सीधे उपभोग कर लेते और एक भाग से कारीगरों द्वारा उत्पादित माल खरीदते। कारीगर अपने माल के बदले मिले भुगतान से कच्चे माल को तथा उप-करणों की छीजन को प्रतिस्थापित करते और अपने उपभोग के लिए अनाज प्राप्त करते। उनके काम से कोई अधिशेष उत्पन्न नहीं होता। इस तरह भूमि या कृषि अधिशेष का एकमात्र स्रोत थी। इस तर्क के आधार पर प्रकृतिवादी अर्थशास्त्रियों ने किसानों पर करारोपण का विरोध किया। इन सर्वप्रथम तार्किक या विश्ले-षणात्मक अर्थशास्त्रियों के अनुसार अर्थ-व्यवस्था की एक प्राकृतिक व्यवस्था है,

जिसे भंग नहीं किया जाना चाहिए। इसलिए ये स्वतन्त्र या निर्बाध व्यापार-नीति के भी समर्थक थे। प्रकृतिवादियों के विचारों और वणिकवादियों के विचारों में सीधा विरोध था। प्रकृतिवादी अर्थशास्त्री आर्थिक प्रणाली में तीन सामाजिक वर्गों—भूस्वामी, किसान और कारीगरों—का अस्तित्व मानते थे और अपने सिद्धान्तों द्वारा उनके सम्बन्धों को स्पष्ट करते थे।

pigou effect (पिगू इफेक्ट) : पिगू प्रभाव।

वास्तविक सन्तुलन-प्रभाव का दूसरा नाम, जो ब्रिटिश अर्थशास्त्री आर्थर पिगू (१८७७-१९५९) के नाम पर रखा गया है; क्योंकि पिगू ने इस प्रभाव की सुस्पष्ट रूप से व्याख्या की थी। सामान्य कीमत-स्तर और रोज़गार के बीच पिगू ने एक सम्बन्ध की परिकल्पना की। जब सामान्य कीमत-स्तर घटता है तब तरलता या मुद्रा-राशि के भण्डार का वास्तविक मूल्य बढ़ता है; क्योंकि उनकी क्रय-शक्ति बढ़ती है। उपभोग को प्रभावित करनेवाले तत्त्वों में एक व्यक्ति की वास्तविक सम्पत्ति का महत्त्वपूर्ण स्थान है। मुद्रा का मूल्य बढ़ने के कारण एक व्यक्ति की वास्तविक सम्पत्ति बढ़ती है। इसलिए उनके उपभोग-स्तर में बढ़ती होगी। उपभोग-व्यय में वृद्धि से वस्तुओं की माँग और उनका उत्पादन बढ़ेगा, इस तरह मुद्रा के मूल्य में वृद्धि से उत्पादन और फलतः रोज़गार बढ़ेगा। इस तरह मज़दूरी की वास्तविक दर में कमी कीमत-स्तर घटाकर व मुद्रा का मूल्य बढ़ाकर रोज़गार बढ़ाती है। इस प्रक्रिया द्वारा पिगू ने प्रतिष्ठित अर्थशास्त्र की पूर्ण रोज़गार-सन्तुलन-परिकल्पना की पुष्टि की। केन्स ने मज़दूरी की दर कम होने का सबसे महत्त्वपूर्ण प्रभाव माँग के स्तर में कमी को माना, जिसके कारण रोज़गार घटता है। 'पिगू प्रभाव' एक समष्टिगत आर्थिक घटना का असर व्यष्टिगत स्तर पर देखकर उसे फिर सारी अर्थव्यवस्था पर लागू करने के कारण दोषपूर्ण है।

planned economy (प्लान्ड इकॉनॉमि): आयोजित अर्थव्यवस्था।

अर्थव्यवस्था की वर्तमान समस्याओं तथा भावी विकास को संचालित करने की सामूहिक सचेतन निर्णय-प्रणाली, जिसमें संसाधनों का आवण्टन विकास की गति, दिशा और स्वरूप सारे समाज को एक इकाई मानकर प्रतिनिधि संस्थाओं द्वारा वैज्ञानिक रीति से निर्णय लेते हुए सोद्देश्य रूप से किया जाता है। स्पष्टतः ऐसी व्यवस्था में स्वयं निर्णय लेने की संस्थाएँ, प्रणाली और तरीके, आर्थिक संगठन और आयोजन-प्रणाली भी योजनाबद्ध रीति से तय किये जाते हैं। इस प्रकार एक आयोजित अर्थव्यवस्था में आर्थिक जीवन और विकास को न तो व्यक्तिगत निर्णयों की क्रिया-प्रक्रिया का प्रतिफल माना जाता है, न स्वतःस्फूर्त, नैसर्गिक रूप से चलनेवाली व विकसित होनेवाली व्यवस्था। आयोजित अर्थव्यवस्था का अर्थ है—आर्थिक जीवन के अनिवार्यतः सामाजिक रूप को स्वीकार करते हुए सामूहिक रूप से, आर्थिक नियमों और प्रवृत्तियों का सामाजिक उद्देश्य के अनुरूप प्रयोग करते हुए, वैज्ञानिक रीति से सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सामाजिक विवेक द्वारा संचालित अर्थव्यवस्था।

स्पष्ट है कि आयोजित अर्थव्यवस्था

का यह रूप, बिना समाजवादी आर्थिक प्रणाली के अर्थात् बिना वर्गहीन, सामाजिक स्वामित्व पर आधारित विकसित उत्पादन-शक्तियों पर आधारित आर्थिक प्रणाली के, सम्भव नहीं है। केवल कुछ सीमित ध्येयों की प्राप्ति के लिए आर्थिक आयोजन का सहारा लेने पर ही आयोजित अर्थव्यवस्थाएँ नहीं उत्पन्न की जा सकती हैं। यह तो समाज-रचना में हुए मूलभूत समाजवादी परिवर्तन का अनिवार्य परिणाम है। समाजवादी क्रान्ति के पश्चात सोवियत रूस, पूर्वी यूरोप के देशों, वियतनाम, कोरिया, चीन और क्यूबा में आयोजित अर्थव्यवस्थाओं की स्थापना की गयी। बाजार की विकेन्द्रिता, अराजकता के स्थान पर आयोजित अर्थव्यवस्थाएँ सामाजिक उद्देश्यों के लिए सामाजिक विवेक को लागू करती हैं।

आयोजित अर्थव्यवस्था समाजवाद को कार्यान्वित करने का एक बहुत महत्त्वपूर्ण संस्थागत उपाय है और समाजवाद के सारे लाभों को वास्तविक जगत में उपलब्ध कराती है। इसलिए आयोजित अर्थव्यवस्थाओं में विकास की दर बहुत तेज, व्यवस्थित, सामाजिक उद्देश्यों के अनुरूप और वास्तविक सम्भावनाओं के निकटतम होती है। आयोजित अर्थव्यवस्थाओं के संचालन के सिद्धान्तों, तकनीकों-उपकरणों तथा विश्लेषण में पिछले दो-तीन दशकों में बहुत प्रगति हुई है।

आयोजित अर्थव्यवस्थाओं में केन्द्रीकरण काफी अंशों तक पाया जाता है, परन्तु इनका अनिवार्य रूप से अत्यधिक केन्द्रीकृत होना जरूरी नहीं है। इन अर्थव्यवस्थाओं में केन्द्रीकरण की सीमा अर्थव्यवस्था के विकास के स्तर, आयोजन के उद्देश्यों, ऐतिहासिक अनुभव, आर्थिक संगठन के विकास-स्तर, प्रवन्ध के आर्थिक तथा आर्थिकेतर उपकरणों तथा उपायों की उपलब्धि और प्रयोगक्षमता आदि पर निर्भर करती है। समाजवादी समाज के निर्माण तथा आर्थिक विकास के शुरू के चरणों में केन्द्रीकरण को काफी व्यापक रूप में अपनाना पड़ता है।

देखिए : socialism
collectivism
economic planning
centralisation.

ploughing back of profits (प्लोइंग बैक ऑफ प्रॉफिट्स) : लाभ विनिवेश।

किसी व्यवसाय द्वारा अपने सालाना मुनाफे को फिर से व्यवसाय में पूंजीगत निवेश-कार्यों के लिए लगाना, अर्थात् उस मुनाफा-राशि का प्रयोग उपभोग के लिए नहीं करके उन्हें बचत तथा निवेश में लगाना लाभ-विनिवेश कहलाता है। निगम अपने मुनाफे का एक भाग अपने शेयरधारियों में बाँट देता है और एक भाग अपने संरक्षित कोष में अवितरित मुनाफे के रूप में निवेश के लिए रख लेता है। निगमों के विकास में लाभ-विनिवेश की प्रक्रिया द्वारा आन्तरिक साधन उपलब्ध होते हैं। लाभ-विनिवेश द्वारा न केवल वचत की दर निश्चित रूप से बढ़ती है, अपितु आन्तरिक रूप से वित्त प्राप्त हो जाने के कारण निगम के शेयरों का अधिमूल्यन होता है और शेयर-बाजार में उनकी प्रतिष्ठा और माँग बढ़ती है। लाभ-विनिवेश उद्योग-धन्धों के विकास के लिए वित्तीय साधन एकत्रित करने का

प्रभावशाली और कारगर उपाय है।

point elasticity (पॉइंट इलास्टिसिटी): बिन्दु-लोच।

माँग की लोच का एक विशेष माप। किसी माँग-वक्र के एक बिन्दु पर बिन्दु-लोच कीमत में हुए अत्यन्त छोटे परिवर्तन के माँग की मात्रा पर हुए प्रभाव को प्रकट करती है।

देखिए : elasticity of demand.

political economy (पॉलिटिकल इकॉनॉमि) : राजनीतिक अर्थशास्त्र।

अर्थशास्त्र का पुराना नाम, जो अर्थशास्त्र के विकास के शुरू के दिनों में बहुत प्रचलित था। परन्तु जब से अर्थशास्त्र का संकीर्ण विशिष्टीकृत रूप बढ़ा, खासकर नव-प्रतिष्ठित अर्थशास्त्र के तत्त्वावधान में, तब से अर्थशास्त्र नाम ज्यादा प्रचलित हुआ है। मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि आर्थिक प्रश्नों के प्रति समाजनिष्ठ तथा समष्टिगत दृष्टिकोण राजनीतिक अर्थशास्त्र की विशेषता है। इसीलिए मार्क्सवादी अर्थशास्त्री अपने विषय को राजनीतिक अर्थशास्त्र कहते हैं। इस दृष्टिकोण के अनुसार आर्थिक प्रश्नों को समन्वित सामाजिक प्रश्नों के रूप में देखा जाता है और उनके अध्ययन में विभिन्न सामाजिक वर्गों के हितों और उनके आर्थिक-सामाजिक प्रक्रियाओं पर पड़े आपसी प्रभावों को भी विषय-वस्तु के रूप में लिया जाता है। अर्थशास्त्रियों का वह वर्ग, जो 'शुद्ध' या 'सीमित' आर्थिक दृष्टिकोण अपनाते हैं. वे एक व्यक्तिवादी, लाभ-हानि की गणना पर केन्द्रित, विद्यमान पूँजीवादी व्यवस्था के प्रति सचेतन, अचेतन या उपचेतन रूप से पक्षधर अर्थशास्त्र का विकास करते हैं और महत्त्वपूर्ण सामाजिक-आर्थिक प्रश्नों पर अपने व्यावसायिक रूप में विचार करने से कतराते हैं।

poll tax (पोल टैक्स) : व्यक्ति-कर।

वह कर, जो किसी देश के हर नागरिक पर समान रूप से लगाया जावे, 'व्यक्ति-कर' कहलाता है। यह कर विभिन्न आर्थिक, सामाजिक स्थितियों पर या उनकी करदेय क्षमता पर विचार नहीं करता है। आजकल इस कर का प्रचलन नहीं के समान है।

population explosion (पॉपुलेशन एक्स्प्लोजन) : जनसंख्या-विस्फोट।

आर्थिक विकास का वह दौर, जब मृत्यु-दर में तेजी से कमी और जन्म-दर में तेजी से वृद्धि होने लगती है, 'जनसंख्या-विस्फोट' कहलाता है। दवा-दारू की व्यवस्था, सार्वजनिक स्वास्थ्य-सेवाओं में सुधार, महामारियों पर नियन्त्रण आदि के कारण आर्थिक विकास के शुरू के चरणों में मृत्यु-दर घटती है। दूसरी ओर आय में वृद्धि से जीवन-स्तर सुधरता है और रोज़गार की सम्भावनाएं बढ़ती हैं। फलतः जन्म-दर में बढ़ती होती है। इस तरह जनसंख्या तेजी से बढ़ने लगती है। इस विस्फोट का बचत, निवेश और आर्थिक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

portfolio (पोर्टफ़ोलियो): निवेश-सूची, निवेश ढाँचा।

एक निवेशक के विभिन्न किस्म के निवेशों की सूची। निवेशक अपने निवेश-ढाँचे का निर्धारण सुरक्षा, सरलता और अधिकतम मुनाफे के उद्देश्यों के आधार पर करता है।

positive economics (पॉजिटिव इकॉनॉमिक्स) : यथार्थमूलक अर्थशास्त्र, वस्तुपरक अर्थशास्त्र।

आर्थिक समस्याओं का वह विश्लेषण जो दी हुई वस्तुगत स्थिति 'क्या है', 'क्यों है' और उसके 'क्या परिणाम होते हैं', इन प्रश्नों का अध्ययन बिना इस धारणा के करता है कि क्या यह स्थिति उचित है या अनुचित है, स्वीकार की जानी चाहिए या बदली जानी चाहिए, यथार्थमूलक या वस्तुपरक अर्थशास्त्र कहलाता है। इसमें अध्ययन का केन्द्र-बिन्दु 'क्या है' होता है न कि 'क्या होना चाहिए'। इस अवधारणा के अनुसार अर्थशास्त्री तटस्थ वैज्ञानिक होते हैं और उन्हें अपने अध्ययन में मूल्यात्मक निर्णयों का समावेश नहीं करना चाहिए।

अर्थशास्त्री समाज का सदस्य होता है और वह सामाजिक जीवन में भाग लेता है। उसके अपने हिताहित होते हैं और जिम्मेदारियाँ होती हैं। अतः उसका तटस्थ होना बहुत मुश्किल होता है। फिर यदि मूल्यों को खुले तौर पर विवेचन में शामिल न भी करें तो अध्ययन की समस्या के चयन, उसकी पूर्वकल्पनाओं के निर्धारण, आर्थिक चरों के उद्देश्यों के निर्धारण और उनके कार्यकलापों के संचालन के ढाँचे के रूप में मूल्यों का समावेश उनके अध्ययन-विवेचन में हो ही जाता है। समाज में आर्थिक नीतियों पर विवाद चलते हैं। अर्थशास्त्री उन बहसों में भाग लेते हैं और उन्हें अपना पक्ष चुनना ही पड़ता है। आर्थिक सिद्धान्तों का विकास मूल्यात्मक निर्णयों से भरपूर ऐसी सामाजिक बहसों और विवादों के बीच ही हुआ है। हर आर्थिक सिद्धान्त किसी-न-किसी राजनीतिक नीति का पृष्ठपोषक या खण्डक है और इन्हीं व्यावहारिक जरूरतों की वजह से उनका विकास हुआ है।

इसलिए शुद्ध यथार्थमूलक या वस्तुपरक अर्थशास्त्र महज कल्पना-भर है। हाँ, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि जहाँ तक किसी भी विश्लेषण में उसके मूल्यगत आधारों को स्पष्ट कर दिया जाता है, उसकी उपयोगिता और सरलता बढ़ जाती है।

precautionary motive (प्रिकॉशनरी मोटिव) : पूर्वोपाय मन्तव्य।

केन्स के तरलता-अधिमान-सिद्धान्त की एक अवधारणा, जिसके अनुसार आय या सम्पत्ति के एक भाग को मुद्रा के रूप में रखने की वजह जरूरत के वक्त नकद मुद्रा की आवश्यकता होती है। इस प्रकार मुद्रा की माँग का एक मन्तव्य आड़े वक्त शीघ्र ही, बिना किसी हानि के, मुद्रा-राशि का उपलब्ध हो जाना है। मुद्रा रखने के इस प्रकार के ध्येय 'पूर्वोपाय मन्तव्य' कहलाते हैं।

preference shares (प्रिफरेन्स शेयर्स): अधिमान शेयर।

किसी कम्पनी के अधिमान शेयर वे शेयर होते हैं, जिनसे उनके धारकों को मतदान का सीमित अधिकार प्राप्त होता है और प्रायः उनके लाभांश की दर पूर्वनिश्चित होती है। परन्तु सहयोगी अधिमान शेयर के धारकों को अवशिष्ट मुनाफे में भी हिस्सा मिलता है। किसी कम्पनी के दिवालिया होने पर अधिमान शेयरधारियों का हक ऋणपत्रों के बाद

और साधारण हिस्सों के पहले होता है। अधिमान शेयर में निवेश शेयरों की तरह स्थिति जोखिमपूर्ण नहीं होती है, न ऋणपत्रों की तरह जोखिममुक्त ही। यह स्थिति दोनों के बीच की होती है। आजकल कम्पनियों के पूँजी-ढाँचे में अधिमान शेयरों के महत्त्व के घटने की प्रवृत्ति देखी जा रही है।

preferential duty (प्रिफरेन्श्यल ड्यूटी) : अधिमानी शुल्क।

आयात तथा निर्यात पर लगाये गये ऐसे शुल्क, जो किसी खास देश या देशों के समूह को किसी खास किस्म की रियायत या छूट देते हैं, 'अधिमानी शुल्क' कहलाते हैं। बिटिश राष्ट्रमण्डल के अधिमानों की व्यवस्था ऐसे शुल्कों की उदाहरण है। प्रायः ऐसे शुल्क द्विपक्षीय आधार पर तय किये जाते हैं।

premium (प्रीमियम) : अधिमूल्य, किश्त।

किसी शेयर, प्रतिभूति या मुद्रा की चालू बाज़ार-कीमत और उसकी मूल समता, निर्गमन या अंकित कीमत का धनात्मक अन्तर अधिमूल्य कहलाता है। यह इस बात का द्योतक है कि बाज़ार में इस परिसम्पत्ति की वर्तमान स्थिति क्या है, अर्थात् बाज़ार इसकी अर्जन-क्षमता का क्या अनुमान लगाता है। अधिमूल्य किसी प्रतिभूति के पूंजीगत अधिमूल्यन का माप है।

एक दूसरे अर्थ में बीमा की किश्त को भी 'प्रीमियम' कहते हैं।

price (प्राइस) : क़ीमत।

विनिमय-मूल्य। किसी वस्तु के मूल्य का मौद्रिक माप या किसी वस्तु की एक इकाई के बदले में बाज़ार में विनिमय द्वारा प्राप्त मात्रा को कीमत कहते हैं।

साधारण तौर पर इस प्रचलित अर्थ के अलावा एक सामान्य और विस्तृत सन्दर्भ में भी कीमत का अर्थ है। किसी भी वस्तु (मुद्रा या वित्तीय परिसम्पत्तियों सहित) के बदले में वस्तु-विनिमय में प्राप्त मात्रा उस वस्तु की दूसरी वस्तु के रूप में कीमत होती है। इस सन्दर्भ में कीमत का अर्थ हुआ कि एक वस्तु को प्राप्त करने के लिए त्यागी जानेवाली दूसरी वस्तु की मात्रा पहली वस्तु की दूसरी वस्तु के रूप में कीमत है। इस तरह कीमत अवसर-लागत का पर्याय हो जाती है। एक विनिमय-अर्थव्यवस्था में हर वस्तु मुद्रा के माध्यम से खरीदी या बेची जाती है। अतः किसी वस्तु की एक इकाई के बदले में दी गयी मुद्रा की मात्रा उसकी मौद्रिक कीमत या केवल कीमत हुई। वस्तुओं, सेवाओं और संसाधनों का हस्तान्तरण आर्थिक जीवन की महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है और इस प्रक्रिया में हमेशा कीमतों का केन्द्रीय स्थान होता है।

देखिए : price determination
price mechanism
price theory
price system.

price-consumption curve (प्राइस-कन्जम्पशन कर्व) : कीमत-उपभोग-वक्र।

अनधिमान-विश्लेषण के सन्दर्भ में विकसित रेखागणितीय अवधारणा। इस वक्र का हर बिन्दु अलग-अलग कीमतों पर उपभोक्ता के सन्तुलन की स्थिति को व्यक्त करता है। अर्थात् कीमत में परि-

वर्तन के कारण एक वस्तु के उपभोग की मात्रा में हुआ परिवर्तन इस वक्र द्वारा दिखाया जाता है। दूसरे शब्दों में, यह वक्र कीमत-प्रभाव को दर्शाता है।

देखिए : price effect
indifference curves.

price control (प्राइस कॅण्ट्रोल) : कीमत-नियन्त्रण।

कीमतों के स्तर का सरकार द्वारा कानूनन निर्धारण कीमत-नियन्त्रण कहलाता है। इस नियन्त्रण द्वारा सरकार स्फीति-नियन्त्रण, कीमत-स्थायित्व, वस्तुओं का समुचित वितरण, वस्तुओं का सीमित और आवश्यक प्रयोग या उस वस्तु के उत्पादकों की आय पर नियन्त्रण या उसका स्थायित्व आदि उद्देश्य पूरा करना चाहती है। युद्ध, अकाल, अभाव आदि आपत्कालीन स्थितियों में भी कीमत-नियन्त्रण लागू किया जाता है। बिना अन्य सहायक नीतियों को अपनाये कीमत-नियन्त्रण की नीति सफल नहीं हो पाती है। आर्थिक स्थिति के मूल तत्त्वों (जैसे वस्तु का उत्पादन, उसकी माँग, उसका वितरण, उसके उत्पादन में हुआ निवेश या उसके उत्पादन के लिए आवश्यक सब तरह के संसाधनों की पूर्ति के प्रयास) के बिना कीमत-नियन्त्रण की नीति सामान्य परिस्थितियों में, विशेषकर लम्बे समय तक अपनाये जाने पर, असफल हो जाती है। तब यह काले बाज़ार, काले धन और रिश्वतखोरी को जन्म देकर अर्थव्यवस्था की कार्य-विधि को दोषपूर्ण कर देता है।

price determination (प्राइस डिटरमिनेशन) : कीमत-निर्धारण।

माँग-पूर्ति और प्रतियोगिता की प्रक्रिया, जिसके द्वारा कीमतें निर्धारित होती हैं। कीमत-निर्धारण की समस्या अर्थशास्त्र का, विशेषकर नव-प्रतिष्ठित व्यष्टिवादी अर्थशास्त्र का, सबसे महत्त्वपूर्ण विषय रही है। विभिन्न प्रकार के बाज़ारों में, विभिन्न प्रकार की पूर्वकल्पनाओंवाली स्थिति में कीमत-निर्धारण की प्रक्रिया अलग-अलग रूप में चलती है। कीमत-सिद्धान्तों में या व्यष्टिवादी अर्थशास्त्र में कीमत-निर्धारण के विभिन्न पहलुओं पर विचार किया जाता है।

देखिए : micro economics
price theory.

price discrimination (प्राइस डिस्क्रिमिनेशन) : कीमत-विभेद।

किसी वस्तु की अलग-अलग उपभोक्ताओं या उपभोक्ता-समूहों से अलग-अलग कीमत वसूल करना कीमत-विभेद कहलाता है। स्पष्ट है कि मुनाफा अधिकतम करने को इच्छुक कोई भी फर्म कीमत-विभेद तभी करेगी, जब इस नीति से उसका मुनाफा एक समान कीमत-नीति से ज्यादा हो। जब विभिन्न उपभोक्ता या अलग-अलग बाज़ारों में माँग की लोच अलग-अलग हो तथा खरीदारों द्वारा कम कीमत पर खरीदकर ऊँची कीमतवाले बाज़ार में बेचना सम्भव नहीं हो तो कीमत-विभेद की नीति अपनायी जायेगी। पूर्ण प्रतियोगितावाले बाज़ार में तो परिभाषा के अनुसार ही ऐसी स्थिति नहीं पायी जा सकती है। अतः वहाँ कीमत-विभेद सम्भव नहीं है। कीमत-विभेद की कीमत-निर्धारण-नीति केवल विभिन्न किस्म के अपूर्ण बाज़ारों में ही लागू हो सकती

है।

देखिए : arbitrage.

price effect (प्राइस इफेक्ट) : कीमत-प्रभाव।

किसी वस्तु की कीमत में परिवर्तन के कारण उपभोक्ता की उस वस्तु की खरीद में आया परिवर्तन कीमत-प्रभाव कहलाता है। इस प्रभाव को आय-प्रभाव और प्रतिस्थापन-प्रभाव का संयुक्त नतीजा माना जाता है। कीमत में परिवर्तन से वास्तविक आय बदलती है और फलस्वरूप उपभोक्ता के व्यवहार में अन्तर आता है। आय-प्रभाव घटिया तथा गिफेन वस्तुओं को छोड़कर बाकी वस्तुओं के लिए धनात्मक होता है। किसी वस्तु की कीमत में परिवर्तन के कारण सापेक्षिक कीमतें बदल जाती हैं। अपेक्षाकृत सस्ती वस्तुओं की खरीद बढ़ती है। प्रतिस्थापन-प्रभाव हमेशा धनात्मक होता है। इस तरह कीमत-प्रभाव की दिशा और मात्रा इन दोनों प्रभावों पर निर्भर रहती है। कीमत-प्रभाव कीमत-उपभोग-वक्र द्वारा दिखाया जाता है।

price elasticity of demand (प्राइस इलास्टिसिटी ऑफ डिमॉण्ड) : माँग की कीमत-लोच।

किसी वस्तु की कीमत बदलने के फलस्वरूप उस वस्तु की माँग में हुआ परिवर्तन माँग की कीमत-लोच द्वारा जाना जाता है। अर्थात् माँग की कीमत-लोच किसी वस्तु की कीमत में आये परिवर्तन से उसकी माँग की प्रभावशीलता की मात्रा को कहते हैं। माँग की मात्रा में आये आनुपातिक परिवर्तन को कीमत में आये आनुपातिक परिवर्तन से विभाजित करने पर माँग की कीमत-लोच का पता चलता है।

price elasticity of supply (प्राइस इलास्टिसिटी ऑफ सप्लाइ) : पूर्ति की कीमत-लोच।

यह किसी वस्तु की पूर्ति की, उसकी कीमत में परिवर्तन से, प्रभावशीलता की मात्रा को प्रकट करती है। किसी वस्तु की पूर्त्ति में आये आनुपातिक परिवर्तन को उसकी कीमत के आनुपातिक परिवर्तन से विभाजित करने पर पूर्ति की कीमत-लोच ज्ञात हो जाती है।

price index (प्राइस इन्डेक्स) : कीमत सूचकांक।

विभिन्न समयों पर विद्यमान सामान्य कीमत-स्तर के अन्तर को प्रकट करनेवाले अंक या संख्या को कीमत सूचकांक कहा जाता है। इससे विभिन्न समयों पर विद्यमान कीमतों या मुद्रा की क्रय-शक्ति की तुलना सम्भव हो जाती है। जीवन-स्तर में होनेवाले परिवर्तनों के अध्ययन के लिए कीमतों के सूचकांक की गणना करना जरूरी होता है।

देखिए : index numbers.

price level (प्राइस लेवेल) : कीमत-स्तर।

किसी देश में उत्पादित विभिन्न वस्तुओं तथा सेवाओं की कीमतों का उनके उत्पादन की कुल मात्रा में महत्त्व के अनुसार गणना किया गया औसत मान कीमत-स्तर कहलाता है। इसे सामान्य कीमत-स्तर कहा जाता है। सामान्य कीमत-स्तर मुद्रा की क्रय-शक्ति या मुद्रा के मूल्य का द्योतक होता है। कीमत-स्तर के बारे में मुद्रा की मात्रा का सिद्धान्त

बहुत प्रसिद्ध है। इस सिद्धान्त के अनुसार, अन्य बातें निश्चित होने पर, कीमत-स्तर मुद्रा की मात्रा में वृद्धि के कारण बढ़ता है और मुद्रा की मात्रा घटने पर कम हो जाता है। इस नियम को फिशर के सूत्र द्वारा प्रकट किया जाता है। अब अर्थशास्त्री यह मानने लगे हैं कि कीमत-स्तर पर भौतिक, उत्पादन-सम्बन्धी और मौद्रिक दोनों ही ताकतों का प्रभाव पड़ता है। किन परिस्थितियों में कौन-सा प्रभाव ज्यादा होगा, यह तात्कालिक ठोस परिस्थितियों पर निर्भर रहता है। जब उत्पादन अल्प-काल में और नहीं बढ़ाया जा सकता अर्थात् पूर्ति बेलोच है तो मुद्रा की मात्रा में बढ़ती माँग को बढ़ाकर कीमत-स्तर को ऊँचा उठायेगी । परन्तु यदि उत्पादन में वृद्धि सम्भव है तो मुद्रा की बढ़ती का प्रभाव मुख्यतः राष्ट्रीय आय और रोज़गार पर पड़ेगा।

देखिए : quantity theory of money
keynesion revolution.

price mechanism (प्राइस मैकेनिज्म): कीमत-प्रक्रिया।

एक बहुप्रयुक्त, बहुत उपयोगी और बहुधा गलत रूप से समझी जानेवाली अवधारणा। कुछ अर्थशास्त्री पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के संगठन, प्रबन्ध और संचालन में भाग लेनेवाली संस्थाओं, प्रणालियों और प्रक्रियाओं का संयुक्त नाम कीमत-प्रक्रिया को देते हैं। इसमें निजी सम्पत्ति, निजी-उद्यम, बाज़ार, विनिमय, प्रतियोगिता, मुनाफा तथा सन्तुष्टि अधिकतम करने की प्रेरणा आदि सभी तत्त्वों का समावेश माना जाता है। दूसरी ओर, कुछ अर्थशास्त्री कीमत-निर्धारण की विभिन्न प्रक्रियाओं को कीमत-प्रक्रिया का नाम देते हैं। पूंजीवादी व्यवस्थाओं में विभिन्न रूपों में, विभिन्न अंशों तक ऊपर वर्णित सभी तत्त्व कुछ-न-कुछ अंशों में कीमत-निर्धारण-प्रक्रिया से सम्बन्धित हैं और पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के संगठन, प्रबन्ध और संचालन में आपस में घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई भूमिकाएँ निभाते हैं। परन्तु ऐसी अर्थव्यवस्थाओं में भी ये सब तत्त्व हमेशा अनिवार्य रूप से एक साथ नहीं पाये जाते हैं और न केवल आपस में विभिन्न समूहों और संयोगों में मिलाकर लागू होते या किये जाते हैं, अपितु कई अन्य मूलभूत रूप से गैर-पूंजीवादी तत्त्वों से भी मिलाकर संगठन, प्रबन्ध और संचालन के उद्देश्यों के लिए काम में लाये जाते हैं। ये विभिन्न तत्त्व या अंग सिद्धान्त में, व्यवहार में और ऐतिहासिक रूप से पृथक-पृथक होते हैं। अतः इनके सम्मिलित रूप को कीमत-प्रक्रिया का नाम देना गलत है। वस्तुतः कीमतें या कीमत-निर्धारण-प्रक्रिया या कीमतों का अन्य तत्त्वों पर प्रभाव कई स्थितियों में काफी गौण हो सकता है। इस तरह कीमत-प्रक्रिया को पूंजीवादी प्रणाली का दूसरा नाम मान लेना न केवल असंगत है, बल्कि भ्रामक भी है।

कीमत-प्रक्रिया से सही तात्पर्य होता है किसी भी आर्थिक प्रणाली के अन्तर्गत किसी भी सूत्र या विधि द्वारा निर्धारित सापेक्षिक कीमतों के ढाँचे का आर्थिक संगठन, प्रबन्ध और संचालन के उद्देश्यों के लिए सचेतन रूप से निर्धारित या स्वतः प्रेरित रूप में प्रयोग होने की व्यवस्था। इस परिभाषा के अनुसार कीमत-प्रक्रिया

पूंजीवाद से स्वतन्त्र, किसी भी प्रकार की प्रणाली में विभिन्न स्तरों, रूपों और भूमिकाओं में उपयोगी संगठनात्मक उपकरण है। इसीलिए पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं के अलावा समाजवादी अर्थव्यवस्थाएँ भी इसका प्रयोग करती हैं और सामन्तवाद, सरल वस्तु-प्रणाली आदि अन्य उत्पादन-प्रणालियों में भी कीमत-प्रक्रिया सक्रिय नजर आती है।

कीमत-प्रक्रिया के बारे में अनेक भ्रामक धारणाओं के मूल में अर्थशास्त्र की प्रमुख धारा का पूंजीवाद के प्रति पक्षपाती दृष्टिकोण रखना, पूंजीवाद को ही सारा विश्व या विवेचन-क्षेत्र समझना और गैर-ऐतिहासिक दृष्टिकोण हैं। इसलिए कई अर्थशास्त्री समाजवाद और कीमत-प्रक्रिया को एक-दूसरे से असंगत मानते थे। परन्तु अब यह विचार लगभग सभी हलकों में रद्द कर दिया गया है।

price support (प्राइस सॅपोर्ट): कीमत-समर्थन।

न्यूनतम कीमतें कानून द्वारा निर्धारित करके उत्पादकों को खास कर खेती के क्षेत्र में, एक न्यूनतम आय या मुनाफा सुरक्षित रूप से प्रदान करने की नीति 'कीमत-समर्थन' की नीति कहलाती है। यदि बाज़ार की कीमतें इन न्यूनतम पूर्वनिर्धारित कीमतों से नीचे गिरने लगें तो सरकार पूर्वघोषित कीमत पर स्वयं खरीदना शुरू करके कीमतों को गिरने से रोकेगी। इस नीति का उद्देश्य उत्पादकों को उत्पादन बढ़ाने के लिए प्रेरणा और प्रोत्साहन देना है, ताकि उत्पादन-वृद्धि द्वारा कीमतें कम होकर उत्पादकों की आय को कम नहीं कर सकें। खेती के क्षेत्र में इस नीति का विशेष महत्त्व है; क्योंकि इस क्षेत्र में माँग के अपेक्षाकृत कम परिवर्तित होने की प्रवृत्ति के कारण पूर्ति में वृद्धि कीमतों को गिराकर उत्पादकों के हितों पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकती है। इस प्रकार कीमत-समर्थन-नीति द्वारा कीमतों के स्थायित्व की नीति को अमल में लाया जाता है।

price structure (प्राइस स्ट्रक्चर): कीमत-संरचना, कीमत-ढाँचा।

अर्थव्यवस्था में किसी समय-विशेष पर प्रचलित विभिन्न कीमतों का सापेक्ष ढाँचा 'कीमत-संरचना' या 'कीमत-ढाँचा' कहलाता है। विभिन्न वस्तुओं तथा सेवाओं की कीमतों के आपस में सम्बन्धित होने के कारण किसी भी वस्तु की कीमत में परिवर्तन अन्य सब कीमतों को भी प्रभावित करता है। सामान्य सन्तुलन-सिद्धान्त कीमत-संरचना या उसके निर्धारण की प्रक्रिया की व्याख्या करता है। संसाधनों का आवण्टन कीमत-संरचना से बहुत प्रभावित होता है।

price system (प्राइस सिस्टम): कीमत-प्रणाली।

कीमत-प्रक्रिया के लिए प्रयुक्त एक वैकल्पिक शब्द।

देखिए : price mechanism.

price theory (प्राइस थिअॅरी): कीमत-सिद्धान्त।

आधुनिक अर्थशास्त्र में कीमत-सिद्धान्त अर्थशास्त्र की उस शाखा को कहते हैं, जिसमें पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं के बाज़ारों में कीमत-निर्धारण की प्रक्रिया का अध्ययन किया जाता है। इसी प्रक्रिया के समझाने में संसाधनों के आवण्टन की

प्रक्रिया का विश्लेषण भी हो जाता है; क्योंकि पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में संसाधनों का आवण्टन बाज़ार-कीमत की निजी उद्यम-प्रणाली द्वारा होता है। बाज़ारों, फर्मों तथा उपभोक्ता के व्यवहार का अध्ययन इन सिद्धान्तों का मुख्य अंग है। शुरू में कीमत-निर्धारण में या तो उत्पादन या पूर्ति या माँग की शक्तियों की प्रमुखता पर काफी विवाद था। परन्तु कम-से-कम अल्फ्रेड मार्शल के समय से माँग और पूर्ति दोनों की भूमिका बाज़ार के स्वरूप तथा विभिन्न अवधियों के परिप्रेक्ष्य में कीमत-निर्धारण की प्रक्रिया में मान ली गयी है। कीमत-निर्धारण के सिद्धान्त एक वस्तु या सेवा या साधन की कीमत से सम्बन्धित हैं, न कि सामान्य कीमत-स्तर से। ये सिद्धान्त आंशिक सन्तुलन और सामान्य सन्तुलन दोनों स्कूलों में विकसित किये गये हैं। कीमत-सिद्धान्त व्यष्टिगत अर्थशास्त्र के केन्द्र-विन्दु हैं। वास्तविक जगत में कीमत-सिद्धान्तों का वहुत-से सन्दर्भों में व्यवहार किया जाता है।

देखिए : markets
supply
demand
perfect competition
monopolistic competition
monopoly
oligopoly
price determination
price discrimination.

price war (प्राइस वार) : कीमत-युद्ध, कीमत-संघर्ष।

पूर्ण प्रतियोगिता (जहाँ हर फर्म कीमतें वाह्य रूप से, बाज़ार द्वारा निश्चित की हुई, स्वीकार करती हैं) तथा पूर्ण एकाधिकार (जहाँ केवल एक फर्म सम्बन्धित वस्तु का उत्पादन करती है) के अतिरिक्त अन्य बाज़ारों में फर्में अपनी आपसी प्रतियोगिता अनेक रूपों में संचालित कर सकती हैं। जब अपने उत्पाद की कीमत घटाकर अपने बाज़ार को विस्तृत करने की नीति व्यापक रूप से अपनायी जाती है तब इसे 'कीमत-युद्ध' कहा जाता है। कीमतों का संघर्ष, वहुत छोटी अवधि को छोड़कर, लागत, मुनाफे और माँग तथा पूर्ति की लोच की परिस्थितियों पर निर्भर रहता है। कई वार कीमत-संघर्ष मे छिपे रूप से कीमत कम करने या बढ़ाने का तरीका भी अपनाया जाता है। सीधे कीमत नहीं घटाकर या तो कोई खास छूट या रियायत दे दी जाती है या साथ में कोई 'मुफ्त' भेंट दी जा सकती है। अल्पाधिकारी बाज़ारों में, जहाँ हर फर्म दूसरी फर्म के बारे में जानती है और उसकी प्रत्याशित नीतियों के बारे में अनुमान के आधार पर अपनी नीति तय करती है, कीमत-संघर्ष की सम्भावना और उसके क्षेत्र काफी सीमित होते हैं।

pricing policy (प्राइसिंग पॉलिसी) : कीमत-निर्धारण-नीति।

निजी तथा सार्वजनिक कम्पनियों द्वारा कीमत-निर्धारण के लिए कई प्रकार के उद्देश्यों और उनसे सम्बन्धित सूत्रों और गणना के तरीकों को अपनाया जा सकता है। ये उद्देश्य, सूत्र और गणना-विधियाँ मिलकर उस फर्म की कीमत-निर्धारण-नीति कहे जाते हैं। पूर्ण प्रति-

योगिता में अधिकतम मुनाफा कमाने को इच्छुक फर्मों की कीमतें उनकी सीमान्त लागत के बराबर होती हैं। इसी आधार पर कल्याण-अर्थशास्त्र में सीमान्त लागत-कीमत-निर्धारण-सिद्धान्त को अनुकूलतम साधन आवण्टन के लिए अनिवार्य बताया गया है। सीमान्त लागत की ही भाँति औसत लागत, औसत लागत धन (+) अधिशेष आदि अन्य कीमत-निर्धारण-सूत्रों का भी प्रचलन होता है। व्यवहार में कई फर्में 'परिवर्तनीय लागत+(धन) एक निश्चित अतिरिक्त राशि' सूत्र के आधार पर अपनी कीमतें तय करती हैं।

primary production (प्राइमरी प्रॉडक्शन) : प्राथमिक उत्पादन।

कृषि तथा उससे सम्बन्धित क्षेत्रों (जैसे पशुपालन, मछलीपालन, बागवानी, खदानों का काम आदि) के उत्पादन को प्राथमिक उत्पादन कहा जाता है। अल्प-विकसित देशों की राष्ट्रीय आय और उनके निर्यात का महत्त्वपूर्ण भाग प्राथमिक उत्पादन होता है। जैसे-जैसे अर्थ-व्यवस्था का औद्योगीकरण होता है, वहाँ की आर्थिक संरचना में प्राथमिक उत्पादन का महत्त्व घटता है। परन्तु प्राथमिक उत्पादन के महत्त्व में केवल सापेक्ष कमी होती है। निरपेक्ष रूप से प्राथमिक उत्पादन के तीव्र और व्यापक विकास के बिना एक अर्थव्यवस्था के आर्थिक विकास का आधार ही उपलब्ध नहीं होता है। केवल विदेशी व्यापार, लाभप्रद विदेशी व्यापार, की बहुत विकसित क्षमता विद्यमान होने पर ही प्राथमिक उत्पादन के विकास के बिना आर्थिक विकास काफी आगे बढ़ सकता है।

prime cost (प्राइम कॉस्ट) : मूल लागत, परिवर्तनीय लागत।

उत्पादन की वे लागतें (जैसे कच्चे माल की लागत, मज़दूरी-भुगतान, ऊर्जा की लागत आदि), जो उत्पादन के स्तर के घटने या बढ़ने के साथ-साथ (परन्तु अनिवार्यतः उसी अनुपात में नहीं) घटती या बढ़ती हों, मूल लागत या परिवर्तनीय लागत कहलाती हैं। उत्पादन के साथ-साथ एक ही दिशा में मूल लागत में परिवर्तन अल्प तथा दीर्घकाल दोनों में होता है।

देखिए : variable cost
cost of production.

private company (प्राइवेट कम्पनी): निजी कम्पनी।

निगम-संगठन का वह विशेष रूप, जिसमें शेयरधारियों की संख्या उस देश के कम्पनी-कानून द्वारा ऐसी कम्पनियों के लिए निर्धारित संख्या तक ही होती है और इन कम्पनियों के शेयर शेयर-बाजार में खरीदे-बेचे नहीं जाते हैं। इस प्रकार ऐसी कम्पनियों के शेयर एक सीमित और विशिष्ट समूह के हाथ में ही रहते हैं। ऐसे व्यवसायों में साझेदारी की तरह शेयरधारी तो आपस में एक-दूसरे की मर्जी के अनुसार पारस्परिक रूप से स्वीकार्य ही होते हैं, परन्तु सीमित दायित्व, निरन्तरता और सुव्यवस्थित निश्चित संगठन-प्रणाली के लाभ इन व्यवसायों को मिल जाते हैं। इन कम्पनियों को भी अपने कामों और हिसाब-किताब को भी सार्वजनिक कम्पनियों की भाँति प्रचारित और सर्वसुलभ नहीं करना पड़ता है। इसलिए इन कम्पनियों को अपेक्षाकृत

अधिक गोपनीयता प्राप्त होती है। परन्तु इनको अपने हिसाब-किताब की खाता-परीक्षा कराकर कम्पनी-कानून के प्रशासन को देना पड़ता है।

देखिए : joint stock companies
corporations.

private enterprise (प्राइवेट एण्टर-प्राइस) : निजी उद्यम।

उत्पादन के साधनों पर निजी या व्यक्तिगत स्वामित्व और निजी नियमों द्वारा बचत, निवेश, क्रय-विक्रय तथा अन्य आर्थिक लेन-देन करने का अधिकार देनेवाली अर्थव्यवस्था। ये अर्थव्यवस्थाएँ विकेन्द्रित होती हैं, परन्तु कालान्तर में उत्पादन के साधनों के स्वामित्व के केन्द्रीकरण तथा उत्पादन के पैमाने में वृद्धि के कारण इस प्रणाली के विकेन्द्रीकरण की सीमा कम हो जाती है। निजी उद्यम पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली का मूल तत्त्व है। पूँजीवादी विकास के परिपक्व चरणों में राजकीय आर्थिक हस्तक्षेप की बढ़ती जरूरत और कार्य-क्षेत्र के कारण निजी उद्यम को धक्का लगने लगता है।

private net product (प्राइवेट नेट प्रॉडक्ट) : निजी निवल उत्पाद।

निवल राष्ट्रीय उत्पाद के लिए ए० सी० पिगू द्वारा प्रयुक्त पद।

देखिए : net national income
net national product.

private sector (प्राइवेट सेक्टर) : निजी क्षेत्र।

उत्पादन, वितरण और वित्तीय संस्थानों में निजी उद्यम के अन्तर्गत आनेवाली सब इकाइयों को मिलाकर निजी क्षेत्र कहा जाता है। अधिकांश पूँजीवादी देशों में राजकीय क्षेत्र, सार्वजनिक क्षेत्र या राजकीय पूँजीवादी क्षेत्र का उदय होने के कारण उनकी अर्थव्यवस्था को निजी क्षेत्र तथा सार्वजनिक (राजकीय पूँजीवादी) क्षेत्र में बाँटकर अध्ययन किया जाता है। भारत, फ्रान्स, ग्रेट ब्रिटेन आदि देशों में काफी बड़े सार्वजनिक क्षेत्र के बावजूद निजी क्षेत्र अर्थव्यवस्था की मुख्य धुरी हैं। कई समाजवादी देशों में कृषक-खेती-प्रणाली के रूप में खेती में निजी क्षेत्र पाया जाता है। पूँजीवाद से समाजवाद की ओर संक्रमण के काल में भी निजी क्षेत्र को एक निश्चित परन्तु सीमित भूमिका दी जाती है। सोवियत रूस में 'नयी आर्थिक नीति' तथा चीन में क्रान्ति के बाद के संक्रमण-काल के दौरान निजी क्षेत्र को कुछ क्षेत्रों में काम करने की अनुमति दी गयी थी।

produce exchange (प्रॉड्यूस एक्स-चेंज) : उपज-मण्डी।

कृषि-उत्पादों के वर्तमान और भावी लेन-देन के लिए संगठित बाज़ार उपज-मण्डी कहे जाते हैं। इनमें विभिन्न उत्पादों के तुरन्त तथा वायदा सौदे किये जाते हैं। इन बाज़ारों में सट्टेबाजी की काफी गुंजाइश होती है।

producers goods (प्रोड्यूर्स गुड्स) : उत्पादक वस्तुएं।

पूँजीगत वस्तुओं या निवेश वस्तुओं का ही एक अन्य नाम।

देखिए : capital goods.

producer's surplus (प्रोड्यूसर्स सर्प्लस) : उत्पादक-अधिशेष।

किसी वस्तु या वस्तुओं के उत्पादन

में लगी फर्मों की उन वस्तुओं की बिक्री से प्राप्त कुल आय या आगम की उन वस्तुओं के उत्पादन में लगी कुल लागत से अधिकता को 'उत्पादक-अधिशेष' कहा जाता है। उत्पादक-अधिशेष के उत्पन्न होने का मूल कारण ह्रासमान प्रतिफल के नियम या वर्धमान सीमान्त उत्पादन-लागत के नियम का लागू होना है। इस नियम के लागू होनेवाली स्थितियों में जैसे-जैसे उत्पाद बढ़ता है, सीमान्त लागत बढ़ती है। मुनाफा अधिकतम करनेवाली फर्मों की कीमत सीमान्त लागत के बराबर तय की जाती है। इसलिए अन्तःसीमान्त इकाइयों पर कीमत सीमान्त आय से अधिक होती है। यदि एक उद्योग की स्थिति पर नजर डालें तो हम देखेंगे कि सीमान्त फर्म की लागत के अनुसार बाज़ार-कीमत निर्धारित होती है। अतः अन्तः-सीमान्त फर्में, जो अपेक्षाकृत अधिक कुशल साधनों का या समान साधनों का अधिक कुशल तरीके से इस्तेमाल करती हैं, अपनी कुल लागत से कहीं ज्यादा कुल आगम प्राप्त करती हैं, अर्थात् उन्हें उत्पादक-अधिशेष मिलता है। यदि यह अधिशेष विशिष्ट कुशल साधनों के कारण प्राप्त होता है तो इन साधनों की आय या मज़दूरी में दीर्घकाल में बढ़ने की प्रवृत्ति होगी। फलतः उत्पादक-अधिशेष कालान्तर में साधनों की अतिरिक्त आय के रूप में अर्द्ध-लगान का रूप ग्रहण कर लेगा।

देखिए : quasi-rent.

gent of ability.

product differentiation (प्रॉडक्ट डिफरेन्सियेशन) : उत्पाद-विभेदन।

अपूर्ण या एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की स्थिति में फर्में अनेक तकनीकी और मनोवैज्ञानिक तरीकों (जैसे विज्ञापन, ब्राण्ड नाम, लेवल, आकार और रंग में फर्क) से अपने उत्पाद को अन्य फर्मों के उत्पाद से उपभोक्ता की नजर में बढ़कर दिखाना चाहती हैं, ताकि उन वस्तुओं का बाज़ार बढ़े और दूसरी फर्मों की नीतियों से कमज़ोर न हों। यह प्रक्रिया उत्पाद-विभेदन-प्रक्रिया कही जाती है। पूर्ण प्रतियोगिता में सब उत्पादों के एक समान होने की पूर्वकल्पना की जाती है। इस पूर्वकल्पना के कारण हर फर्म के उत्पाद की माँग-रेखा पूर्णतया लोचदार अर्थात् क्षितिजीय सीधी रेखा होती है और हर फर्म को बाज़ार की चालू कीमत स्वीकार करनी पड़ती है। परन्तु उत्पाद-विभेदन के कारण हर फर्म के उत्पाद को कुछ उपभोक्ता विशिष्ट मानने लगते हैं, अतः वे उसका पूर्ण प्रतिस्थापक नहीं खोज पाते हैं। फलतः फर्म के उत्पाद का माँग-वक्र बायें से दायीं ओर नीचे की तरफ झुकता हुआ होने लगता है। इसलिए कम कीमत पर ज्यादा और ज्यादा कीमत पर कम मात्रा में यह उत्पाद माँगा जाता है। फर्में कीमत, उत्पाद और उत्पादन-मात्रा आदि मामलों में वास्तव में प्रतियोगी व्यवहार दिखाने लगती हैं। प्रो० एडवर्ड चैम्बरलिन के एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के सिद्धान्त में उत्पाद-विभेदन की अवधारणा का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

production (प्रॉडक्शन) : उत्पादन।

मानव-श्रम और प्रकृति के सहयोग द्वारा मनुष्य की आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के साधनों को प्राप्त करने की प्रक्रिया उत्पादन कहलाती है। किसी भी

अर्थव्यवस्था में यह एक सामाजिक प्रक्रिया है। इस सामाजिक सन्दर्भ में उत्पादन से तात्पर्य उन सब क्रियाओं से है जो समाज की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए की जाती हैं। इस अर्थ में कई ऐसे कार्य, जो व्यक्ति अपनी खुद की जरूरतें पूरी करने के लिए करता है और जिनके कोई मापनीय, स्पष्ट या सार्थक सामाजिक परिणाम नहीं होते हैं और जो विद्यमान आर्थिक-सामाजिक संगठन के सन्दर्भ में व्यक्तिगत स्तर पर किये जाते हैं (जैसे एक गृहिणी द्वारा अपने परिवार के लिए खाना पकाना, एक आदमी द्वारा अपने बच्चों को पढ़ाना या किसी व्यक्ति द्वारा अपने बाल संवारणा, दाढ़ी बनाना, कपड़े बनाना, घर के पिछवाड़े में सब्जी उगाना आदि), उत्पादन के भाग नहीं माने जाते। इस अर्थ में उत्पादन से तात्पर्य हमेशा एक सामाजिक-आर्थिक प्रणाली के सन्दर्भ में समझा जाना चाहिए।

पूंजीवादी प्रणाली में उत्पादन का अर्थ होता है वे क्रियाएँ, जो एक व्यक्ति, संगठन या व्यक्तियों के समूह द्वारा अन्य लोगों की आवश्यकताएँ विनिमय के माध्यम से पूरी करने के लिए की जाती हैं। भारत-जैसी अर्थव्यवस्थाओं में, जहाँ पूंजीवादी उत्पादन हर क्षेत्र में विकसित नहीं हुआ है, किसानों द्वारा किया गया सारा उत्पादन (जिसका एक भाग निजी उपभोग के लिए होता है) आर्थिक अर्थ में भी उत्पादन माना जायेगा। उत्पादन-क्रियाओं को आर्थिक क्रियाएँ भी कहा जाता है। कुछ अर्थशास्त्री उत्पादन का अर्थ 'उपयोगिता के सृजन' के रूप में बताते हैं। जिन सामाजिक और संगठनात्मक पहलुओं के सन्दर्भ में उत्पादन को समझा जाना चाहिए, उनके अनुसार उपयोगिता-सृजन व्यक्तिगत स्तर पर भी हो सकता है। स्पष्टत: उत्पादन के इस अर्थ के अनुसार हर मनुष्य की सारी जिन्दगी के सारे काम उत्पादक ही होते हैं। हाँ, यदि हम कहें कि उत्पादन से हमारा अभिप्राय सामाजिक उपयोगिता के सृजन के कामों से है तो यह अर्थ सही होगा।

देखिए : economic activities.

production function (प्रॉडक्शन फॅन्कशन) : उत्पादन-फलन।

उत्पादन की तकनीकी प्रक्रिया को आगतों और निर्गतों के बीच एक गणितीय सम्बन्ध के रूप में प्रकट करने से उत्पादन-फलन प्राप्त होता है। दूसरे शब्दों में, उत्पादन के विभिन्न साधनों की मात्राओं और उत्पाद की मात्रा का सम्बन्ध उत्पादन-फलन कहलाता है। इससे यह पता चलता है कि उत्पादन की एक निर्दिष्ट मात्रा के उत्पादन में साधनों की कितनी मात्रा की आवश्यकता होती है। इस फलन को एक गणितीय समीकरण के रूप में, जैसे : उ=फ (भू, श्र) द्वारा प्रकट किया जाता है। इसका अर्थ हुआ कि उत्पादन (उ) भूमि (भू) और श्रम (श्र) पर निर्भर (फ) या उनसे सम्बन्धित है। यह तो उत्पादन-फलन का सामान्य रूप है। विभिन्न परिस्थितियों में उत्पादन-फलन अलग-अलग विशिष्ट रूप के होते हैं। उत्पादन-फलन तकनीकी सम्बन्धों के साथ-साथ सन्तुलन की स्थिति भी प्रकट कर सकते हैं। ये फलन एक फर्म या उत्पादन-इकाई अथवा सारी अर्थव्यवस्था या

उसके किसी क्षेत्र के लिए निर्मित किये जा सकते हैं। ये उत्पादन के साधनों को कुछ मोटे समूहों में वर्गीकृत करके उत्पादन-प्रक्रिया का सरल रूप प्रस्तुत करते हैं। सारी अर्थव्यवस्था या उसके एक क्षेत्र के उत्पादन-फलन का समष्टिगत अर्थशास्त्र में और एक फर्म के उत्पादन-फलन का व्यष्टिगत अर्थशास्त्र में अध्ययन किया जाता है।

production relations (प्रॉडक्शन रिलेशन्स) : उत्पादन-सम्बन्ध।

कॉर्ल मार्क्स के सिद्धान्तों और राजनीतिक अर्थशास्त्र की महत्त्वपूर्ण अवधारणा, जो उत्पादन-प्रणाली की अवधारणा और सिद्धान्त का एक आवश्यक अंग है। मार्क्स ने उत्पादन के अनिवार्य सामाजिक पहलू पर जोर दिया और बताया कि उत्पादन की प्रक्रिया में सहयोग, श्रम-विभाजन, उत्पादन के साधनों के स्वामित्व और उत्पाद के वितरण के आधार पर अनेक सम्बन्धों का विकास होता है। सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्त्ति के साधनों को जुटाने की प्रक्रिया में लोग आपस में अनेक सम्बन्धों में बँध जाते हैं, जो उत्पादन-सम्बन्ध कहलाते हैं। इन सम्बन्धों के बीच की कड़ी ये वस्तुएँ होती हैं, इसलिए इन्हें इस तरह प्रदर्शित किया जा सकता है—

मनुष्य → वस्तुएँ → मनुष्य

मार्क्स ने आर्थिक प्रश्नों के अध्ययन में उत्पादन-सम्बन्धों पर ज़ोर दिया, जो कि उसके वर्गसंघर्ष-सिद्धान्त के आधार हैं। पूंजीवादी अर्थशास्त्रियों ने, इसके विपरीत, वस्तुओं और वस्तुओं के बीच के सम्बन्धों के माध्यम से आर्थिक प्रश्नों को समझना चाहा। उत्पादन-फलन, उपयोगिता आदि अवधारणाएँ इसी वस्तु-केन्द्रित दृष्टिकोण की उपज हैं। उत्पादन-सम्बन्धों का अध्ययन आर्थिक और सामाजिक प्रश्नों की कृत्रिम खाई को मिटाता है। इसके द्वारा आर्थिक घटनाओं की प्रेरणाएँ और उनका संस्थागत रूप आर्थिक विश्लेषण में अपना उचित स्थान पाते हैं।

production possibility curve (प्रॉडक्शन् पॉसिबिलिटी कर्व) : उत्पादन-सम्भावना-वक्र।

यह वक्र यह दिखाता है कि किसी अर्थव्यवस्था में उत्पादन के साधनों की कुल मात्रा निर्दिष्ट और सीमित होने पर किन्हीं दो वस्तुओं को निर्दिष्ट तकनीकों द्वारा किन-किन मात्राओं में उत्पादित किया जा सकता है। यदि एक वस्तु का उत्पादन बढ़ाया जाता है तो दूसरी वस्तु का उत्पादन घटाना पड़ेगा। इस प्रकार इस वक्र द्वारा साधनों की दी हुई मात्रा तथा तकनीकों के दिये हुए विकास-स्तर द्वारा एक अर्थव्यवस्था में विभिन्न वस्तुओं के सम्पूर्ण सम्भावित उत्पादन की मात्रा, एक वस्तु के उत्पादन को घटाने पर दूसरी वस्तु की अतिरिक्त उपलब्ध मात्रा तथा एक वस्तु को दूसरी में परिवर्तित करने (संसाधनों को एक वस्तु से हटाकर दूसरी वस्तु के उत्पादन में लगाने से दूसरी वस्तु की प्राप्त मात्रा) की दर का पता चलता है। इस वक्र पर उत्पादन होने का अर्थ है कि साधनों का पूरा प्रयोग हो रहा है। यदि उत्पादन-बिन्दु इस वक्र के भीतर है या इससे नीचे है तो इसका अभिप्राय है कि साधनों का पूरा प्रयोग नहीं हो रहा है।

इस वक्र के ऊपर या इससे घिरे क्षेत्र के बाहर का बिन्दु उत्पादन के ऐसे स्तर को दिखाता है जो विद्यमान साधनों और तकनीकों द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता। इस वक्र को रूपान्तरण-वक्र भी कहते हैं। इसके द्वारा हमें विभिन्न वस्तुओं की अवसर-लागत का पता चलता है।

देखिए : opportunity cost
transformation curve.

productive expenditure (प्रॉडक्टिव एक्सपेण्डीचर) : उत्पादक व्यय।

एक फर्म द्वारा उत्पादन के साधनों पर किये गये वे खर्च, जिनके कारण उत्पादन बढ़ता है, 'उत्पादक व्यय' कहलाते हैं। इनके विपरीत वे खर्च होते हैं, जो उत्पादन से सम्बन्धित नहीं होते। किसी भी वास्तविक स्थिति में यह तय करना बहुत कठिन होता है कि कौन-कौन-से खर्च किन अंशों में उत्पादक होते हैं। उत्पादन-प्रक्रिया में अनेक साधनों का प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से संयुक्त योगदान होता है, अतः उनके औचित्य का अलग-अलग रूप से निर्धारण बहुत कठिन होता है।

productive labour (प्रॉडक्टिव लेबर) : उत्पादक श्रम।

वह श्रम, जो वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन में लगा हो, उत्पादक श्रम कहा जायेगा। हमने उत्पादन का अर्थ बताते हुए यह दिखाया था कि सभी कामों को, जिनसे मनुष्य अपनी आवश्यकताएँ पूरी करता है, उत्पादन नहीं कहा जा सकता। अतः केवल आर्थिक अर्थ में उत्पादन में लगे श्रमिकों को ही उत्पादक श्रम की कोटि में रखा जा सकता है।

क्लासिकल अर्थशास्त्रियों ने उत्पादक श्रम पर काफी चर्चा की थी। एडम स्मिथ के अनुसार भौतिक वस्तुओं के उत्पादन में लगा श्रम ही उत्पादक था। सेवाओं, जिनका उसी क्षण उपभोग हो जाता है जिस क्षण उनका उत्पादन होता है, के उत्पादन में लगा श्रम अनुत्पादक श्रम माना गया था। स्पष्ट है कि एडम स्मिथ के अनुसार 'उत्पादकता' की कसौटी संचय की प्रक्रिया में योगदान की क्षमता थी। आर्थिक विकास को एडम स्मिथ के विचारों का महत्त्वपूर्ण विन्दु मानने पर संचय में योगदान की क्षमता को उत्पादकता की कसौटी मानना ठीक तरह से सराहा जा सकता है। कार्ल मार्क्स के अनुसार वे श्रमिक उत्पादक थे, जिनके कामों से अधिशेष का उत्पादन होता था। यह परिभाषा पूंजीवादी-प्रणाली के सन्दर्भ में दी गयी थी। उत्पादन की परिभाषा पर भी हमने आर्थिक प्रणाली और संगठन का गहरा प्रभाव देखा था।

देखिए : production.

productivity (प्रॉडक्टिविटी) : उत्पादिता।

श्रम अथवा अन्य किसी साधन की उत्पादन-क्षमता। इसका अनुमान उस उत्पादन-मात्रा के आधार पर लगाया जाता है, जो उनके लिए आवश्यक साधन-राशि के प्रयोग के फलस्वरूप प्राप्त होती है। विभिन्न ढंग से साधन की उत्पादिता बढ़ाने के लिए प्रयास किया जाता है।

profit (प्रॉफिट) : लाभ-मुनाफा।

लाभ के सम्बन्ध में अनेक धारणाएँ प्रचलित रही हैं। कुछ अर्थशास्त्री लाभ

को अनिश्चितता व जोखिम उठाने का प्रतिफल ठहराते हैं, कुछ इसे योग्यता का लगान मानते हैं, कुछ इसे मज़दूरी का एक विशेष रूप समझते हैं और कुछ लोग ऐसे भी हैं जो लाभ को वैधानिक डकैती या लूट-खसोट मानते हैं।

सामान्य तौर से लाभ को व्यवस्थापक या उद्यमकर्त्ता के प्रतिफल के साथ जोड़ा जाता है। परन्तु वास्तव में लाभ से तात्पर्य उस प्राप्ति से है, जो उद्यमी को अपने निवेश से प्राप्त होता है। इस तरह यह अवधारणा एक खास किस्म के अधिशेष से सम्बन्धित है। लाभ के वारे में अनेक प्रकार के सिद्धान्त प्रचलित हुए हैं। परन्तु अर्थव्यवस्था की आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था के सन्दर्भ के विना केवल एकांगी, अपूर्ण और सीमित सिद्धान्त ही वन पाते हैं। यह कहना गलत होगा कि हर आर्थिक प्रणाली में उत्पादन की प्रेरणा निजी लाभ द्वारा ही प्राप्त की जाती है। यह तो निजी सम्पत्ति, विनिमय और निजी उद्यमवाली पूँजीवादी व्यवस्था का ही अनिवार्य लक्षण है। कृषक-स्वामित्व-व्यवस्था या लघु-वस्तु-उत्पादन-प्रणाली में जहाँ श्रम खरीदा नहीं जाता है, वहाँ उत्पादन का उद्देश्य उत्पादन को अधिकतम करना होता है। समाजवादी व्यवस्था में निजी मुनाफा या आय-वितरण का मुनाफा-जैसी कोई अवधारणा नहीं होती। हाँ, सम्पूर्ण आगम और सम्पूर्ण लागत के अन्तर के रूप में, हिसाव-किताब की एक अवधारणा के रूप में, तथा समाजवादी उद्यमों को प्रोत्साहन देने के लिए गणना के आधार के रूप में लाभ या मुनाफा समाजवादी अर्थव्यवस्थाओं में भी पाया जा सकता है।

profit margin (प्रॉफिट मार्जिन): लाभ-सीमा।

माल की विक्री से उत्पादक को मिलनेवाले निवल लाभ की मात्रा। साधारणतया लाभ-सीमा अथवा लाभ की गुंजाइश वर्धमान कीमतों के समय वढ़ जाती है और ह्रासमान कीमतों के समय कम हो जाती है।

profit sharing (प्रॉफिट शेयरिंग): लाभ-सहभाजन।

मज़दूरी-भुगतान का एक तरीका, जिसमें मज़दूरों को निर्धारित मज़दूरी के अलावा लाभ का एक भाग भी मिलता है। इस प्रणाली के अन्तर्गत मालिक अपने लाभ का एक भाग मज़दूरों में वितरण के लिए अलग कर देता है। मज़दूरों के वीच लाभ का यह वितरण उनको मिलनेवाली मज़दूरी या उनकी नौकरी की अवधि के अनुसार किया जाता है। इस प्रकार की व्यवस्था का उद्देश्य श्रमिकों में व्यवसाय के प्रति लगाव पैदा करना, अधिक एवं अच्छा काम करने के लिए उनको अभिप्रेरित करना तथा मालिक-मज़दूर के सम्बन्धों में सुधार लाना होता है।

profits tax (प्रॉफिट्स टैक्स): लाभ-कर।

किसी व्यक्ति अथवा फर्म द्वारा अर्जित लाभ पर लगाया गया कर। कुछ लोग ऐसे कर को इस कारण न्यायसंगत नहीं मानते कि इससे उद्यम को ठेस पहुँचती है। यह भी कहा जाता है कि इस प्रकार की व्यवस्था होने पर जब व्यवसाय में कोई व्यक्ति सफल होता है, तब उसे कर का भुगतान करना पड़ता है; लेकिन अस-

फलता की दशा में उसे कोई मुआवजा नहीं मिलता। विशेष परिस्थितियों में लाभ-कर सामाजिक दृष्टि से बहुत आवश्यक ठहरता है। उदाहरण के लिए, युद्ध-काल के दौरान व्यवसायी के लिए अधिक लाभ कमाना सम्भव बन जाता है। ऐसे समय लाभ-कर की व्यवस्था सर्वथा न्यायसंगत है। और फिर, जब पूर्ण रोजगार की जिम्मेदारी सरकार पर है और सरकारी क्रियाएँ तथा व्यवस्था लाभ कमाने में सहायता पहुँचाती हैं, तो यह उचित ही है कि लाभ का कुछ भाग सरकार को मिले। सही दिशाओं में उद्यम को मोड़ने के लिए आवश्यक कदम उठाने की व्यवस्था की जा सकती है।

progressive tax (प्रोग्रेसिव टैक्स) : वर्धमान कर।

इसका आशय ऐसे कर से है, जिसकी दर आय-वृद्धि के साथ बढ़ती जाती है। इस प्रकार कम आयवाले व्यक्ति की तुलना में अधिक आय पानेवाले व्यक्ति को ऊँची दर से कर चुकाना पड़ेगा। जैसे-जैसे आय-स्तर बढ़ेगा, वैसे-वैसे कर की दर भी बढ़ती जायेगी। आय की असमानता कम करने में ऐसे कर से विशेष सहायता मिलती है। लगभग सभी देशों में वर्धमान आय-कर का कम-अधिक सहारा लिया जाता है।

prohibition (प्रोहिबिशन) : नशाबन्दी, मद्य-निषेध।

सरकार द्वारा शराब व अन्य मादक वस्तुओं के उत्पादन और विक्री का निषेध। यद्यपि इस प्रकार की व्यवस्था से उपभोक्ताओं की चयन-स्वतन्त्रता को ठेस लगती है, फिर भी ऐसी वस्तुओं के उपभोग के नैतिक व शारीरिक हानिकर प्रभावों को देखते हुए इस नीति को वांछनीय ठहराया जाता है। नशाबन्दी महात्मा गांधी के रचनात्मक कार्यक्रम का एक महत्त्वपूर्ण अंग था। लेकिन गांधीजी इसको अमल में लाने के लिए सरकारी कार्यवाही के साथ-साथ गैर-सरकारी प्रयत्नों पर भी जोर देते थे। आजादी मिलने के बाद भारत में अनेक राज्य-सरकारों ने मद्य-निषेध की नीति को लागू करने के लिए कदम उठाये हैं, लेकिन अभी तक कोई विशेष सफलता नहीं मिल सकी है। इस नीति की कड़ी आलोचना की जाती रही है। कहा जाता है कि पूर्ण निषेध अव्यावहारिक है, इससे नशीली वस्तुओं की गैर-कानूनी बिक्री व खरीद को बढ़ावा मिलता है और सरकार की आय कम होने से अनेक आवश्यक कार्यों में रुकावट पड़ती है।

proletariat (प्रोलेटैरियट) : सर्वहारा, मजदूर।

श्रमिक का दूसरा नाम, जिसमें उसके उत्पादक सम्पत्ति से विहीन होने पर विशेष बल दिया गया है। कार्ल मार्क्स ने अपने सामाजिक वर्गों के अध्ययन में सर्वहारा या मजदूर शब्द का प्रयोग किया है। इस शब्द से यह स्पष्ट अभिप्राय निकलता है कि श्रमिक अपने श्रम को बाजार में बेचता है और उसके लिए यह जीविका प्राप्त करने का आवश्यक तरीका है।

promissory note (प्रॉमिसरी नोट) : प्रोनोट, वचन-पत्र।

एक शर्तरहित लिखित रुक्का, जिसमें लेखक किसी व्यक्ति-विशेष को या उसके आदेशप्राप्त व्यक्ति अथवा पत्र के धारक को माँगने पर अथवा निश्चित समय के

बाद उसमें लिखित रकम देने की प्रतिज्ञा करता है । प्रोनोट ऋणी द्वारा लिखा जाता है । इसमें स्वीकृति की आवश्यकता नहीं रहती, क्योंकि यहाँ ऋणी स्वयं रकम देने की प्रतिज्ञा करता है । प्रोनोट और विल के बीच यही मुख्य अन्तर होता है ।

propensity to consume (प्रोपेन्सिटी टु कन्ज्यूम) : उपभोग-प्रवृत्ति ।

लार्ड केन्स द्वारा प्रतिपादित आय-निर्धारण से सम्बन्धित एक मनोवैज्ञानिक प्रभाव, जिसका आशय किसी व्यक्ति की उपभोग-वस्तुएँ व सेवाएँ खरीदने की तत्परता से होता है । स्पष्ट शब्दों में उपभोग-वस्तुओं पर जिस अनुपात में आय खर्च करने की व्यक्ति से अपेक्षा की जाती है, वह उपभोग-प्रवृत्ति कहलाती है । यह तथा वैयक्तिक आय कुल उपभोग के निर्धारण के मुख्य कारक हैं ।

propensity to import (प्रोपेन्सिटी टु इम्पोर्ट) : आयात-प्रवृत्ति ।

आय और आयात स्तरों के बीच सम्बन्ध । आयात के लिए माँग राष्ट्रीय आय के स्तर पर निर्भर करती है । आयात पर खर्च होनेवाले राष्ट्रीय आय के अनुपात को औसत आयात-प्रवृत्ति कहते हैं । इसके विपरीत सीमान्त आयात-प्रवृत्ति का आशय राष्ट्रीय आय में हुई वृद्धि के उस अनुपात से है, जो आयात पर खर्च होता है । उदाहरण के लिए, यदि राष्ट्रीय आय में १०० करोड़ रुपये की वृद्धि होती है और आयात में हुई वृद्धि २० करोड़ रुपये बैठती है, तो इस स्थिति में सीमान्त आयात-प्रवृत्ति $\frac{\text{२० करोड़ रु०}}{\text{१०० करोड़ रु०}} = \frac{1}{5}$ होगी ।

propensity to save (प्रोपेन्सिटी टु सेव) : बचत-प्रवृत्ति ।

आय-वितरण पर प्रभाव डालनेवाले मनोवैज्ञानिक तत्त्वों में से एक, जिसका उल्लेख केन्स के सिद्धान्त में किया गया है । इसका आशय व्यक्ति की बचत करने की तत्परता से है । यह तथा वैयक्तिक आय वैयक्तिक बचत की मात्रा को प्रभावित करनेवाले मुख्य कारक माने जाते हैं ।

proportional tax (प्रोपोर्शनल टैक्स) : आनुपातिक कर ।

सब आय-स्तरों पर समान दर से लगाया गया कर । इस प्रकार यह वर्धमान कर और पीड़क कर के बीच का कर होता है ।

protection (प्रोटेक्शन) : संरक्षण ।

किसी देश द्वारा अपने देश के उत्पादनों की माँग बनाये रखने या बढ़ाने के लिए विदेशों से आनेवाले माल पर सीमा-शुल्क, कोटा, लाइसेन्स या रोक आदि लगाकर उनकी माँग को घटाना या उनके आयात को पूरी तरह रोकना संरक्षण कहलाता है । इस तरह की संरक्षण प्रदान करने की नीति निर्बाध या मुक्त व्यापार की नीति से उल्टी होती है । इस नीति द्वारा देशी उद्योग-धन्धों या खेती की प्रतियोगितात्मक क्षमता बढ़ जाती है । परन्तु दीर्घकाल में संरक्षित उद्योग बिना सरकारी संरक्षण की नीति के अपनी प्रतियोगितात्मक क्षमता सुधार सकते हैं या नहीं, यह तो उद्यमियों की क्षमता और नीति पर या उस देश के सापेक्षिक लाभ की स्थिति पर निर्भर रहता है । संरक्षण की नीति अल्पविकसित देशों के नये उद्योगों के लिए जरूरी समझी जाती है ।

देखिए : free trade
infant industry
economic nationalism
prohibition.

protective duty (प्रोटेक्टिव ड्यूटी) : संरक्षण-शुल्क ।

देश के उत्पादकों को संरक्षण प्रदान करने के उद्देश्य से आयातों पर लगाये गये सीमा-शुल्क । इस प्रकार की व्यवस्था से विदेशी माल की कीमतें बढ़ जाती हैं, जिससे स्वदेशी माल की खपत बढ़ाने में मदद मिलती हैं ।

देखिए : protection.

public company (पब्लिक कॅम्पनी) : सार्वजनिक कम्पनी ।

आधुनिक युग में व्यवसाय-संगठन का एक महत्त्वपूर्ण रूप, जिसकी लोकप्रियता में भारी वृद्धि हुई है । सार्वजनिक या लोक-कम्पनी की स्थापना के लिए कम-से-कम सात शेयरधारियों का होना आवश्यक होता है । कम्पनी की रजिस्ट्री करानी होती है और इसके हिसाब-किताब का अंकेक्षण अनिवार्य होता है । कम्पनी जनता में शेयर वेचकर साधन जुटाती है और शेयर की विक्री व हस्तान्तरण पर कोई रोक नहीं होती । अधिक मात्रा में साधन जुटा सकने की सुविधा के फलस्वरूप कम्पनी के लिए बड़ी मात्रा की उत्पादन-प्रणाली के विभिन्न महत्त्वपूर्ण लाभ प्राप्त करना सम्भव बन जाता है । इसी कारण से कम्पनी-व्यवस्था का तेजी से विस्तार हो रहा है ।

देखिए : joint stock company.

public debt (पब्लिक डेट) : सार्वजनिक ऋण ।

केन्द्रीय सरकार, स्थानीय सरकार एवं सार्वजनिक निगमों के ऋण । इस प्रकार सार्वजनिक ऋण का आशय समस्त सार्वजनिक क्षेत्र के ऋण से होता है, जिसमें राष्ट्रीयकृत उद्योगों के ऋण भी शामिल रहते हैं । ये ऋण विभिन्न उद्देश्यों से लिये जाते हैं और इनकी भिन्न-भिन्न कोटियाँ होती हैं । आजकल लगभग सभी देशों में सार्वजनिक ऋण की राशि तेजी से वढ़ रही है ।

public enterprise (पब्लिक एण्टरप्राइज) : सार्वजनिक उद्यम ।

वह आर्थिक क्रिया, जिसका संचालन सरकार अथवा स्थानीय प्राधिकारियों द्वारा होता है । इस प्रकार सार्वजनिक उद्यम शब्द का प्रयोग निजी उद्यम के विपरीत अर्थ में किया जाता है । इधर कुछ समय से भारत में सार्वजनिक उद्यमों की संख्या वड़ी तेजी से बढ़ रही है ।

public expenditure (पब्लिक एक्सपेण्डीचर) : सार्वजनिक आय ।

केन्द्रीय व राज्य सरकारों, स्थानीय प्राधिकारियों तथा सरकारी उद्यमों द्वारा जो प्रतिरक्षा, प्रशासन, शिक्षा एवं अन्य समाज-सेवाओं, पूंजी-निर्माण, ऋण-प्रबन्धन आदि पर खर्च किया जाता है, उसे कुल मिलाकर सार्वजनिक व्यय का नाम दिया जाता है । राज्य के कल्याणकारी रूप धारणा करने तथा आर्थिक क्षेत्र में अधिक भाग लेने के कारण भारत व अन्य अनेक देशों में सार्वजनिक व्यय में विगत कुछ समय से भारी वृद्धि हो रही है ।

public finance (पब्लिक फाइनेन्स) : लोक-वित्त ।

अर्थशास्त्र की वह शाखा, जिसमें

सरकार की वित्त-सम्बन्धी क्रियाओं व नीतियों का अध्ययन किया जाता है। सरकार विभिन्न तरीकों से आय प्राप्त करती है, आवश्यकता पड़ने पर उधार लेती है और अनेक बातों पर खर्च करती है। वित्त-सम्बन्धी इन सब बातों का व्यक्ति और राष्ट्र के आर्थिक व सामाजिक जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। सरकार अपनी कराधान-नीतियों और व्यय-व्यवस्था के सहारे विकास-दर को तेज कर सकती है, आर्थिक उतार-चढ़ाव पर नियन्त्रण रख सकती है तथा वितरण-विषमताएँ कम कर सकती है। लोक-वित्त के अन्तर्गत सरकार की वित्तीय नीतियों के प्रभावों तथा इन नीतियों से सम्बन्धित सिद्धान्त में समस्याओं तथा सुझावों का विवेचन किया जाता है। आधुनिक काल में इस विषय का महत्त्व बहुत बढ़ गया है।

public goods (पब्लिक गुड्स) : सार्वजनिक वस्तुएँ।

ऐसी वस्तुएँ, जिन्हें समाज के सब सदस्य समान रूप से प्रयोग करते हैं, जैसे कि राष्ट्रीय प्रतिरक्षा, सामान्य पुलिस सेवा, सड़क पर रोशनी आदि। ये सब लोक-हित की वस्तुएँ होती हैं और इनकी व्यवस्था सरकार द्वारा की जाती है।

public revenue (पब्लिक रेवेन्यू) : सार्वजनिक आय।

कर एवं करेतर स्रोतों से सरकार को प्राप्त होनेवाली कुल रकम।

देखिए : budget.

public sector (पब्लिक सेक्टर) : सार्वजनिक क्षेत्र, सरकारी क्षेत्र।

अर्थव्यवस्था का वह भाग, जहाँ सरकार उद्यमकर्त्ता के रूप में कार्य करती है। इस क्षेत्र में आर्थिक क्रियाओं का संचालन सरकारी स्वामित्व और प्रबन्ध के अन्तर्गत होता है। स्पष्टत: यहाँ सार्वजनिक हित को सामने रखकर कार्य किया जाता है। निजी क्षेत्र के नियन्त्रण, आर्थिक विकास की गति को तेज करने, विकास के लाभों के यथोचित वितरण आदि में सार्वजनिक क्षेत्र बहुत सहायक सिद्ध होता है। यही कारण है कि आजकल सभी देशों में इस क्षेत्र का तेजी से विस्तार हो रहा है। भारत में आजकल रेल, जहाज, डाक-तार, टेलिफोन, विजली, बड़े आधुनिक बैंक, जीवन-बीमा, अनेक मूल व भारी उद्योग से सम्बन्धित आर्थिक क्रियाएँ सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत चलायी जा रही हैं।

public utilities (पब्लिक युटिलिटीज): लोकहित सेवाएँ।

इस शब्द का प्रयोग स्थानीय मोटर परिवहन, गैस, पानी, विजली आदि जैसी सेवाओं की व्यवस्था के लिए किया जाता है। यहाँ प्रतियोगी फर्मों का प्रवेश न्याय-संगत नहीं ठहरता। इस प्रकार की सेवाओं का कुशलतापूर्वक संचालन एकाधिकार के आधार पर सरकारी या सार्वजनिक एजेन्सियों द्वारा ही सम्भव हो सकता है। साधारण तौर से इनकी व्यवस्था इसी ढंग से की जाती है।

public works (पब्लिक वर्क्स) : सार्वजनिक कार्य।

ऐसी निवेश-क्रियाएँ, जो सरकार द्वारा संचालित होती हैं; विशेष रूप से ऐसी क्रियाएँ, जो विकास अथवा पूर्ण रोजगार के स्तर को बनाये रखने के लिए की

आवश्यक होती हैं, लेकिन निजी क्षेत्र द्वारा उनके किये जाने की सम्भावना कम रहती है। इस कोटि में मुख्य रूप से इस तरह के कार्यों को शामिल किया जाता है; जैसे कि सड़क-निर्माण, ग्राम-विद्युतीकरण, गन्दी बस्तियों की सफाई, सार्वजनिक निवास-व्यवस्था, प्रादेशिक विकास-परियोजनाएँ आदि। सरकार के लिए यह आवश्यक ठहराया जाता है कि जब अर्थव्यवस्था पूर्ण रोज़गार की स्थिति से हट रही हो तो योजनानुसार वह ऐसे कार्यों का सहारा ले।

pump priming (पम्प प्राईमिंग) : समुद्दीपन।

घाटा वित्तीयन के अर्थ में प्रयुक्त शब्द। इसका आशय सरकार द्वारा आय की अपेक्षा अधिक खर्च करने की व्यवस्था से होता है। ऐसी स्थिति में अर्थव्यवस्था के भीतर अतिरिक्त क्रयशक्ति का सृजन होता है, जिसके फलस्वरूप आर्थिक क्रियाओं और रोज़गार को बढ़ावा मिलता है। वर्तमान समय में घाटे के बजट की नीति का अधिक सहारा लिया जाने लगा है।

देखिए : deficit financing.

purchase tax (परचेज़ टैक्स) : क्रय-कर।

विशिष्ट वस्तुओं पर लगाये गये यथामूल्य कर, जो थोक मूल्य के प्रतिशत के रूप में होते हैं। ऐसे करों की व्यवस्था सर्वप्रथम ग्रेटब्रिटेन में द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान १९४० में की गयी। इसका उद्देश्य उन वस्तुओं के उपभोग को रोकना था जिनकी कमी थी। युद्ध के बाद भी सरकारी आय के लिए इन करों को बनाये रखा गया। यही नहीं, बल्कि आगे चलकर मुद्रा-नीति के एक उपकरण के रूप में इनका प्रयोग होने लगा। मुद्रा-स्फीति तथा अतिपूर्ण रोज़गार की स्थिति में ऐसे करों को बढ़ा दिया जाता है और बेरोज़गारी के काल में इनमें कमी की जाती है, जिससे कि माँग में मजबूती आ सके।

लेकिन इन करों की आलोचना भी की जाती है। मुद्रा-स्फीति के समय जब इन करों में वृद्धि की जाती है, तब कीमतें भी बढ़ती हैं, जिसके फलस्वरूप मज़दूरी बढ़ाने के लिए माँग ज़ोर पकड़ती है। साथ ही इसका दिशात्मक प्रभाव भी पड़ता है। उदाहरणतया कर की दरों में परिवर्तन से केवल वे ही उद्योग प्रभावित होते हैं जो उन वस्तुओं का उत्पादन करते हैं, जिन पर ऐसे कर लगे होते हैं।

purchasing power parity (परचेंजिग पावर पैरिटी) : क्रयशक्ति-क्षमता।

विनिमय-दर के निर्धारण एवं उसमें परिवर्तनों से सम्बन्धित एक सिद्धान्त। मुख्य रूप से इसका प्रतिपादन स्वीडन के अर्थशास्त्री गास्टव कैसेल ने किया। यह सिद्धान्त विनिमय-दर को मुद्राओं की घरेलू क्रयशक्ति के साथ जोड़ता है। इसके अनुसार दो मुद्राओं के बीच विनिमय-दर उस समय सन्तुलन की स्थिति में होगी, जबकि उस दर पर उनकी घरेलू क्रय-शक्तियाँ समान होंगी। मान लें कि अमरीकी डालर और भारतीय रुपये के बीच विनिमय-दर १ डालर=१० रुपये है। यह दर तब साम्य-दर हो सकेगी, जबकि एक डालर से अमरीका में जितनी चीजें खरीदी जा सकती हैं, ठीक उतनी ही चीजें

भारत में १० रुपये से खरीदी जा सकती हों; अर्थात् डालर और रुपये की क्रय-शक्ति में समता हो। तभी विनिमय-दर सन्तुलन की स्थिति में वनी रह सकेगी।

इस सिद्धान्त में निहित प्रक्रिया, जिसके फलस्वरूप सन्तुलन की स्थापना होती है, इस प्रकार है :

यहाँ यह मानकर चला जा रहा है कि आर्थिक क्रियाओं पर किसी प्रकार का प्रतिवन्ध नहीं है। यदि ऐसी स्थिति में १ डालर से जितनी चीजें अमरीका में खरीदी जा सकती हैं उससे अधिक चीजें भारत में १० रुपये से खरीदी जा सकती हैं, तो डालर को रुपये में बदलना तथा अमरीका की बजाय भारत से माल खरीदना लाभकारी ठहरेगा। माँग में इस परिवर्तन के फलस्वरूप भारत में कीमतें वढ़ेंगी और अमरीका में कीमतें गिरेंगी। इससे अमरीकी विनिमय-दर गिरेगी और यह गिरावट तव तक चलती रहेगी जवतक कि फिर से सन्तुलन व क्रय-शक्ति-समता स्थापित न हो ले। श्री कैसेल ने इस सिद्धान्त को कीमतों और विभिन्न दरों के निरपेक्ष स्तरों की वजाय उनमें परिवर्तनों की व्याख्या के लिए इस्तेमाल किया।

मुख्य रूप से क्रयशक्ति-क्षमता-सिद्धान्त का विकास प्रथम विश्वयुद्ध के समय और उसके वाद के काल में हुआ। उन दिनों इसे थोड़ी-वहुत मान्यता भी मिली; क्योंकि कुछ देशों में मुद्रा-स्फीति का बड़ा ज़ोर था और जिसके फलस्वरूप विनिमय-दर में वड़ी गिरावट हो रही थी। लेकिन इस सिद्धान्त को वहुत ठीक नहीं ठहराया जा सकता और न विना शर्त्तों के इसे लागू किया जा सकता है। इस सिलसिले में अनेक वातें कही जा सकती हैं। उदाहरण के लिए :

१. कोई देश व्यापार पर टैरिफ लगाकर विनिमय-दर को ऐसे स्तर पर रख सकता है जो मुद्राओं की क्रयशक्ति से मेल न खाता हो।

२. मुद्राओं की क्रय-शक्ति एवं उसमें हो रहे परिवर्तनों की सही-सही माप और तुलना एक बहुत ही कठिन कार्य है।

३. केवल कीमतों में उतार-चढ़ाव का ही नहीं, वल्कि अन्य अनेक वातों का भी विनिमय-दर पर प्रभाव पड़ता है; जैसे कि सरकार की नीति, आर्थिक संकट, सट्टा व पूंजी-सम्बन्धी सौदे आदि।

pure competition (प्योर कॉम्पिटीशन) : शुद्ध प्रतियोगिता।

साधारण तौर से शुद्ध प्रतियोगिता और पूर्ण प्रतियोगिता का एक ही अर्थ में प्रयोग किया जाता है। दोनों का आशय उस बाजार-स्थिति से होता है, जिसमें किसी वस्तु के क्रेताओं और विक्रेताओं की संख्या बहुत अधिक होती है तथा जिस वस्तु का क्रय-विक्रय होता है, वह बिल्कुल समरूप होती है। लेकिन विश्लेषण की दृष्टि से दोनों में भेद करना आवश्यक ठहरता है।

शुद्ध प्रतियोगिता का आशय बाज़ार की उस स्थिति से है, जिसमें निम्नांकित विशेषताएँ मौजूद होती हैं :

१. क्रेताओं तथा विक्रेताओं की इतनी अधिक संख्या कि कोई भी क्रेता या विक्रेता अपने व्यक्तिगत आचरण से वस्तु की बाज़ार-कीमत को प्रभावित न कर

सके ।

२. वस्तु पूर्णतया समरूप होती है। उसकी सब इकाइयाँ बिल्कुल एक-जैसी होती हैं, जिसके फलस्वरूप एक इकाई को छोड़कर किसी अन्य इकाई को लेने का सवाल नहीं उठता । इस कारण कीमत भी एक ही होती है ।

इन विशेषताओं के अतिरिक्त पूर्ण प्रतियोगिता की कुछ और विशेषताएँ भी होती हैं जो इस प्रकार हैं :

१. क्रेताओं और विक्रेताओं को बाज़ार व कीमत के सम्बन्ध में पूरी जानकारी रहती है।

२. उत्पादन के साधन पूर्णतया गतिशील होते हैं । उनके एक से दूसरे उद्योग में आने-जाने पर कोई रोक-टोक नहीं होती ।

३. बाज़ार के विभिन्न भाग एक-दूसरे के इतने समीप होते हैं कि परिवहन-लागत शून्य होती है ।

इस प्रकार शुद्ध प्रतियोगिता की तुलना में पूर्ण प्रतियोगिता में अधिक पूर्णता होती है ।

देखिए : prefect competition.

pure economics (प्योर इकॉनॉमिक्स): सैद्धान्तिक अर्थशास्त्र ।

आर्थिक सिद्धान्त के लिए वैकल्पिक नाम ।

देखिए : economics
economic theory.

pure interest (प्योर इण्टरेस्ट) : शुद्ध ब्याज ।

निवल ब्याज के अर्थ में प्रयुक्त अवधारणा । इसका आशय उस भुगतान से है जो मुद्रा के उपयोग के बदले दिया जाता है । किसी समय-विशेष पर ब्याज की एक दर होती है, जो बाज़ार में अन्य कीमतों के निर्धारण की भाँति उधार के लिए माँग और ऋणहेतु निधि की पूर्त्ति के अन्तर्प्रभाव का फल होती है । इस ब्याज को शुद्ध ब्याज कहा जाता है । एक ही समय में विभिन्न ऋणों के सम्बन्ध में ब्याज-दरों में जो विभिन्नता पायी जाती है, उसका कारण उन ऋणों के सिलसिले में जोखिम और प्रबन्धन में अन्तर होता है ।

देखिए : gross interest
interest
net interest.

pure profit (प्योर प्रॉफिट) : शुद्ध लाभ ।

लाभ का वह अंश, जो उद्यमकर्त्ता को उत्पादन में निहित जोखिम उठाने के लिए प्राप्त होता है । जोखिम अथवा अनिश्चितता का प्रश्न गतिशील समाज में ही उठता है, स्थिर समाज में नहीं । इस कारण शुद्ध लाभ की अवधारणा गतिशील समाज के लिए ही महत्त्व रखती है ।

देखिए : gross profit
profit.

Q

quantity of money (क्वाण्टिटी ऑफ मॅनी) : मुद्रा की मात्रा ।

मुद्रा की पूर्त्ति का दूसरा नाम ।

देखिए : money supply.

quantity theory of money (क्वाण्टिटी थिॲरी ऑफ मॅनी) : मुद्रा का मात्रा-सिद्धान्त ।

अर्थशास्त्र का, खासकर मौद्रिक अर्थशास्त्र का, एक बहुत पुराना सिद्धान्त, जिसके बारे में आज भी अनेक तरह की बहसें चलती रहती हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार मुद्रा की मात्रा बढ़ने पर, अन्य सब बातें यथावत रहने पर, अर्थव्यवस्था का सामान्य कीमत-स्तर भी उसी दिशा में बदलता है । इस सिद्धान्त को एक समीकरण या समानता के रूप में इस प्रकार प्रकट किया जाता है :

मु० × च० = की० × सौ०

जहाँ मु० = मुद्रा की मात्रा, च० = चलन की औसत गति, की० = सामान्य कीमत-स्तर और सौ० = लेन-देन या सौदों की संख्या है। इस सिद्धान्त के अनुसार सौदों की संख्या तथा मुद्रा के चलन की सामान्य गति के स्थिर रहने पर कीमत-स्तर मुद्रा की मात्रा की घट-बढ़ के अनुसार घटेगा या बढ़ेगा ।

इस सिद्धान्त में कीमतों के सामान्य-स्तर को पूर्णतया मौद्रिक घटना मान लिया गया है। जैसे इसमें तरलता अधिमान पर ध्यान नहीं दिया गया है, वैसे ही राष्ट्रीय आय तथा उसके निर्धारक तत्त्वों की भी अवहेलना की गयी है। वास्तविक जगत में मुद्रा की मात्रा की बढ़ती और कीमतों की बढ़ती की घटनाओं का साथ-साथ या एक के बाद दूसरी का पाया जाना इस सिद्धान्त की सत्यता की गवाही नहीं हो सकता, जब तक कि अन्य सम्बद्ध तत्त्वों का प्रभाव गैर-हाजिर साबित नहीं किया जाये।

quasi-rent (क्वासाइ-रेण्ट) : अधिशेषवत लगान, आभास-लगान ।

पूँजीगत तथा अन्य ऐसी वस्तुओं की, जिनकी पूर्त्ति अल्प-काल में बढ़ायी नहीं जा सकती, माँग कभी-कभी बढ़ जाने के कारण अल्प-काल में सामान्य से ज्यादा कीमत मिल जाती है । अल्फ्रेड मार्शल ने ऐसी अल्पकालिक आय को अधिशेषवत या आभास-लगान का नाम दिया। इसका कारण यह है कि ऐसे साधन अपनी पूर्त्ति की अल्पकालिक स्थिरता के गुण में भूमि के ही समान होते हैं। अतः इनकी आय भी भूमि की आय के समान, अर्थात् लगान के समान, मानी जा सकती है। आभास या अधिशेषवत लगान पूर्त्ति की लोच के कम होने से उत्पन्न होता है।

quotas (कोटाज्) : कोटा।

किसी वस्तु के आयात की मात्रा को नियन्त्रित करने का तरीका। इसके अनुसार सरकार कुछ पूर्व-निर्धारित मात्रा में आयात करने की अनुमति दे देती है।

कमीवाली वस्तुओं के वितरण में भी कोटा-प्रणाली अपनायी जा सकती है। वास्तविक उपभोक्ताओं को विभिन्न आधारों पर कमीवाली चीज की एक

निश्चित मात्रा खरीदने का अधिकार दे दिया जाता है। कोटा प्रत्यक्ष नियन्त्रण का एक तरीका है। जहाँ इसमें स्पष्ट रूप से किसी वस्तु के वितरण की सम्भावना छिपी होती है, वहाँ पक्षपात की गुंजाइश भी होती है। अप्रत्यक्ष नियन्त्रण बाज़ार की आर्थिक शक्तियों के अनुरूप काम करते हैं, परन्तु कोटा आदि प्रत्यक्ष नियन्त्रण इन बाज़ार-ताकतों के प्रभाव को बदलते हैं।

इस पद्धति का प्रयोग उचित होता है या अनुचित, यह तो राज्य के स्वरूप और प्रकृति पर ज्यादा निर्भर करता है।

R

rate of exchange (रेट ऑफ एक्सचेंज) : विनिमय-दर।

किसी एक मुद्रा को दूसरी मुद्रा में परिवर्तित करने के लिए विभिन्न तरीकों से निर्धारित दरें विनिमय-दर कहलाती हैं।

देखिए : exchange rates.

rate of interest (रेट ऑफ इण्टरेस्ट) : व्याज की दर।

व्याज को प्रति सौ मुद्रा-राशि के हिसाब से प्रकट किया जाता है। यह दर व्याज की दर कहलाती है।

देखिए : interest.

rationalisation (रैशनेलाइज़ेशन) : युक्तीकरण।

किसी कारखाने की मशीनों, उपकरणों और उत्पादन-प्रणालियों को बदलकर अधिक उत्पादक विधियों को अपनाना युक्तीकरण कहलाता है। उत्पादिता बढ़ानेवाले नये प्रबन्धशास्त्र के आन्दोलनों में युक्तीकरण का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसके द्वारा पुराने, पिछड़े और कम उत्पादक उद्योगों को फिर से नया जीवन दिया जाता है। उद्योगपति इन नये तरीकों की समीक्षा मुनाफे की दृष्टि से करके उन्हें अपनाते हैं। अर्थात् उत्पादिता का अर्थ मुनाफा कमाने की क्षमता के सीमित अर्थ में लिया जाता है। मज़दूरों को नये उत्पादन के तरीके और उपक्रम सीखने पड़ते हैं। उनके हितों को मुनाफे के सामने कम अहमियत दी जाती है। अतः वे कई बार संगठित होकर युक्तीकरण का एक शोषण बढ़ानेवाली पद्धति के रूप में विरोध करते हैं। युक्तीकरण सार्थक और सफल तभी होता है, जब यह सामाजिक हित के अनुसार किया जाये।

rationing (रैशनिंग) : राशनिंग, न्यायवाँटन।

किसी वस्तु की पूर्ति माँग से कम मात्रा में उपलब्ध हो तो बढ़ती कीमतों तथा अनुपयुक्त वितरण (क्योंकि ऊँची कीमतों पर केवल धनी वर्ग ही सारी या अधिकांश मात्रा खरीद लेगा) को रोककर न्यायपूर्ण, समुचित वितरण स्थिर कीमतों

पर करने के लिए राशनिंग या न्यायबाँटन का सहारा लिया जाता है। इसमें जरूरत की आवश्यक मात्रा प्रतिव्यक्ति तय कर दी जाती है जो प्रतिमाह या प्रतिसप्ताह लोगों को एक राशनकार्ड के आधार पर निश्चित कीमत पर पूर्व-निर्धारित बिक्री-केन्द्रों से बाँट दी जाती है। गम्भीर कमी, युद्ध, अकाल, तीव्र स्फीति आदि स्थितियों में राशनिंग न्यायोचित वितरण का कारगर तरीका है। प्रशासनिक कमियों और भष्टाचार के कारण भारत में राशनिंग की प्रभावशीलता के बारे में कई बार शंका व्यक्त की जाती है। इस तरीके की सफलता के लिए जनता द्वारा चुनी, अधिकारसम्पन्न मोहल्ला-समितियों की बहुत जरूरत होती है ताकि भ्रष्ट व्यापारियों और नौकरशाहों पर अंकुश रखा जा सके।

real cost (रीयल कॉस्ट) : वास्तविक लागत।

वास्तविक लागत की अवधारणा, जो कई अर्थों में प्रयोग की जाती है।

जब किसी वस्तु की लागत को, एक खास सन्दर्भ में (जैसे एक खास कारखाना, उद्योग, तकनीक आदि), मुद्रा के रूप में प्रकट नहीं करके वास्तविक वस्तुओं और सेवाओं (जैसे १,००० श्रम के घण्टे, ५० टन स्टील, १० टन चूना, २ टन कोयला आदि) के रूप में प्रकट किया जा सकता है। अथवा फिर भौतिक लागत को किसी एक आधार-वर्ष की मौद्रिक कीमतों में प्रकट करने को भी वास्तविक लागत कहा जाता है।

वास्तविक लागत से तात्पर्य कभी-कभी किसी वस्तु को एक खास पैमाने पर और मात्रा में, उत्पादित करने के लिए लगाये गये संसाधनों की आपूर्ति करने में लगी मनोवैज्ञानिक लागत (कष्ट, पीड़ा, आनन्द, त्याग और परितोष) से भी होता है। ऐसा बहुत कम अर्थशास्त्रियों ने किया है।

real wages (रीयल वेजेज़) : वास्तविक मज़दूरी।

वास्तविक मज़दूरी से तात्पर्य मौद्रिक मज़दूरी को स्थिर कीमतों पर कूतने से होता है। एक अभिप्राय यह भी लगाया जाता है कि मौद्रिक राशि के अतिरिक्त इस रोज़गार से जो दूसरे लाभ-अलाभ मिलते हैं (जैसे मकान, यात्रा-भत्ता, बोनस, छुट्टियाँ, पेंशन, साफ-सुथरी जगह में काम, बहुत ज्यादा जोखिम का काम, स्वास्थ्य के लिए हानिप्रद काम, स्थायित्व तथा सुरक्षा की भावना की उपस्थिति या अनुपस्थिति आदि), उनको कुल मिलाकर वास्तविक मज़दूरी कहा जाता है। इस अवधारणा का मुख्य अभिप्राय मौद्रिक मज़दूरी के अलावा काम के बदले में मिलने-वाले अन्य महत्त्वपूर्ण प्रतिफलों को भी मज़दूरी में शामिल करना है।

rebate (रिबेट) : घटौती।

किसी भी कारण से किसी वस्तु या साधन की कीमत में दी जानेवाली छूट को घटौती कहते हैं। यह कीमत घटाकर माँग बढ़ाने का एक तरीका है।

recession (रेसेशन) : सुस्ती, गिरावट।

व्यापार-चक्र का आर्थिक कार्यकलापों के निचले स्तरवाला चरण। यह मन्दी के समान ही होता है।

देखिए : depression.

recovery (रिकॅवरी) : समुत्थान,

पुनरुत्थान ; वसूली ।

व्यापार-चक्र-सिद्धान्त में समुत्थान वह स्थिति होती है, जब आय, उत्पादन, रोज़गार, कीमतें, मुनाफे आदि फिर से सुधरने लगें । अर्थात् मन्दी के लक्षण खत्म होने लगें और मन्दी की भावना की जगह वृद्धि तथा सुधार की भावना प्रचलित हो । यदि राज्य मन्दी समाप्त करने की नीति लागू कर रहा हो तो पुनरुत्थान की स्थिति उसकी नीति की सफलता के प्रारम्भिक चिन्ह नजर आनेवाली स्थिति को कहा जायेगा । यदि यह भावना और ये लक्षण बनाये रख लिये जायें तो अर्थव्यवस्था फिर से सामान्य स्थिति की ओर आ जायेगी ।

एक दूसरे अर्थ में यह वसूली भी कही जाती है । जब सरकार या अन्य संस्थाएँ कर्जों के भुगतान प्राप्त करती हैं तो यह वसूली कही जाती है । खेतिहर कर्जों की वसूली की कुछ खास किस्म की समस्याएँ होती हैं ।

redistribution of income (रिडिस्ट्रीब्यूशन ऑफ इन्कॅम) : आय का पुर्नवितरण ।

किसी अर्थव्यवस्था के स्वाभाविक नियमों के आधार पर प्राप्त आय के वितरण को अनुचित, असंगत या अपर्याप्त पाने पर राज्य अपने उद्देश्यों के अनुरूप कई तरीकों द्वारा आय को फिर से बाँटता है । यह आय का पुर्नवितरण कहलाता है । पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में आय-वितरण असमान होता है । फिर ये विषमताएँ स्वतः बढ़ती रहती हैं । अतः समानता लाने के उद्देश्य से करों, सामाजिक उपभोग-व्यय, सम्पत्ति-पुर्नवितरण आदि तरीकों द्वारा आय का पुर्नवितरण किया जाता है । आय का पुर्नवितरण किसी वर्गविशेष की शक्ति बढ़ाने, निवेश बढ़ाने, युद्ध आदि के लिए साधन जुटाने आदि अनेक उद्देश्यों से किया जा सकता है । शायद ही कोई सार्वजनिक आर्थिक नीति हो जो किसी-न-किसी रूप में आय को पुर्नवितरित नहीं करती हो ।

reflation (रिफ्लेशन) : प्रत्यवस्फीति ।

मन्दी को रोकना तथा अर्थव्यवस्था को फिर से प्रसार तथा विस्तार के रास्ते पर लाना प्रत्यवस्फीति कहलाता है ।

regressive tax (रेग्रेसिव टैक्स) : अवरोही कर ।

अवरोही कर वे होते हैं, जिनका भार उन लोगों और तबकों पर अपेक्षया ज्यादा होता है, जिनकी कर-देय-क्षमता (आय, सम्पत्ति, या आय-सम्पत्ति सम्मिलित रूप में, के आधार पर या उपभोगव्यय के आधार पर) अपेक्षया कम होती हैं । इस तरह के कर सम्पत्ति और आय की असमानताओं और उनसे उत्पन्न दुष्प्रभावों को और ज्यादा बढ़ाते हैं । राज्य की राजस्व की बढ़ती जरूरतें तथा साधनसम्पन्न वर्ग की राजनीतिक ताकत अवरोही करों के लगाने का मुख्य कारण होती हैं । जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं पर, जिनकी माँग की लोच कम होती है, लगाये गये अप्रत्यक्ष कर अवरोही होते हैं । चूंकि इन वस्तुओं का उपभोग घटाया नहीं जा सकता, गरीब लोग अपनी आय का अपेक्षया बड़ा हिस्सा इन चीजों पर खर्च करते हैं और धनी लोग इन पर अपनी आय का छोटा हिस्सा खर्च करते हैं, इसलिए इन वस्तुओं पर लगाये गये

करों से प्राप्त राजस्व का अधिकांश भाग गरीबों की जेब से आता है। हमारे देश में इन अवरोही करों का हमारी कर-प्रणाली में बहुत बड़ा भाग है।

rent (रेण्ट) : लगान।

पुराने अर्थशास्त्री लगान का अर्थ भूमि के प्रयोग के बदले दिये गये भुगतान से लगाते थे। उनके अनुसार यह भुगतान भूमि के गुणों को काम में लाने के बदले किया जाता है। आम भाषा में मोटे रूप से यही अर्थ प्रचलित है।

परन्तु अर्थशास्त्र में लगान के आधुनिक सिद्धान्त के अनुसार लगान उत्पादन के किसी भी साधन को प्राप्त हो सकता है। उत्पादन के प्रत्येक साधन को कई वैकल्पिक कामों में लगाया जा सकता है। किसी साधन की वास्तविक आय और उसकी दूसरे अधिकतम आयवाले काम की स्थानान्तरित आय (जो उसे दूसरे सबसे लाभप्रद काम में मिले) का अन्तर लगान कहलाता है। एक पहाड़ी जगह में होटल बनाने से उस स्थान से जो आय प्राप्त होती है और उस होटल के अभाव में वहाँ भेंड़ें चराने या वन उगाने से जो स्थानान्तरण आय प्राप्त हो उनका अन्तर उस भूमि का लगान है। एक स्नातक को प्रवन्धक-पद से प्राप्त वास्तविक आय और उसे आशुलिपिक-पद से प्राप्त स्थानान्तरण आय का अन्तर उस स्नातक का लगान है।

rentier class (रॉन्तियर क्लास) : किरायाजीवी वर्ग, व्याजजीवी वर्ग।

वह वर्ग, जो अपनी आय श्रम द्वारा प्राप्त नहीं करता है, अपितु अपनी उत्तराधिकार में प्राप्त सम्पत्ति या सम्पत्तियों से प्राप्त करता है, व्याजजीवी वर्ग कहलाता है। भूमि, मकान, जागीर, शेयर, बॉण्ड, जेवरात आदि से प्राप्त आय के आधार पर जीवनयापन करनेवाले लोग व्याजजीवी वर्ग की कोटि में आते हैं। यह शब्द फ्रांसीसी शब्द 'रेन्ते' से निकला है, जिसका अर्थ ब्याज होता है। मूलत: इस शब्द का अर्थ उन निवेशकों से होता है जो व्याज की कमाई करते हैं और उद्यमी के कार्य नहीं करते। परन्तु सामान्यत: इसका अर्थ व्यापक हो गया है जो सभी अनर्जित आय पानेवालों के लिए लागू होता है।

rent of ability (रेण्ट ऑफ एबिलिटी): योग्यता-अधिशेष।

जैसे किसी भूमि के टुकड़े को उसकी स्थिति, उसके गुणों आदि के कारण अतिरिक्त आय या लगान की प्राप्ति होती है, वैसे ही कुछ मनुष्यों को उनकी प्रकृति-प्रदत्त या सीखी हुई विशेषताओं के कारण अतिरिक्त आय मिलती है। ऐसी आय को इस साधन की पूर्ति वढ़ाकर कम करना काफी कठिन होता है। इसलिए इसे योग्यता-अधिशेष कहा जाता है। यह अधिशेषवत या आभास-लगान से मिलती-जुलती अवधारणा है।

देखिए : quasi-rent.

repatriation (रिपाट्रियेशन) : प्रत्यावर्तन।

किसी एक देश से दूसरे देश को निवेश के वदले में भेजी जानेवाली आय मुनाफे का प्रत्यावर्तन कहलाती है। किसी एक देश के अन्य देशों में काम कर रहे श्रमिकों को पुनः उनके मूल देश में भेज देना श्रम का प्रत्यावर्तन कहलाता है।

representative firm (रिप्रजेण्टेटिव फर्म) : प्रतिनिधि फर्म।

अल्फ्रेड मार्शल द्वारा इजाद की हुई अवधारणा। पूर्ण प्रतियोगितावाली फर्में ह्रासमान लागतवाली स्थिति में सन्तुलन की स्थिति में तभी आ सकती हैं, जब उनका उत्पादन-स्तर इतना बड़ा हो जाये कि पूर्ण प्रतियोगिता ही समाप्त हो जाये। इस दुविधा से बच निकलने के लिए मार्शल ने एक ऐसी काल्पनिक फर्म की स्थापना की, जिसके सन्दर्भ में सन्तुलन इस वर्धमान प्रतिफलवाली स्थिति में प्राप्त किया जा सके। यह फर्म काफी लम्बी जिन्दगीवाली मानी गयी थी और औसत दर्जे की कामयाबी पाती रहती है। इसे साधारण योग्यता से संचालित किया जाता है और इसे आन्तरिक और बाहरी दोनों बचतें उपलब्ध हैं। ऐसी फर्म केवल सामान्य मुनाफा कमाती है। मार्शल इस अवधारणा द्वारा किसी दुविधा को नहीं सुलझा पाया और पूर्ण प्रतियोगिता के स्थान पर अपूर्ण और एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की पूर्व-कल्पना स्थापित करनी पड़ी।

repressed inflation (रिप्रेस्ड इन्फ्लेशन): दमित स्फीति।

वह स्थिति, जिसमें स्फीतिकारी दबाव अर्थव्यवस्था में मौजूद तो होते हैं (वस्तुओं और सेवाओं की माँग उनकी उपलब्ध पूर्ति से अधिक होती है और इस प्रकार कीमतों की प्रवृत्ति बढ़ने की ओर होती है), लेकिन प्रभावपूर्ण प्रत्यक्ष कीमत-नियन्त्रण, राशनिंग और आय-नीति के कारण कीमतें बढ़ने नहीं पातीं। दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान ऐसी स्थिति अनेक देशों में थी, जबकि स्फीतिकारी दबावों के बावजूद कीमत-वृद्धि को काफ़ी बड़ी सीमा तक रोके रखा गया। अधिकांश अर्थशास्त्री इस बात पर बल देते हैं कि ऐसी स्थिति को बहुत समय तक बनाये रखना सम्भव नहीं हो सकता। फिर, जैसे ही ये नियन्त्रण उठाये जाते हैं, दमित स्फीति तेजी से लागू स्फीति में बदल जाती है।

reproduction rate (रिप्रॉडक्शन रेट): जनन-दर।

प्रति एक हजार स्त्रियों के पीछे उनके शिशु-धारक-काल में पैदा होनेवाली लड़कियों की संख्या। इसे किसी देश की जनसंख्या-वृद्धि की प्रवृत्ति तथा समय के साथ उसमें हो रहे परिवर्तनों को मालूम करने के लिए प्रयोग किया जाता है। शिशु-धारक-काल के पहले और उसके दौरान जो मौतें होती हैं, उनका हिसाब करके निवल दर मालूम की जा सकती है। इससे जनसंख्या-वृद्धि की प्रवृत्ति का अधिक सही अनुमान लगाया जा सकता है।

देखिए : net reproduction rate.

resale price maintenance (रिसेल प्राइस मैन्टेनेन्स) : पुनर्विक्रय कीमत-अनुरक्षण।

विनिर्माता द्वारा नियत या स्थिर कीमत पर अपने माल की बिक्री के लिए आग्रह। बड़े व्यापारियों की कीमत-कटौतियों से छोटे व्यापारियों की रक्षा करने और इस प्रकार अपने माल की निकासी के लिए अधिक संख्या में खुदरा व्यापारी बनाये रखने के लिए यह कदम आवश्यक समझा जाता है। आजकल सभी मानकित या ब्राण्डयुक्त वस्तुओं के साथ इसका व्यवहार किया जाता है।

reservation demand (रिजर्वेशन डिमाण्ड) : प्रत्याशित माँग-आरक्षण।

स्थिर पूर्त्तिवाली वस्तु की वह मात्रा, जो उसके वर्तमान धारक अपने पास रखना चाहते हैं। ऐसी वस्तु के धारकों के सामने दो विकल्प होते हैं : उसका निजी प्रयोग और भविष्य में उसकी विक्री। इस प्रकार प्रत्याशित माँग-आरक्षण का आशय इन सम्भाव्य विक्रेताओं की ऐसी वस्तु को वेचने अथवा अपने पास रखने की तत्परता या अनिच्छा से है।

reservation price (रिजर्वेशन प्राइस): न्यूनतम स्वीकार्य कीमत, सरकारी बोली।

वह कीमत, जिसके नीचे विक्रेता अपना माल वेचने के लिए तैयार नहीं होते। यह उनकी ओर से विक्री की न्यूनतम कीमत होती है। यह कीमत मुख्य रूप से भावी कीमतों के अनुमान पर निर्भर करती है। यदि भविष्य में कीमत-वृद्धि की आशा होती है, तो न्यूनतम स्वीकार्य कीमत भी ऊँची होगी और आगे चलकर बाज़ार-कीमत में कमी होने की सम्भावना की स्थिति में न्यूनतम स्वीकार्य कीमत नीची होगी। गोदाम-भाड़ा, किराया, व्याज आदि का भी इस कीमत पर असर पड़ता है। ये लागतें जितनी अधिक होंगी, यह कीमत उतनी ही कम होगी।

माल नीलामी के समय जब बोली लगानेवाले नीलामकर्त्ता की न्यूनतम स्वीकार्य कीमत, जिसे सरकारी बोली कहा जाता है, के नीचे बोली लगाते हैं, तब वह माल नीलामी से रोक लिया जाता है।

reserve ratio (रिजर्व रेशियो) : आरक्षण अनुपात, रिजर्व अनुपात।

किसी बैंक की कुल जमा-राशि और नकदी रिजर्व के बीच का अनुपात। अपने जमाकर्त्ताओं की माँग को पूरा करने के लिए बैंक कुल जमा-राशि का एक भाग नकदी के रूप में रखता है। यह भाग कितना हो, इसका निर्धारण अनेक बातों के आधार पर किया जाता है। उदाहरण के लिए, यदि किसी देश में लोग अधिकतर भुगतान नकदी में करते हैं, तो अधिक मात्रा में नकदी रिजर्व की आवश्यकता होगी। इसके विपरीत यदि चेक के सहारे भुगतान करने का चलन हो, तो अपेक्षाकृत कम नकदी रिजर्व की आवश्यकता पड़ेगी। इन अनुपात के नियमन द्वारा केन्द्रीय बैंक देश के वाणिज्य बैंकों की उधार-नीति पर काफी प्रभाव डाल सकता है।

देखिए : cost reserve.

resource allocation (रिसोर्स एलोकेशन) : संसाधन-आवण्टन, संसाधन-नियतन।

संसाधन दुर्लभ ही नहीं होते, वल्कि विभिन्न प्रकार की वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन में उन्हें लगाया जा सकता है। इस कारण विभिन्न उपभोगों के बीच संसाधनों के ठीक प्रकार से आवण्टन या नियतन की समस्या पैदा होती है। विभिन्न आर्थिक प्रणालियों के अन्तर्गत इस समस्या का विभिन्न ढंग से हल करने का प्रयास किया जाता है।

देखिए : allocation of resources.

resources (रिसोर्सेज) : संसाधन।

उत्पादन के साधन, जिन्हें वस्तुओं के उत्पादन के लिए प्रयोग किया जाता है। सामान्य तौर से इन्हें इन तीन कोटियों

में विभाजित किया जाता है—भूमि, श्रम और पूंजी। कुछ लोग प्रबन्ध और उद्यम को एक अलग कोटि में रखते हैं। इनकी मुख्य विशेषता इनकी सापेक्ष दुर्लभता है। माँग के हिसाब से इनकी पूर्त्ति सीमित होती है। साथ ही ये बहुमुखी भी होते हैं।

दूसरे शब्दों में एक साधन को विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन में काम में लाया जा सकता है। इसी कारण से संसाधनों के आवण्टन या नियतन की समस्या पैदा होती है।

देखिए : factors of production.

restraint of trade (रिस्ट्रेण्ट ऑफ ट्रेड) : व्यापार-संयमन, व्यापार-रोक।

निर्बाध प्रतियोगिता पर रोक लगाने के उद्देश्य से फर्मों या व्यक्तियों का आपस में मिलना, समझौता या कपट-सन्धि करना। व्यापार-संयमन के लिए यह आपसी समझौता उत्पादन के समान स्तर अथवा विभिन्न स्तरों पर कार्य कर रही फर्मों के बीच किया जा सकता है। उदाहरण के लिए बाज़ार के विभाजन, क्रय-विक्रय, कीमत व उत्पादन-मात्रा के निर्धारण आदि के सम्बन्ध में समझौते किये जा सकते हैं। इस प्रकार के समझौते गैरकानूनी होते हैं।

retail trade (रिटेल ट्रेड) : खुदरा व्यापार।

उत्पादित वस्तुओं को उपभोक्ताओं तक पहुँचाने की अन्तिम कड़ी। बढ़ते हुए श्रम-विभाजन एवं उपभोग-वस्तुओं की विविधता के फलस्वरूप खुदरा व्यापार का तेजी से विस्तार हुआ है। खुदरा व्यापारी तरह-तरह के सामान बेचते हैं, और ग्राहकों को अपनी ओर खींचने व बनाये रखने के लिए विभिन्न प्रकार की सुविधाओं की व्यवस्था करते हैं। कुछ खुदरा व्यापारी काफी बड़े पैमाने पर कार्य करते हैं। इस क्षेत्र में अब बहुविभागी भण्डार और सुपर बाज़ार का चलन तेजी से बढ़ने लगा है।

returns to scale (रिटर्न्स टु स्केल) : पैमाने के प्रतिफल।

सभी साधनों की मात्राओं में एक साथ समान अनुपात में वृद्धि करने अथवा किसी उत्पादन-क्रिया के समस्त पैमाने को बढ़ाने से जो उत्पादन में वृद्धि होती है, उसे पैमाने का प्रतिफल कहते हैं। मान लें कि सभी साधनों की मात्रा में ५० प्रतिशत की वृद्धि की जाती है। इसके फलस्वरूप कुल उत्पादन-मात्रा में इसी अनुपात में अथवा इससे कम या अधिक अनुपात में वृद्धि हो सकती है। इस प्रकार तीन प्रकार के पैमाने के प्रतिफल हो सकते हैं—पैमाने के स्थिर प्रतिफल, पैमाने के वर्धमान प्रतिफल और पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल।

यदि उत्पादन-मात्रा में भी ५० प्रतिशत ही वृद्धि होती है, तो पैमाने का प्रतिफल स्थिर कहलायेगा। यदि उत्पादन-मात्रा में ५० प्रतिशत से कम वृद्धि होती है, तो पैमाने के प्रतिफल ह्रासमान ठहरेंगे। इसके विपरीत यदि उत्पादन-मात्रा में ५० प्रतिशत से अधिक वृद्धि होती है, तो पैमाने के वर्धमान प्रतिफल की स्थिति मौजूद होगी। स्पष्टतः पैमाने के प्रतिफल के स्वरूप का औसत लागत पर प्रभाव पड़ेगा।

revaluation (रिवैल्यूएशन) : पुनर्मूल्यन।

अन्य मुद्राओं के रूप में किसी देश की मुद्रा के मूल्य में सोच-समझकर सरकार द्वारा वृद्धि लाया जाना। १९६१ ई० में जर्मनी की करेन्सी के सम्बन्ध में यह कदम उठाया गया। भुगतान-शेष-सम्बन्धी स्थिति का सामना करने के लिए इस प्रकार की नीति अपनाने की बात उठायी जाती है।

revealed preference (रिवील्ड प्रेफरेन्स) : प्रकट अधिमान।

इस अवधारणा का सर्वप्रथम प्रतिपादन पी० ए० सैम्युल्सन ने किया था। इसका आशय विविध कीमत-आय की स्थितियों में उपभोक्ता द्वारा वास्तव में किये गये चयन-सम्बन्धी सूचना पर आधारित उपभोक्ता-व्यवहार के विश्लेषण से है। किसी विशेष आय-स्तर और कीमतों पर वस्तुओं के विभिन्न संयोजन उपभोक्ता के चयन के लिए उपलब्ध होते हैं। यदि वह उस स्थिति में वस्तुओं के किसी एक संयोजन या बण्डल को चुनता है, तो अन्य संयोजनों के बीच वह प्रकट अधिमानित संयोजन ठहरेगा। किसी अन्य आय-कीमत की स्थिति में कोई दूसरा संयोजन यह रूप धारण करेगा; अर्थात् उसका अधिमानित होना प्रकट होगा। विभिन्न आय-कीमत-स्थितियों में उपभोक्ता के चयन के सम्बन्ध में कुछ मान्यताओं के आधार पर इस अवधारणा के सहारे माँग-सिद्धान्त के महत्त्वपूर्ण तथ्यों को सिद्ध किया जा सकता है और इसके लिए उपयोगिता को मापनीय मानने की जरूरत नहीं रहती।

revolving credit (रिवॉल्विंग क्रेडिट) : आवर्ती ऋण।

वह ऋण, जो खत्म हो लेने पर उसी मात्रा में पुनः अपने-आप प्राप्त हो जाता है।

ricardian theory of rent (रिकार्डियन थिअँरी ऑफ रेण्ट) : रिकार्डो का लगान-सिद्धान्त।

लगान के विश्लेषण में रिकार्डो का सिद्धान्त विशेष महत्त्व रखता है। रिकार्डो के अनुसार लगान भूमि की कुल उपज का वह भाग है जो भूमि की मूल तथा अविनाशी शक्तियों के लिए भूस्वामी को प्राप्त होता है। इस प्रकार रिकार्डो ने लगान को भूमि तक ही सीमित रखा। लगान विभिन्न भूखण्डों की उर्वराशक्ति में अन्तर होने के कारण अधिक उपजाऊ भूमि पर वेशी या अधिशेष के रूप में प्राप्त होता है। जनसंख्या में वृद्धि के फलस्वरूप खाद्यान्न की बढ़ती हुई माँग को पूरा करने के लिए भू-प्रधान या श्रम-प्रधान अथवा दोनों प्रकार की खेती का साथ-साथ सहारा लेना पड़ता है। दोनों अवस्थाओं में बढ़ती हुई जनसंख्या के फलस्वरूप जैसे-जैसे खेती का विस्तार होगा, वैसे-वैसे इस अधिशेष की मात्रा बढ़ती जायेगी।

भू-प्रधान खेती का उदाहरण ले लीजिए। जब तक सर्वश्रेष्ठ भूमि प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती है और प्रत्येक व्यक्ति खेती के लिए इस भूमि को मुफ्त प्राप्त कर सकता है, तब तक लगान का कोई प्रश्न नहीं उठेगा। जनसंख्या के बढ़ते रहने पर यह भूमि खत्म हो लेगी और माँग को पूरा करने के लिए द्वितीय श्रेणी की भूमि पर खेती करनी पड़ेगी, और उसके बाद तृतीय श्रेणी की भूमि

पर खेती का विस्तार करना पड़ेगा। अब कीमत को इतना होना पड़ेगा, जिससे कि तृतीय श्रेणी की भूमि की लागत निकल सके। अन्यथा इस पर खेती करना सम्भव न होगा। ऐसी भूमि को, जिसकी उपज से प्राप्त कुल राशि लागत के बराबर होती है, सीमान्त या लगानहीन भूमि कहते हैं। चूँकि उपज की कीमत सब प्रकार की भूमि के लिए समान होगी, इसलिए इससे ऊपरवाली भूमियों को अतिरिक्त राशि प्राप्त होगी। लागत के ऊपर प्राप्त होनेवाली यह अतिरिक्त राशि अधिक उपजाऊ भूमियों का लगान ठहरेगी।

यदि भूमि की उर्वरता में अन्तर न हो और सब भू-खण्ड एकसमान उपजाऊ हों, तो भी एक सीमा के बाद लगान की घटना उत्पन्न होगी। जनसंख्या में वृद्धि होते रहने पर एक सीमा के बाद भूमि की कमी होगी और माँग को पूरा करने के लिए श्रम-प्रधान अथवा गहन खेती का सहारा लेना पड़ेगा। अब भूमि के उसी क्षेत्र में श्रम और पूँजी की अधिक इकाइयाँ लगानी होंगी। ह्रासमान उत्पादन-नियम लागू होने के फलस्वरूप अतिरिक्त इकाइयों से उत्तरोत्तर कम उपज प्राप्त हो सकेगी। श्रम और पूँजी की सीमान्त इकाई से प्राप्त उपज से केवल लागत ही पूरी हो सकेगी। इस इकाई पर कोई लगान प्राप्त न होगा। इससे पहले की इकाइयों से अपेक्षाकृत अधिक उपज प्राप्त होगी। यह अतिरिक्त उपज उन इकाइयों का लगान ठहरेगी।

इस प्रकार रिकार्डो के अनुसार लगान उत्पन्न होने के ये कारण हैं—जनसंख्या में वृद्धि, भूमि की उर्वरता में अन्तर, भूमि की सीमितता तथा कृषि में ह्रासमान प्रतिफल-नियम का लागू होना। इस सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाएँ इस प्रकार हैं :

१. भूमि में मूल तथा अनाशवान शक्तियों-जैसी कोई चीज़ नहीं होती।

२. लगान केवल भूमि की एकमात्र विशेषता नहीं है।

३. रिकार्डो द्वारा प्रस्तुत क्रम के अनुसार खेती नहीं की जाती।

४. यह सिद्धान्त पूर्ण प्रतियोगिता की अवास्तविक मान्यता पर आधारित है।

risk (रिस्क) : जोखिम।

जब किसी निर्णय या कार्य से अनेक परिणाम निकल सकते हों; तब उसे जोखिमपूर्ण माना जायेगा। कारण, सम्भव है कि जिस बात के लिए वह निर्णय या कार्य किया गया हो, उससे भिन्न परिणाम निकले। जिन जोखिमों के सम्बन्ध में पहले से हिसाब लगाया जा सकता है, उनके लिए बीमा का सहारा लिया जा सकता है। वे निश्चित जोखिम की कोटि में आती हैं। लेकिन कुछ जोखिमों का स्वरूप ऐसा नहीं होता। उनके सम्बन्ध में पहले से हिसाब नहीं लगाया जा सकता। वे सर्वथा अनिश्चित होती हैं और ऐसी जोखिमों अथवा अनिश्चितता को उठाने की जिम्मेदारी उद्यमकर्त्ताओं पर होती है।

risk capital (रिस्क कैपिटल) : जोखिम पूँजी।

जोखिमपूर्ण व्यवसाय, जैसे कि नये उद्यम, में दीर्घकाल के लिए निवेश की

गयी धनराशि । कभी-कभी इस शब्द का प्रयोग साधारण शेयर के लिए किया जाता है, जिसका प्रतिफल कम्पनी के लाभ के साथ जुड़ा होता है।

roundabout method of production (राउण्ड एबाउट मेथॅड ऑफ प्रॉडक्शन) : उत्पादन का घुमावदार तरीका, परोक्ष उत्पादन-विधि ।

उत्पादन का अधिक पूंजीमूलक तरीका, जिसमें मशीनों और श्रम-विभाजन का अधिक सहारा लिया जाता है। आधुनिक समय में उत्पादन का तरीका अधिकाधिक घुमावदार अथवा परोक्ष होता जा रहा है । इस तरीके में समय तो अधिक लगता है, लेकिन यह तरीका अपेक्षाकृत बहुत अधिक कुशल व श्रेष्ठ ठहरता है । इस तरीके के व्यवहार से अनेक प्रकार के महत्त्वपूर्ण लाभ उठाये जा सकते हैं।

लेकिन इसका सहारा लेना तभी सम्भव होता है, जबकि वस्तु के लिए बाज़ार का क्षेत्र विस्तृत हो।

runaway inflation (रनअवे इन्फ्लेशन) : द्रुत स्फीति ।

अति स्फीति के लिए एक वैकल्पिक शब्द । इसका आशय स्फीति की उस स्थिति से होता है जबकि संचलनगत मुद्रा की मात्रा में इतनी भारी वृद्धि होती है कि कीमतें बिना किसी सीमा के द्रुत गति से निरन्तर बढ़ती रहती हैं और अन्ततः मुद्रा का मूल्य लगभग जाता रहता है। ऐसे समय सामान्य आर्थिक सम्बन्ध टूट जाते हैं और सारी मुद्रा-प्रणाली अस्त-व्यस्त हो जाती है। प्रायः ऐसी स्थिति युद्ध या क्रान्ति के दौरान अथवा उसके बाद पैदा होती है। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद जर्मनी, आस्ट्रिया तथा रूस को और द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद हंगरी, रूमानिया, ग्रीस और चीन को इस प्रकार की स्थिति का सामना करना पड़ा।

देखिए : galloping inflation
hyper inflation.

run on a bank (रन ऑन ए बैंक): बैंक पर टूट पड़ना।

वह स्थिति, जब किसी बैंक के जमाकर्त्ता, उस बैंक पर से विश्वास उठ जाने के कारण, भारी मात्रा में अपनी जमाराशि निकलवाने लगते हैं। चूंकि जमाराशि का अपेक्षाकृत थोड़ा ही भाग नकदी के रूप में बैंक अपने पास रखता है और शेष राशि ऋण व निवेश-कार्यों में लगी होती है, इस कारण जमाकर्त्ताओं की नकदी की भारी माँग को पूरा करना बैंक के लिए सम्भव नहीं होता। यदि ऐसे संकट के समय केन्द्रीय बैंक, सरकार आदि से पर्याप्त सहायता न मिले, तो विवश होकर बैंक को अपना कारोबार बन्द करना पड़ेगा।

S

sales tax (सेल्स टैक्स) : विक्री-कर।

वह कर, जो किसी वस्तु की विक्री की कीमत के अनुपात के रूप में लगाया जाये। यह कर विक्रेता को चुकाना पड़ता है, जो इसे अपने ग्राहकों से उगाहते हैं।

saving (सेविंग) : बचत।

आय का वह हिस्सा, जो वर्तमान उपभोग की ज़रूरतों को पूरा करने में खर्च नहीं किया जाता, बचत कहलाता है। अर्थात् आय में से उपभोग-व्यय घटाने पर वचत की राशि प्राप्त हो जाती है। बचत को कई प्रकार की परिसम्पत्तियों के (मय मुद्रा के) रूप में रखा जा सकता है। वचत की प्रेरणा अनेक व्यक्तिगत और वस्तुगत कारकों से प्रभावित होती है। वस्तुगत कारकों में आय का और व्यक्तिगत कारकों में भविष्य के प्रति दृष्टिकोण का स्थान सर्वोपरि होता है।

say's law of markets (से'ज लॉ ऑफ मार्केट्स) : से का बाज़ार का नियम।

यह केवल 'से के नियम' के नाम से भी प्रसिद्ध है और क्लासिकल अर्थशास्त्रियों की हमेशा पूर्ण रोज़गार की स्थिति की अपेक्षा का आधार है। यह नियम फ्रांसिसी अर्थशास्त्री जे० वी० से के नाम पर आधारित है। से का मत था कि प्रतियोगिता के कारण जब तक साधन उपलब्ध हैं, तब तक उनका उपयोग होगा; क्योंकि वस्तुओं के उत्पादन की प्रक्रिया में आय का भी निर्माण होता है। वस्तुओं की लागत उनके उत्पादकों की आय है। पूर्ण प्रतियोगिता के कारण हर वस्तु की कीमत माँग और पूर्ति के प्रभावों के आधार पर लोचदार होती है। अतः हर उत्पादित वस्तु की माँग होगी। इस आधार पर से ने कहा कि पूर्ति स्वयं अपनी माँग पैदा करती है। केन्स ने इस नियम की आलोचना की और इस मत के स्थान पर प्रभावी माँग के सिद्धान्त की स्थापना की।

देखिए : full employment
keynesion economics
macro-economics:

scales of preference (स्केल्स ऑफ प्रिफरेन्स) : अधिमान माप।

अनधिमान वक्र-विश्लेषण की एक अवधारणा, जिसके आधार पर उपभोक्ता के अनधिमान वक्र खींचे जाते हैं। अधिमान माप दी हुई वस्तुओं के विभिन्न संयोगों को, बिना उनकी कीमतें मालूम किये, उपभोक्ता की पसन्द के अनुसार क्रमबद्ध करता है। इसके आधार पर किन्हीं दो वस्तुओं के उन जोड़ों का पता चलता है जो उपभोक्ता को समान सन्तुष्टि देते हैं और जो ज्यादा तथा कम सन्तुष्टि देते हैं।

scarcity (स्कैरसिटी) : स्वल्पता, अभाव; दुर्लभता।

वह स्थिति, जिसमें आवश्यकताओं के मुकाबले में उपलब्ध साधन, जिनके द्वारा आवश्यकताओं को पूरा किया जा सकता है, कम होते हैं। अर्थात्, सब आवश्यकताओं की पूर्ति इन साधनों द्वारा

सम्भव नहीं है। इसे सापेक्षिक अभाव कहना ज्यादा उपयुक्त होता है। इस स्थिति के कारण चयन की समस्या उत्पन्न होती है। इस अभाव की स्थिति के आधार पर अर्थशास्त्र का व्यक्तिपरक, अनैतिहासिक और स्थैतिक रूप पनपा, जिसके अनुसार अर्थशास्त्र का क्षेत्र अभाव की समस्या के द्वारा ही निर्धारित होता है।

seasonal unemployment (सीजनल अनएम्प्लॉयमेण्ट) : मौसमी वेरोज़गार।

वेरोज़गारी की वह कोटि, जिसमें कच्चे माल की उपलब्धि, माँग की प्रकृति, प्राकृतिक प्रभावों आदि के कारण कुछ काम साल के कुछ महीनों ही चलते हैं। इसलिए इनमें काम करनेवाले मज़दूर साल के कुछ महीनों या सप्ताह वेकार रहते हैं। जैसे, चीनी-उद्योग।

secular trend (सेक्युलर ट्रेण्ड) : सुदीर्घकालिक प्रवृत्ति।

महत्त्वपूर्ण आर्थिक चरों (जैसे, राष्ट्रीय आय, निवेश, वचत, उपभोग, निर्यात, संसाधनों के राष्ट्रीय आय में हिस्से आदि) में अल्पकालिक परिवर्तनों को हटाकर देखने पर जो प्रवृत्तियाँ लम्बे ऐतिहासिक असों तक नजर आती हैं, उन्हें दीर्घकालिक प्रवृत्तियाँ कहा जाता है। जैसे विभिन्न देशों की व्यावसायिक संरचना (या ढाँचे) में यह दीर्घकालिक प्रवृत्ति होती है कि प्राथमिक व्यवसायों के स्थान पर, आर्थिक विकास के साथ, माध्यमिक व्यवसायों का महत्त्व बढ़ता है। उपभोग-व्यय में आय के साथ दीर्घ-कालिक वृद्धि की प्रवृत्ति पायी जाती है। इन दीर्घकालिक प्रवृत्तियों का अध्ययन करने और पता लगाने से आर्थिक नियमों की स्थापना करने और आर्थिक नीति वनाने में मदद मिलती है।

securities (सेक्युरिटीज): प्रतिभूतियाँ।

ऐसे वित्तीय दस्तावेज और रुक्के, जिनसे आय प्राप्त होती है और जिनका शेयर-बाज़ार (पूँजी-बाज़ार) और मुद्रा-बाज़ार में लेन-देन होता है। इस तरह एक व्यापक अर्थ में वे सब दस्तावेज, जो किसी सम्पत्ति या परिसम्पत्ति पर अधि-कार के द्योतक हों या जिनसे किसी आय पर हक मिलता हो और जिन्हें रेहन रखा जा सके, प्रतिभूतियाँ कहलाते हैं। कुछ परिसम्पत्तियों पर एक निश्चित आय (जैसे निश्चित दर पर व्याज) मिलती है, और कुछ पर यह आय अनेक प्रभावों से घट या बढ़ सकती है।

selective credit control (सेलेक्टिव क्रेडिट कॉण्ट्रोल) : चयनात्मक उधार-नियन्त्रण।

किसी देश की केन्द्रीय वैंक द्वारा अन्य बैंकों द्वारा जारी किये जानेवाले कर्जों पर न केवल ऋण की मात्रा, अपितु ऋण के उद्देश्य के दृष्टिकोण से लगाये जानेवाले नियन्त्रण चयनशील उधार-नियन्त्रण कहलाते हैं। जब मुद्रा-नीति का ध्येय न केवल मुद्रा (बैंक-मुद्रा-सहित) की मात्रा को कम करके सम्पूर्ण माँग के प्रसार को रोकना होता है बल्कि कुछ खास उद्योगों और वस्तुओं के, जिनकी माँग विशेष रूप से बढ़ रही हो, उत्पादन और वितरण को भी नियन्त्रित करना हो तो उनके बारे में विशेष चयनात्मक ऋण-नीति अपनायी जाती है। इस नीति के अन्तर्गत कुछ खास वस्तुओं को बन्धक रखकर कर्ज देने पर रोक लगा दी जाती

है या उन पर ज्यादा ब्याज की दर लगायी जाती है। इसी प्रकार कुछ खास वस्तुओं का उत्पादन बढ़ाने के लिए आसान शर्तों पर कर्ज मुहैय्या कराये जाते हैं। इस नीति के मुख्य उपकरणों में खुली बाज़ार-नीति, भिन्नात्मक ब्याज-दर-नीति आदि आती हैं। मुद्रा-नीति की सामान्य कमज़ोरियों के अलावा कर्जों का एक काम से दूसरे काम के लिए हस्तान्तरण और कर्ज के अन्य अनेक स्रोतों का उपलब्ध होना इस नीति के प्रभाव-क्षेत्र को घटाते हैं।

self-financing (सेल्फ-फिनान्सिग) : स्वपोषी वित्तीयन, स्व-वित्तीयन।

आन्तरिक साधनों या आय द्वारा पूंजी और परिसम्पत्तियों का निर्माण। जब कोई कम्पनी पूंजी-बाज़ार या मुद्रा-बाज़ार से अपनी पूंजी-निर्माण की वित्तीय जरूरतों को पूरा नहीं करके, अपने खुद के कमाये लाभ या मुनाफे को शेयरधारियों में नहीं बांटकर फिर से उन्हें व्यवसाय में लगाती है, तब यह कहा जायेगा कि यह कम्पनी स्व-वित्तीयन का सहारा ले रही है।

कोई भी निवेश का प्रस्ताव जो एक वाजिब, निश्चित अवधि में अपने लिए वित्तीय साधन जुटा सकने में समर्थ माना जाये, स्वपोषी वित्तीयन-परियोजना कहलायेगा।

seller's market (सेलर्स मार्केट) : विक्रेता-बाज़ार।

बाज़ार में माँग और पूर्त्ति की वह स्थिति, जिसमें वस्तुओं की पूर्त्ति अपेक्षया कम हो, विक्रेता-बाज़ार कहलाती है। इस अपेक्षाकृत अभाव की स्थिति को विक्रेताओं का बाज़ार इसलिए कहा जाता है कि ऐसी स्थिति में बिक्री की शर्त्तों के निर्धारण में विक्रेताओं का हाथ ऊपर रहता है। इस स्थिति में विक्रेताओं के बीच प्रतियोगिता कम हो जाती है और कीमतों में बढ़ने की प्रवृत्ति पायी जाती है।

selling costs (सेलिंग कॉस्ट्स) : बिक्री-लागतें।

जब पूर्ण प्रतियोगिता के स्थान पर अपूर्ण और एकाधिकारिक प्रतियोगिता की पूर्वकल्पना की स्थापना की गयी तो यह माना गया कि एक फर्म के उत्पाद का माँग-वक्र पूर्णतया लोचदार नहीं होता है। फलस्वरूप फर्म के उत्पाद की माँग को विज्ञापन तथा बेचने की अन्य कोशिशों (जैसे उपयुक्त स्थान का चयन, पैक करने के आकर्षक तरीके, छूट, प्रचार आदि) द्वारा बढ़ाया जा सकता है। इस तरह के खर्चों को बिक्री-लागतें कहा जाता है। इन लागतों को उत्पादन की लागतों में जोड़कर ही फर्में अपनी मुनाफा अधिकतम करनेवाली उत्पादन की मात्रा और कीमत-सम्बन्धी नीति का निर्धारण करती हैं। स्पष्ट है कि जहाँ बिक्री की सीमान्त लागत, इस लागत द्वारा प्राप्त नयी माँग से अर्जित सीमान्त आगम के बराबर हो जाती है, वहीं तक फर्में बिक्री की लागतें उठायेंगी।

देखिए : imperfect competition
monopolistic competition

separation of ownership from control (सेपरेशन ऑफ ओनरशिप फ्रॉम कॅण्ट्रोल) : स्वामित्व का नियन्त्रण

से विच्छेद।

निगमों के प्रचलन के कारण प्रकट होनेवाला एक प्रमुख प्रभाव। जब कम्पनियों का प्रचलन शुरू हुआ तब शेयरधारी कम्पनियों के कानूनी मालिक हो गये। परन्तु प्रबन्ध-व्यवस्था निदेशक-मण्डल और उनके द्वारा नियुक्त प्रबन्धकों और कार्यकर्त्ताओं के हाथ में आ गयी। शेयरधारी केवल पूंजी लगाने और मुनाफा एकत्रित करने में ही दिलचस्पी रखते हैं। बाकी के नियन्त्रण और प्रबन्ध के कामों में केवल थोड़े-से प्रवर्त्तक हिस्सेधारियों और उनके द्वारा नियुक्त व्यावसायिक प्रबन्धकों का ही हाथ रह गया। इस आधार पर यह कहा जाने लगा कि स्वामित्व का (या शेयरधारियों का) नियन्त्रण से सम्बन्ध-विच्छेद हो गया है।

इस मत में एक आंशिक सत्य को बढ़ा-चढ़ाकर और तोड़-मरोड़कर पेश किया गया है। अधिकांश शेयरधारी निष्क्रिय होते हैं और, वास्तव में, साहूकारों की तरह होते हैं। उनका कम्पनी के मुनाफा देने के अलावा दूसरे किसी काम से सरोकार नहीं होता है। यदि मुनाफा आशानुकूल नहीं मिला तो वे शेयर बेच देते हैं। असली स्वामी तो नियन्त्रण करनेवाले अल्पमतीय प्रवर्त्तक शेयरधारी होते हैं, जिनका कम्पनी के भविष्य से दूरगामी और दृढ़ सम्बन्ध होता है। अतः स्वामित्व का नियन्त्रण से विच्छेद सतही पर्यवेक्षण पर ही ठीक उतरता है, अन्यथा नहीं।

देखिए : corporations.

serfdom (सर्फ़डम) : कृषिदास-प्रणाली, सामान्ती दास-प्रणाली।

सामान्तवाद का, विशेष रूप से यूरोप के देशों में प्रचलित सामन्तवाद का, दूसरा नाम।

देखिए : feudalism.

services (सर्विसेज) : सेवाएँ।

मनुष्य की उपभोग या उत्पादन की आवश्यकताओं की अभौतिक रूप में पूर्ति करनेवाली आर्थिक क्रियाएँ, जिनका उत्पादन के साथ-साथ ही उपभोग भी हो जाता है, सेवाएं कहलाती हैं। इन्हें 'अभौतिक उत्पादन' कहा जा सकता है। राजकीय काम, शिक्षा, चिकित्सा, न्याय, प्रशासन, संगीतज्ञों, गायकों और ऐसे कलाकारों के काम, वित्तीय संस्थाओं के काम आदि सेवाओं के उदाहरण हैं। एडम स्मिथ आदि अर्थशास्त्री सेवाओं के अभौतिक रूप तथा उनके बचत में बदलने की सम्भावना नहीं होने के कारण उन्हें राष्ट्रीय सम्पत्ति का अंग नहीं मानते थे।

देखिए : commodities
production.

share (शेयर) : शेयर।

किसी निगमित कम्पनी की सामान्य पूंजी छोटे-छोटे, बराबर के हिस्सों में बांट दी जाती है। ऐसा एक हिस्सा 'शेयर' कहलाता है। कम्पनी की आधारभूत पूंजी ये शेयर बेचकर एकत्रित की जाती है।

देखिए : corporation.

shifting of tax (शिफ्टिंग ऑफ टैक्स): करान्तरण।

जिस वस्तु या व्यक्ति पर सरकार द्वारा कर लगाया जाता है, उसका वास्तविक भार अन्य लोगों पर खिसकाया जा सकता है। किसी वस्तु के विक्रेता उस वस्तु की माँग की लोच के अनुसार उस वस्तु की कीमत में कर का पूरा या

आंशिक भाग शामिल करके ग्राहकों से वसूल कर सकते हैं। इसी प्रकार प्रत्यक्ष करों का भार भी कुछ परिस्थितियों में, एक सीमा तक, अन्य लोगों पर हटाया जा सकता है।

देखिए : incidence of taxation
burden of taxation.

short period (शॉर्ट पीरियड) : अल्प काल।

आर्थिक चर वास्तविकता में परिवर्तित होने में कम या ज्यादा समय लेते हैं। किसी आर्थिक प्रक्रिया के प्रभावों का अध्ययन करने के लिए यह स्पष्ट करना जरूरी है कि उससे सम्बन्धित चरों को परिवर्तित होने के लिए कितना समय दिया गया है। इसी सन्दर्भ में अल्पकाल की अवधारणा विकसित हुई। इससे तात्पर्य कैलेण्डर के समय या अवधि से नहीं है। जिस समय-अवधि में किसी प्रक्रिया से सम्बन्धित अधिकांश चर अपरिवर्तित रहें—केवल एक-दो चरों को, जिनके प्रभाव का अध्ययन किया जा रहा है, छोड़कर—तो उस अवधि को अल्प काल या अल्पावधि कहा जाता है। अल्फ्रेड मार्शल ने कीमत-निर्धारण के सिद्धान्तों के अध्ययन के दौरान ऐसे अल्प काल की कल्पना की, जब फर्मों की दी हुई क्षमता के अनुसार परिवर्तनीय संसाधनों के आधार पर ही उत्पादन में परिवर्तन किया जा सकता है।

देखिए : long period.

short-run cost curves (शार्ट-रन कॉस्ट कर्व्स) : अल्पकालिक लागत-वक्र।

वे वक्र, जो अल्पकाल में उत्पादन घटाने या बढ़ाने से सम्पूर्ण, औसत और सीमान्त लागतों में हुए परिवर्तनों को ज्यामितीय रूप से दिखाते हैं, अल्पकालिक लागत-वक्र कहलाते हैं।

देखिए : cost curve.

sinking fund (सिंकिंग फण्ड) : प्रतिस्थापन-निधि।

नियमित रूप से एक खाते में भुगतान करके ऋणों को चुकता करने के लिए राशि की व्यवस्था करने से जिस कोष का निर्माण होता है, उसे प्रतिस्थापन-निधि-कोष कहा जाता है।

देखिए : amortiziatian
depreciation.

sleeping partner (स्लीपिंग पार्टनर): निष्क्रिय साझीदार।

वह साझीदार, जो पूंजी लगाने और लाभ में हिस्सा बँटाने के अलावा प्रबन्ध और व्यवस्था के आये दिन के कामों में हाथ नहीं बँटाता, निष्क्रिय साझीदार कहलाता है।

slump (स्लम्प) : मन्दी, गिरावट।

व्यापार-चक्र या आर्थिक उतार-चढ़ाव का वह चरण, जिसमें उत्पादन, रोज़गार, राष्ट्रीय आय और कीमतें गिरकर एक निचले स्तर पर आ जाती हैं, मन्दी कहलाती है। इस अवस्था में गिरावट अल्पकालिक नहीं अपितु अपेक्षाकृत लम्बी अवधि की होती है।

देखिए : business cycles
depression
recession.

small scale industry (स्मॉल स्केल इण्डस्ट्रीज) : लघु उद्योग।

वे उद्योग, जिनमें उत्पादन की मात्रा,

निवेश और रोज़गार का पैमाना या स्तर अपेक्षाकृत छोटा होता है, लघु उद्योग कहलाते हैं। किसी देश या उद्योग-विशेष में बड़े और छोटे उद्योगों के बीच विभाजन-रेखा कहाँ खींची जाये यह तकनीक, आर्थिक विकास, औद्योगीकरण आदि के स्तर पर निर्भर करता है। लघु उद्योगों का महत्त्व अल्पविकसित देशों में तो बहुत है ही, परन्तु अत्यधिक विकसित औद्योगिक देशों में भी कई लघु औद्योगिक इकाइयाँ अक्षुण्ण बनी हुई हैं। अल्पविकसित, जनाधिक्य और कृषि-प्रधान अर्थव्यवस्थाओं में आर्थिक विकास, ज्यादा रोज़गार, औद्योगिक प्रगति, समानतापूर्ण आर्थिक व्यवस्था, क्षेत्रीय सन्तुलन तथा स्थानीय संसाधनों के समुचित उपयोग आदि उद्देश्यों की पूर्त्ति में लघु उद्योग महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। नये उद्यमियों को प्रोत्साहन देने तथा उन्हें एकाधिकार-विरोधी भूमिका निभाने की क्षमता प्रदान करने में भी लघु उद्योगों का बड़ा हाथ होता है।

देखिए : small commodity production.

social accounting (सोशल एकाउण्टिग) : सामाजिक आलेखन ।

राष्ट्रीय आय तथा व्यय के खातों को इस तरह प्रदर्शित करना कि किसी अवधि-विशेष के, उस अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के बीच हुए, लेन-देन का पता चल जाये, सामाजिक आलेखन कहलाता है। इस खाता-पद्धति में हर क्षेत्र के आगमों और उससे होनेवाले निर्गतों को दिखाया जाता है। किसी भी उत्पादक क्षेत्र (जैसे कृषि, उद्योग, खनन या किसी खास वस्तु के उत्पादन करनेवाले उद्योग) का खाता यह दिखायेगा कि इस क्षेत्र ने अमुक-अमुक क्षेत्रों और उद्योगों से किस मूल्य का साज-सामान प्राप्त किया और किन-किन उद्योगों और क्षेत्रों को कितना-कितना माल वेचा। इस तरह अन्तर-क्षेत्रीय प्रवाहों का पता चलता है। इससे यह भी पता चलता है कि अमुक क्षेत्र या उद्योग ने कितना आयात तथा निर्यात किया, कितने कर तथा अन्य भुगतान राज्य को किये और उससे पाये, कितनी मज़दूरी, वेतन तथा मुनाफा बाँटे तथा कितनी वचत, निवेश तथा उपभोग-व्यय किये। इस तरह एक सारिणी के रूप में किसी अवधि-विशेष की आर्थिक गतिविधियों का विवरण प्रस्तुत किया जाता है। समष्टिगत अर्थशास्त्र, विश्लेषण तथा नीति-निर्धारण में इन खातों का बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। इस अध्ययन-विधा का विकास मुख्यतः केन्स के समष्टिगत अर्थशास्त्र के व्यापक प्रचलन के बाद हुआ है।

social benefits (सोशल बेनिफिट्स) : सामाजिक लाभ ।

इस शब्द का प्रयोग ज्यादातर 'व्यक्तिगत लाभ' के विलोमार्थ में होता है। इस अर्थ के अनुसार किसी आर्थिक कार्य या निर्णय के वे लाभ, जो किसी व्यक्ति को नहीं अपितु सारे समाज को मिलते हैं, सामाजिक लाभ कहलाते हैं। जैसे एक रेल लाइन के निर्माण से होनेवाला किसी क्षेत्र-विशेष का आर्थिक विकास सामाजिक लाभ कहलायेगा।

परन्तु एक व्यापक और सकारात्मक अर्थ में वे सब लाभ जो सारे समाज को किन्ही कामों या निर्णयों से होते हैं (इन

लाभप्राप्तिकर्त्ताओं में काम या निर्णय के कर्त्ता भी शामिल हैं), उनके कुल योग को सामाजिक लाभ कहते हैं। यह जरूरी नहीं है कि सब लोगों तथा सारे समाज के सामूहिक लाभों को संख्यात्मक या अन्य किसी रूप में जोड़कर एकमुश्त एक मूल्य के रूप में ही व्यक्त किया जाये। ऐसा करने के अनेक निरर्थक और भ्रामक प्रयास कई अर्थशास्त्री, विशेषकर कल्याणात्मक अर्थशास्त्र के क्षेत्र में, करते रहते हैं।

scoial capital (सोशल कैपिटल) : सामाजिक पूँजी।

सारी अर्थव्यवस्था में विद्यमान सभी पूंजीगत वस्तुओं का कुल भण्डार। इसमें वित्तीय पूँजी, जो सामाजिक दृष्टि से पूंजी नहीं है, शामिल नहीं होती है। न केवल वस्तुओं के उत्पादन में काम आनेवाली पूँजीगत वस्तुएँ, बल्कि सेवाओं के उत्पादन में काम आनेवाली वस्तुएँ (चाहे वे सेवाएँ बेची जायें या नहीं बेची जायें) भी सामाजिक पूँजी में शामिल होती हैं।

social cost (सोशल कॉस्ट) : सामाजिक लागत।

किसी वस्तु या सेवा के उत्पादन के फलस्वरूप सारे समाज द्वारा उठायी जानेवाली लागत, जो चाहे उत्पादन करनेवाली फर्म, व्यक्ति या संस्था द्वारा उठायी जाये या नहीं उठायी जाये, सामाजिक लागत कहलाती है। इस तरह मामाजिक लागत उत्पादन में लगे संसाधनों की अवसर-लागत का ही दूसरा नाम है।

देखिए : opportunity cost
external diseconomies.

socialism (सोशलिज्म): समाजवाद।

वैज्ञानिक समाजवाद का संक्षिप्त रूप। वैसे समाजवाद की यूटोपियन तथा अन्य अनेक परिभाषाएँ भी दी जाती हैं, क्योंकि आधुनिक राजनीतिक आन्दोलन और वाद-विवादों का केन्द्रविन्दु समाजवाद ही है और यह विश्व की वर्तमान समय में सर्वाधिक प्रचलित पूँजीवादी व्यवस्था के किए सबसे बड़ी चुनौती भी है।

मार्क्स वैज्ञानिक समाजवाद का जनक था। उसके अनुसार समाजवाद एक बहुत ही विकसित उत्पादन की शक्तियों पर आधारित उत्पादन-प्रणाली है, जिसमें उत्पादन-सम्बन्ध सामूहिक सम्पत्ति, आयोजित अर्थव्यवस्था और वर्गहीन समाज-रचना पर आधारित होते हैं। इस अर्थव्यवस्था में निजी सम्पत्ति और निजी उद्यम को सामाजिक सम्पत्ति और राष्ट्रीय केन्द्रीय आयोजन द्वारा प्रतिस्थापित किया जाता है। उत्पादन का उद्देश्य समाज की ज़रूरतों को पूरा करना और इस ध्येय के लिए उत्पादन की शक्तियों का विकास करना होता है। समाजवाद के पहले चरण में, जब उत्पादन की शक्तियाँ बहुत ज्यादा विकसित नहीं होती हैं, 'कार्य के अनुसार वितरण' और 'हर व्यक्ति को कार्य' के सिद्धान्त लागू होते हैं। धीरे-धीरे परिपक्व समाजवादी समाज का विकास होता है और समाजवाद दूसरे सोपान में पहुँचता है। इस स्थिति में समाज का अनिवार्य श्रम बहुत कम हो जाता है; क्योंकि उत्पादन की ताकतें बहुत अधिक विकसित हो जाती हैं। तब हर व्यक्ति की जरूरतों के अनुसार वितरण और हर व्यक्ति की क्षमता

के अनुसार काम का सिद्धान्त लागू होता है। समाजवाद समाज के विकास की एक बहुत प्रगतिशील, न्यायपूर्ण और अग्रिम व्यवस्था है, जो सम्पूर्ण जीवन की सम्भावनाओं को साकार करती है।

देखिए : modes of production
communism
marxian ecmomics.

socially necessary labour (सोशली नेसेसरी लेबर) : अनिवार्य सामाजिक श्रम।

श्रम की वह मात्रा, जो श्रमिक अपने खुद के और अपने परिवार के लिए समाज द्वारा आवश्यक समझी जानेवाली उपभोग की वस्तुओं के उत्पादन में लगाता है, अनिवार्य सामाजिक श्रम कहलाता है। यह अवधारणा कार्ल मार्क्स ने दी। इसे अनिवार्य सामाजिक श्रम इसलिए कहा जाता है कि इस श्रम के बिना श्रमिक न तो जीवित रहने और उत्पादन करने में समर्थ होंगे और न ही उनका प्रतिस्थापन नयी पीढ़ी द्वारा हो पायेगा।

देखिए : marxian economics.

social overhead capital (सोशल ओवरहेड कैपिटल) : आधारिक सामाजिक पूंजी।

समाज के उत्पादन के लिए आवश्यक और सामूहिक रूप से भी आवश्यक उत्पादक वस्तुएँ।

देखिए : infrastructure
overhead capital.

social security (सोशल सिक्योरिटी) : सामाजिक सुरक्षा।

समाज के सदस्यों को बीमारी, बेकारी, दुर्घटनाओं आदि अनिश्चितताओं द्वारा आय के प्रवाह के रुक जाने से होने-वाली असुविधा और असन्तोष को रोकने के लिए उपलब्ध सामाजिक सेवाओं, उपभोग-व्यवस्था और बीमे की योजनाओं को सामाजिक सुरक्षा कहा जाता है। पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में व्यापार-चक्रों के कारण रोज़गार-सम्बन्धी अनिश्चितता बढ़ जाती है। बिना काम किये मजदूर-वर्ग के पास जीवन-यापन का कोई साधन नहीं होता। अतः बेरोजगारी, बीमारी और वृद्धावस्था की बीमा और पेन्शन योजनाएँ लागू करके सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था की जाती है।

देखिए : welfare state.

soft currency (सॉफ्ट करेन्सी): सुलभ करेन्सी।

जिन देशों के भुगतान-अधिशेष में लगातार घाटा रहता है, उन देशों की मुद्रा की बिनिमय-दर में गिरावट की प्रवृत्ति आ जाती है। सट्टेबाजी के कारण भी यह प्रवृत्ति पनप सकती है। ऐसी प्रवृत्तियों की शिकार मुद्रा सुलभ करेन्सी कहलाती है। ऐसी नरम मुद्राओं को कोई देश अपने विदेशी विनिमय के भण्डार में नहीं रखना चाहता।

देखिए : hard currency.

soft loan (सॉफ्ट लोन): सरल ऋण।

वे कर्ज, जो आसान शर्तों पर (जैसे बिना ब्याज या कम ब्याज-दर पर और लम्बी भुगतान-अवधि के लिए) दिये जायें, सरल ऋण कहलाते हैं। विश्व बैंक तथा अन्तर्राष्ट्रीय विकास तथा पुनर्निर्माण बैंक का एक मकसद विकासमान देशों को सरल कर्ज मुहैय्या करना है। समाजवादी देश भी विकासशील देशों को सरल ऋण

प्रदान करते हैं।

sole proprietorship (सोल प्रोप्राइ-टरशिप) : एकल स्वामित्व।

व्यावसायिक संगठन का सरल वस्तु-उत्पादन तथा प्रारम्भिक पूंजीवाद में विशेष रूप से प्रचलित रूप। इसके अन्तर्गत सारी पूंजी, जोखिम, निर्णय लेने के अधिकार और मुनाफा एक ही व्यक्ति में केन्द्रित होते हैं। साधारणतः यह व्यक्ति एक परिवार का मुखिया होता है। छोटे स्तर के उत्पादन में एकल स्वामित्व काफी कुशल साबित होता है।

sovereignty of the consumer (सॉवरेण्टी ऑफ दि कॅन्ज्यूमर) : उपभोक्ता की प्रभुसत्ता।

देखिए : consumer's sovereignty.

special deposits (स्पेशल डिपाजिट्स): विशेष जमा।

विशेष निवेश के अनुसार सदस्य बैंकों द्वारा केन्द्रीय बैंक के पास नकदी जमा। चूंकि इस विशेष जमा का बैंकों के नकदी अनुपात पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है, इसलिए बैंक-उधार को कम करने का यह एक महत्त्वपूर्ण साधन समझा जाता है। वैसे जमा-वृद्धि के प्रभाव को बैंक सरकारी बॉण्डों में कमी लाकर बहुत-कुछ दूर कर सकते हैं।

specialisation (स्पेशलाइजेशन) : विशेषीकरण, विशिष्टीकरण।

आधुनिक अर्थव्यवस्था की एक प्रमुख विशेषता। इसका आशय भिन्न-भिन्न व्यक्तियों या क्षेत्रों के अलग-अलग कार्यों में लगे होने से है। इस प्रणाली के अन्तर्गत उत्पादन-कार्यों को अनेक प्रक्रियाओं और उप-प्रक्रियाओं में विभाजित कर दिया जाता है और भिन्न-भिन्न श्रमिकों को उनकी योग्यता तथा शिक्षा-दीक्षा के अनुसार उन प्रक्रियाओं एवं उप-प्रक्रियाओं को सौंप दिया जाता है। इस प्रकार प्रत्येक श्रमिक भिन्न-भिन्न कार्यों को करने की बजाय किसी एक विशिष्ट कार्य में लग जाता है। उसे अपने इस विशिष्ट कार्य के बदले मुद्रा के रूप में आय प्राप्त होती है, जिसके सहारे वह बाजार से अन्य श्रमिकों द्वारा उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं को खरीदकर अपनी विभिन्न आवश्यकताएँ पूरी करता है। ठीक यही बात भिन्न-भिन्न क्षेत्रों या देशों के लिए भी लागू होती है। भिन्न-भिन्न क्षेत्र अलग-अलग वस्तुओं के उत्पादन में लग जाते हैं और फिर आयात-निर्यात के सहारे एक-दूसरे की वस्तुएँ और सेवाएँ प्राप्त करते हैं। इस पारस्परिक सहयोग की बात को लेकर विशिष्टीकरण को 'सहकारिता' की संज्ञा भी दी जा सकती है।

यद्यपि विशिष्टीकरण आधुनिक युग की देन नहीं है, तथापि यह आधुनिक आर्थिक जगत का मूल आधार है। इसके बिना वर्तमान आर्थिक जीवन सुचारु रूप से नहीं चल सकता। विशिष्टीकरण के व्यवहार से अनेक महत्त्वपूर्ण लाभ प्राप्त होते हैं। उदाहरण के लिए इसके फलस्वरूप विभिन्न साधनों का समुचित उपयोग सम्भव बन जाता है; कार्यक्षमता बढ़ती है; आविष्कारों में उन्नति तथा मशीनों के प्रयोग में वृद्धि होती है; समय, औजार और खर्च में बचत होती हैं; तथा पारस्परिक सहयोग का विकास

होता है। इस सम्बन्ध में कुछ इस प्रकार की हानियों की ओर भी संकेत किया जाता है, जैसे कि नीरसता में वृद्धि, सर्वांगीण विकास में बाधा, बेकारी व आर्थिक संकट का खतरा, दूसरों पर अधिक निर्भरता, आर्थिक साम्राज्यवाद को बढ़ावा आदि। लेकिन इसके लाभ अपेक्षाकृत कहीं अधिक एवं महत्त्वपूर्ण हैं। यही कारण है कि लगभग सभी क्षेत्रों में विशिष्टीकरण तेजी से बढ़ रहा है।

देखिए : division of labour.

specie points (स्पेशी पाएण्ट्स) : धातु-बिन्दु।

स्वर्णमान के अन्तर्गत दो देशों की मुद्राओं के बीच विनिमय-दर के घटने-बढ़ने की सीमाएँ। विनिमय की टकसाल-दर में परिवहन और बीमे की लागत जोड़ व घटाकर ऊपरी और निचली सीमाएँ निर्धारित होती हैं। यदि विनिमय-दर इन सीमाओं या बिन्दुओं को पार कर जाती है, तो स्वर्ण के निर्यात और आयात के सहारे लेन-देन का हिसाब करना अधिक लाभकारी ठहरेगा। इन बिन्दुओं को स्वर्ण-बिन्दु भी कहते हैं।

देखिए : gold points.

specific tax (स्पेसिफिक टैक्स) : विशिष्ट कर।

वे कर, जो वस्तुओं पर उनकी खरीद की मात्रा के आधार पर लगाये जाते हैं। इसके विपरीत मूल्यानुसार कर वस्तु की कीमत के अनुपात में होते हैं।

speculation (स्पिकुलेशन) : सट्टा, फाटका।

आगे चलकर कीमतों में परिवर्तन के समय क्रय-विक्रय के सहारे लाभ कमाने के उद्देश्य से खरीदने-बेचने की क्रिया। सामान्य तौर से प्रतिभूतियों, विदेशी विनिमय और वस्तुओं के सम्बन्ध में सट्टा खेला जाता है। सटोरियों का उद्देश्य कीमत-परिवर्तनों से मुनाफा करना होता है। वैसे तो इस प्रकार की क्रिया के कुछ लाभ बताये जाते हैं, लेकिन स्वस्थ सीमा पार करने पर इससे दुर्लभ साधनों का भारी अपव्यय होता है, विशेषकर सामाजिक दृष्टि से। इसी कारण से इस सम्बन्ध में उचित नियन्त्रण-व्यवस्था पर जोर दिया जाता है।

speculative motive (स्पिकुलेटिव मोटिव) : सट्टागत उद्देश्य

तरलता अधिमान एवं मुद्रा-मूल्य पर प्रभाव डालनेवाले लार्ड केन्स द्वारा प्रतिपादित तीन उद्देश्यों में से सर्वप्रमुख उद्देश्य। इसका आशय पास में नकदी रखने के उस उद्देश्य से है जो अन्य प्रकार की सम्पत्तियों के मुद्रा-मूल्य में परिवर्तन की सम्भावना से सम्बन्धित होता है। लोग एक सीमा तक अपने पास नकद रूप में मुद्रा इस उद्देश्य से रखना चाहते हैं कि अन्य परिसम्पत्तियों के मूल्य में होनेवाले परिवर्तनों से लाभ उठाना सम्भव हो सके। नकदी रखने के इस उद्देश्य को सट्टागत उद्देश्य कहा जाता है।

देखिए : liquidity preference.

spot market (स्पॉट मार्केट) : हाजिर बाजार।

वायदा बाजार के विपरीत वह बाजार, जहाँ तत्काल माल प्रदान के आधार पर व्यापार किया जाता है। इस सन्दर्भ में 'स्पाट' शब्द का आशय तुरन्त कार्य करने या लागू होने से है।

spot price (स्पॉट प्राइस) : हाजिर कीमत।

किसी वस्तु की वह कीमत, जिस पर माल तुरन्त सौंपना पड़ता है। इसके विपरीत वायदा कीमत किसी भावी राशि पर माल देने की कीमत होती है।

spread effect (स्प्रेड इफेक्ट) : अभिवृद्धि-प्रभाव, विस्तार-प्रभाव।

प्रोत्साहक प्रभाव, जो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की दिशा से पड़ता है। निर्यात-मूल्य में वृद्धि का सबसे महत्त्वपूर्ण विस्तार-प्रभाव है उसका अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों में प्रतिव्यक्ति आय पर पड़नेवाला गुणक प्रभाव। ऐसा सब वस्तुओं की माँग में होनेवाली वृद्धि के फलस्वरूप होता है। कोई देश जितना ही अधिक विकसित होगा, अभिवृद्धि या विस्तार-प्रभाव उतना ही सशक्त होगा। कारण, निर्यात-क्षेत्र शेष अर्थव्यवस्था के साथ गहरे तौर पर जुड़ा होता है।

stabilisation policy (स्टैबिलाइजेशन पॉलिसी) : स्थिरीकरण-नीति।

व्यापार-चक्र के उतार-चढ़ाव को कम करने और इस प्रकार अर्थव्यवस्था में स्थिरता बनाये रखने के उद्देश्य से सरकार द्वारा अपनाये गये उपाय। निर्बाध पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में समय-समय पर राष्ट्रीय आय, रोजगार और कीमत में भारी उतार-चढ़ाव आता रहता है, जिससे राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को गहरी क्षति पहुँचती है और देश में तरह-तरह की समस्याएं पैदा होती हैं। अतः उतार-चढ़ाव की तेजी या विस्तार को कम करके स्थिरता की स्थिति लाने और बकाया रखने के लिए सरकार की ओर से कुछ उपायों को अपनाया जाना आवश्यक होता है। स्थिरीकरण-नीति का आशय इन्हीं उपायों से है। मुद्रा और राजकोषीय साधन इस नीति के आवश्यक अंग होते हैं।

stagnation theory (स्टेग्नेशन थिअॅरी) : स्थिरता-सिद्धान्त, गति-हीनता-सिद्धान्त।

यह सिद्धान्त विशेष रूप से ए० एच० हैन्सेन के नाम के साथ जुड़ा हुआ है। इस सिद्धान्त के अनुसार विकसित देशों में निवेश की तुलना में बचत इतनी अधिक हो सकती है कि उनके लिए पूर्ण रोजगार की स्थिति बनाये रखना कठिन बन जाये। तब अर्थव्यवस्था का बढ़ना रुक जायेगा और वह गतिहीन हो लेगी। आज बहुत कम लोग इस विचार के हैं।

standardisation (स्टैण्डर्डाइजेशन) : मानकीकरण।

एक ही नाप, रंग-रूप, आकार-प्रकार की वस्तु का निर्माण। ऐसा मशीन के व्यापक प्रयोग से सम्भव होता है। किसी वस्तु को बड़े पैमाने पर उत्पादन करके उसके विविध लाभ प्राप्त कर सकने के लिए उस वस्तु का मानकीकरण आवश्यक है। मानकित वस्तुएँ ही अधिक मात्रा में बड़े पैमाने की उत्पादन-प्रणाली के अन्तर्गत तैयार की जा सकती हैं। आजकल विभिन्न क्षेत्रों में मानकित वस्तुओं के उत्पादन की प्रवृत्ति ज़ोर पकड़ रही है। इससे उपभोक्ता के चयन का क्षेत्र तो अवश्य थोड़ा-बहुत सीमित हो जाता है, लेकिन बड़ी मात्रा की उत्पादन-प्रणाली के महत्त्वपूर्ण लाभों की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है।

standard money (स्टैण्डर्ड मॅनी) :

मानक मुद्रा।

किसी देश की प्रधान मुद्रा। यह मूल्य का मान होती है। सब कर्ज, ठेके और वस्तुओं के मूल्य इसी में अंकित व निश्चित किये जाते हैं। वास्तव में यह देश की हिसाब की मुद्रा या लेखा-मुद्रा होती है। रुपया भारत में, डालर अमरीका में और पौण्ड इंगलैण्ड में मानक मुद्रा के उदाहरण हैं।

standard of deferred payments (स्टैण्डर्ड ऑफ डेफर्ड पेमेण्ट्स) : स्थगित भुगतानमान।

मुद्रा का एक सहायक कार्य। चूंकि मुद्रा एक सामान्य क्रयशक्ति है और मूल्य-संचय का साधन है, इसलिए इसे स्थगित भुगतानों के चुकाने अथवा उधार के लेन-देन के लिए इस्तेमाल किया जाता है। इससे स्थगित भुगतान का कार्य सरल और सुविधाजनक बन जाता है। वस्तुओं के रूप में इस कार्य को करने में अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

standard of living (स्टैण्डर्ड ऑफ लिविंग) : जीवन-स्तर।

कोई व्यक्ति, परिवार अथवा किसी वर्ग के लोग जिस सीमा तक अपनी आवश्यकताएँ पूरी करते हैं, वही उनका जीवन-स्तर कहलाता है। अपनी आवश्यकताओं की तृप्ति के लिए लोग तरह-तरह की वस्तुओं और सेवाओं का उपभोग करते हैं। इस प्रकार जीवन-स्तर का आशय उन अनिवार्यताओं, सुविधाओं और विलासिताओं से होता है, जिनका कोई व्यक्ति या वर्ग-विशेष सामान्य तौर से उपभोग करता है। स्पष्टतः जितनी अधिक या कम सीमा तक आवश्यकताएँ पूरी की जा सकेंगी, जीवन-स्तर भी उतना ही ऊंचा या नीचा होगा। हर अर्थ-व्यवस्था का मूल उद्देश्य लोगों के जीवन-स्तर को ऊपर उठाना होता है।

जीवन-स्तर इन अनेक बातों पर निर्भर करता है—आय का स्तर, व्यय का ढंग, देश का आर्थिक विकास, धन व आय का वितरण, मुद्रा की क्रय-शक्ति, व्यक्तिगत विशेषताएँ, धार्मिक एवं सामाजिक रीति-रिवाज, देश में शान्ति तथा कल्याणकारी राज्य आदि। ये सब बातें हर समय, स्थान और व्यक्ति के साथ एक-जैसी नहीं होतीं। इस कारण भिन्न-भिन्न समय और स्थान पर तथा एक ही समय व स्थान पर भिन्न-भिन्न वर्ग के लोगों के जीवन-स्तर में भारी अन्तर पाया जाता है।

standard of value (स्टैण्डर्ड ऑफ वैल्यू) : मूल्यमान।

मुद्रा का एक प्रधान कार्य। सब वस्तुओं के मूल्य मुद्रा में व्यक्त किये जाते हैं और मुद्रा के रूप में ही मूल्य की माप व तुलना की जाती है। अर्थात् मुद्रा एक मूल्यमान है; यह मूल्यमापन का एक साधन है। लेकिन यह मान मीटर या किलोग्राम की भाँति पूर्णतया निश्चित या स्थिर नहीं है। कारण, मुद्रा के मूल्य में परिवर्तन होता रहता है।

standard rate (स्टैण्डर्ड रेट) : मानक दर।

आय-कर के सन्दर्भ में इसका आशय उस दर से होता है, जो एक निश्चित आय-स्तर के ऊपर सब आयों पर लागू होती है। निम्न कर योग्य आय-स्तरों

पर कर की दर नीची होती है, जबकि ऊँची आय के लिए अतिरिक्त कर अथवा अधि-कर की व्यवस्था की जाती है। इस प्रकार मानक दर मूल दर होती है।

state enterprise (स्टेट एण्टरप्राइज): सरकारी उद्यम।

व्यापारिक अथवा औद्योगिक प्रतिष्ठानों का राज्य द्वारा परिचालन। काफी लम्बी अवधि तक डाक, तार आदि इनी-गिनी आर्थिक क्रियाएँ ही सरकार के अधीन चलायी जाती थीं। लेकिन अब सरकारी उद्यम का क्षेत्र बहुत फैल गया है। निजी उद्यम के विविध दोषों के नियन्त्रण एवं द्रुत व स्वस्थ आर्थिक विकास के लिए सरकारी उद्यम का विस्तार आवश्यक ठहरता है।

देखिए : public enterprise
public sector.

state planning (स्टेट प्लानिंग): राजकीय आयोजन।

उत्पादन अथवा निवेश-सम्बन्धी क्रियाओं के लिए सरकार द्वारा योजनाओं का तैयार किया जाना। समाजवादी देशों में, जहाँ उत्पादन-साधन सरकार के स्वामित्व में होते हैं, राजकीय आयोजन का पूरा-पूरा सहारा लिया जाता है। मिश्रित अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीयकृत उद्योगों के लिए उत्पादन व निवेश के सम्बन्ध में सरकार योजनाएँ तैयार करती है। वैसे आजकल अधिकांश विकसित और विकासशील देशों में कम-अधिक सीमा तक आयोजन का सहारा लिया जाने लगा है।

देखिए : economic planning
planned economics.

static economics (स्टैटिक इकॉनॉमिक्स): स्थैतिक अर्थशास्त्र।

आर्थिक सिद्धान्त की वह शाखा, जिसमें सन्तुलन-स्थितियों का विश्लेषण किया जाता है। इसका सम्बन्ध सन्तुलन-स्थितियों की व्याख्या तथा सन्तुलन के लिए अपेक्षित बातों से होता है। सन्तुलन की स्थिति किस प्रकार प्राप्त होती है अथवा इसकी प्राप्ति में कितना समय लगता है, इसका विवेचन स्थैतिक अर्थशास्त्र के अन्तर्गत नहीं किया जाता। इस प्रकार स्थैतिक अर्थशास्त्र स्थिर या अपरिवर्तनीय दशाओं में आर्थिक स्थिति का एक सैद्धान्तिक अध्ययन है।

sterling area (स्टर्लिंग एरिया): स्टर्लिंग क्षेत्र।

वे सब देश, विशेषकर राष्ट्रमण्डल के देश, जिनकी मुद्रा ब्रिटिश पौण्ड पर आधारित है। यह एक स्वैच्छिक संघ है जिसका अपना कोई संविधान नहीं है और १९४० तक तो इसका विधिपूर्वक निर्धारण भी नहीं किया गया। इसके विस्तार में उतार-चढ़ाव होता रहा है।

स्टर्लिंग क्षेत्र के सदस्य अपने पौण्ड-पावने लन्दन में रखते हैं, जिसे अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान एवं स्टर्लिंग क्षेत्र की मुद्रा-व्यवस्था के संचालन के लिए प्रयोग किया जाता है।

sterling balances (स्टर्लिंग बैलेन्सेज): पौण्ड-पावने।

स्टर्लिंग क्षेत्र के सदस्य देश अपने पौण्ड-पावने लन्दन में रखते हैं, जिसे अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान तथा स्टर्लिंग क्षेत्र की मुद्रा-व्यवस्था के संचालन के लिए प्रयोग किया जाता है।

द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान स्टर्लिंग क्षेत्र के अनेक देशों के खातों में पौण्ड-पावने बड़ी राशि में जमा हो गये थे। कारण, उस अवधि में ग्रेट ब्रिटेन निर्यात करने की स्थिति में नहीं था और उधार पर उसे दूसरे देशों से आयात प्राप्त करना पड़ा। युद्धोत्तर काल के शुरू के वर्षों में पौण्ड-पावने की भारी संचित राशि के प्रयोग पर ग्रेट ब्रिटेन द्वारा कड़े नियन्त्रण लगाये गये। भारत-जैसे देशों ने, जिन्हें अपने पुनर्निर्माण और विकास के लिए पौण्ड-पावने के सहारे की बड़ी आवश्यकता थी, इस नियन्त्रण व प्रतिवन्ध का कड़ा विरोध किया। आगे चलकर जब ब्रिटेन की स्थिति में कुछ सुधार हुआ तो पौण्ड-पावने पर लगे प्रतिबन्ध हटा लिये गये।

stock (स्टॉक) : माल, स्टॉक।

१. किसी वस्तु का संचय या भण्डार।

२. एक विशेष प्रकार की प्रतिभूति। मूल रूप से स्टॉक और शेयर के बीच इस प्रकार भेद किया जाता है। स्टॉक पूरी तौर से प्रदत्त होते हैं, इनके लिए किसी विशेष नम्बर की आवश्यकता नहीं पड़ती और ये समस्त रूप में ही नहीं बल्कि आंशिक रूप में भी हस्तान्तरित किये जा सकते हैं। इसके विपरीत शेयर का पूरी तौर से चुकता होना जरूरी नहीं है, इनके लिए विशेष नम्बर की आवश्यकता होती है और ये समस्त रूप में ही अन्तरित हो सकते हैं। धीरे-धीरे दोनों के बीच यह भेद मिटता जा रहा है। अब मुख्य रूप से 'स्टॉक' शब्द का प्रयोग निश्चित ब्याजवाली प्रतिभूतियों या ऋण-पत्रों के लिए किया जाता है; जैसे कि कम्पनी, निगम, स्थानीय या केन्द्रीय सरकार के ऋण-पत्र या स्टॉक।

stock control (स्टॉक कंण्ट्रोल): स्टॉक नियन्त्रण, माल-नियन्त्रण।

थोक या खुदरा व्यापारी के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने पास माल इतनी प्रर्याप्त मात्रा में रखे, जिससे कि माँग को पूरा करते समय न तो माल की कमी पड़े और न ही अनावश्यक मात्रा में अन्तिम माल बच रहे। इसके लिए एक खाता रखा जाता है, जिसमें नये माल का और विक्रीत माल का हिसाव होता है, ताकि समय-विशेष पर स्टॉक-सम्बन्धी स्थिति की जानकारी हो सके।

stock exchange (स्टॉक एक्सचेंज): शेयर बाज़ार, स्टॉक एक्सचेंज।

एक सुसंगठित बाज़ार, जहाँ स्टॉक और शेयर का क्रय-विक्रय होता है। देश के प्रधान नगरों में ऐसे बाज़ार पाये जाते हैं। इन बाजारों में केवल सदस्यगण ही भाग ले सकते हैं। प्रतिभूतियों के क्रय-विक्रय का कार्य निर्धारित नियमों के अनुसार दलालों के माध्यम से किया जाता है। शेयर बाज़ार का आर्थिक महत्त्व इस बात में है कि इससे बचत और निवेश के क्षेत्र में बड़ी सुविधा होती है।

stock watering (स्टॉक वार्टरिंग): स्टॉक अधिपुंजीयन।

परिसम्पत्तियों के वास्तविक मूल्य से अधिक स्टॉक या शेयर जारी करके अधि-पुंजीकरण करना।

store of value (स्टोर ऑफ वैल्यू): मूल्य-संचय।

मुद्रा का एक सहायक कार्य। मुद्रा क्रयशक्ति या मूल्य-संचय के एक साधन के रूप में भी कार्य करती है। हम अपनी

भावी आवश्यकताओं की पूर्त्ति के लिए बचत करना चाहते हैं। वस्तु-विनिमय-प्रणाली में बचत को संचय करने का कोई साधन नहीं होता। वस्तुओं के रूप में संचय करने में अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। मुद्रा की सहायता से संचय की कठिनाई दूर हो जाती है। इसका कारण यह है कि मुद्रा एक क्रयशक्ति है। इसके सहारे हम जब और जो वस्तु चाहे आसानी से खरीद सकते हैं। मुद्रा द्वारा मूल्य-संचय का कार्य उसी समय भली प्रकार सम्पन्न हो पाता है जबकि इसके मूल्य में यथोचित स्थिरता होती है।

strategy (स्ट्रेटिजी) : व्यूहरचना, युक्ति।

निर्धारित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए जो निर्णय लिये जाते हैं, कार्य की जो व्यवस्था की जाती है और इस सम्बन्ध में जो संस्थाएँ स्थापित की जाती हैं, उन सबके योग को व्यूहरचना, युक्ति अथवा रणनीति कहते हैं। आर्थिक विकास और आयोजन के सन्दर्भ में इस अवधारणा का विशेष प्रयोग किया जाता है।

strike (स्ट्राइक) : हड़ताल।

मालिकों से अपनी माँगें मनवाने अथवा अपने हितों की रक्षा के हेतु आपसी सहमति से मज़दूरों द्वारा कामबन्दी। अनेक बातों को लेकर मज़दूर हड़ताल करते हैं; जैसे कि मज़दूरी व महँगाई, काम के घण्टे और परिस्थितियाँ, मज़दूर-संघ की मान्यता आदि। प्राय: जब किसी मसले पर मालिक और मज़दूर-संघ के बीच समझौता नहीं हो पाता, तब मज़दूर-संघ हड़ताल का कदम उठाते हैं। यह उनके लिए एक प्रकार से अन्तिम साधन होता है। आजकल पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्थाओं में हड़ताल का अधिक सहारा लिया जाने लगा है। किसी स्थान पर हड़तालों की संख्या और अवधि इन अनेक बातों पर निर्भर करती है—मज़दूर-संघों की वित्तीय स्थिति, श्रम-आन्दोलन की युद्धप्रियता, प्रबन्धकों की उदासीनता, समझौता-व्यवस्था आदि।

structural unemployment (स्ट्रक्चरल अनएम्पलॉयमेण्ट) : संरचना-मूलक बेरोज़गारी।

वह बेरोज़गारी, जो आर्थिक ढाँचे में परिवर्तनों के कारण पैदा होती है। इन परिवर्तनों में माँग एवं तकनीक सम्बन्धी परिवर्तन विशेष महत्त्व रखते हैं। इन परिवर्तनों के फलस्वरूप कुछ उद्योगों का महत्त्व जाता रहता है और कुछ उद्योग बढ़ते जाते हैं। यदि श्रमिक पूर्णतया गतिशील हों तो गिर रहे उद्योगों के फालतू श्रमिकों को वर्धमान उद्योगों में आसानी से खपाया जा सकता है। लेकिन श्रमिकों में व्यावसायिक गतिशीलता और भौगोलिक गतिशीलता का प्राय: बड़ा अभाव पाया जाता है। इस कारण इस ओर से कुछ बेकारी पैदा होती है। चूँकि यह बेकारी उद्योग की संरचना में परिवर्तन के फलस्वरूप पैदा होती है, इसलिए इसे संरचनामूलक बेरोज़गारी कहा जाता है।

subscribed capital (सब्स्क्राइब्ड कैपिटल) : अभिदत्त पूंजी।

किसी कम्पनी की पूंजी का वह भाग, जो शेयर के रूप में शेयरधारियों में बिक जाता है। यह भाग प्रदत्त या चुकता पूंजी के बराबर हो भी सकता है और नहीं

भी । प्रायः शेयरधारियों को शेयर खरीदते समय शेयर का पूरा मूल्य भुगतान नहीं करना पड़ता । शेयर के मूल्य का एक निश्चित भाग शेयरधारियों से ले लिया जाता है और शेष रकम आवश्यकतानुसार भविष्य में लेने के लिए उनके पास रिजर्व के रूप में रहने दी जाती है।

subsidiaries (सब्सिडियरीज) : सहायक कम्पनी, उपसंगी संस्था ।

ऐसी कम्पनियाँ, जो किसी अन्य कम्पनी के नियन्त्रण में होती हैं । इन कम्पनियों के अधिकांश शेयर नियन्त्रक कम्पनी के अधिकार में होते हैं । नियन्त्रक कम्पनी पूर्ण रूप से अपने में मिलाने की बजाय इन अनेक कारणों से सहायक कम्पनियों को अलग बनाये रखना ठीक समझ सकती है, जैसे कि अपने व्यवसाय-सम्बन्धों को गुप्त रखना, सहायक कम्पनियों के विलयन की लागत व झंझटों से बचाव, स्थानीय लोगों की सहभागिता को बढ़ावा देने की इच्छा आदि ।

subsidy (सब्सिडी) : उपदान, आर्थिक सहायता ।

कीमतों को घटाने अथवा उन्हें निर्धारित स्तर पर रखने के लिए उत्पादकों या वितरणकर्त्ताओं को सरकार की ओर से प्राप्त धनराशि । इस प्रकार की व्यवस्था का उद्देश्य किसी वस्तु या सेवा को ऐसी कीमत पर लोगों को उपलब्ध कराना होता है जो कि वे दे सकते हों, लेकिन वह कीमत उत्पादकों के लिए लाभकारी न ठहरती हो । चूंकि वह वस्तु या सेवा सार्वजनिक कल्याण की दृष्टि से आवश्यक ठहरती है, इसलिए सरकार उत्पादकों को आर्थिक सहायता देने की व्यवस्था करती है, ताकि वांछनीय कीमत पर जनसाधारण को उसकी उपलब्धि सम्भव हो सके। आजकल भारत में अनाज-चीनी आदि के सम्बन्ध में उपदान की नीति का सहारा लिया जा रहा है।

subsistence farming (सब्सिस्टेन्स फार्मिंग) : जीवन-निर्वाह खेती।

इसका आशय उस खेती-व्यवस्था से है, जिसमें लोग मूल रूप से अपने निजी उपभोग के लिए फसलें पैदा करते हैं, न कि बाजार में बिक्री के लिए। ऐसी स्थिति में बाजार-सम्बन्धी बातों का और कीमतों में उतार-चढ़ाव का खेती पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ने पाता ।

subsistence theory of wages (सब्सिस्टेन्स थिअॅरी ऑफ वेजेज़): जीवन-निर्वाह मजदूरी-सिद्धान्त ।

इस सिद्धान्त के अनुसार मज़दूरी अन्ततः श्रमिकों के जीवन-निर्वाह-व्यय के बराबर ही निर्धारित होगी। स्थायी तौर से मज़दूरी न इस स्तर से अधिक होगी और न कम । यदि मज़दूरी जीवन-निर्वाह-व्यय से अधिक होगी, तो जनसंख्या में वृद्धि होगी और फलस्वरूप श्रमिकों की संख्या बढ़ने से मज़दूरी गिरेगी और अन्ततः जीवन-निर्वाह-व्यय के स्तर पर पहुँच जायेगी । इसके विपरीत यदि मज़दूरी इस स्तर से कम होगी, तो भुखमरी व बीमारी के कारण श्रम की पूर्ति में कमी होगी, जिसके फलस्वरूप मज़दूरी बढ़कर अन्ततः निर्वाह-स्तर के बराबर हो लेगी । इस प्रकार इस सिद्धान्त के अनुसार मज़दूरी जीवन-निर्वाह के स्तर पर निर्धारित होगी । चूंकि इस सिद्धान्त के

अनुसार मजदूरी एक निश्चित स्तर पर बंधी होती है, इसलिए इस सिद्धान्त को मजदूरी का लौह सिद्धान्त भी कहा जाता है।

आजकल इस सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया जाता। यह बहुत दोषयुक्त है। उदाहरण के लिए, यह सिद्धान्त श्रम की माँग के महत्त्व पर प्रकाश नहीं डालता, श्रमिकों की कार्यक्षमता पर भी ध्यान नहीं देता और अनावश्यक रूप से निराशावादी है। साथ ही यह मजदूरी-दरों में अन्तर का स्पष्टीकरण नहीं कर पाता।

substitute goods (सब्सटिच्यूट गुड्स): स्थानापन्न वस्तुएँ, प्रतिस्थापक वस्तुएँ।

एक-दूसरे के स्थान में प्रयुक्त हो सकनेवाली अथवा समान आवश्यकता की पूर्ति कर सकनेवाली वस्तुएँ। यदि एक वस्तु की कीमत में वृद्धि होने से दूसरी वस्तु की माँग बढ़ जाती है, तो वे स्थानापन्न या प्रतिस्थापक वस्तुएँ होंगी। चाय और कॉफी, सिल्क और नायलोन, बस और ट्राम-कार आदि एक-दूसरे की स्थानापन्न वस्तुएँ हैं। अन्य बातों के समान रहने पर जितनी अधिक व उपयुक्त किसी वस्तु के लिए स्थानापन्न वस्तुएँ उपलब्ध होंगी, उसकी माँग उतनी ही अधिक लोचदार होगी।

substitution effect (सब्सटिट्यूशन इफेक्ट) : प्रतिस्थापन-प्रभाव।

अन्य वस्तुओं की कीमतों की अपेक्षा किसी वस्तु की कीमत में परिवर्तन के कारण उसकी माँग की मात्रा में परिवर्तन। मान लें कि किसी वस्तु की कीमत गिर जाती है और उसकी स्थानापन्न वस्तुओं की कीमतें अपरिवर्तित रहती हैं। ऐसी स्थिति में स्थानापन्न वस्तुओं की तुलना में वह वस्तु सस्ती हो जायेगी और लोग उसे अधिक मात्रा में खरीदने लगेंगे अर्थात उस वस्तु की माँग बढ़ जायेगी। इसे प्रतिस्थापन-प्रभाव कहते हैं। किसी वस्तु की माँग में समग्र रूप में कितना परिवर्तन होगा, इसे जानने के लिए हमें प्रतिस्थापन-प्रभाव के साथ-साथ आय-प्रभाव को भी ध्यान में रखना होगा।

succession duty (सक्सेशन ड्यूटी) : उत्तराधिकार शुल्क।

यह वह कर है, जो उत्तराधिकार में प्राप्त जायदाद पर सरकार द्वारा लगाया जाता है। इसका भुगतान उत्तराधिकारी को करना पड़ता है और कर की दर मृतक व्यक्ति के साथ उत्तराधिकारी के रिश्ते पर निर्भर करती है। साधारणतया रिश्ता जितना दूर का होता है, कर की दर उतनी ही ऊँची होती है।

sun spot theory (सन स्पॉट थिअॅरी): सूर्य-धब्बा-सिद्धान्त।

व्यापार-चक्र से सम्बन्धित एक सिद्धान्त, जिसका प्रतिपादन जेवन्स ने किया। इस सिद्धान्त के अनुसार सूर्य पर समय-समय पर धब्बे पड़ने के फलस्वरूप कृषि-पैदावार में उतार-चढ़ाव होता है, जो व्यापार-चक्र का कारण ठहराया जाता है। इसमें तो कोई सन्देह नहीं है कि मौसम की अनिश्चितता के कारण पैदावार में समय-समय पर घट-बढ़ होती रहती है, लेकिन इसके आधार पर व्यापार-चक्र का सही विश्लेषण सम्भव नहीं हो सकता। व्यापार-चक्र के स्पष्टीकरण में अब इस सिद्धान्त का लगभग कोई महत्त्व नहीं रह गया है।

supplementary costs (सप्लीमेण्टरी कॉस्ट्स) : अनुपूरक लागत ।

बंधी लागत के लिए एक वैकल्पिक शब्द, जिसका अब बहुत कम प्रयोग होता है । इसका आशय लागत के उन अंशों से है जो अल्पकाल में उत्पादन-मात्रा के साथ घटते-बढ़ते नहीं, जैसे कि कारखाने का किराया, मशीनों का खर्च, पहले लिये गये ऋणों पर ब्याज का भुगतान आदि । यदि कुछ समय के लिए उत्पादन बन्द भी रहे, तो भी ये खर्चे चलते रहेंगे । दीर्घ-काल में कोई भी लागत बँधी नहीं होती, ऐसी अवधि में सब लागतें परिवर्तनीय होती हैं ।

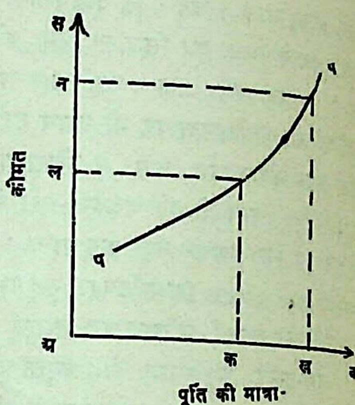
देखिए : fixed costs
overheads.

supply (सप्लाई) : पूर्ति, सम्भरण ।

किसी वस्तु की कुल मात्रा का वह भाग, जो विक्रेता किसी समय एक विशेष कीमत पर बेचने को तैयार हैं । पूर्ति के साथ एक विशेषता जुड़ी रहती है । कारण, सब कीमतों पर किसी वस्तु की पूर्ति की मात्रा एक समान नहीं होती । भिन्न-भिन्न कीमतों पर पूर्ति की मात्राएँ अलग-अलग होती हैं । साधारण-तया अन्य बातों के पूर्ववत् रहने पर किसी वस्तु की कीमत के बढ़ने पर वस्तु की पूर्ति की मात्रा बढ़ती है और कीमत के घटने पर पूर्ति की मात्रा घटती है । अर्थात् कीमत और पूर्ति के बीच सीधा सम्बन्ध होता है; दोनों एक ही दिशा में घटती-बढ़ती हैं ।

supply curve (सप्लाइ कर्व) : पूर्ति-वक्र ।

पूर्ति-अनुसूची को रेखाचित्र के रूप में प्रस्तुत करने पर प्राप्त वक्र । यह वक्र इस बात को प्रकट करता है कि भिन्न-भिन्न कीमतों पर किसी वस्तु की पूर्ति की मात्रा कितनी होगी । इसका उदाहरण नीचे दिया गया है :



इस रेखाचित्र में 'प-प' पूर्ति-वक्र है। इस वक्र का झुकाव नीचे से ऊपर की ओर होता है । इससे इस बात का बोध होता है कि नीची कीमत पर पूर्ति की मात्रा कम होती है और ऊँची कीमत पर पूर्ति की मात्रा अधिक होती है । यही पूर्ति का नियम कहलाता है ।

supply price (सप्लाइ प्राइस) : पूर्ति कीमत ।

वह कीमत, जिस पर विक्रेता किसी वस्तु की एक विशेष मात्रा बेचने के लिए तैयार हैं ।

supply schedule (सप्लाइ शेड्यूल) : पूर्ति-अनुसूची ।

वह अनुसूची, जिसमें एक ओर किसी वस्तु की भिन्न-भिन्न कीमतें दी हुई होती हैं और दूसरी ओर उन कीमतों पर बाज़ार में बिक्री के लिए आनेवाली उस वस्तु की भिन्न-भिन्न मात्राएँ दिखायी

जाती हैं। पूर्त्ति-अनुसूची तैयार करते समय केवल उस वस्तु की कीमत और उस वस्तु की पूर्त्ति की मात्रा को ही लिया जाता है। पूर्त्ति को प्रभावित करने-वाले अन्य तत्त्वों को अपरिवर्तित मान लिया जाता है। चीनी की एक काल्पनिक पूर्त्ति-अनुसूची का उदाहरण नीचे दिया गया है :

चीनी की प्रति किलो कीमत (रुपयों में)	पूर्त्ति की मात्रा प्रति माह (क्विटलों में)
१	५००
२	७००
३	९००
४	१२००
५	१६००

पूर्त्ति-अनुसूची के आधार पर पूर्त्ति-वक्र खींचा जाता है।

surplus (सरप्लस) : अधिशेष, वेशी।

लागत अथवा किसी चीज के सम्बन्ध में आधिक्य या वेशी। इस अवधारणा का प्रयोग विभिन्न आर्थिक क्षेत्रों में किया जाता है, जैसे कि उपभोग, मूल्य, लगान, लाभ, एकाधिकार आदि।

देखिए : consumer's surplus
profit
rent
surplus value.

surplus capacity (सरप्लस कैपेसिटी): वेशी क्षमता।

अधिक्षमता के लिए एक वैकल्पिक शब्द। वस्तु की माँग में भारी कमी होने के कारण ऐसी स्थिति पैदा होती है। बड़ी मात्रा में विशिष्ट पूँजी इस्तेमाल करने की दशा में यह समस्या बहुत गम्भीर रूप धारण कर लेती है। कारण, ऐसी स्थिति में माँग में कमी के अनुरूप उद्योग में आसानी से परिवर्तन लाना सम्भव नहीं होता।

देखिए : excess capacity.

surplus value (सरप्लस वैल्यू) : वेशी मूल्य, अधिशेष-मूल्य।

मार्क्स के आर्थिक सिद्धान्तों की एक प्रमुख अवधारणा। सम्पूर्ण उत्पादन में से आवश्यक सामाजिक उत्पादन (जो मज़-दूरों और उनके परिवार के जीवननिर्वाह के लिए समाज द्वारा जरूरी समझा जाता है) घटाने पर बाकी बचा उत्पादन वेशी या अधिशेष उत्पादन कहलाता है। इस अधिशेष या वेशी उत्पादन में लगे श्रम की मात्रा वेशी मूल्य कहलाती है। अर्थात् वेशी मूल्य का वह भाग है जो श्रमिकों को नहीं मिलता है, बल्कि विभिन्न शोषक वर्गों में बाँटा जाता है।

देखिए : marxian economics
exɔloitation.

surrender value (सरेण्डर वैल्यू) : समर्पण-मूल्य।

यह वह राशि है, जो बीमा-कम्पनी पालिसीधारक को उस दशा में देती है जबकि वह अपनी जीवन-बीमा पालिसी को अवधि के पहले बन्द कर भुगतान चाहता है। समर्पण-मूल्य की राशि मूल रूप से इन दो बातों पर निर्भर करती है—१. पालिसी के लिए प्रीमियम के रूप में कितनी रकम दी जा चुकी है, और २. पालिसी के पूरा होने में कितना समय बाकी है।

surtax (सरटैक्स) : अधि-कर।

ऊँचे आय-स्तर पर लगाया गया एक

अतिरिक्त कर । इसे आय-कर को अपेक्षाकृत अधिक आरोही या वर्धमान रूप देने के लिए प्रयोग किया जाता है। अनेक देशों में आजकल इस कर का सहारा लिया जाता है। इससे असमानताएँ कम करने एवं सरकार के लिए अतिरिक्त राजस्व प्राप्त करने में सहायता मिलती है।

sweated labour (स्वैटेड लेबर) : अतिशोषित श्रमिक ।

इसका आशय ऐसे श्रमिकों से है, जिन्हें बहुत थोड़ी मज़दूरी मिलती है और साथ ही साधारणतया जिन्हें बहुत अधिक घण्टे काम करना पड़ता है ।

syndicalism (सिण्डिकैलिज़्म) : श्रम-संघवाद, सिण्डिकैलिज़्म ।

क्रान्तिकारी समाजवाद का एक रूप, जिसका उदय फ्रान्स में उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में हुआ था। आज यह आन्दोलन निष्प्राण-सा है। सिद्धान्त के तौर पर यह वह आन्दोलन है, जो श्रमिकों के लाभ के लिए उनके संघों द्वारा चलाया जाता है। इसका लक्ष्य ऐसे समाज की स्थापना है, जिसमें उत्पादन-साधनों पर श्रमिक संघों का अधिकार होगा और वे ही उद्योग-धन्धों का संचालन करेंगे। यह समाज राज्यविहीन होगा।

इस समाज की स्थापना के लिए श्रमसंघवादी मुख्य रूप से श्रमिक संघों पर ही निर्भर रहते हैं। अतः श्रमिक संघों की स्थापना एवं उनकी शक्ति का विस्तार बहुत महत्त्वपूर्ण ठहरता है। श्रम-संघवाद वैधानिक उपायों पर नहीं, बल्कि सीधी कार्यवाही में विश्वास रखता है। हड़ताल इस सीधी कार्यवाही का मुख्य साधन है। हड़ताल के अतिरिक्त श्रम-संघवाद ध्वंसात्मक नीति का भी समर्थन करता है।

इस शताब्दी के तीसरे दशक में फ्रान्स में श्रमिकों की दशा में सुधार के फलस्वरूप इस आन्दोलन का ज़ोर बहुत-कुछ जाता रहा। अब इसके स्थान पर साम्यवाद को एक अधिक आशापूर्ण विकल्प माना जाने लगा है।

syndicate (सिण्डिकेट) : सिण्डिकेट, संघ ।

किसी सर्वनिष्ठ उद्देश्य के हेतु व्यावसायिक फर्मों का संगठन अथवा लोगों का एक संघ, जो स्वेच्छा से एकसाथ मिलकर कार्य करते हैं।

T

tableau economique (टैब्लो इकॉनॉमिक) : टैब्लो इकॉनॉमिक ।

वह सारिणी, जिसके द्वारा फ्रान्सीसी अर्थशास्त्री क्वेने ने अर्थव्यवस्था में सम्पत्ति के परिचालन की प्रक्रिया का, समाज के विभिन्न वर्गों का उसमें स्थान बताते हुए,

विश्लेषण किया। इस सारिणी से यह बताया गया कि किस प्रकार खेतिहर क्षेत्र द्वारा उत्पादित 'निवल उत्पाद' भूमि के स्वामियों, खेती करनेवाले किसानों और कारीगरों तथा व्यापारियों आदि अन्य वर्गों में परिचालित होता है। उन्होंने बताया कि केवल कृषि में ही निवल उत्पाद उत्पादित होता है, शेष सब क्षेत्र गैर-उत्पादक होते हैं।

take-off stage (टेक-ऑफ स्टेज) : टेक-ऑफ चरण।

अमरीकी अर्थशास्त्री डब्ल्यू० डब्ल्यू० रोस्टोव ने अपने आर्थिक विकास के चरणों के सिद्धान्त में एक चरण वह बताया कि जब अर्थ-व्यवस्था में विकास की अवस्थाएँ तैयार हो जाती हैं और इसके बाद आर्थिक विकास स्वचालित रूप से होता रहता है। यह महज़ वर्णनात्मक विचार है और सीमित अवलोकन पर आधारित है। इसमें आर्थिक विकास की प्रक्रिया और आर्थिक प्रणाली की कार्यविधि को मिलाकर नहीं देखा गया है।

take-over (टेक-ओवर) : अधिग्रहण।

एक कम्पनी द्वारा दूसरी कम्पनी का अधिग्रहण। यह नकद कीमत चुकाकर या शेयर खरीदकर किया जाता है। प्रायः शेयर-बाजार में एक कम्पनी के शेयरों को योजनाबद्ध तरीके से खरीदकर उसमें बहुमत या अधिकारी स्थिति प्राप्त कर ली जाती है। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में स्वाभाविक एकाधिकारिक प्रवृत्ति को साकार करने का यह एक काफ़ी प्रचलित तरीका है।

tarrif (टैरिफ) : प्रशुल्क, टैरिफ।

आयातित वस्तुओं पर लगाये गये कर। सीमा-शुल्कों का ही दूसरा नाम।

देखिए : customs-duties.

taxable capacity (टैक्सेबल कैपेसिटी) : करदाय क्षमता।

किसी करदाता, आर्थिक क्षेत्र या अर्थव्यवस्था की आय, सम्पत्ति, आर्थिक और आर्थिकेतर लेनदारियों और देन-दारियों की तुलनात्मक स्थिति तथा आय और सम्पत्ति के वितरण की उचित स्थितियों-सम्बन्धी धारणाओं के आधार पर यह निर्धारित किया जाता है कि उन पर कितना कर लगाया जा सकता है। इस अवधारणा का व्यावहारिक स्तर पर प्रयोग करना एक वित्तमन्त्री के लिए आवश्यक हो जाता है। परन्तु करदाय क्षमता का निर्धारण सार्वजनिक वित्त के विशेषज्ञों का एक पेचीदा और विवादास्पद विषय है।

देखिए : ability to pay.

taxable income (टैक्सेबल इन्कॅम) : करयोग्य आय।

आय का वह भाग, जिसपर कर देना पड़ता है। सारी आय में से विभिन्न प्रकार की कानून-प्रदत्त छूटें घटाकर कर-योग्य आय की गणना की जाती है।

taxation (टैक्सेशन) : कराधान।

निजी व्यक्तियों, संस्थाओं, व्यवसायों और समूहों द्वारा राज्य को किया जाने-वाला अनिवार्य भुगतान, जिसके बदले किसी भुगतान से सीधे रूप से सम्बन्धित कोई प्रतिफल नहीं मिलता है, कराधान कहलाता है। किसी देश के निवासी या नागरिक होने के कारण यह भुगतान अनिवार्य रूप से या कानूनी रूप से करना पड़ता है। राज्य द्वारा किये जाने-

वाले सब कार्यों और सेवाओं के लिए करारोपण संयुक्त रूप से किया गया प्रतिदान माना जा सकता है, परन्तु राज्य इन कामों और सेवाओं की लागत के कुछ भाग को करारोपण के अलावा अन्य कई तरीकों से भी प्राप्त कर सकता है।

tax avoidance (टैक्स एवोइडेन्स) : कर-परिहार, कर-बचाव।

कर-कानून की व्यवस्थाओं और प्रावधानों के अन्तर्गत (अर्थात् विधि-सम्मत तरीकों से) कर की मात्रा को कम करने के तरीकों को कर-परिहार या कर-बचाव कहा जाता है। उदाहरणार्थ, वास्तव में एक ही परिवार के लोग अपनी आय को अलग-अलग दिखाकर करों के भुगतान को कम कर लेते हैं।

tax evasion (टैक्स इवैजन) : कर-वंचन, कर-चोरी।

कर की राशि को, कर के आधार को घटा हुआ दिखाकर, बचा लेना या किसी भी दूसरे गैर-कानूनी तरीके से कम भुगतान करना कर-वंचन या कर-चोरी कहलाता है। इसके दण्डनीय होने पर भी यह आर्थिक अपराध काफ़ी व्यापक है, क्योंकि राज्य निजी आर्थिक कार्यों पर पूरी निगरानी और नियन्त्रण नहीं रख पाता है और कर-चोर सरकारी कर्मचारियों से साठ-गाँठ कर लेते हैं। इस तरह छुराया गया कर 'काला धन' कहलाता है और इसके आर्थिक, उत्पादक कामों में लगने से कर-चोरी और ज्यादा बढ़ जाती है।

भारत में कर-चोरी बहुत व्यापक स्तर पर होती है, क्योंकि हमारे देश की पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में काफ़ी बड़ा गैर-संगठित आर्थिक क्षेत्र है और कर-प्रशासन में काफी कमियाँ हैं।

technological unemployment (टैक्नोलॉजिकल अनएम्पलॉयमेण्ट) : तकनीकी बेरोज़गारी।

नयी तकनीकों के प्रचलन के फलस्वरूप मशीनें या पूँजी श्रम का स्थान ले लेती हैं। ऐसा पूँजी-सघन तकनीकों के साथ होता है। इस तरह की तकनीकों के अपनाने से कुछ श्रमिक बेरोज़गार हो जाते हैं। ऐसा श्रमिक बेरोज़गार तकनीकी कहलाता है, क्योंकि इसका जन्म तकनीकी परिवर्तन के स्वरूप के कारण हुआ। यदि ऐसे तकनीकी परिवर्तन के साथ-साथ निवेश तेजी से बढ़े तो तकनीकी बेरोज़गार कुछ प्रशिक्षण के बाद दूसरे कामों में लगाये जा सकते हैं।

परन्तु पूँजीवादी व्यवस्था में इस तरह का योजनाबद्ध तकनीकी परिवर्तन नहीं होता है कि इन बेरोज़गारी-जैसी सामाजिक लागतों को भी ध्यान में रखा जाये। फलतः अन्य किस्मों की बेरोज़गारी के साथ-साथ तकनीकी बेरोज़गारी भी इन पूँजीवादी, अनायोजित अर्थव्यवस्थाओं में फैलती रहती है।

देखिए : unemployment
reserve army of labour.

tenancy (टिनैन्सी) : काश्त-प्रणाली।

जिन शर्तों के आधार पर भूमिस्वामी अपनी जमीन अन्य लोगों को काश्त करने के लिए देते हैं, उनका सामूहिक रूप 'काश्त-प्रणाली' कहलाता है।

terms of trade (टर्म्स ऑफ ट्रेड): व्यापार अर्घ्य।

किन्हीं दो वस्तुओं, क्षेत्रों या देशों

की वस्तुओं की सापेक्षिक कीमतों का अनुपात। इस अवधारणा का प्रचलन बहुधा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सन्दर्भ में होता है। इस सन्दर्भ में किसी देश के निर्यातों के कीमत-सूचकांक और उसके आयातों के कीमत-सूचकांक का अनुपात व्यापार अर्घ्य कहलाता है। किसी एक अर्थव्यवस्था के दो क्षेत्रों या प्रदेशों के आयात-निर्यात की कीमतों के सूचकांकों का अनुपात भी व्यापार अर्घ्य कहलायेगा। इससे यह पता चलता है कि मूल्य के रूप में एक देश, क्षेत्र या प्रदेश अपने प्रति इकाई निर्यात के बदले कितना आयात प्राप्त करता है। जब किसी अवधि में प्रति इकाई निर्यात के बदले प्राप्त आयात का मूल्य बढ़ता है तो कहा जायेगा कि व्यापार अर्घ्य सुधर रहे हैं। इसके विपरीत की स्थिति में व्यापार अर्घ्य बिगड़ते हुए माने जायेंगे। इस अवधारणा से आपसी व्यापार से होनेवाले लाभों के वितरण को समझने में सहायता मिलती है।

आज तक के विश्व-व्यापार की प्रवृत्तियों का अध्ययन करने पर पता चलता है कि विकासशील देशों की प्राथमिक वस्तुओं की कीमतों के मुकाबले में विकसित देशों में निर्मित वस्तुओं की कीमतें ज्यादा तेजी से बढ़ी हैं अर्थात् विकासमान देशों का व्यापार अर्घ्य बिगड़ा है।

अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक असमानताओं की जड़ में इस तरह एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व उनका बिगड़ता व्यापार अर्घ्य है। वर्तमान तथाकथित 'तेल-संकट' विकासमान देशों द्वारा अपने व्यापार अर्घ्य को सुधारने की दिशा में किया जा रहा एक प्रयास है।

tied loan (टाईड लोन) : सशर्त्त कर्ज।

वे ऋण, जो किन्हीं खास शर्त्तों के साथ दिये जायें। अन्तर्राष्ट्रीय लेन-देन में इस तरह के कर्ज कर्जदाता द्वारा लेनदार के यह स्वीकार करने पर दिये जाते हैं कि लेनदार इन्हें कर्जदाता के देश में ही खर्च करेगा। इस तरह इस ऋण के उपयोग करने के तरीके सीमित हो जाते हैं। फलतः लेनदार इन कर्जों द्वारा प्राप्त साधनों का सर्वोत्तम प्रयोग नहीं कर पाता है। कई बार यह शर्त्त खरीद के क्षेत्र के अलावा अन्य बातों से भी सम्बन्धित हो सकती है। ये शर्त्तें कर्ज के उपयोग के उद्देश्य से भी सम्बन्धित हो सकती हैं।

tight money (टाइट मॅनी) : महँगी मुद्रा, अल्प मुद्रा।

मुद्रा-बाजार में कोषों की अपेक्षाकृत कमी और ऊँची ब्याज-दर की स्थिति। महँगी मुद्रा-नीति की स्थिति का दूसरा नाम।

देखिए : dear money.

time deposit (टाइम डिपॉज़िट) : जमा।

बैंकों में जमा करायी गयी वह राशि, जो एक पूर्वनिश्चित समय की पूर्वसूचना देकर ही निकलवायी जा सकती है, सावधि जमा कहलाती है।

time preference (टाइम प्रिफरेन्स) : समय अधिमान।

वह मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति, जिसके प्रभाव में मनुष्य भविष्य के बदले वर्तमान की सन्तुष्टियों, जरूरतों, उपभोग और उपलब्धियों को ज्यादा महत्त्व देते हैं। भविष्य की अनिश्चितता और ह्रासमान सीमान्त उपयोगिता इसके कारण हो सकते

हैं, परन्तु मुख्य कारण आदमी की दोषपूर्ण दूरदर्शिता-क्षमता ही है।

देखिए : interest
liquidity preference.

time wages (टाइम वेजेज) : सावधि मज़दूरी।

मज़दूरी चुकाने की वह प्रणाली, जिसके अन्तर्गत मज़दूरी की दर समय की एक खास लम्बाई के लिए तय की जाती है। इसमें मज़दूरों को आय की निश्चितता ज्यादा रहती है।

toll tax (टोल टैक्स): राहदारी, चुंगी।

किसी एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजे गये माल पर लगाया गया कर, जो प्रायः स्थानीय शासन की संस्थाओं द्वारा लगाया जाता है। ऐसे प्रदेशों के प्रवेशस्थलों पर बनी चौकियों में इस कर के चुकाये जाने के वाद ही माल को प्रविष्ट होने दिया जाता है। अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार में चुंगी वाधा डालती है, यातायात की गति कम करती है और इसमें भ्रष्टाचार और कर-चोरी की काफी गुंजाइश रहती है।

total cost (टोटल कॉस्ट) : कुल लागत।

किसी फर्म के एक अवधि-विशेष के सारे उत्पादन को तैयार करने में फर्म द्वारा लगाये गये सब संसाधनों की लागत, जो चाहे इसी अवधि में दी जाये या पहले, या बाद में।

देखिए : cost
social cost
external economies.

total revenue (टोटल रेवेन्यू) : कुल आगम।

किसी फर्म के एक अवधि-विशेष के उत्पादन को वेचने से प्राप्त सारी राशि।

देखिए : revenue.

trade barrier (ट्रेड वैरियर): व्यापार-रोध, व्यापारिक वाधा।

किसी एक देश के दूसरे देश के साथ होनेवाले व्यापार में कर, सीमा-शुल्क, कोटा, निषेध आदि द्वारा डाली गयी वाधा 'व्यापारिक वाधा' कहलाती है। इसके फलस्वरूप मुक्त व्यापार में अड़चनें आती हैं।

देखिए : protection
free trade.

trade credit (ट्रेड क्रेडिट) : व्यापारिक उधार।

एक व्यापारी द्वारा दूसरे व्यापारी को दी गयी उधार-राशि। साधारणतः विक्रेता यह उधार क्रेताओं को अल्पकाल के लिए देते हैं।

trade cycle (ट्रेड साइकल): व्यापार-चक्र।

'बिजनेस साइकल' का ही दूसरा नाम।

देखिए : business cycle.

trade union (ट्रेड यूनियन) : श्रमिक संघ, मज़दूर संघ।

सामूहिक सौदेबाजी और एकता द्वारा अपनी मज़दूरी की दर निर्धारित करवाने, काम की शर्तों और अवस्थाओं को सुधरवाने और अपने आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक अधिकारों की सुरक्षा और संवृद्धि के लिए बनाये गये मज़दूरों के संगठन श्रमिक संघ कहलाते हैं। उद्यमी की एकाधिकारिक स्थिति का मुकावला करने के लिए एक संगठन में बद्ध होकर श्रमिक अपनी सामूहिक शक्ति से अपनी

सौदाबाजी की कमज़ोरी को दूर करते हैं।

ये संघ आपसी सहयोग-समितियों का और राजनीतिक काम भी करते हैं। सभी पूँजीवादी देशों में ये संघ शोषण के खिलाफ लड़ते हैं। समाजवादी देशों में वर्गहीन समाज तथा मज़दूरों के हाथ में ताकत होने के कारण श्रमिक संघों की भूमिका बदल जाती है। वे उत्पादन के संगठन, प्रवन्ध और विकास में सहभागी होते हैं।

देखिए : collective bargaining
bilateral monopoly.

transfer earnings (ट्रान्सफर अर्निंग्स): अन्तरण आमदनी।

लगान के आधुनिक सिद्धान्त के सन्दर्भ में विकसित अवधारणा। उत्पादन के किसी संसाधन की तथा उसके वर्तमान धन्धे और दूसरे वैकल्पिक सर्वोत्तम धन्धे की आय का अन्तर अन्तरण आमदनी कहलाता है।

देखिए : rent.

transfer payments (ट्रान्सफर पेमेण्ट्स): अन्तरण भुगतान।

वे भुगतान, जो किसी अर्थव्यवस्था में एक व्यक्ति या संस्था द्वारा विना किसी उत्पादक काम के दूसरों को दिये जाते हैं और इसीलिए इन्हें राष्ट्रीय आय की गणना में शामिल नहीं किया जाता है; जैसे वृद्धावस्था-पेंशन और सरकारी प्रतिभूतियों पर ब्याज। ये केवल आय के एक भाग का एक समूह से दूसरे समूह को होनेवाला अन्तरण-भर है।

treasury bill (ट्रेजरी विल) : ट्रेजरी विल, सरकारी हुण्डियाँ।

सरकार के अल्पकालीन (सामान्य तौर पर तीन महीने के लिए) कर्ज प्राप्त करने के लिए मुद्रा-बाज़ार में प्रचलित पत्र। राजस्व के प्राप्त होने की प्रत्याशा में खर्च पूरा करने के लिए सरकार इन पत्रों द्वारा अग्रिम रूप से राशि प्राप्त करती है।

ब्रिटेन में वेगहो के सुझाव पर उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इन विलों का प्रचलन किया गया था। अव तो सभी सरकारें इन बिलों का सामान्य रूप से संसाधन जुटाने के लिए प्रयोग करती हैं।

turnover (टर्नओवर) : कुल विक्री।

किसी फर्म की सालाना बिक्री का कुल जोड़।

turnover tax (टर्नओवर टैक्स) : पण्यावर्त कर।

वितरण-व्यवस्था के हर चरण पर किसी वस्तु की बिक्री पर उसकी कीमत के अनुपात में लगाया गया कर।

U

unbalanced growth (अनबैलेन्स्ड ग्रोथ) : असन्तुलित संवृद्धि ।

जब आर्थिक संवृद्धि के दौरान सब क्षेत्रों और उद्योगों का विकास परस्पर परिपूरक और सम्बद्ध नहीं होता है, तब इसे असन्तुलित संवृद्धि कहा जाता है । कुछ अर्थशास्त्रियों का मत है कि इस प्रकार का संवृद्धि-क्रम आर्थिक विकास की रण-नीति भी बन सकता है। जब कुछ उद्योग पनपेंगे, तब फलस्वरूप कुछ वस्तुओं की माँग पैदा होगी और कुछ अन्य वस्तुओं का उत्पादन इस वस्तु की पूर्ति के कारण सम्भव होगा । इस प्रकार अर्थव्यवस्था में कुछ उद्योगों के विकास और उद्योगों और निवेश के बढ़ने के कारण और साधन दोनों बढ़ेंगे । इस असन्तुलित संवृद्धि की विकास-रण-नीति में, एक ओर निजी उद्यमियों का अस्तित्व और उनकी गतिमय क्षमता मानी गयी है, और दूसरी ओर, इस प्रकार से हुई संवृद्धि को श्रेयस्कर माना गया है । इन दोनों ही पूर्वकल्पनाओं को अवास्तविक और पूर्वग्रहजन्य साबित किया जा सकता है । मजे की बात तो यह है कि या तो बिना आयोजन के विकास की सम्भावना स्वीकारी जाती है या योजनाबद्ध रीति से सन्तुलन के स्थान पर असन्तुलन प्राप्त करने को वाजिब माना जाता है ।

uncertainty (अन्सरटैन्टी) : अनिश्चितता ।

अर्थशास्त्र में इस शब्द का प्रयोग साधारण बोलचाल से अलग, सीमित और विशेष अर्थ में होता है । जब किसी काम के एक से ज्यादा नतीजे निकलने सम्भव हों, हर नतीजे के रूप का तो लोगों को ज्ञान हो परन्तु किसी खास नतीजे के प्राप्त होने के अवसरों या सम्भावनाओं का ज्ञान न हो, तो अनिश्चितता की स्थिति पैदा होती है । अधिकांश आर्थिक कार्य भविष्य से सम्बन्धित होते हैं और उनमें ऐसी ही अनिश्चितता होती है । यह अनिश्चितता जोखिम से सम्बन्धित परन्तु अलग होती है । जोखिम में किसी बात के वास्तव में होने की सम्भावनाओं का ज्ञान होता है। इसीलिए जोखिम का बीमा करवाया जा सकता है, परन्तु अनिश्चितता वह जोखिम होती है जिसका बीमा नहीं करवाया जा सकता ।

देखिए : risk.

under consumption (अण्डर कन्सम्पशन) : अल्पउपभोग ।

जब उपभोग का स्तर इतना नहीं हो कि वह उपभोक्ता वस्तुओं के सारे उत्पादन को खरीद सके, तब यह स्थिति अल्पउपभोग की मानी जायेगी। यह स्थिति उपभोग-प्रवृत्ति के कम होने का दूसरा नाम है। इसके कारण राष्ट्रीय आय और रोजगार का स्तर घटता-बढ़ता है । आय का असमान वितरण, एकाधिकार की प्रवृत्ति, उत्पादन का जरूरतों के अनुसार नहीं वरन् मुनाफे के लिए उत्पादन अल्पउपभोग के मूल कारण हैं।

देखिए : keynesian economics.

underdevelopment (अण्डरडेवलपमेण्ट) : अल्पविकास ।

विकास का दीर्घकालिक अभाव। तीसरी दुनिया के करीबन सभी देश अल्प-विकास से ग्रसित हैं। अल्पविकास की सूक्ष्म परिभाषा, इसके सूचकों की पहचान, इसके कारणों की व्याख्या और इसे मिटाने की नीति की खोज आज के सभी समाज-शास्त्रों की मुख्य समस्या है।

देखिए : developing nations
economic development
economic growth.

underpopulation (अण्डरपॉपुलेशन) : अल्पजनसंख्या ।

जनसंख्या का वह स्तर, जो किसी देश के आर्थिक संसाधनों का समुचित प्रयोग करने के लिए अपर्याप्त हो। यह स्थिति श्रमिकों के अभाव में नजर आती है। इसके कारण आर्थिक विकास पर्याप्त गति से नहीं हो पाता है। अल्पजनसंख्या वाली अर्थव्यवस्थाओं में तकनीकी प्रगति में श्रम बचाने और पूंजी-साधन होने की प्रवृत्ति पायी जायेगी; क्योंकि इन देशों में मजदूरी की दर अपेक्षया ज्यादा होती है।

देखिए : optimum population.

undervalued currency (अण्डरवैल्यूड करेन्सी) : अल्पमूल्यित करेन्सी ।

किसी देश की मुद्रा की विदेशी विनिमय-कीमत के मुक्त बाजार के सन्तुलन-स्तर, खासकर दीर्घकालिक सन्तुलन-स्तर, से कम होने पर वहाँ की मुद्रा अल्पमूल्यित करेन्सी कही जायेगी। भुगतान-अधिशेष के लगातार धनात्मक अधिशेष के कारण किसी देश की मुद्रा का बाजार-मूल्य या दीर्घकालीन सन्तुलन-मूल्य बढ़ता है, परन्तु यदि आधिकारिक विनिमय-दर को बढ़ाया नहीं जाये तो वह मुद्रा अल्पमूल्यित हो जाती है।

देखिए : over-valued currency.

underwriting (अण्डरराइटिंग) : जोखिम अंकन ।

जोखिम का बीमा करने की प्रक्रिया। जिन कामों के होने या न होने की सम्भावना की गणना की जा सकती है, उनका एक तरह के कमीशन पर बीमा किया जा सकता है। नये शेयर जारी करने पर दीर्घकालिक वित्त-कम्पनियाँ, खासकर बीमा-कम्पनियाँ, ऐसा बीमा करके आम जनता द्वारा नहीं खरीदे गये शेष शेयरों को खरीदने का जिम्मा ले लेती है।

unearned income (अनअर्न्ड इन्कम): अनर्जित आय ।

सीमित अर्थ में वह आय, जो आर्थिक लगान या एकाधिकारिक मुनाफे के रूप में मिलती है, अनर्जित आय कही जाती है। परन्तु एक व्यापक अर्थ में वह सारी आय, जो बिना किसी श्रम के सम्पत्ति द्वारा प्राप्त की जाती है, अनर्जित आय बतायी जाती है।

देखिए : earned income.

unemployment (अनएम्पलॉयमेण्ट) : बेरोजगारी, बेकारी ।

श्रम-बाजार की वह स्थिति, जिसमें काम करने में समर्थ और काम करने के लिए तैयार (अर्थात् जो काम खोज रहे हैं) सभी मजदूरों में से कुछ लोग काम या रोजगार पाने में असमर्थ रहते हैं, बेरोजगारी कहलाती है। अर्थात् बेरोजगारी गैर-स्वैच्छिक बेकारी को कहा जाता है।

बेकारी न केवल सामाजिक संसाधनों को व्यर्थ गँवाना है, अपितु एक व्यक्ति को अभाव-ग्रसित और व्यर्थता की भावना से भरा बनाना है। बेकारी कई प्रकार की हो सकती है; जैसे तकनीकी, संरचनात्मक, मौसमी, छद्म, व्यापार-चक्रात्मक आदि। केन्स के सिद्धान्तों द्वारा पूंजीवादी देशों की संरचनात्मक और चक्रीय बेरोजगारी की व्याख्या की गयी। जैसे पूंजीवादी देश इस प्रकार की बेरोज़गारी से ग्रसित रहते हैं, उसी तरह अल्पविकसित देश भी व्यापक बेरोज़गारी, छद्म तथा संरचनात्मक बेरोज़गारी से ग्रस्त हैं। अल्पविकसित देशों की गरीबी का सबसे बड़ा कारण या उसका प्रतिविम्ब व्यापक बेरोज़गारी और कम-उत्पादितावाले रोज़गार हैं। पश्चिमी अर्थशास्त्र की अवधारणाओं और सिद्धान्तों के आधार पर इन देशों की बेकारी का उचित और फलप्रद विश्लेषण नहीं हो पाता है।

देखिए : seasonal unemployment
disguised unemployment
cyclical unemployment
frictional unemployment
voluntary unemployment
keynesian economics
full employment.

unfunded debt (अनफण्डेड डेट्) : अनिधिक कर्ज।

साधारणत: अल्पकालीन सार्वजनिक ऋण के लिए प्रयुक्त शब्द। इस कर्ज को चुकाने के लिए नियमित कोष बनाने की व्यवस्था नहीं होती है।

देखिए : funded debt.

unit banking (यूनिट बैंकिंग) : इकाई बैंक-व्यवसाय।

बैंकों की वह व्यवस्था, जिसमें उसकी एक से ज्यादा शाखाएँ नहीं होतीं। ऐसे बैंक संयुक्त राज्य अमरीका में काफी हैं।

देखिए : branch banking.

unit elasticity (यूनिट इलास्टिसिटी): इकाई लोच।

किसी परिवर्तनीय चर (जैसे माँग, पूर्त्ति आदि) में निर्धारक तत्त्व (जैसे कीमत, मुनाफे की दर आदि) के प्रभाव से आये परिवर्तन का वह रूप जब दोनों में बराबर आनुपातिक परिवर्तन हो। माँग की इकाई लोच होने पर कीमत में परिवर्तन के पहले और बाद की दोनों अवस्थाओं में सम्पूर्ण व्यय एक समान रहता है।

देखिए : elasticity of demand
elasticity of supply.

unit trust (यूनिट ट्रस्ट) : यूनिट ट्रस्ट।

एक ऐसा निवेश-संस्थान, जो जनता में यूनिटें (जिनका अंकित मूल्य निश्चित होता है) बेचकर पूंजी एकत्रित करता है और इन्हें अलग-अलग प्रकार की प्रतिभूतियों और शेयरों में लगाता है। यह संस्था अपनी बेची यूनिटों को हमेशा फिर से खरीदने को तैयार रहती है। इन यूनिटों पर यह संस्था सालाना आय वितरित करती है। छोटे निवेशकों को प्रोत्साहित करने का यह एक कारगर

तरीका है।

unproductive labour (अनप्रॉडक्टिव लेबर) : अनुत्पादक श्रम।

क्लासिकल अर्थशास्त्री श्रम का उत्पादक और अनुत्पादक श्रेणियों में विभेद करते थे। एडम स्मिथ के अनुसार सेवाओं में लगे मजदूर अनुत्पादक होते हैं। वर्तमान पश्चिमी अर्थशास्त्र के अनुसार हर मजदूर, जिसे पारिश्रमिक दिया जाता है, उत्पादक होता है। यह एक यथास्थितिवादी मत है। समाज के एक तर्क और विवेकसंगत संगठन को नजर में रखकर कुछ प्रकार के कामों में लगे श्रमिकों को अनुत्पादक कहा जा सकता है। जैसे प्रतियोगितात्मक विज्ञापन में लगे व्यक्ति सामाजिक दृष्टि से अनुत्पादक हैं। अन्तर्राष्ट्रीय शस्त्रास्त्रों की होड़ के कारण प्रतिरक्षा के कामों में लगे लोगों का एक हिस्सा अनुत्पादक माना जा सकता है। जाहिर है कि किस काम को अनुत्पादक ठहराया जाये और किसको नहीं, यह काफी विवादपूर्ण मसला है।

unrequited exports (अनरेक्विटेड एक्सपोर्ट्‌स) : ऐवज़ी निर्यात।

वे निर्यात, जो पुराने कर्जों के सलटाने में किये जाते हैं और जिनके बदले किसी भुगतान में वस्तुओं और सेवाओं का प्रवाह नहीं होता है। भारत-जैसे देशों को, जो अपनी वर्तमान जरूरतें भारी मात्रा में विदेशी कर्जों द्वारा पूरी कर रहे हैं, आगे चलकर काफी मात्रा में ऐसे निर्यात करने पड़ेंगे।

user cost (यूजर कॉस्ट) : उपयोग-लागत, प्रयोग-लागत।

केन्स द्वारा प्रयुक्त शब्द। किसी मशीन को, काम में लाये बिना नहीं छोड़ कर, चलाने पर घिसावट और सार-सँभाल की जो लागत आती है वह उपयोग या प्रयोग-लागत कहलाती है। काम में लाने से पूंजी की एक इकाई की कीमत में आयी कमी के रूप में इसे प्रकट किया जा सकता है।

लागत-लाभ-विश्लेषण में प्रयोग-लागत का अर्थ किसी सुविधा के प्रयोग-कर्त्ता द्वारा इस काम के लिए उठायी गयी सारी निजी और सामाजिक लागत के योग से भी होता है।

use value (यूस वैल्यू) : उपयोगिता मूल्य।

किसी वस्तु की वह गुणवत्ता, जिसके कारण वह जरूरतों को पूरा करती है। किसी वस्तु की कुल उपयोगिता का दूसरा नाम।

देखिए : utility
value in use.

usury (यूसरी) : सूदखोरी।

ब्याज की बहुत ऊँची दर वसूल करने की नीति, जो निजी साहूकारों की प्रवृत्ति को प्रकट करती है। पहले इस शब्द का प्रयोग ब्याज लगाने के लिए सामान्य रूप से किया जाता था।

utility (यूटिलिटी) : उपयोगिता।

किसी वस्तु या सेवा द्वारा एक उपभोक्ता को आत्मपरक रूप से प्राप्त होनेवाली सन्तुष्टि को प्रकट करनेवाली एक मनोवैज्ञानिक अवधारणा, जिसका कीमत-सिद्धान्तों में माँग का पक्ष स्पष्ट करने के लिए नव-क्लासिकल अर्थशास्त्र में व्यापक रूप से प्रयोग किया जाता है। इस शब्द का आशय किसी वस्तु के प्रयोग के किसी

वस्तुपरक लाभ या नैतिक रूप से प्राप्त लाभ से नहीं है। एक व्यक्ति की किसी वस्तु के लिए संसाधन खर्च करने की तत्परता एवं उन संसाधनों की मात्रा पर उपयोगिता का गहरा असर माना जाता है। उपयोगिता की गणना प्रत्यक्ष रूप से असम्भव है, परन्तु अर्थशास्त्रियों ने अनेक अप्रत्यक्ष तरीके सुझाये हैं। कीमत के सीमान्त सिद्धान्तों में तो उपयोगिता की अवधारणा का मेरुदण्ड-सा महत्व है।

देखिए : marginal utility
indifference curves
ordinal utility.

V

value (वैल्यू) : मूल्य।

मूल्य शब्द को दो अर्थों में प्रयोग में लाया जाता है। एक, उपयोगिता-मूल्य और दूसरा, विनिमय-मूल्य। प्रायः मूल्य शब्द से दूसरे अर्थ में ही काम लिया जाता है। इससे तात्पर्य किसी वस्तु की निश्चित मात्रा के बदले प्राप्त होनेवाली अन्य किसी वस्तु की मात्रा से होता है। कीमत मुद्रा के रूप में मूल्य को प्रकट करती है।

देखिए : price
use value
exchange value
price theory.

value in exchange (वैल्यू इन एक्सचेंज) : विनिमय-मूल्य।

'एक्सचेंज वैल्यू' को ही कहने का दूसरा तरीका।

देखिए : exchange value.

value in use (वैल्यू इन यूस) : उपयोगिता-मूल्य।

'यूस वैल्यू' को ही कहने का दूसरा तरीका।

देखिए : use value.

value of money (वैल्यू ऑफ मॅनी): मुद्रा का मूल्य।

मुद्रा की क्रय-शक्ति का दूसरा नाम। यह सामान्य कीमत-स्तर का उलटा होती है। जब सामान्य कीमत-स्तर ऊंचा होता है तब मुद्रा का मूल्य कम होता है। जब कीमत-स्तर घटता है तब मुद्रा का मूल्य बढ़ जाता है। मुद्रा के मात्रा-सिद्धान्त द्वारा मुद्रा के मूल्य के निर्धारक तत्त्वों की व्याख्या की गयी है।

देखिए : purchasing power
quantity theory of money.

variable costs (वैरियेबल कॉस्ट्स :)

परिवर्ती लागतें, परिवर्तनीय लागतें।

दीर्घकाल में तो सभी लागतें परिवर्ती या परिवर्तनीय होती हैं। परन्तु इस शब्द से आशय उन लागतों से है, जो अल्पकाल में भी बदली जा सकें। ये परिवर्तनीय संसाधनों की कीमत द्वारा मालूम की जाती हैं। ये लागतें अल्पकाल में उत्पादन बढ़ाने पर उठानी पड़ती है।

देखिए : short-period
cost
cost curves.

velocity of circulation (वेलोसिटी ऑफ सरक्युलेशन) : चलन-गति।

मुद्रा की एक इकाई किसी निश्चित अवधि में औसतन जितनी बार काम में लायी जाती है, अर्थात् लेन-देन के काम में लगायी जाती है, उसे चलन-गति या मुद्रा की चलन-गति कहा जाता है। किसी देश की एक अवधि-विशेष में खर्च की गयी मुद्रा की सारी मात्रा को मुद्रा की मात्रा से विभाजित करने पर चलन-गति का पता चलता है।

देखिए : quantity theory of
money.

vertical combination (वर्टिकल कॅम्बीनेशन) : उर्ध्व संयोजन।

ऐसी फर्मों का एकीकरण, जो एक ही वस्तु के उत्पादन के विभिन्न चरणों में लगी हुई हैं। जैसे लोहे और इस्पात के उद्योग में खनिज लोहे की खुदाई से लेकर तैयार लोहे के वितरण तक में या उनसे बनी वस्तुओं के उत्पादन तक में लगी फर्मों का एकीकरण किया जा सकता है।

vertical integration (वर्टिकल इण्टिग्रेशन) : उर्ध्व एकीकरण।

इस स्थिति में फर्में किसी वस्तु या सेवा के उत्पादन की अधिकांश प्रक्रियाएँ, जो इस उत्पादन-प्रक्रिया के विभिन्न चरण हैं, अपने-आप संचालित करती हैं। जैसे एक कपड़े की मिल जो कताई, बुनाई, छपाई, यातायात, बिक्री आदि स्वयं ही करती हैं।

vertical mobility (वर्टिकल मोबिलिटी) : उर्ध्व गतिशीलता।

एक व्यक्ति का कम आय से अधिक आयवाले धन्धों या व्यवसायों की ओर क्रमशः बढ़ना। ऐसा होना किसी अर्थ-व्यवस्था में अवसरों की समानता, शिक्षा और प्रशिक्षण की सुविधा, व्यवसाय के चयन की स्वतन्त्रता और रोजगार में व्यक्तियों के निष्पक्ष चुनाव की व्यवस्था का द्योतक है। ऐसी अर्थव्यवस्था में लोगों को अपनी कुशलता और क्षमता बढ़ाने की प्रेरणा मिलती है, जिससे आर्थिक विकास में सहायता मिलती है।

visible balance (विजिबल बैलेन्स) : दृश्य सन्तुलन।

व्यापार-सन्तुलन का वैकल्पिक नाम।

देखिए : balance of trade.

visible items (विजिबल आइटम्स) : दृश्य मदें।

व्यापार-सन्तुलन में वस्तुओं के आयात और निर्यात की मदें। इसके विपरीत सेवाओं की मदें 'अदृश्य मदें' कहलाती हैं।

देखिए : balance of payments.

voluntary unemployment (वोलण्टरी अनएम्प्लॉयमेण्ट) : स्वैच्छिक बेरोजगारी।

जो लोग अपनी मर्जी से कोई रोज़गार नहीं करना चाहते और इसलिए श्रम के बाज़ार में अपनी सेवाएँ प्रस्तुत करते हैं, वे स्वैच्छिक बेरोज़गार होते हैं। ये लोग अपने श्रम से जीविकोपार्जन में विश्वास नहीं करते। ये प्रचलित सामाजिक मनोवैज्ञानिक विचारों की दृष्टि से विलग होते हैं और किसी-न-किसी रूप में परोपजीवी होते हैं। दीवाने, साधु-संन्यासी आदि इस श्रेणी में आते हैं।

W

wage freeze (वेज फ्रीज) : वेतनजाम।

स्फीति का, विशेषकर लागत में वृद्धि के कारण होनेवाली स्फीति का, मुकावला करने के लिए एक निश्चित अवधि के लिए मज़दूरी और वेतन की बढ़ोतरी पर कानूनी रोक। न केवल राजनीतिक दृष्टि से इस कदम को लागू करना कठिन और मज़दूर-विरोधी है, बल्कि आर्थिक दृष्टि से भी इसके कारगर होने में सीमित विश्वास ही किया जा सकता है। 'वेतनजाम' का श्रम की उत्पादिता और प्रेरणा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

wage fund theory (वेज फण्ड थिअॅरी) : मज़दूरी-कोष-सिद्धान्त।

क्लासिकल अर्थशास्त्रियों द्वारा विकसित सिद्धान्त। इस मत के अनुसार श्रम की माँग पूँजी की मात्रा पर निर्भर रहती है, जो कि मज़दूरी-कोष का निर्माण करती है। अर्थात् श्रम की माँग उसकी उत्पादिता पर नहीं, वरन् बचत की मात्रा द्वारा तय होती है। इस सिद्धान्त के एक रूप के अनुसार मज़दूरी-कोष की मात्रा अल्पकाल में निश्चित होती है। अतः मज़दूरी की दर मुनाफा और फलस्वरूप बचत और मज़दूरी-कोष बढ़ने पर ही बढ़ाई जा सकती है।

माँग और पूर्त्ति की ताकतों का मजदूरी के निर्धारण में प्रभाव मानने पर इस सिद्धान्त की मान्यता कम हो जाती है। इस सिद्धान्त में यह भी मान्यता है कि निवेश का बराबर-बराबर भाग स्थायी पूँजी और मज़दूरी-कोष के निर्माण में जाता है। स्पष्ट है कि ऐसा होने का कोई कारण नहीं हो सकता है। अब इस सिद्धान्त को व्यावहारिक नहीं माना जाता है।

wage goods (वेज गुड्स) : श्रमिक उपभोग्य वस्तुएं, श्रमिक वस्तुएं।

वे वस्तुएँ और सेवाएँ, जो श्रमिकों के पारिवारिक बजट का मुख्य अंग होती हैं। श्रमिक अपनी आय का मुख्य भाग इन्हीं वस्तुओं पर खर्च करते हैं। भारत में अनाज, खाद्य पदार्थ, मोटे कपड़े, तेल

आदि मुख्य श्रमिक वस्तुएँ हैं। मज़दूरों का महँगाई-भत्ता इन वस्तुओं की कीमतों के सूचकांक से जुड़ा रहता है। वास्तविक मज़दूरी की दर के स्थायित्व के लिए इन वस्तुओं की कीमतों को स्थिर रखना बहुत जरूरी होता है।

wages (वेजेज) : मज़दूरी।

मज़दूरों को उत्पादन-प्रक्रिया में उनके सहभाग के बदले दिया जानेवाला प्रतिफल। पूँजीवाद से पहले की सामन्ती और दास-व्यवस्था में श्रमिकों को मज़दूरी की दर पर काम में लगाना श्रम के उपयोग का मुख्य तरीका नहीं था। मज़दूरी की दर के लिए जीवन-निर्वाह-मज़दूरी-सिद्धान्त, मज़दूरी-कोष-सिद्धान्त, सीमान्त उत्पादिता-सिद्धान्त आदि सिद्धान्तों का प्रचलन हुआ। मज़दूरी को श्रम की कीमत मानकर इस रूप में माँग और पूर्त्ति की ताकतों द्वारा भी मज़दूरी-निर्धारण की प्रक्रिया की व्याख्या की जाती है। सामूहिक सौदाकारी सिद्धान्त श्रमिक संघों के माध्यम से मजदूरी-निर्धारण की प्रक्रिया समझाते हैं। विभिन्न किस्म के मज़दूरों को अलग-अलग श्रम-बाज़ारों में बाँटकर इस सिद्धान्त को ज्यादा व्यावहारिक रूप देने के प्रयास भी किये जाते हैं। राष्ट्रीय आय-गणना की आय-प्रणाली में मज़दूरी उसका एक मुख्य अंग होती है। राष्ट्रीय आय में मज़दूरी का अनुपात श्रमिक वर्ग की आर्थिक स्थिति का अच्छा सूचक है।

देखिए : subsistence theory of wages
iron law of wages
marginal productivity
wage fund theory
marxian economics
bargaining theory of wages.

weges of management (वेजेज ऑफ मैनेज्मेण्ट) : प्रबन्ध का पारिश्रमिक।

मुनाफे का एक तत्त्व। उद्यमी के शुद्ध लाभ का पता लगाने के लिए उसके द्वारा प्रबन्ध का काम करने का प्रतिफल, जिसे 'प्रबन्ध का पारिश्रमिक' कहा जाता है। पूँजी का ब्याज उसमें से घटा दिया जाता है।

waiting (वेटिंग) : प्रतीक्षा।

पूँजीनिर्माण के लिए बचत आवश्यक काम है। बचत उपभोग को घटाकर या स्थगित करके की जाती है। इस प्रक्रिया का उद्देश्य आगे चलकर उत्पादन का ज्यादा प्रवाह प्राप्त करना होता है। इसलिए कहा जा सकता है कि भविष्य में ज्यादा उत्पादन या आय प्राप्त करने के लिए वर्तमान में उपभोग घटाकर प्रतीक्षा करनी पड़ती है। नयी पूँजी के कार्यरत होने पर इस प्रतीक्षा का प्रतिफल प्राप्त हो जाता है।

देखिए : capital formation.

wants (वाण्ट्स) : आवश्यकताएँ, जरूरतें।

मनुष्य को समाज में जीवित रहने और अपने परिवार का भरण-पोषण करने के लिए अनेक वस्तुओं और सेवाओं की ज़रूरत होती है। ये ज़रूरतें जीववैज्ञानिक, भौतिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक कारणों से उत्पन्न होती हैं। उत्पादन और आर्थिक क्रियाओं का उद्देश्य आवश्यकताओं की पूर्त्ति और सन्तुष्टि ही है। आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए साधन उपलब्ध हों और लोग उन साधनों

को खर्च करने को तैयार हों तो वे माँग बन जाती हैं। आर्थिक दृष्टि से एक पूँजीवादी व्यवस्था में, जहाँ उत्पादन मुनाफा कमाने के लिए होता है, वे आवश्यकताएँ ही महत्त्वपूर्ण होती हैं जो माँग बन जायें। परन्तु सामाजिक दृष्टि से, समाज-कल्याण की दृष्टि से, सभी आवश्यकताएँ समान रूप से महत्त्वपूर्ण होती हैं। कुछ आवश्यकताएँ व्यक्तिगत होती हैं; जैसे रोटी, कपड़े और मकान की। परन्तु कुछ आवश्यकताएँ सामाजिक या सामूहिक होती हैं; जैसे स्वास्थ्य, सुरक्षा, शिक्षा, शुद्ध वातावरण, सांस्कृतिक विकास आदि। पूँजीवादी देशों में व्यक्तिगत आवश्यकताओं पर तो फिर भी कुछ ध्यान दिया जाता है, क्योंकि लोग उन्हें पूरा करने के लिए खर्च करने को तैयार होते हैं, परन्तु सामूहिक आवश्यकताओं की काफी अवहेलना होती है।

wealth (वेल्थ) : सम्पत्ति।

एक व्यक्ति की वे सारी वस्तुएँ और सेवाएँ, जिनका बाज़ार में मूल्य होता है, उसकी सम्पत्ति कहलाती हैं। इसमें व्यक्ति की सभी भौतिक और अभौतिक अधिकृतियाँ शामिल होती हैं। सम्पत्ति की श्रेणी में आने के लिए मूल्य होने के गुण का अर्थ होता है कि ये चीजें स्थानान्तरित होने योग्य होनी चाहिए। इस तरह मालों का भण्डार, चल और अचल परिसम्पत्तियाँ आदि तो सम्पत्ति हैं ही, परन्तु व्यावसायिक गुण, साख आदि भी सम्पत्ति की कोटि में आते हैं। भौतिक सम्पत्तियों को मानवेतर सम्पत्ति और अभौतिक को मानवीय सम्पत्ति कहा जा सकता है। सम्पत्ति आय उत्पन्न करने का साधन होती है। सामाजिक दृष्टि से वे परिसम्पत्तियाँ, जो एक व्यक्ति की देनदारी और समाज के दूसरे सदस्य की देनदारी होती हैं, सम्पत्ति नहीं मानी जातीं। दूसरे, सामाजिक दृष्टि से सम्पत्ति में बाज़ार में बिकने की क्षमता ज़रूरी नहीं है; बल्कि ज़रूरी यह है कि इसका सामाजिक आवश्यकताओं को पूरा करने में उपयोग है या नहीं।

welfare economic (वेलफेयर इकॉनॉमिक्स) : कल्याण अर्थशास्त्र, कल्याणपरक अर्थशास्त्र।

अर्थशास्त्र की वह शाखा, जो यह तहकीकात करती है कि आर्थिक दृष्टि से क्या उपादेय, श्रेयस्कर या कुशलतापूर्ण है। इसमें संसाधनों के आवण्टन की कुशलता का मूल्यांकन किया जाता है। इसमें यह भी विवेचन किया जाता है कि आर्थिक कुशलता या कल्याण क्या है और आर्थिक नीतियों द्वारा कैसे और किन दशाओं में आर्थिक कल्याण को बढ़ाया या सुधारा जा सकता है। अधिकांशतः कल्याण अर्थशास्त्र पूर्ण प्रतियोगिता, बाज़ार, कीमत और निजी उद्यमवाली पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के लिए वैचारिक भूमि तैयार करने का काम करता है। इसका व्यक्तिवादी दृष्टिकोण इसे यथास्थितिवादी या सुधारवादी बना देता है।

welfare state (वेलफेयर स्टेट) : कल्याणकारी राज्य।

पूँजीवादी व्यवस्था के वे राज्य, जो अपनी जनता के लिए सामाजिक सुरक्षा, अनिवार्य और मुफ्त स्वास्थ्यसेवा, बेरोज़गारी बीमा, वृद्धावस्था बीमा, मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा-व्यवस्था आदि जनकल्या-

णकारी कदम उठाते हैं, कल्याणकारी राज्य कहलाते हैं। जनतान्त्रिक समाजवादी राजनीतिक दल, जो पूँजीवादी व्यवस्था को सुधारना चाहते हैं, इस प्रकार के कदमों को महत्त्व देते हैं। इस प्रकार के राज्य द्वारा पूँजीवाद की कुछ बहुत बेजा कमियाँ या तो कम हो जाती हैं या हट जाती हैं। परन्तु वर्गहीन समाजवाले समाजवाद के समकक्ष जनकल्याण इसमें सम्भव नहीं है।

working capital (वर्किंग कैपिटल) : कार्यवाही पूँजी।

पूँजी का वह भाग, जो एक बार ही लम्बे अर्से के लिए किसी खास भौतिक रूप में नहीं लगा दिया जाता, बल्कि उत्पादन की वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए चालू उत्पादनस्तर के अनुसार परिवर्तनीय संसाधन खरीदने के लिए काम में लाया जाता है। मजदूरी चुकाने, कच्चा माल खरीदने, बिजली का बिल चुकाने, नकदी की दिन-ब-दिन की जरूरतें पूरी करने के लिए जरूरी पूँजी कार्यवाही पूँजी में शामिल होती है।

working population (वर्किंग पॉपुलेशन) : कार्यशील जनसंख्या।

जनसंख्या का वह भाग, जो आर्थिक दृष्टि से सक्रिय हो और राष्ट्रीय आय के उत्पादन में हिस्सा बँटाता हो। सभी स्वस्थ पुरुष, जो कार्यशील उम्र के हों तथा स्वैच्छिक रूप से बेरोज़गार न हों, और औरतें, जो सामाजिक विचारों के अनुसार कार्य-समर्थ मानी जायें, कार्यशील जनसंख्या के भाग माने जाते हैं। जनसंख्या की आयु और यौन रचना का, निवृत्त होने की उम्र, काम शुरू करने की न्यूनतम उम्र और रोज़गार-सम्बन्धी सामाजिक मान्यताओं और कानूनों का कार्यशील जनसंख्या के आकार पर काफी असर पड़ता है। श्रम की माँग और पूर्ति की स्थिति का आपसी सम्बन्ध कार्यशील जनसंख्या के आकार को बहुत प्रभावित करता है। श्रम की कमी होने पर ज्यादा-से-ज्यादा लोग अपनी विश्राम की पसन्द को ऊँची मज़दूरी की दर के मुकाबले त्यागकर कार्यशील जनसंख्या में शामिल होंगे। श्रम के सुलभ रूप से प्राप्त होने पर कम मज़दूरी की दर पर कई लोग काम के बदले विश्राम को तरजीह देंगे। फलतः कार्यशील जनसंख्या का सारी जनसंख्या में अनुपात घट जायेगा। आर्थिक विकास के स्तर और रोज़गार की स्थिति भी कार्यशील जनसंख्या से काफी सम्बन्धित हैं।

Y

yield (यील्ड) : उपज, प्रतिफल।

यह साधारणत: खेती की उपज के सन्दर्भ में प्रयुक्त होनेवाला शब्द है। परन्तु अर्थशास्त्र में इस शब्द का प्रयोग पूंजी या किसी संसाधन को प्राप्त प्रतिफल के लिए किया जाता है। वित्तीय पत्रों से प्राप्त होनेवाली आय भी उन पत्रों का प्रतिफल कहलाती है।

अनुक्रमणिका

प

फ

ब

य

र

००



